* ॐ तत्सद्ब्रह्मणे नमः *

सामवेदीया-

छान्दोग्योपनिषत्

* प्रथमोऽध्यायः *

सामवेदके पाँच भाग हैं-१ प्रस्ताव २ प्रतिहार ३ उद्गीथ ४ उपद्रव और ५ निधन। इन पाँचोंमेंसे यहाँ उद्गीथ नामक भागकी उपासना अर्थात् भावना कहते हैं। सकल दुःखोंसे मुक्त होनेका उपाय आत्मज्ञान है और आत्मज्ञानका साधन मनको वशमें करना है और उपासनासे मनकी वृत्ति एकाग्र होकर मनोजय होता है इस कारण उपासनाके उपदेशका आरंभ करते हुए प्रथम ब्रह्मवाचक ॐकारकी ही उपासना कहते हैं—

ओमित्येतदक्षरमुद्गीथमुपासीत ओमि-
ति ह्युद्गायति तस्योपव्याख्यानम् ॥ १ ॥

अन्वय और पदार्थ-(ॐइति एतत्) ॐइस (अक्षरम्) वर्णरूप (उद्गीथम्) सामके अवयवको (उपासीत) भावना करे (हि) क्योंकि-(ॐइति) ॐ इस प्रकार (उद्गायति) उच्चारण करता है (तस्य) उसका (उपव्याख्यानम्) गुण-कीर्त्तन [उपासनम्] उपासना है ॥ १ ॥

(भावार्थ)-ॐ यह अक्षर उद्गीथ नामक सामका अवयव

है, इसकी उपासना करे, यह परमात्माका प्रतीक अर्थात् प्रतिमूर्त्ति विशेष है, इस ॐकारकी उपासनासे परमात्मा प्रसन्न होते हैं, ॐकारका उच्चारण विना किये जो कर्म किया जाता है, वह कर्म निष्फल होता है, इस कारण सब कर्मोंके आरंभ में ही ॐकारका उच्चारण किया जाता है, ॐकारसे आरम्भ करके ही मन्त्र आदिका उच्चारण किया जाता है, इसीसे ॐकारको उद्गीथ कहते हैं, ॐकारकी विभूति और गुणोंका वर्णन ही उसकी उपासना है॥ १ ॥

एषां भूतानां पृथिवी रसः पृथिव्या आपो रसोऽपामोषधयो रस ओषधीनां पुरुषो रसः पुरुषस्य वाग्रसो वाच ऋग्रस ऋचः साम रसः साम्न उद्गीथो रसः ॥ २ ॥

अन्वय और पदार्थ—(पृथिवी) पृथिवी (एषाम्) इन (भूतानाम्) भूतोंमें (रसः) सार है (आपः) जल (पृथिव्याः) पृथिवीका (रसः) सार है (ओषधयः) औषधें (अपाम्) जलका (रसः) सार है (पुरुषः) पुरुष (ओषधीनाम्) ओषधोंका (रसः) सार है (वाक्) वाणी (पुरुषस्य) पुरुषका (रसः) सार है (ऋक्) ऋचा (वाचः) वाणीका (रसः) सार है (साम) साम (ऋचः) ऋचाओंका (रसः) सार है (उद्गीथः) ॐकार (साम्नः) सामका (रसः) सार है ॥

भावार्थ—चर अचर सकल प्राणियोंकी उत्पत्ति, स्थिति और लयकी कारण पृथिवी, स्थावर जङ्गमरूप सकल जगत्का सार है, जल पृथिवीका सार है, क्योंकि—पृथिवी जलमें ही ओत-

मोत है, जलका सार सकल औषधें हैं, क्योंकि–जलसे ही सकल औषधोंका परिणाम देखनेमें आता है, पुरुष सकल औषधों का सार है, क्योंकि–औषधोंका परिणाम ही जीवका शरीर है, पुरुषका सार वाणी है, क्योंकि–वाक् इन्द्रिय ही पुरुषकी सब इन्द्रियोंमें प्रधान है, वाणीका सार ऋचा है, ऋचाओंका सार साम है और सामका सार उद्गीथ है ॥ २ ॥

स एष रसानाᳬ रसतमः परमः
पराद्‌र्ध्योऽष्टमो यदुद्गीथः ॥ ३ ॥

अन्वय और पदार्थ–(सः) वह (एषः) यह (रसानाम्) सारोंका (रसतमः) परमसार (परमः) सबसे श्रेष्ठ (पराद्‌र्ध्यः) परमात्मस्थानीय है (यत्) जो (उद्गीथः) ॐकार है ॥ ३ ॥

भावार्थ–अतएव यह उद्गीथ नामक ॐकार सारका सार और सबसे श्रेष्ठ है, परमात्मस्थानके योग्य और पृथिवी आदि सार वस्तुओंमें अन्तका आठवाँ परमसार है ॥ ३ ॥

कतमा कतमर्क्कतमत्कतमत्साम कतमः
कतम उद्गीथ इति विमृष्टं भवति ॥ ४ ॥

अन्वय और पदार्थ–(कतमा–कतमा) कौन २ सी (ऋक्) ऋक् है (कतमत्, कतमत्) कौन २ सा (साम) साम है (कतमः कतमः) कौन २ सा (उद्गीथः) उद्गीथ है (इति) यह (विमृष्टम्) विचारने योग्य (भवति) होता है ॥ ४ ॥

भावार्थ–इसके अनन्तर ऋक् क्या है ? साम क्या है और उद्गीथ क्या है ? इन तीन प्रश्नोंका विचार किया जाता है ॥

वागेवर्क्प्राणः सामोमित्येतदक्षरमुद्गीथः तद्वा एत-
न्मिथुनं यद्वाक् च प्राणश्चर्क् च साम च ॥ ५ ॥

अन्वय और पदार्थ—(वाक्-एव) वाणी ही (ऋक्) ऋक् है (प्राणः) प्राण (साम) साम है (ॐ इत्येतत्) ॐ यह (अक्षरम्) अक्षर (उद्गीथः) उद्गीथ है (तत्) सो (वा) या (एतत्) यह (मिथुनम्) जोड़ा है (यत्) जो (वाक्, च, प्राणः, च) वाणी और प्राण (ऋक्, च, साम, च) ऋक् और साम है ॥ ५ ॥

भावार्थ—कारण और कार्यका अभेद होनेके कारण वाक् ही ऋक् है और प्राण ही साम है और ॐ यह अक्षर ही उद्गीथ है, ऋक् और साम इस मिथुनका कारणभूत वाक् और प्राण यह दोका मिथुन है ॥ ६ ॥

तदेतन्मिथुनमोमित्येतस्मिन्नक्षरे सꣳ-
सृज्यते यदा वै मिथुनौ समागच्छत आप-
यतो वै तावन्योन्यस्य कामम् ॥ ६ ॥

अन्वय और पदार्थ—(तत्) सो (एतत्) यह (मिथुनम्) जोड़ा (ओमित्येतस्मिन्) ॐ इस (अक्षरे) अक्षरमें (संसृज्यते) संसृष्ट है (यदा) जब (वै) निश्चय (मिथुनौ) दोनों (समागच्छतः) संयुक्त होते हैं (वै) निश्चय (तौ) वह दोनों (अन्योन्यस्य) परस्परके (कामम्) अभिलाषको (आपयतः) पूर्ण करते हैं ॥ ६ ॥

भावार्थ—यह मिथुनरूप हुए वाक् और प्राण ॐ इस अक्षर में मिले हुए हैं यह वाक् और प्राणरूप मिथुन जब परस्पर

मिलते हैं तब एक दूसरेकी कामनाको पूर्ण करते हैं, इस प्रकार उनसे संयुक्त ओंकार सकल कामना की प्राप्तिरूप गुणसे परिपुष्ट होता है ॥ ६ ॥

आपयिता ह वै कामानां भवति य एतदेवं विद्वानक्षरमुद्गीथमुपास्ते ॥ ७ ॥

अन्वय और पदार्थ--(यः) जो (एवम्) इस प्रकार (विद्वान्) जानने वाला (एतम्) इस (उद्गीथम्) ओंकार (अक्षरम्) अक्षरको (उपास्ते) उपासना करता है (वै ह) निश्चय (कामानाम्) अभिलाषोंका (आपयिता) प्राप्त कराने वाला (भवति) होता है ॥ ७ ॥

भावार्थ--जो ऐसा जानकर इस उद्गीथ अक्षरकी उपासना करता है वह यजमानके मनोरथोंको पूर्ण करता है ॥ ७ ॥

तद्वा एतदनुज्ञाक्षरं यद्धि किंचानुजानात्योमित्येव तदाह एषा एव समृद्धिर्यदनुज्ञा समर्द्धयिता ह वै कामानां भवति य एतदेवं विद्वानक्षरमुद्गीथमुपास्ते ॥ ८ ॥

अन्वय और पदार्थ--(वा) या (तत्) वह (एतत्) यह (अनुज्ञाक्षरम्) अनुमतिरूप अक्षर है (हि) क्योंकि (यत्, किञ्च) जो कुछ (अनुजानाति) अनुमति देता है (ओम्, इत्येव) ॐ इसको बोलकर ही (तत् (सो (आह) कहता है (यत्) जो (अनुज्ञा) अनुमति है (एषा एव) यह ही (समृद्धिः) समृद्धि है (यः) जो (एवम्) ऐसा (विद्वान्)

जानने वाला (एतत्) इस (उद्गीथम्) ओंकार (अक्षरम्) अक्षरको (उपास्ते) उपासना करता है (वै, ह) निश्चय (कामानाम्) मनोरथोंका (समर्द्धयिता) पूर्ण करने वाला (भवति) होता है ॥ ८ ॥

भावार्थ- इस ओंकारको अनुमति देनेका अक्षर कहते हैं, लोकमें भी इस अक्षरका उच्चारण करके सब विषयमें अनुमति देते हैं (ओम् का ही अपभ्रंश 'हाँ' है) समृद्धिकी कारण भूत अनुज्ञा (अनुमति) ही समृद्धि है, इस कारण समृद्धि गुणवाला मानकर ओंकारका कीर्त्तन किया जाता है, जो ऐसा जानकर इस ओंकारकी उपासना करते हैं वह यजमान की कामनाओंको पूर्ण करसकते हैं ॥ ८ ॥

तेनेयन्त्रयी विद्या वर्तते ओमित्याश्रावयत्योमिति शꣳसत्योमित्युद्गायत्येतस्यैवाक्षरस्यापचित्यै महिम्ना रसेन ॥ ९ ॥

अन्वय और पदार्थ (तेन) उस ओंकार करके (इयम्) यह (त्रयी-विद्या) तीनों वेदोंमेंकी कर्मविधि (प्रवर्त्तते) प्रवृत्त होती है (ओम्, इति) ॐ ऐसा कहकर आश्रावयति आश्रवण करता है (ओम्, इति) ओम् ऐसा कहकर (शंसति) शंसन करता है (ओम्, इति) ओम् ऐसा कह कर (उद्गायति) उद्गान करता है (एतस्य-एव) इस ही (अक्षरस्य) अक्षरकी (अपचित्यै) पूजाके लिये (महिम्ना) महिमा करके (रसेन) रस करके [निष्पद्यते] निष्पन्न होता है ॥ ९ ॥

भावार्थ--ओम् इस अक्षरका उच्चारण करके सकल वेद-

विहित कर्मोंका आरम्भ किया जाता है, ओम्का उच्चारण करके आश्रावण, शंसन और उद्गान आदि यज्ञके अनुरूप सकल कर्म होते हैं, वह सब कर्म परमात्माकी पूजाके लिये हैं, ओंकार परमात्माकी प्रतिमूर्त्ति है, अतएव इन सब कर्मोंके द्वारा ओंकारकी ही पूजा सिद्ध होती है और इस ओंकारकी महिमा तथा रसके द्वारा ही यज्ञ सिद्ध होता है, यज्ञसिद्धिके मूलरूप ऋत्विज् और यजमान आदिके सकल प्राण ओंकारकी ही महिमा हैं और उनके मूलभूत हविष्यके व्रीहियव आदिका रस ओंकारका ही रस है, क्योंकि-ओंकारका उच्चारण करके किये हुए याग होम आदिके द्वारा आदित्यकी उपासना होनेसे ही वृष्टि आदिके क्रमसे प्राण और अन्नकी उत्पत्ति होती है ॥ ९ ॥

तेनोभौ कुरुतो यश्चैतदेवं वेद यश्च न वेद नाना तु विद्या चाविद्या च यदेव विद्यया करोति श्रद्धयोपनिषदा तदेव वीर्यवत्तरं भवतीति खल्वेतस्यैवाक्षरस्योपव्याख्यानं भवति ॥ १० ॥

अन्वय और पदार्थ-(यः, च) जो (एतत्) इसको (एवम्) ऐसा (वेद) जानता है (यः, च) जो (न) नहीं (वेद) जानता है (उभौ) दोनों (तेन) तिससे (कुरुतः) करते हैं (च) और (विद्या) विद्या (अविद्या, च) अविद्या भी (नाना) भिन्न २ हैं (तु) किन्तु (यत्) जो (विद्यया एव) ज्ञानपूर्वक ही (श्रद्धया) श्रद्धा करके (उपनिषदा) उपनिषद्के योग करके (करोति) करता है (तत्, एव) वह ही (वीर्यवत्तरम्) शीघ्र फलदायक (भवति) होता है (इति) इससे

(खलु) निश्चय (एतस्य एव) इस ही (अक्षरस्य) अक्षर का (उपव्याख्यानम्) यथोचित व्याख्यान (भवति) होता है

भावार्थ—जो ॐकारके ऐसे तत्त्वको जानते हैं और जो उसको नहीं जानते वह सब ही ॐकारके द्वारा कर्मानुष्ठान करते हैं, कर्मानुष्ठानके बिना फलकी प्राप्ति नहीं होती, कर्मानुष्ठान करने से ही उसका फल मिलता है, उस कर्मको करनेमें ज्ञानी और अज्ञानीके किये कर्मफलमें न्यूनाधिकता अवश्य ही होती है, ज्ञानपूर्वक किये हुए कर्मके फलसे अज्ञानसे किये हुए कर्मका फल भिन्न होता है, जो कर्म ज्ञान, श्रद्धा और उपनिषद्में कहे हुए योगसे किया जाता है वह कर्म ही अधिकतर शीघ्र फलदायक होता है, शास्त्रमें अनेकों प्रकारसे ॐकारकी उपासना कही है, उन सबको ही ओंकारकी शास्त्रानुसार व्याख्या जाने, क्योंकि—अविच्छिन्न वैदिक संप्रदायके न रहनेसे वास्तविक व्याख्यान मिलना कठिन होगया है (यहाँ तक जो विषय कहा उसका संक्षेपमें यह अभिप्राय है, कि—उद्गाता नामक पुरोहित यज्ञमें सामगानका उच्चारण करते हैं, पद्य और गद्यरूप मन्त्रको शास्त्रीय गानमें बाँधना ही साम है, उद्गीथ वा प्रणव इस सामगानके ही अंश हैं, स्वर वा वाक्यसे इस सामगान और स्तोत्रादिका उच्चारण होता है, स्वर वा वाक्य प्राणशक्तिका ही प्रकट होना है, क्योंकि—प्राणवायु ही कंठादि स्थानमें आघात पाकर वर्णरूपसे प्रकट होता है, इस प्रकार यज्ञमें ॐकारके द्वारा प्राणशक्तिके दर्शनका उपदेश है और इस खण्डमें उसकी ही महिमा दिखाई है ॥ १० ॥

इति प्रथम अध्यायका प्रथम खण्ड समाप्त

देवासुरा ह वै यत्र संयतिरे उभये प्राजापत्यास्तद्ध देवा उद्गीथमाजह्रुरनेनैनानभिभविष्याम इति ॥१॥

अन्वय और पदार्थ-(ह) प्रसिद्ध है (वै) निश्चय (प्राजापत्याः) प्रजापतिके पुत्र (देवासुराः) देवता और असुर (उभये) दोनों (यत्र) जिस विषयमें (संयतिरे) संग्राम करते हुए। (तत्) तिस विषयमें (ह) प्रसिद्ध है (देवाः) देवता (अनेन एव) इस कर्मसे ही (एनान्) इन असुरोंको (अभिभविष्यामः) तिरस्कृत करेंगे (इति) इस कारणसे (उद्गीथम्) उद्गीथ पूर्वक ज्योतिष्टोम आदिको (आजह्रुः) करते हुए ॥ १ ॥

भावार्थ-सकल सात्विक इन्द्रियें और उनकी सकल वृत्तियों के अधिष्ठात्री देवता और इनके विपरीत अर्थात् तमोरूप इन्द्रियवृत्तियोंके परिचालक असुर, दोनों ही वैदिक क्रियाके अधिकारी कश्यप प्रजापतिके पुत्र हैं, इस लोकमें जैसे भाई भाई परस्पर विरोध करते हैं तैसे ही देवता और असुर भी परस्पर विरोध करते थे, वह परस्पर एक दूसरेका तिरस्कार करनेके लिये सदा संग्राममें तत्पर रहते थे, एक समय देवताओंने अपने प्रतिपक्षी असुरोंका पराजय करनेकी इच्छासे ॐकारका उच्चारण करके ज्योतिष्टोम आदि कर्मका अनुष्ठान किया, उन्होंने मनमें विचार किया कि—हम इस कर्मसे ही असुरोंका तिरस्कार करेंगे ॥ १ ॥

ते ह नासिक्यं प्राणमुद्गीथमुपासांचक्रिरे तꣳ हासुराः पाप्मना विविधुस्तस्मात्तयोभयं जिघ्रति

सुरभि च दुर्गन्धि च पाप्मना ह्येष विद्धः ॥२॥

अन्वय और पदार्थ-(ह) प्रसिद्ध है (ते) वह (नासिक्यम्) नासिकामेंके (उद्गीथम्) उद्गीथकर्त्ता (प्राणम्) प्राणको (उपासाञ्चाक्रिरे) उपासना करते हुये (तम् ह) उसको (असुराः) असुर (पाप्मना) पापसे (विविधुः) वेधते हुये (तस्मात्) तिस कारण (तेन) तिस (पाप्मना) पापसे (विद्धः) विधा हुआ (एषः) यह (हि) निश्चय) (सुरभि च) सुगन्धिको भी (दुर्गन्धि च) दुर्गन्धिको भी (जिघ्रति) सूँघता है ॥ २ ॥

भावार्थ-उद्गीथसे उपलक्षित यज्ञकर्मके अनुष्ठानमें प्रवृत्त होकर देवताओंने पहिले घ्राणेन्द्रियको ही अपनी मनोरथसिद्धिके अनुकूल समझ कर उसके साथ एकत्वकी दृष्टिसे उद्गीथ नामक प्रणवका आश्रय करके उस इन्द्रियकी कल्याणकारिणी सकल वृत्तियोंका प्रकाश करनेकी चेष्टा करी, यह देख असुरोंने मत्सरतामें भरकर अपने स्वभावसिद्ध अधर्मासङ्गरूप पापसे घ्राणेन्द्रियको विद्ध करके उसमें गन्धका ग्रहण करनेके अभिमानरूप दोषको उत्पन्न कर दिया, अतएव तबसे घ्राणेन्द्रियने उस पापसे विद्ध होकर सुगन्धिकी समान दुर्गन्धिको भी ग्रहण करना आरम्भ कर दिया ॥ २ ॥

अथ ह वाचमुद्गीथमुपासांचक्रिरे ताꣳहासुराः पाप्मना विविधुस्तस्मात्तयोभयं वदति सत्यं चानृतं च पाप्मना ह्येषा विद्धा ॥३॥

अन्वय और पदार्थ-(अथ ह) इसके अनन्तर (वाचम्)

(वाक्‌स्वरूप) उद्‌गीथको (उपासांचक्रिरे) उपासना करते हुए (असुराः, ह) असुर (ताम्) उसको (पाप्मना) पापसे (विविधुः) वेधते हुए (तस्मात्) तबसे (तथा) तिस करके (सत्यम् च) सत्यको (अनृतम्, च) असत्यको भी (उभयम्) दोनोंको (वदति) कहता है (हि) क्योंकि-(एषा) यह (पाप्मना) पापसे (विद्धा) विद्ध है ॥ ३ ॥

भावार्थ—इसके उपरान्त देवताओंने वाक्‌इन्द्रियके साथ ऐक्यदृष्टिसे उद्‌गीथ नामक प्रणवका आश्रय करके उस इंद्रिय की कल्याणकारिणी सकल वृत्तियोंको प्रकाशित करनेकी चेष्टा की, असुरोंने उस वाक् इन्द्रियको पापसे विद्ध करके उसमें भी दोष उत्पन्न कर दिये, अतएव तबसे वाक् इन्द्रियने उस पाप से विद्ध होकर सत्यकी समान मिथ्याको भी ग्रहण करना आरम्भ कर दिया ॥ ३ ॥

अथ ह चक्षुरुद्गीथमुपासांचक्रिरे तद्धासुराः पाप्मना विविधुस्तेनोभयं पश्यति दर्शनीयम् चादर्शनीयं च पाप्मना ह्येतत् विद्धम् ॥४॥

अन्वय और पदार्थ—(अथ ह) अनन्तर (चक्षुः) चक्षु से उपलक्षित (उद्‌गीथम्) ॐकारको (उपासाञ्चक्रिरे) उपासना करते हुए (असुराः) असुर (तत् ह) उसको भी (पाप्मना) पापसे (विविधुः) वेधते हुए (तस्मात्) जिससे (तेन) उसके द्वारा (दर्शनीयम् च) देखने योग्यको भी (अदर्शनीयम् च) न देखने योग्यको भी (उभयम्) दोनों को (पश्यति) देखता है (हि) क्योंकि-(एतत्) यह (पाप्मना) पापसे (विद्धम्) विद्ध है ॥ ४ ॥

भावार्थ–तदनन्तर देवताओंने चक्षु इन्द्रियके साथ एकत्व-दृष्टिसे प्रणवका आश्रय करके उस इन्द्रियकी कल्याणकारिणी सकल वृत्तियोंको प्रकाशित करनेकी चेष्टा की, असुरोंने इस चक्षु इन्द्रियको भी पापसे विद्ध करके इसमें दोषोंको उत्पन्न कर दिया, अतएव तबसे चक्षु उस पापसे संयुक्त होकर देखने योग्य पदार्थ को समान न देखने योग्य विषयको भी ग्रहण करने लगा ।४।

अथ श्रोत्रमुद्गीथमुपासांचक्रिरे तद्धासुराः पाप्मना विविधुस्तस्मात्तेनोभयथँ शृणोति श्रवणीयं चाश्रवणीयं च पाप्मना ह्येतद् विद्धम् ॥ ५ ॥

अन्वय और पदार्थ–(अथ, ह) इसके अनन्तर (श्रोत्रम्) श्रोत्रोपलक्षित (उद्गीथम्) प्रणवको (उपासाञ्चक्रिरे) उपासना करते हुए (असुराः) असुर (तत्, ह) उसको भी (पाप्मना) पापसे (विविधुः) वेधते हुए (तस्मात्) तिससे (तेन) उसके द्वारा (श्रवणीयम् च) सुनने योग्यको भी (अश्रवणीयम् च) न सुनने योग्यको भी (उभयम्) दोनों को (शृणोति) सुनता है (हि) क्योंकि (एतत्) यह (पाप्मना) पापसे (विद्धम्) विद्ध है ॥ ५ ॥

भावार्थ–तदनन्तर देवताओंने श्रवणेन्द्रियके साथ एकत्व-दृष्टिके प्रणवका आश्रय करके उस इन्द्रियकी कल्याणकारिणी सकल वृत्तियोंको प्रकाशित करनेकी चेष्टा की, तब असुरोंने इस श्रवणेन्द्रियको भी पापसे विद्ध किया अतएव तबसे श्रवणेन्द्रिय उस पापसे विद्ध होकर सुनने योग्य विषयकी समान न सुनने योग्य विषयको भी सुनने लगा ॥ ५ ॥

अथ ह मन उद्गीथमुपासाञ्चक्रिरे तद्धा हासुराः पाप्मना विविधुस्तस्मात्तेनोभयꣳ संकल्पयते संकल्पनीयं चासंकल्पनीयं च पाप्मना ह्येतद्विद्धम् ६

अन्वय और पदार्थ—(अथ, ह) अनन्तर (मनः) मन उपलक्षित (उद्गीथम्) प्रणवको (उपासांचक्रिरे) उपासना करते हुए (असुराः) असुर (तत्, ह) उसको भी (पाप्मना) पापसे (विविधुः) वेधते हुए (तस्मात्) तिससे (तेन) उस के द्वारा (सङ्कल्पनीयम् च) संकल्प करनेयोग्यको (असंकल्पनीयम्, च) संकल्प न करने योग्यको भी (उभयम्) दोनों को (संकल्पयते) आलोचना करता है (हि) क्योंकि (एतत्) यह (पाप्मना) पापसे (विद्धम्) विधा हुआ है ॥ ६ ॥

भावार्थ—तदनन्तर देवताओंने मनके साथ एकत्वदृष्टि करके प्रणवके आश्रयसे उस इन्द्रियकी कल्याणकारिणी सकल वृत्तियों को प्रकाशित करनेकी चेष्टा की. असुरोंने इस मनको भी पाप से विद्ध करके इसमें दोष उत्पन्न कर दिये, अतएव तबसे मन इस प्रकार पापसे विद्ध होकर संकल्प करने योग्य विषयकी समान संकल्प न करनेयोग्य विषयकी भी आलोचना करनेलगा

अथ ह य एवायं मुख्यः प्राणस्तमुद्गीथमुपासाञ्चक्रिरे तꣳहासुरा ऋत्वा विदध्वंसुर्यथाऽश्मानमाखणमृत्वा विध्वꣳसेत ॥ ७ ॥

अन्वय और पदार्थ—(अथ ह) अनन्तर (यः) जो (मुख्यः) मुख्य (एव) ही (प्राणः) प्राण है (तम्) उस (उद्गीथम्) उद्गीथको (उपासांचक्रिरे) उपासना करते

हुए (असुराः) असुर (तम्, ह) उसको भी (ऋत्वा) प्राप्त होकर (यथा) जैसे (आखणम्) खनन करनेके अयोग्य (अश्मानम्) पाषाणको (ऋत्वा) प्राप्त होकर (विध्वंसते) विदीर्ण होता है [तथा] तैसे (विदध्वंसुः) विनष्ट होगए ७

भावार्थ—अन्तमें देवताओंने इन्द्रियसमूहरूप सकल गौण प्राणोंको त्यागकर, इन्द्रियसमूहरूप और वायुविकाररूप प्राण जिसकी जडशक्ति हैं और क्रियाशक्तिरूपप्राण जिसकी चित्-शक्ति है उस परमात्मा नामक मुख्य प्रणवका ही प्रतिरूप मान कर उद्गीथ नामक प्रणवका आश्रय लिया, असुरोंने इस मुख्य प्राणको भी पापसंयुक्त करनेके लिये इच्छा की किन्तु उसको पापयुक्त करनेमें असमर्थ होकर जैसे न खुद सकने वाले कठिन पत्थरको खोदनेमें उद्यत काठ अपने आप ही नष्ट होजाता है तैसे ही इच्छामात्रसे ही अपने आप ही नष्ट होगए ॥ ७ ॥

एवं यथाऽश्मानमाखणमृत्वा विध्वꣳसत एवꣳ हैव स विध्वꣳसते य एवं विदि पापं कामयते यश्चैनमभिदासति स एषोऽश्माखणः ॥ ८ ॥

अन्वय और पदार्थ—(एवम्) इसप्रकार (यथा) जैसे (आखणम्) खननके अयोग्य (अश्मानम्) पाषाणको (ऋत्वा) प्राप्त होकर (विध्वंसते) नष्ट होताहै (एवम्, एव) ऐसे ही (सः) वह (विध्वंसते) नष्ट होता है (यः) जो (एवं विदि) ऐसा जानने वालेमें (पापम्) पापको (कामयते) चाहता है (च) और (यः) जो (एनम्) इसको (अभिदासति) हिंसा करता है (सः) वह (एषः) यह (आखणः) अखननीय (अश्मा) पाषाणवत् है ८

(भावार्थ)--मुख्यप्राणको जो ऐसे गुणवाला जानता है, उसमें पापसंयोग करनेके लिये जो अभिलाषा करता है वह खननके अयोग्य पत्थरकी रगड़से विनष्ट हुए काष्ठ आदि की समान आप ही विनष्ट होजाता है और जो उस प्राणके ज्ञाता की हिंसा करता है वह भी विनष्ट होजाता है क्योंकि-प्राणज्ञ और खननके अयोग्य पत्थर दोनों एक समान हैं ॥ ८ ॥

नैवैतेन सुरभि न दुर्गन्धि विजानात्यपहत-पाप्मा ह्येष तेन यदश्नाति यत्पिबति तेनेतरान् प्राणानवति एवमु एवान्ततोऽवित्वोत्क्रामति व्याददात्येवान्तत इति ॥ ९ ॥

अन्वय और पदार्थ-(एतेन) इसके द्वारा (सुरभि) सुगंधि को (नैव) नहीं (दुर्गन्धि) दुर्गन्धिको (न) नहीं (विजानाति) जानता है (हि) क्योंकि (एषः) यह (अपहत-पाप्मा) पापके स्पर्शसे रहित है (तेन) तिसके द्वारा (यत्) जो (अश्नाति) खाता है (यत्) जो (पिबति) पीता है (तेन) तिससे (इतरान्) और (प्राणान्) प्राणोंका (अवति) पालता है (एवम्, उ) इस प्रकार ही (अन्ततः) अन्तसमय (अवित्वा-एव) न पाकर ही (उत्क्रामति) प्राण त्यागता है (इति) इस कारण (अन्ततः) अन्तकालमें (व्याददाति एव) अवश्य मुखको फैलाता है ॥ ९ ॥

(भावार्थ)-यह मुख्य प्राण पापके स्पर्शसे रहित है, अत एव विशुद्ध है, विशुद्ध मुख्य प्राणके द्वारा सुगन्धि वा दुर्गन्धि कुछ नहीं जानी जाती, विशुद्ध मुख्य प्राण सुगन्धि और दुर्गंधि

को सूँघने वाले घ्राणेन्द्रियका प्रेरक होकर भी उसके दोषसे लिप्त नहीं होता, वह अन्य प्राणों (इन्द्रियों) की समान आत्मम्भरी नहीं है, किन्तु विश्वम्भर है, वह भोजन पान आदि के द्वारा सब इन्द्रियोंका पोषण करता है, भोजन पान मुख्य प्राणकी वृत्ति है, यदि मुख्य प्राण भोजन पान आदि न करे तो प्राणीका अन्तकाल होजाता है, उस समय मुख्य प्राण-वृत्तिके भोजन पान आदि न पानेसे ही अन्य सकल इन्द्रियें शरीरको छोड़ देती हैं, प्राणको शरीरत्यागसे पहिले भोजनकी इच्छा देखी जाती है, इस कारण ही उस समय प्राणीका मुख फैल जाना प्रसिद्ध है ॥ ९ ॥

तꣳ हाङ्गिरा उद्गीथमुपासांचक्र एत-
मु एवाऽऽङ्गिरसं मन्यन्तेंगानां यद्रसः ॥ १० ॥

अन्वय और पदार्थ-(अङ्गिरा) अङ्गिरा ऋषि (तम्, ह) उस ही (उद्गीथम्) उद्गीथको (उपासाञ्चक्रे) उपासना करता हुआ (एतम्, उ) इसको (आङ्गिरसम्) अङ्गिरासम्बन्धी (मन्यन्ते) मानते हैं (यत्) क्योंकि (अंगानाम्) अङ्गोंका (रसः) सार है ॥ १० ॥

(भावार्थ) अंगिरा नामक ऋषिने इस प्रकार मुख्य प्राण को उद्गीथ मानकर ओङ्कारकी उपासना की थी, अंगिरा आदि ऋषियोंने इस प्रकार मुख्य प्राणके साथ अभेदबुद्धिसे ॐकार की उपासना की थी, इसीसे उनके नामसे मुख्य प्राणका नाम सुना जाता है, श्रुतिमें मुख्य प्राणका एक नाम 'आंगिरस' भी कहा है, आंगिरस शब्दका व्युत्पत्तिसे यह अर्थ होता है,

कि--'अंगोंका रस' । प्राण ही अंगोंका रस अर्थात् सार है, अत एव आंगिरस शब्दका अर्थ 'प्राण' है ॥ १० ॥

तेन तꣳह बृहस्पतिरुद्गीथमुपासाञ्चक्र एतमु एव बृहस्पतिं मन्यन्ते वाग्घि बृहती तस्या एष पतिः

अन्वय और पदार्थ--(बृहस्पतिः) बृहस्पति ऋषि (तम् ह) उस ही (उद्गीथम्) प्रणवको (उपासाञ्चक्रे) उपासना करता हुआ (तेन) तिससे (एतम्, उ, एव) इसको ही (बृहस्पतिम्) बृहस्पति (मन्यन्ते) मानते हैं (हि) क्योंकि (वाक्) वाणी (बृहती) बृहती है (तस्याः) उसका (एषः) यह (पतिः) पति है ॥ ११ ॥

भावार्थ- इसी प्रकार बृहस्पतिने मुख्य प्राणदृष्टिसे ॐकार की उपासनाकी थी, उसीके अनुसार मुख्य प्राणको भी बृहस्पति शब्दसे कहा है, वाक् ही बृहती है और प्राण उसका पति है ॥ ११ ॥

तेन तꣳहाऽऽयास्य उद्गीथमुपासाञ्चक्र एतमु एवाऽऽयास्यं मन्यन्त आस्याद्यदयते ॥ १२ ॥

अन्वय और पदार्थ -(अयास्यः) अयास्य ऋषि (तम्, ह) उस ही (उद्गीथम्) प्रणवको (उपासाञ्चक्रे) उपासना करता हुआ (तेन) तिससे (एतम्, उ, एव) इसको ही (अयास्यम्) अयास्य (मन्यन्ते) मानते हैं (यत्) क्योंकि (आस्यात्) मुखसे (अयते) निकलता है ॥ १२ ॥

भावार्थ-इसी प्रकार अयास्य ऋषिने मुख्य प्राण दृष्टिसे प्रणवकी उपासना की, उसके ही अनुसार मुख्य प्राणको भी

अयास्य शब्दसे कहा जाता है, आस्य अर्थात् मुखसे निकलता है इस कारण ही मुख्य प्राणको अयास्य कहते हैं ॥ १२ ॥

तेनतꣳह बको दाल्भ्यो विदाञ्चकार स ह नैमिषीयानामुद्गाता बभूव स ह स्मैभ्यः कामानागायति

अन्वय और पदार्थ-(दाल्भ्यः) दल्भका पुत्र (बकः) बक ऋषि (तम्, ह) उसको (विदाञ्चकार) जानता हुआ (तेन) तिससे (सः) वह (नैमिषीयानाम्) नैमिषारण्यवासियोंका (उद्गाता) उद्गान कर्म करने वाला (बभूव ह) हुआ (सः) वह (एभ्यः) इनके अर्थ (कामान्) मनोरथोंको (आगायति, स्म, ह) गान करता हुआ ॥ १३ ॥

भावार्थ-इसी प्रकार दल्भके पुत्र बकने प्रणवको प्राण रूप से जाना था, इस कारण वह नैमिषारण्यवासी यज्ञकर्त्ताओंका उद्गाता हुआ और उसने उनकी मनोरथ सिद्धिके लिये उद्गान नामक कर्म किया ॥ १३ ॥

आगाता ह वै कामानां भवति य एतदेवं विद्वानक्षरमुद्गीथमुपास्त इत्यध्यात्मम् ॥१४॥

अन्वय और पदार्थ-(यः) जो (एतत्) इसको (एवम्) ऐसे (विद्वान्) जानने वाला (उद्गीथम्) प्रणव (अक्षरम्) अक्षरको (उपास्ते) उपासना करता है (वै) निश्चय (कामानाम्) मनोरथोंका (आगाता) गान करने वाला (भवति, ह) अवश्य होता है ॥ १४ ॥

भावार्थ-जो इस प्रकार जानकर इस ॐकार अक्षरकी उपासना करता है वह उद्गानके द्वारा यजमानके मनोरथोंको पूर्ण

कर सकता है यह अध्यात्म अर्थात् आत्मविषयक ओंकारकी उपासना कही ॥ १४ ॥

इति प्रथमाध्यायका द्वितीय खण्ड समाप्त

अथाधिदैवतम् । य एवासौ तपति तमुद्गीथमुपासीतोद्यन्वा एष प्रजाभ्य उद्गायति उद्यꣳ स्तमोभयमपहन्त्यपहन्ता ह वै भयस्य तमसो भवति य एवं वेद ॥ १ ॥

अन्वय और पदार्थ—(अथ) अब (अधिदैवतम्) अधिदैवत कहते हैं (यः) जो (असौ) यह (तपति) तपता है (तम् एव) उस ही (उद्गीथम्) प्रणवको (उपासीत) उपासना करे (एषः) यह (उद्यन्, वा) उदय होता हुआ ही (प्रजाभ्यः) प्रजाओंके अर्थ (उद्गायति) उद्गान करता है (तमोभयम्) अन्धकारभयको (अपहन्ति) दूर करता है (यः) जो (एवम्) ऐसा (वेद) जानता है (वै) निश्चय (भयस्य) भयका (तमसः) तमका (अपहन्ता) नाशक (भवति ह) होता है ॥ १ ॥

भावार्थ—अब अधिदेवदृष्टिसे प्रणवकी उपासना कहते हैं, यह जो आदित्य पृथिवीको ताप देता है, यह ही उद्गीथ है, आदित्यदृष्टिसे उद्गीथकी उपासना करना चाहिये, यह आदित्य उदित होकर सब प्रजाओंको अन्नप्राप्तिके लिये उद्गान कर्म को सम्पन्न करता है, यदि आदित्यका उदय न हो तो सस्य आदि न पकें इसी कारण उनका उदय उद्गाताकी समान है, आदित्य उदित होकर प्रजाओंके भय और अन्धकारको दूर

करते हैं, जो ऐसे गुणोंवाले आदित्यको जानता है वह सबके अन्धकार और भयका नाश करता है ॥ १ ॥

समान उ एवायं चासौ चोष्णो यमुष्णोसौ स्वर इतीममिमाचक्षते स्वर इति प्रत्यास्वर इत्यमु तस्माद्वा एतमिममभुं चोद्गीथमुपासीत ॥ २ ॥

अन्वय और पदार्थ—(समानः, उ, एव) समान ही है (अयम् च) यह सूर्य और (असौ, च) यह प्राण भी (अयम्) यह (उष्णः) उष्ण है (असौ) यह (उष्णः) उष्ण है (स्वरः, इति) ताप देता है इस कारण (इमम्) इसको (स्वरः इति) स्वर इस नामसे (आचक्षते) कहते हैं (अमुम्) इस को (प्रत्यास्वर इति) प्रत्यास्वर इस नामसे कहते हैं (तस्मात्) तिससे (एतम्, अमुम्) इसको (उद्गीथम्) प्रणवको (उपासीत) उपासना करे ॥ २ ॥

भावार्थ—यह आदित्य और यह प्राण दोनों गुणमें समान ही हैं, ताप देता है इस कारण प्राणको स्वर कहते हैं और ताप देता है इस कारण ही आदित्यको प्रत्यास्वर कहते हैं, अतएव प्राणदृष्टिसे और आदित्यदृष्टिसे उद्गीथकी उपासना करे २

अथ खलु व्यानमेवोद्गीथमुपासीत यद्वै प्राणिति स प्राणो यदपानिति सोऽपानः अथ यः प्राणापानयोः सन्धिः स व्यानो यो व्यानः सा वाक् तस्मादप्राणन्ननपानन्वाचमभिव्याहरति ॥ ३ ॥

अन्वय और पदार्थ—(अथ) अनन्तर (खलु) निश्चय

(व्यानम्, एव) व्यानको ही (उद्गीथम्) प्रणवरूपसे (उपासीत) उपासना करे (यत्) जो (जीव) (प्राणिति) मुख नासिकासे वायु छोड़ता है (सः) वह (प्राणः) प्राण है (यत्) जो (अपानिति) वायुको ग्रहण करता है (सः) वह (अपानः) अपान है (अथ) और (यः) जो (प्राणापानयोः) प्राण और अपानका (सन्धिः) मेल है (सः) वह (व्यानः) व्यान है (यः) जो (व्यानः) व्यान है (सा) वह (वाक्) वाणी है (तस्मात्) तिससे (अप्राणन्) प्राणका व्यापार न करता हुआ (अनपानन्) अपानका व्यापार न करता हुआ (वाचम्) वाणीको (अभिव्याहरति) उच्चारण करता है ३

भावार्थ—तदनन्तर व्यानदृष्टिसे प्रणवकी उपासना करे, जीव मुख और नासिकाके द्वारा जिस वायुको छोड़ता है उस का नाम प्राण और जिस वायुको ग्रहण करता है उसका नाम अपान है, तथा जिसमें प्राण और अपानका मेल होता है उस को व्यान कहते हैं और जिसको व्यान कहते हैं उसीको वाक् कहते हैं, अतएव सब लोग प्राण और अपानका व्यापार न करके ही वाक्यका उच्चारण करते हैं ॥ ३ ॥

या वाक् सर्क् तस्मादप्राणन्ननपानन्नृचमभिव्याहरति यर्क् तत्साम तस्मादप्राणन्ननपानन् साम गायति यत्साम स उद्गीथः तस्मादप्राणन्ननपानन्नुद्गायति ॥ ४ ॥

अन्वय और पदार्थ-(या) जो (वाक्) वाणी है (सा) वह (ऋक्) ऋक् है (तस्मात्) तिससे (अप्राणन्) प्राण-

व्यापार न करता हुआ (अनपानन्) अपान व्यापार न करता हुआ (ऋचम्) ऋचाको (अभिव्याहरति) उच्चारण करता है (यः) जो (ऋक्) ऋचा है (तत्) वह (साम) साम है (तस्मात्) तिससे (अप्राणन्) प्राणव्यापार न करता हुआ (अनपानन्) अपानव्यापार न करता हुआ (साम) सामको (गायति) गाता है (यत्) जो (साम) साम है (सः) वह (उद्गीथः) उद्गीथ है (तस्मात्) तिससे (अप्राणन्) प्राणव्यापार न करता हुआ (अपानन्) अपानव्यापार न करता हुआ (उद्गायति) उद्गान करता है ॥ ४ ॥

(भावार्थ)—जो वाक् है वही ऋचा है, अत एव सब लोग प्राणव्यापार और अपानव्यापार न करके ही ऋचाका उच्चारण करते हैं, जो ऋचा है वह ही साम है, अत एव सब लोग प्राण अपानका व्यापार न करके ही सामका गान करते हैं, जो साम है वह ही उद्गीथ है, अत एव सब लोग प्राणका और अपानका व्यापार न करके ऊँचे स्वरसे गान करते हैं ॥ ४ ॥

अतो यान्यन्यानि वीर्यवन्ति कर्माणि यथाग्नेर्मंथनमाजेः सरणं दृढस्य धनुष आयमनमप्राणन्ननपानꣳ स्तानि करोत्येतस्य हेतोर्व्यानमेवोद्गीथमुपासीत ॥ ५ ॥

अन्वय और पदार्थ—(अतः) इससे (अन्यानि) और (यानि) जो (वीर्यवन्ति) परिश्रमसाध्य (कर्माणि) कर्म हैं (यथा) जैसे (अग्नेः) अग्निका (मन्थनम्) मथना (आजेः) सीमाका (सरणम्) लाँघना (दृढस्य) दृढ (धनुषः) धनुषका

(आयमनम्) खेंचना (अप्राणन्) प्राणव्यापार न करता हुआ (अनपानन्) अपान व्यापार न करता हुआ (करोति) करता है (एतस्य, हेतोः) इस कारणसे (व्यानम् , एव) व्यानको ही (उद्गीथम्) प्रणवदृष्टिसे (उपासीत) उपासना करे।

(भावार्थ)-अत एव और जो सब अधिक परिश्रमसाध्य कार्य हैं, जैसे अग्निको मथना, सीमाको लाँघना और दृढ़ धनुष को खेंचना आदि, इनको सब लोग प्राणव्यापार और अपान-व्यापारको ही न करके ही करते हैं, अत एव व्यानदृष्टिसे ही प्रणवकी उपासना करे ॥ ५ ॥

अथ खलूद्गीथाक्षराण्युपासीतोद्गीथ इति प्राण एवोत्प्राणेन ह्युत्तिष्ठति वाग्गीर्वाचोह गिर इत्याचक्षतेऽन्नं थमन्नेहीद ँ सर्व ँ स्थितम् ।६।

अन्वय और पदार्थ-(अथ) अनन्तर (उद्गीथाक्षराणि एव) उद्गीथके अक्षरोंको ही (उद्गीथ इति) प्रणवदृष्टिसे (उपासीत) उपासना करे (प्राणः, एव) प्राण ही (उत्) उत् है (हि) क्योंकि-(प्राणेन, एव) प्राण करके ही (उत्तिष्ठति) उठता है (वाक्) वाणी (गीः) गी है (वाचः ह) वाणियोंको (गिरः इति) गी शब्दसे (आचक्षते) कहते हैं (अन्नम्) अन्न (थम्) थ है (हि) क्योंकि (इदम्) यह (सर्वम्) सब (अन्ने) अन्नमें (स्थितम्) स्थित है ॥६॥

(भावार्थ)-तदनन्तर उद्गीथके सब अक्षरोंको उद्गीथ दृष्टि से उपासना करे, प्राण उत् है, क्योंकि-पुरुष प्राणके द्वारा उठता है, वाक् ही गी है क्योंकि-वाणीको सब ही गीः शब्द

में बोलते हैं और अन्न ही थ है, क्योंकि--अन्नमें ही यह सब विश्व स्थित है ॥ ६ ॥

द्यौरेवोदन्तरिक्षं गीः पृथिवी थमादित्य एवो-द्वायुर्गीरग्निस्थं सामवेद एवोद्यजुर्वेदो गीर्ऋग्वे-दस्थं दुग्धेऽस्मै वाग्दोहं यो वाचो दोहोऽन्नवानन्नादो भवति य एतान्येवं विद्वानुद्गीथाक्षराण्युपास्त उद्गीथ इति ॥ ७ ॥

अन्वय और पदार्थ--(द्यौः, एव) स्वर्ग ही (उत्) उत् है (अन्तरिक्षम्) अन्तरिक्ष (गीः) गी है (पृथिवी) पृथिवी (थम्) थ है (आदित्यः, एव) आदित्य ही (उत्) उत् है (वायुः) वायु (गीः) गी है (अग्निः) अग्नि (थम्) थ है (सामवेदः, एव) सामवेद ही (उत्) उत् है (यजुर्वेदः) यजुर्वेद (गीः) गी है (ऋग्वेदः) ऋग्वेद (थम्) थ है (एतानि इनको (एवम्) ऐसा (विद्वान्) जानने वाला (यः) जो (उद्गीथाक्षराणि) उद्गीथके अक्षरोंको (उद्गीथः इति) उद्गीथ इस दृष्टिसे (उपास्ते) उपासना करता है (अस्मै) इस के अर्थ (वाग्दोहम्) वेदाध्ययनके फलको [दुग्धे] दुहता है (वाचोदोहः) वाग्दोहके फल वाला (अन्नवान्) अन्नवाला (अन्नादः) अन्नका भोक्ता (भवति) होता है ॥ ७ ॥

(भावार्थ)--स्वर्ग ही उत्, अन्तरिक्ष गी और पृथिवी थ है, सामवेद ही उत् यजुर्वेद गी और ऋग्वेद थ है। जो इस प्रकार जान कर इन सब उद्गीथके अक्षरोंकी प्रणवदृष्टिसे उपा-

सना करता है वाणी उस साधकके लिये ऋग्वेदादि शब्द-साध्य फलको देती है वह अन्नवान् और अन्नभोक्ता भी होता है

अथ खल्वाशीःसमृद्धिरुपसरणानीत्युपासीत येन साम्ना स्तोष्यन्स्यात्तत्सामोपधावेत् ॥ ८ ॥

अन्वय और पदार्थ--(अथ) अनन्तर (खलु) निश्चय (आशीःसमृद्धिः) फलसम्पत्ति कही जाती है (उपसरणानि) ध्यानयोग्योंको (इति) प्रणव है ऐसा (उपासीत) उपासना करे (येन) जिस (साम्ना) साम करके (स्तोष्यन्) स्तुति करने वाला हो (तत्) उस (साम) सामको (उपधावेत्) चिन्तवन करे ॥ ८ ॥

(भावार्थ)--अब फलसम्पत्ति कहते हैं, कि--ध्यान करने योग्य समझकर उद्गीथकी उपासना करे, पहिले जिस सामसे स्तुति करनी होगी, उद्गाता उस सामका ध्यान करे ॥ ८ ॥

यस्यामृचि तामृचं यदार्षेयं तमृषिं यां देवतामभिष्टोष्यन्स्यात्तां देवतामुपधावेत् ॥ ९ ॥

अन्वय और पदार्थ--(यस्याम्) जिस (ऋचि) ऋचामें हो (ताम्, ऋचम्) उस ऋचाको (यत्, आर्षेयम्) जिस ऋषि वाला हो (तम्, ऋषिम्) उस ऋषिको (याम्, देवताम्) जिस देवताको (अभिष्टोष्यन्, स्यात्) स्तुति करना हो (ताम् देवताम्) उस देवताको (उपधावेत्) चिन्तवन करे ॥ ९ ॥

(भावार्थ)--तदनन्तर वह साम जिस ऋचाके अन्तर्गत हो उस ऋचाको उस सामका जो ऋषि हो उस ऋषिको और जिस देवताकी स्तुति करनी हो उस देवताको चिन्तवन करे ॥९॥

येनच्छन्दसा स्तोष्यन्स्यात्तच्छन्द उपधावेद्येन स्तोमेन स्तोष्यमाणः स्यात्तꣳ स्तोममुपधावेत् ॥

अन्वय और पदार्थ -(येन) जिस (छन्दसा) छन्द करके (स्तोष्यन् स्यात्) स्तुति करनेवाला हो (तत्, छन्दः) उस छन्दको (उपधावेत्) चिन्तवन करे (येन) जिस (स्तोमेन) स्तोमसे (स्तोष्यमाणः, स्यात्) स्तुति करनेवाला हो (तम्) उस (स्तोमम्) स्तोमको (उपधावेत्) चिन्तवन करे । १० ।

(भावार्थ --गायत्री आदि जिस छन्दसे स्तुति करना हो उस छन्दका ध्यान करे और जिस स्तोमके द्वारा स्तवन करना हो उस स्तोमका ध्यान करे ॥ १० ॥

यां दिशमभिष्टोष्यन्स्यात्तां दिशमुपधावेत् । ११ ।

अन्वय और पदार्थ (याम् जिस दिशम्) दिशाको (अभिष्टोष्यन् स्तुति करनेवाला (स्यात्) हो (ताम्) उस (दिशम्) दिशाको (उपधावेत्) चिन्तवन करै ॥ ११ ॥

(भावार्थ)—जिस दिशाकी स्तुति करनी हो उस दिशा का ध्यान करै ॥ ११ ॥

आत्मानमंत उपसृत्य स्तुवीत कामं ध्यायन्नप्रमत्तोऽभ्याशो ह यदस्मै स कामः समृध्येत यत्कामः स्तुवीतेति यत्कामः स्तुवीतेति ॥ १२ ॥

अन्वय और पदार्थ -(अन्ते) अन्तमें (आत्मानम्) अपने को (उपसृत्य) चिन्तवन करके (कामम्) अभिलषित को (ध्यायन्) ध्यान करता हुआ (अप्रमत्तः) स्वर आदि में

प्रमाद न करता हुआ (अभ्याशः) शीघ्र (स्तुवीत) स्तुति करे (यत्) जिससे (सः) वह (कामः) अभिलषित (अस्मै) इसके अर्थ (समृद्धयेत) समृद्धिको प्राप्त हो (यत्कामः) जिस कामनावाला (स्तुवीत) स्तुति करे (इति) इस प्रकार ॥

(भावार्थ) - अन्तमें अपनेको चिन्तवन करके अपेक्षित फल का स्मरण और अनुसन्धान करते २ सावधानतासे स्तुति करे, यह उद्गाता जिस कर्ममें जिस फलकी कामना करके स्तुति करे उस काममें शीघ्र उस ही फलको पावेगा ॥ १२ ॥

॥ प्रथमाध्यायका तृतीय खण्ड समाप्त ॥

ओमित्येतदक्षरमुद्गीथमुपासीतोमिति ह्युद्गायति तस्योपव्याख्यानम् ॥ १ ॥

अन्वय और पदार्थ--(ओमिति एतत्) ओम् इस (अक्षरम्) अक्षर (उद्गीथम्) उद्गीथको (उपासीत) उपासना करे (हि) क्योंकि (ओमिति) ओम् ऐसा (उद्गायति) उद्गान करता है (तस्य) उसका (उपव्याख्यानम्) वर्णन है ॥ १ ॥

(भावार्थ)—ओम् इस अक्षरकी उद्गीथ दृष्टिसे उपासना करे, ओङ्कारका उच्चारण करके विभूतिवर्णन ही उसकी उपासना है ॥ १ ॥

देवा वै मृत्योर्बिभ्यतस्त्रयीं विद्यां प्राविशꣳस्ते च्छंदोभिरच्छादयन्यदेभिरच्छादयꣳस्तच्छंदसां छन्दस्त्वम् ॥ २ ॥

अन्वय और पदार्थ—(देवाः) देवता (मृत्यो) मृत्युसे (बिभ्यतः) डरते हुए (त्रयीम्, विद्याम्) त्रयीविद्यामेंके कर्म

को (प्राविशन्) प्रारम्भ करते हुए (ते) वह (छन्दोभिः) छन्दोंसे (आच्छादयन्) आच्छादन करते हुए (यत्) जो (एभिः) इनसे (आच्छादयन्) आच्छादन करते हुए (तत्) वह (छन्दसाम्) छन्दोंका (छन्दस्त्वम्) छन्दपना है ॥ २ ॥

(भावार्थ)–देवताओंने मृत्युसे भयभीत होकर तीनों वेदों में कहे हुए कर्मका आरम्भ किया, उन्होंने छन्द अर्थात् कर्ममें विनियोगरहित मन्त्रोंके द्वारा अपनेको आच्छादित किया, उन्होंने ऐसा किया था इस कारण ही सब मन्त्रोंका छन्द नाम हुआ है ॥ २ ॥

तानु तत्र मृत्युर्यथा मत्स्यमुदके परिपश्येदेवं पर्यपश्यदृचि साम्नि यजुषि ते नु वित्वोर्ध्वा ऋचः साम्नो यजुषः स्वरमेव प्राविशन् ॥ ३ ॥

अन्वय और पदार्थ–(यथा) जैसे [घातकः] घातक (उदके) जलमें (मत्स्यम्) मत्स्यको (परिपश्येत्) देखे (एवम्, उ) ऐसे ही (मृत्युः) मृत्यु (तत्र) तहाँ (ऋचि) ऋक्में (साम्नि) साममें (यजुषि) यजुमें (तान्) उन देवताओंको (पर्यपश्यत्) देखता हुआ (ते, नु) वह देवता (वित्वा) जानकर (ऋचः) ऋक्से (साम्नः) सामसे (यजुः) यजुसे (ऊर्ध्वाः) उठेहुए (स्वरम्, एव) अक्षरको ही (प्राविशन्) प्रवेश करते हुए

(भावार्थ)—जैसे संसारमें मच्छियें मारने वाला जलमें मच्छियोंको मारने योग्य देखता है, तैसे ही मृत्युने ऋक्, यजु और सामवेदसे विधान किये हुए कर्ममें, इन कर्मपरायण देवताओंको वधके योग्य देखा, उस समय देवताओंने मृत्युके

अभिप्रायको जान कर उस ऋक्, साम और यजुके कर्मको छोड़ कर स्वर नामक अक्षरकी उपासना की ॥ ३ ॥

यदा वा ऋचमाप्नोत्योमित्येवातिस्वरत्येव ँ सामैवं यजुरेष उ स्वरो यदेतदक्षरमेतदमृतमभयं तत् प्रविश्य देवा अमृता अभया अभूवन् ॥४॥

अन्वय और पदार्थ-(यदा, वा) जब (ऋचम्) ऋक्को (आप्नोति) प्राप्त होता है (ओम्-इति-एव) ओं ऐसा ही (अतिस्वरति) उच्चारण करता है (एवम्) ऐसे ही (साम) सामको (एवम्) ऐसे ही (यजुः) यजुको (एषः उ) यह ही (स्वरः) स्वर (यत्) क्योंकि (एतत्) यह (अक्षरम्) अक्षर है (एतत्) यह (अमृतम्) अमृत है (अभयम्) अभय है (तत्) उसको (प्रविश्य) प्रविष्ट होकर (देवाः) देवता (अमृताः) अमर (अभयाः) निर्भय (अभूवन्) हुए ॥४॥

(भावार्थ)-जब ऋक्का आश्रय करता है तब ॐकारका उच्चारण करता है, ऐसे ही सामका और यजुका आश्रय करके भी ॐकारका उच्चारण करता है, क्योंकि-यह ओंकाररूप स्वर नामक अक्षर ही अमृत है अभय है इस कारण ही देवता इस ॐकार अक्षरकी उपासना करके अमर और अभय हुए ॥

स य एतदेवं विद्वानक्षरं प्रणौत्येतदेवाक्षरँ स्वरममृतमभयं विशति तत्प्रविश्य यदमृता देवास्तदमृतो भवति ॥ ५ ॥

अन्वय और पदार्थ-(एतत्) इस (अक्षरम्) अक्षरको (एवम्) ऐसा (विद्वान्) जानने वाला (यः) जो (प्रणौति)

प्रणाम करता है (सः) वह (एतत्—एव) इस ही (अक्षरम्) अक्षर (स्वरम्) स्वररूप (अमृतम्) अमृतको (अभयम्) अभयको (विशति) प्रवेश करता है (तत्) उसको (प्रविश्य) प्रविष्ट होकर (यत्) जो (देवाः) देवता (अमृताः) अमर हुए (तत्) तिससे (अमृतः) अमर (भवति) होता है ॥

(भावार्थ)—जो इस ओङ्कार नामक अक्षरको इस प्रकार अमृत और अभय गुणशाली जान कर प्रणाम करता है और इस अक्षरको ही अमृत और अभय जान कर आश्रय करता है वह, जैसे इसके आश्रयसे देवता अमृत और अभय हुए थे तैसे ही अमृत और अभय होता है ॥ ५ ॥

॥ इति प्रथम अध्यायका चतुर्थ खण्ड समाप्त ॥

अथ खलु य उद्गीथः स प्रणवो यः प्रणवः स उद्गीथ एष प्रणव ओमिति ह्येष स्वरन्नेति ॥ १ ॥

अन्वय और पदार्थ—(अथ) और (खलु) निश्चय (यः) जो (उद्गीथः) उद्गीथ है (सः) वह (प्रणवः) प्रणव है (यः) जो (प्रणवः) प्रणव है (सः) वह (उद्गीथः) उद्गीथ है (एषः) यह (आदित्यः, इति) आदित्य (उद्गीथः) उद्गीथ है (एषः) यह (ओम्—इति) ओम्—ऐसा (स्वरन्) उच्चारण करता हुआ (एति) जाता है ॥ १ ॥

(भावार्थ)—जो उद्गीथ है वह ही प्रणव है और जो प्रणव है वह ही उद्गीथ है, यह आदित्य ही उद्गीथ और प्रणव है, क्योंकि ओम् इस अक्षरका उच्चारण करतेर ही गमन करता है।

एतमु एवाहमभ्यगासिषं तस्मान्ममत्वमेको-

सीति ह कौषीतकिः पुत्रमुवाच रश्मीꣳस्त्वं पर्यावर्त्तयाद्बहवो वै ते भविष्यन्तीत्यधिदैवतम् २

अन्वय और पदार्थ-(कौषीतकिः) कुषीतकका पुत्र (पुत्रम्) पुत्रको (उवाच) बोला (अहम्) मैं (एनम्, उ, एव) इस का ही (अभ्यगासिषम्) अभिमुख गान करता हुआ (तस्मात्) तिससे (मम) मेरे (त्वम्) तू (एकः) एक (असि) है, (इति, ह) इस प्रकार (त्वम्) तु (रश्मीन्) किरणोंको (पर्यावर्त्तयात्) उपासना कर (वै) निश्चय (ते) तेरे (बहवः) बहुतसे (भविष्यन्ति) होंगे (इति) इस प्रकार (अधिदैवतम्) अधिदैवत हुआ ॥ २ ॥

(भावार्थ)-कुषीतकके पुत्र कौषीतकिने अपने पुत्रसे कहा था, कि मैंने इस आदित्यको इसी बुद्धिसे उपासना की थी तब तुम मेरे एकमात्र पुत्र हुए थे, अत एव तुम बहुत पुत्र पाने के लिये इस आदित्यकी सकल किरणोंकी उपासना करो अर्थात् आदित्य और ओंकारको बहुत्वयुक्त समझ कर उपासना करो, तब तुम्हारे अनेक पुत्र होंगे, यह अधिदैवत कहा ॥ २ ॥

अथाध्यात्मं य एवायं मुख्यः प्राणस्तमुद्गीथमुपासीतोमिति ह्येष स्वरन्नेति ॥ ३ ॥

अन्वय और पदार्थ--(अथ) अब (अध्यात्मम्) अध्यात्म कहा जाता है (यः) जो (अयम्) यह (मुख्यः) मुख्य (प्राणः) प्राण है (तम् एव) उसको ही (उद्गीथम्) उद्गीथदृष्टिसे (उपासीत) उपासना करे (एषः) यह (हि)

क्योंकि (ओमिति) ओम् इस प्रकार (स्वरन्) उच्चारण करता हुआ (एति) जाता है ॥ ३ ॥

(भावार्थ)—अब अध्यात्म कहते हैं, कि–यह जो मुख्य प्राण है, इसकी दृष्टिसे उद्गीथकी उपासना करे, क्योंकि मुख्य प्राण ओंकारका उच्चारण करते २ ही गमन करता है ॥३॥

एतमु एवाहमभ्यगासिषं तस्मान्मम त्वमेकोसीति ह कौषीतकिः पुत्रमुवाच प्राणाꣳस्त्वं भूमानमभिगायताद् बहवो वै ते भविष्यन्तीति ॥४॥

अन्वय और पदार्थ–(कौषीतकिः) कौषीतकि (पुत्रम्) पुत्रको (उवाच) बोला (एतम्, उ, एव) उसको ही (अहम) मैं (अभ्यगासिषम्) गान करता हुआ (तस्मात्) तिससे (मम) मेरे (त्वम्) तू (एकः) एक (असि) है (इति ह) इस प्रकार (त्वम्) तू (भूमानम्) भूमा (प्राणान्) प्राणोंको (अभिगायतात्) गान कर (वै) निश्चय (ते) तेरे (बहवः) बहुतसे (भविष्यन्ति) होंगे (इति) इस प्रकार ४

(भावार्थ)–कौषीतकिने अपने पुत्रसे कहा, कि- मैंने इस की ही उपासना की थी, उस उपासनासे ही तुझ एकमात्र पुत्रको पाया है, तू बहुत पुत्रोंकी कामना करके भूमा कहिये बहुत्वबुद्धिसे इसकी उपासना कर ॥ ४ ॥

अथ खलु य उद्गीथः स प्रणवो यः प्रणवः स उद्गीथ इति होतृषदनाद्धैवापि दुरुद्गीथमनुसमाहरतीत्यनुसमाहरतीति ॥ ५ ॥

अन्वय और पदार्थ-(अथ) और (खलु) निश्चय (यः) जो (उद्गीथः) उद्गीथ है (सः) वह (प्रणवः) प्रणव है (यः) जो (प्रणवः) प्रणव है (सः) वह (उद्गीथः) उद्गीथ है (इति) इस कारण (होतृषदनात्) होताके स्थानसे (एव) ही (अपि, ह) निश्चय (दुरुद्गीथम्) दुष्ट उद्गीथको (अनुसमाहरति) अनुसन्धान करता है ॥ ५ ॥

(भावार्थ) जो उद्गीथ है वह ही प्रणव है और जो प्रणव है वह ही उद्गीथ है प्रणव और उद्गीथके अभेददर्शीने होतृस्थानसे दुष्ट उद्गीथका अनुसन्धान किया अर्थात् सम्यक् प्रकार प्रणवोच्चारणके द्वारा,प्रमादवश स्वरादिहीन उद्गानकर्मको ठीक किया इन दोनोंमें भेद देखने वाला ऐसा नहीं कर सकता ५

॥ प्रथम अध्यायका पञ्चम खण्ड समाप्त ॥

इयमेवर्गग्निः साम तदेतदेतस्यामृच्यध्यूढꣳ साम तस्मादृच्यध्यूढꣳ साम गीयत इयमेव साग्निरमस्तत्साम ॥ १ ॥

अन्वय और पदार्थ-(इयम्-एव) यह ही (ऋक्) ऋक् है (अग्निः) अग्नि साम साम है (तत्) सो (एतत्) यह (ऋचि-साम) ऋक्में सामकी समान (एतस्याम्) इसमें (अध्यूढम्) स्थित है (तस्मात्) तिससे (ऋचि) ऋक्में (अध्यूढम्) स्थित (साम) साम (गीयते) गाया जाता है (इयमेव) यह ही (सा) सा है (अग्निः) अग्नि (अमः) अम है (तत्) सो (साम) साम है ॥ १ ॥

(भावार्थ)-यह पृथिवी ऋक् है, अग्नि साम है यह अग्नि

पृथिवीमें, ऋचामें सामकी समान स्थित है इस कारण ही पृथिवी नामक ऋक्‌में स्थित अग्नि नामक सामका गान किया जाता है। यह पृथिवी सा है और अग्नि अम है, अत एव पृथिवी और अग्नि दोनों मिल कर साम है ॥ १ ॥

अन्तरिक्षमेवर्ग्वायुः साम तदेतदेतस्यामृच्यध्यूढ थ्ँ साम तस्मादृच्यध्यूढ थ्ँ साम गीयतेऽन्तरिक्षमेव सा वायुरमस्तत्साम ॥ २ ॥

अन्वय और पदार्थ-(अन्तरिक्षम्) अन्तरिक्ष (एव) ही (ऋक्) ऋक् है (वायुः) वायु (साम) साम है (तत्) सो (एतत्) यह (साम) साम (एतस्याम्) इस (ऋचि) ऋक्‌से (अध्यूढम्) स्थित है (तस्मात्) तिससे (ऋचि) ऋचासे (अध्यूढम्) स्थित (साम) साम (गीयते) गाया जाता है (अन्तरिक्षम्-एव) अन्तरिक्ष ही (सा) सा है (वायुः) वायु (अमः) अम है (तत्) सो (साम) साम है २

(भावार्थ)-यह अन्तरिक्ष ऋक् है, वायु साम है। यह वायु अन्तरिक्षमें ऋक्‌में, सामकी समान स्थित है इस कारण ही अन्तरिक्ष नामक ऋक्‌में स्थित वायु नामक सामका गान किया जाता है। यह अन्तरिक्ष सा है और वायु अम है, अत एव अन्तरिक्ष और वायु दोनों मिल कर साम है ॥ २ ॥

द्यौरेवर्गादित्यः साम तदेतदेतस्यामृच्यध्यूढथ्ँ साम तस्मादृच्यध्यूढ थ्ँ साम गीयते द्यौरेव सादित्योऽमस्तत्साम ॥ ३ ॥

अन्वय और पदार्थ-(द्यौः-एव) स्वर्ग ही (ऋक्) ऋक् है (आदित्यः) आदित्य (साम) साम है (तत्) सो (एतत्) यह (एतस्याम्) इस (ऋचि) ऋक्में (साम) साम (अध्यूढम्) स्थित है (तस्मात्) तिससे (ऋचि) ऋक्में (अध्यूढम्) स्थित (साम) साम (गीयते) गाया जाता है (द्यौः-एव) स्वर्ग ही (सा) सा है (आदित्यः) आदित्य (अमः) अम है (तत्) सो (साम) साम है ॥ ३ ॥

(भावार्थ)-स्वर्ग ऋक् है, आदित्य साम है, यह आदित्य स्वर्गमें सामकी समान स्थित है, इस कारण ही स्वर्ग नामक ऋक्में स्थित आदित्य नामक साम गाया जाता है। स्वर्ग सा है, आदित्य अम है इस कारण स्वर्ग और आदित्य दोनोंको मिला कर साम है ॥ ३ ॥

नक्षत्राण्येवर्क् चन्द्रमाः साम तदेतदेतस्यामृच्यध्यूढ ँ साम तस्मादृच्यध्यूढ ँ साम गीयते नक्षत्राण्येव सा चन्द्रमा अमस्तत्साम ॥ ४ ॥

अन्वय और पदार्थ—(नक्षत्राणि-एव) तारागण ही (ऋक्) ऋक् है (चन्द्रमाः) चन्द्रमा (साम) साम है (तत्) सो (एतत्) यह (एतस्याम्) इस (ऋचि) ऋक्में (साम) साम (अध्यूढम्) स्थित है (तस्मात्) तिससे (ऋचि) ऋक्में (अध्यूढम्) स्थित (साम) साम (गीयते) गाया जाता है (नक्षत्राणि- एव) नक्षत्र ही (सा) सा है (चन्द्रमाः) चन्द्रमा (अमः) अम है (तत्) सो (साम) साम है ॥४॥

(भावार्थ)-सब नक्षत्र ही ऋक् है, चन्द्रमा साम है, यह

चन्द्रमा नक्षत्र-समूहमें ऋक्में सामकी समान स्थित रहता है, इस कारण ही नक्षत्र नामक ऋक्में स्थित चन्द्रमा नामक साम का गान किया जाता है, यह नक्षत्र-समूह ही सा है, चन्द्रमा अम है, अत एव सकल नक्षत्र और चन्द्रमा दोनोंको मिलकर साम है ॥ ४ ॥

अथ यदेतदादित्यस्य शुक्लं भाः सैवर्गथ यत् नीलं परः कृष्णं तत्साम तदेतस्यामृच्यध्यूढ ॐ साम तस्मादृच्यध्यूढ ॐ साम गीयते ॥ ५ ॥

अन्वय और पदार्थ-(अथ) और (यत्) जो (एतत्) यह (आदित्यस्य) आदित्यकी (शुक्लम्) स्वेत (भाः) दीप्ति है (सा-एव) वह ही (ऋक्) ऋक् है (अथ) और (यत्) जो (नीलम्) नील (परः) अत्यन्त (कृष्णम्) कृष्ण है (तत्) वह (साम) है (तत्) सो (एतत्) यह (एतस्याम्) इस (ऋचि) ऋक्में (साम) साम (अध्यूढम्) स्थित है (तस्मात्) तिससे (ऋचि) ऋक्में (अध्यूढम्) स्थित (साम) साम (गीयते) गाया जाता है ॥ ५ ॥

भावार्थ—यह जो आदित्यकी शुक्ल दीप्ति है यह ही ऋक् है और जो नील वा अत्यन्त कृष्णवर्ण है आभा है, वह ही साम है, इस शुक्लवर्ण आभारूप ऋक्में कृष्ण वर्ण आभारूप साम स्थित रहता है, इस कारण ही ऋक् में स्थित सामका गान किया जाता है ॥ ५ ॥

अथ यदेवैतदादित्यस्य शुक्लं भाः सैव साथ यन्नीलं परः कृष्णं तदमस्तत्सामाथ य एषोन्त-

रादित्ये हिरण्मयः पुरुषो दृश्यते हिरण्यश्मश्रुर्हि-रण्यकेश आप्रणखात्सर्व एव सुवर्णः ॥ ६ ॥

अन्वय और पदार्थ-(अथ) और (यत्-एव) जो (एतत्) यह (आदित्यस्य) आदित्यकी (शुक्लम्) शुक्ल (भाः) दीप्ति है (सा-एव) वह ही (सा) सा है (अथ) और (यत्) जो (नीलम्) नील (परः) अत्यन्त (कृष्णम्) कृष्ण है (तत्) वह (अमः) अम है (तत्) सो (साम) साम है (अथ) और (एषः) यह (अन्तरादित्ये) आदित्यके भीतर (हिरण्मयः) हिरण्मय (पुरुषः) पुरुष (दृश्यते) दीखता है (हिरण्यश्मश्रुः) हिरण्यमय श्मश्रु वाला (हिरण्य-केशः) हिरण्यमय केशवाला (आप्रणखात्) नखपर्यन्त (सर्वः-एव) सब ही (सुवर्णः) सुवर्ण है ॥ ६ ॥

भावार्थ—यह जो आदित्यकी शुक्ल दीप्ति है यही सा है, और जो इसकी अतिनील आभा है वह ही अम है। दोनों मिलकर ही साम है, इस आदित्यमण्डलके भीतर जो हिरण्मय पुरुष दीखता है, उसके श्मश्रु हिरण्मय हैं, उसके केश हिरण्मय हैं, अधिक क्या कहैं उसके नखाग्रसे केशपर्यन्त सब ही सुवर्ण है ६

तस्य यथा कप्यासपुण्डरीकमेवमक्षिणी तस्यो-दिति नाम स एष सर्वेभ्यः पाप्मभ्य उदित उदेति ह वै सर्वेभ्यः पाप्मभ्यो य एवं वेद ॥ ७ ॥

अन्वय और पदार्थ—(तस्य) उसके (अक्षिणी) नेत्र (कप्यासम् यथा) वानरकी पीठके अधोभागकी समान (पुण्ड-रीकम्) अत्यन्त तेजस्वी लाल हैं (एवम्) ऐसे ही (तस्य)

उसका (उत् इति) उत् यह (नाम) नाम है (सः) वह (एषः) यह (सर्वेभ्यः) सब (पाप्मभ्यः) पापोंसे (उदितः) उठा हुआ (उदेति) उदित होता है (यः) जो (एवम्) ऐसा (वेद) जानता है (वै-ह) निश्चय (सर्वेभ्यः) सब (पाप्मभ्यः) पापोंसे [उदेति] उठता है ॥ ७ ॥

भावार्थ—उसके पुण्डरीककी समान तेजस्वी दोनों नेत्र वानरकी पीठके अधोभागकी समान लाल २ हैं, उनका 'उत्' यह नाम है, क्योंकि वह सब पापोंसे उठे हुए (अलग) हैं, जो ऐसा जानता है वह भी सकल पापोंसे अलग रहता है ७

तस्यर्क्च साम च गेष्णौ तस्मादुद्गीथस्तस्मात्त्वेवोद्गातैतस्य हि गाता स एष ये चामुष्मात् पराञ्चो लोकास्तेषां चेष्टे देवकामानां चेत्यधिदैवतम्

अन्वय और पदार्थ—(तस्य) उसके (ऋक्) ऋक् (च) और (साम-च) साम भी (गेष्णौ) अंगुलियोंके पोरुए वा गायक हैं (तस्मात्) तिससे (उद्गीथः) उद्गीथ है (तस्मात् एव-तु) तिस कारण ही (एतस्य) इसका (गाता) गाने वाला (उद्गाता) उद्गाता है (सः) वह (एषः) यह (ये-च) जो (अमुष्मात्) इससे (पराञ्चः) ऊपरके (लोकाः) लोक हैं (तेषाम्) तिनका (च) और (देवकामानाम्-च) देवताओंके मनोरथोंका भी (ईष्टे) ईश्वर होता है ॥ ८ ॥

भावार्थ—ऋक् और साम उसकी अंगुलियोंके दो पोरुए वा गायक हैं, इस कारण ही इनको उद्गीथ कहते हैं और इस कारण ही जो इनका गान करते हैं उनको उद्गाता कहते

है, यही उत् नामक देवता इस आदित्यके ऊपरके जो लोक हैं उन पर प्रभुता करते हैं और वही देवताओंकी सकल कामनाओंको पूर्ण करते हैं। यह अधिदैवत कहा ॥ ८ ॥

इति प्रथमाध्यायका छठा खण्ड समाप्त

अथाध्यात्मं वागेवर्क् प्राणः साम तदेतदेतस्यामृच्यध्यूढ ँ साम तस्मादृच्यध्यूढ ँ साम गीयते वागेव सा प्राणोऽमस्तत्साम ॥ १ ॥

अन्वय और पदार्थ—(अथ) अब (अध्यात्मम्) अध्यात्म कहते हैं (वाक्–एव) वाणी ही (ऋक्) ऋक् है (प्राणः) प्राण (साम) साम है (तत्) सो (एतत्) यह (एतस्याम्) इसमें (ऋचि) ऋक्में (साम) साम (अध्यूढम्) स्थित है (तस्मात्) जिससे (ऋचि) ऋक्में (अध्यूढम्) स्थित (साम) साम (गीयते) गाया जाता है (वाक्–एव) वाणी ही (सा) सा है (प्राणः) प्राण (अमः) अम है (तत्) सो (साम) साम है ॥ १ ॥

भावार्थ—अब अध्यात्म कहते हैं कि–वाणी ही ऋक् है, प्राण ही साम है, प्राणनामक साम वाणीनामक ऋक्में स्थित है, अतएव ऋक्में सामका गान किया जाता है, वाक् सा है, प्राण अम है और वाणी प्राण दोनों मिलकर ही साम है ॥ १ ॥

चक्षुरेवर्गात्मा साम तदेतदेतस्यामृच्यध्यूढ ँ साम तस्मादृच्यध्यूढ ँ साम गीयते चक्षुरेव सात्माऽमस्तत्साम ॥ २ ॥

अन्वय और पदार्थ—(चक्षुः एव) चक्षु ही (ऋक्) ऋक् है (आत्मा) आत्मा (साम) साम है (तत्) सो (एतत्) यह (एतस्याम्) इसमें (ऋचि) ऋक्में (साम) साम (अध्यूढम्) स्थित है (तस्मात्) तिससे (ऋचि) ऋक्में (अध्यूढम्) स्थित (साम) साम (गीयते) गाया जाता है (चक्षुः-एव) चक्षु ही (सा) सा है (आत्मा) आत्मा (अमः) अम है (तत्) सो (साम) है ॥ २ ॥

भावार्थ—चक्षु ही ऋक् है, छायात्मा साम है, छायात्मा साम चक्षुःस्वरूप ऋक्में स्थित है, इस कारण ऋक्में स्थित सामका गान किया जाता है, चक्षु ही सा है, छायात्मा अम है, अतः चक्षु और छायात्मा दोनों मिलकर ही साम है ॥ २ ॥

श्रोत्रमेवर्ङ्मनः साम तदेतदेतस्यामृच्यध्यूढꣳ साम तस्मादृच्यध्यूढꣳसाम गीयते श्रोत्रमेव सा मनोमस्तत्साम ॥ ३ ॥

अन्वय और पदार्थ -(श्रोत्रम् एव) श्रोत्र ही (ऋक्) ऋक् है (मनः) मन (साम) साम है (तत्) सो (एतत्) यह (एतस्याम्) इस (ऋचि) ऋक्में (साम) साम (अध्यूढम्) स्थित है (तस्मात्) तिससे (ऋचि) ऋक्में (अध्यूढम्) स्थित (साम) साम (गीयते) गाया जाता है (श्रोत्रम् एव) श्रोत्र ही (सा) सा है (मनः) मन (अमः) अम है (तत्) सो (साम) साम है ॥ ३ ॥

भावार्थ—श्रोत्र ही ऋक् है, मन साम है, मनोरूप साम श्रोत्ररूप ऋक्में स्थित है, अतएव ऋक्में स्थित सामका गान

किया जाता है श्रोत्र ही सा है मन अम है अतएव श्रोत्र और मन दोनों मिलकर साम है ॥ ३ ॥

अथ यदेतदक्ष्णः शुक्लं भाः सैवर्गथ यन्नीलं परः कृष्णं तत्साम तदेतदेतस्यामृच्यध्यूढꣳ साम तस्मादृच्यध्यूढꣳ साम गीयते अथ यदेवैतदक्ष्णः शुक्लं भाः सैव साथ यन्नीलं परः कृष्णं तदमस्तत्साम

अन्वय और पदार्थ—(अथ) और (यत्) जो (एतत्) यह (अक्ष्णः) नेत्रको (शुक्लम्) स्वेत (भाः) दीप्ति है (सा–एव) वह ही (ऋक्) ऋक् है (अथ) और (यत्) जो (नीलम्) नील (परः) अत्यन्त (कृष्णम्) कृष्ण है (तत्) वह (साम) साम है (तत्) सो (एतत्) यह (एतस्याम्) इसमें (ऋचि) ऋक्में (साम) साम (अध्यूढम्) स्थित है (तस्मात्) तिससे (ऋचि) ऋक्में (अध्यूढम्) स्थित (साम) साम (गीयते) गाया जाता है (अथ) और (यत्–एव) जो (एतत्) यह (अक्ष्णः) नेत्रकी (शुक्लम्) शुक्ल (भाः) दीप्ति है (सा--एव) वह ही (सा) सा है (अथ) और (यत्) जो (नीलम्) नील (परः) अत्यन्त (कृष्णम्) कृष्ण है (तत्) सो (अमः) अम है (तत्) वह (साम) साम है ॥ ४॥

भावार्थ—जो यह चक्षुकी शुक्ल दीप्ति है वह ही ऋक् है, और जो नील अर्थात् अत्यन्त कृष्णवर्ण आभा है वही साम है, इस शुक्लवर्ण आभारूप ऋक्में यह कृष्णवर्ण आभारूप साम स्थित है, इस कारण ही ऋक्में स्थित सामका गान किया

जाता है, यह चक्षुकी शुक्ल आभा ही सा है और इसकी अति-कृष्ण आभा अम है तथा दोनों मिलकर साम है ॥ ४ ॥

अथ य एषोऽन्तरक्षिणि पुरुषो दृश्यते सैवर्क् तत्साम तदुक्थं तद्यजुस्तद्ब्रह्म तस्यैतस्य तदेव रूपं यदमुष्य रूपं यावमुष्य गेष्णौ तौ गेष्णौ यन्नाम तन्नाम ॥ ५ ॥

अन्वय और पदार्थ--(अथ) और (यः) जो (एषः) यह (अन्तरक्षिणि) चक्षुके भीतर (पुरुषः) पुरुष (दृश्यते) दीखता है (सा-एव) वह ही (ऋक्) ऋक् है (तत्) वह (साम) है (तत्) वह (उक्थम्) उक्थ है (तत्) वह (यजुः) यजु है (तत्) वह (ब्रह्म) ब्रह्म है (यत्) जो (अमुष्य) इसका (रूपम्) रूप है, (तत्-एव) वह ही (तस्य) तिस (एतस्य) इसका (रूपम्) रूप है (अमुष्य) इसके (यौ) जो (गेष्णौ) गायक हैं (तौ) वह (गेष्णौ) गायक हैं (यत्) जो (नाम) नाम है (तत्) वह (नाम) नाम है ॥ ५ ॥

भावार्थ—इस चक्षुके भीतर जो पुरुष दीखता है वह ही ऋक् है, वह ही साम है, वह ही उक्थ है, वह ही यजु है, वह ही ब्रह्म है, उस आदित्यमें स्थित पुरुषका जो रूप है इस चक्षुमें स्थित पुरुषका भी वही रूप है, उसके जो दो गायक हैं इसके भी वही दो गायक हैं, उसका जो नाम है इसका भी वही नाम है ॥ ५ ॥

स एष ये चैतस्मादर्वाञ्चो लोकास्तेषां चेष्टे मनु-

ष्यकामानाश्चेति तस्मा इमे वीणायां गायन्त्येतं ते गायन्ति तस्मात्ते धनसनयः ॥ ६ ॥

अन्वय और पदार्थ—(सः) वह (एषः) यह (ये,च) जो (अस्मात्) इससे (अर्वाञ्चः) नीचेके (लोकाः) लोक हैं (तेषाम्) उनका (च) और (मनुष्यकामानाश्च) मनुष्यकी कामनाओंका भी (ईष्टे) ईश्वर है (ये) जो (वीणायाम्) वीणामें (गायन्ति) गाते हैं (ते) वह (तत्) उस (एतम्) इसको (गायन्ति) गाते हैं (तस्मात्) तिससे (ते) वे (धनसनयः) धनवान् होते हैं ॥ ६ ॥

(भावार्थ)—यह चाक्षुष पुरुष ही इस लोकसे नीचेके सकल लोकोंका और मनुष्योंकी सकल कामनाओंका प्रभु है, अतएव जो वीणाके साथ गान करते हैं वह इसका ही गान करते हैं और धनवान होते हैं ॥ ६ ॥

अथ य एतदेवं विद्वान्साम गायत्युभौ स गायति सोऽमुनैव स एष ये चामुष्मात्पराञ्चो लोकास्ताँश्चाप्नोति देवकामाँश्च ॥ ७ ॥

अन्वय और पदार्थ—(अथ) और (एतत्) इसको (एवम्) ऐसा (विद्वान्) जाननेवाला (यः) जो (साम) सामको (गायति) गाता है (सः) वह (उभौ) दोनों ही (गायति) गाता है (सः) वह (अमुना-एव) इसके द्वारा ही (सः) वह (एषः) यह (ये, च) जो (अस्मात्) इससे (पराञ्चः) ऊपरके (लोकाः) लोक हैं (तान्) उनको (च) और (देव-

कामानाम्, च) देवताओंके भोग्यविषयोंको (आप्नोति) प्राप्त होता है ॥ ७ ॥

(भावार्थ)—जो ऐसा जान कर इस सामका गान करता है वह चाक्षुष और आदित्यमें स्थित दोनों पुरुषोंका गान करता है वह इस आदित्यके द्वारा तिससे ऊपरके सकल लोक और देवताओंके भोगने योग्य सकल विषयोंको पाता है ।७।

अथानेनैव ये चैतस्मादर्वाञ्चो लोकास्ता ँ्ँ आप्नोति मनुष्यकामा ँ्ँश्च तस्मादुहैवंविदुद्गाता ब्रूयात् ॥ ८ ॥

अन्वय और पदार्थ -(अथ) और (अनेन-एव) इसके द्वारा ही (ये, च) जो (एतस्मात्) इससे (अर्वाञ्चः) नीचे के (लोकाः) लोक हैं (तान्) उनको (च) और (मनुष्य-कामांश्च) मनुष्योंके अभिलाषोंको भी (आप्नोति) प्राप्त होता है (तस्मात्, उ) तिससे ही (एवंवित्) ऐसा जानने वाला (उद्गाता) उद्गाता (ब्रूयात्) कहे ॥ ८ ॥

(भावार्थ)-और वह इस चाक्षुष पुरुषके द्वारा इस लोक से नीचेके सकल लोक और मनुष्यके भोगने योग्य सकल विषयोंको पाता है, अत एव इस सबका तत्त्व जानने वाला उद्गाता यजमानको कहे ॥ ८ ॥

कन्ते काममागायानीत्येष ह्येव कामागानस्येष्टे य एवं विद्वान्साम गायति साम गायति ॥९॥

अन्वय और पदार्थ—(ते) तेरे (कम्) किस (कामम्) अभीष्टको (आगायानि) गानसे प्रार्थना करूँ (इति) ऐसा

(एषः-एव हि) यह उद्गाता ही (कामागानस्य) अभिलषित गानेका (ईष्टे) प्रभु होता है (यः जो (एवम्) ऐसा (विद्वान्) जानने वाला (साम) सामको (गायति) गाता है ॥ ९ ॥

(भावार्थ)—तुम्हारे किस इच्छित विषयकी सामगानसे प्रार्थना करूँ ! ऐसा उद्गाता उस गानके द्वारा इच्छितपदार्थ प्राप्त करा सकता है, ऐसा जान कर उद्गाता सामका गान करते हैं [तृतीय खण्डसे इस सप्तम खण्ड-पर्यन्तका यह तात्पर्य है; कि—सामगानमें पृथिवी आदि लोकदृष्टि और चक्षुरादि दृष्टि करे, विश्वभरमें व्याप्त प्राणशक्तिसे सूर्य चन्द्रादि और चक्षुकर्ण आदि प्रकट हुए हैं, साम आदि गानमें भी उस प्राणशक्तिको ही प्रकट किया है इस कारण सामगानरूप स्तोत्रमें प्राणशक्ति क्रिया ही व्यक्त होती है] ॥ ९ ॥

॥ इति सप्तम खण्ड समाप्त ॥

त्रयो होद्गीथे कुशला बभूवुः शिलकः शालावत्यश्चैकितायनो दाल्भ्यः प्रवाहणो जैवलिरिति ते होचुरुद्गीथे वै कुशलाः स्मो हन्तोद्गीथे कथां वदाम इति ॥ १ ॥

अन्वय और पदार्थ—(शालावत्यः) शलावतका पुत्र (शिलकः) शिलक (दाल्भ्यः) दलभगोत्री (चैकितायनः) चैकितायन (जैवलिः) जीवलका पुत्र (प्रवाहणः) प्रवाहण (इति) इस प्रकार (त्रयः) तीन (उद्गीथे) उद्गीथमें (कुशलाः) प्रवीण (बभूवुः, ह) हुए (ते, ह) वह (ऊचुः) बोले (वै) निश्चय (उद्गीथे) उद्गीथमें (कुशलाः, स्मः) प्रवीण हैं (हन्त)

बूझते हैं, कि-(उद्गीथे) उद्गीथके विषयमें (कथाम्) चर्चा को (वदामः) कहें (इति) इस प्रकार ॥ १ ॥

(भावार्थ)-शलावतका पुत्र शिलक, दल्भगोत्री चैकितायन और जीवलका पुत्र प्रवाहण यह तीनों उद्गीथके विषयमें प्रवीण हुए, एक समय उन्होंने परस्पर विचार करते हुए कहा, कि-हम उद्गीथके विषयमें प्रवीण होगए हैं अतः आपकी सम्मति हो तो इस विषयकी आलोचना करें ॥ १ ॥

तथेति ह समुपविविशुः स ह प्रवाहणो जैवलिरुवाच भगवन्तावग्रे वदतां ब्राह्मणयोर्वदतोर्वाचꣳ श्रोष्यामीति ॥ २ ॥

अन्वय और पदार्थ-(तथा-इति-ह) ऐसा ही हो इसप्रकार कह कर (समुपविविशुः) बैठ गए (सः) वह (जैवलिः) जीवलका पुत्र (प्रवाहणः) प्रवाहण (उवाच, ह) बोला (भगवन्तौ) आप दोनों (अग्रे) आगे (वदताम्) कहें (ब्राह्मणयोः) ब्रह्मज्ञानियोंके (वदतोः) कहते हुए (श्रोष्यामि) सुनूँगा (इति) इस प्रकार ॥ २ ॥

(भावार्थ)-ऐसा ही हो इस प्रकार कह कर वह सब बैठ गए, तब जीवलकुमार प्रवाहणने कहा, कि-आप दोनों पहिले कहें मैं आप दोनों ब्रह्मज्ञानियोंके आलापको सुनूँगा ॥ २ ॥

स ह शिलकः शालावत्यश्चैकितायनं दाल्भ्यमुवाच हन्त त्वा पृच्छानीति पृच्छेति होवाच ३

अन्वय और पदार्थ-(सः) वह (शालावत्यः) शलावतका पुत्र (शिलकः) शिलक (दाल्भ्यम्) दल्भगोत्री

(चैकितायनम्) चैकितायनको (उवाच) बोला (हन्त) क्या (त्वा) तुमको (पृच्छानि) बूझूँ (पृच्छ) पूछ (इति) ऐसा (उवाच, ह) बोला ॥ ३ ॥

(भावार्थ)-फिर शलावतके पुत्र शिलकने दल्भगोत्री चैकितायनसे कहा, कि-यदि आपकी आज्ञा हो तो मैं प्रश्न करूँ ? चैकितायनके ऐसा कहने पर शिलकसे कहा, कि-प्रश्न करो ३

का साम्नो गतिरिति स्वर इति होवाच स्वरस्य का गतिरिति प्राण इति होवाच प्राणस्य का गतिरित्यन्नमिति होवाचान्नस्य का गतिरित्याप इति होवाच ॥ ४ ॥

अन्वय और पदार्थ-(साम्नः) सामकी (का) क्या (गतिः) गति है (इति) इस प्रकार कहने पर (स्वरः) स्वर है (इति) इस प्रकार (उवाच, ह) बोला (स्वरस्य) स्वरकी (का) क्या (गतिः) गति है (इति) ऐसा कहने पर (प्राणः) प्राण (इति) ऐसा (उवाच-ह) बोला (प्राणस्य) प्राणकी (का) क्या (गतिः) गति है (इति) ऐसा कहने पर (अन्नम्) अन्न (इति) ऐसा (उवाच-ह) बोला (अन्नस्य) अन्नकी (का, गतिः) क्या गति है (इति) ऐसा कहने पर (आपः) जल (इति) ऐसा (उवाच-ह) बोला ॥ ४ ॥

(भावार्थ)-प्रश्न सामकी गति क्या है ? उत्तर--स्वर सामकी गति है। प्रश्न-स्वरकी गति क्या है ?, उत्तर-स्वरकी गति प्राण है। प्रश्न-प्राणकी गति क्या है ?, उत्तर-अन्न प्राणकी गति है। प्रश्न-अन्नकी गति क्या है ? उत्तर-अन्नकी गति जल है

अपां का गतिरित्यसौ लोक इति होवाचामुष्य लोकस्य का गतिरिति न स्वर्गं लोकमतिनयेदिति होवाच स्वर्गं वयं लोकꣳसमाभिसंस्थापयामः स्वर्गसꣳस्तावꣳ हि सामेति ॥ ५ ॥

अन्वय और पदार्थ-(अपाम्) जलकी (का, गतिः) क्या गति है (इति) ऐसा कहने पर (असौ) यह (लोकः) लोक (इति) ऐसा (उवाच, ह) बोला (अमुष्य) उस (लोकस्य) लोककी (का, गतिः) क्या गति है (इति) ऐसा कहने पर (स्वर्गम्) स्वर्ग (लोकम्) लोकको (न) नहीं (अतिनयेत्) अतिक्रमण करे (इति) ऐसा (उवाच, ह) बोला (वयम्) हम (साम) सामको (स्वर्गम्) स्वर्ग (लोकम्) लोक (अभिसंस्थापयामः) निश्चय करते हैं (हि) क्योंकि (साम) साम (स्वर्गसंस्तावम् स्वर्गरूपसे स्तुति किया जाता है (इति) इस प्रकार ॥ ५ ॥

(भावार्थ)-प्रश्न जलकी क्या गति है ? उत्तर-यह लोक जलकी गति है । प्रश्न उस लोककी गति क्या है ? उत्तर-साम स्वर्गलोकको लाँघ कर नहीं लेजाता, अत एव हम साम को स्वर्गलोकप्रतिष्ठ मानते हैं अर्थात् साम मनुष्यको स्वर्गलोक पर्यन्त ही लेजाता है ऐसा हम जानते हैं, क्योंकि-सामकी स्तुति स्वर्गलोकरूपसे ही की जाती है ॥ ५ ॥

तꣳह शिलकः शालावत्यश्चैकितायनं दाल्भ्यमुवाच प्रतिष्ठितं वै किल ते दाल्भ्य साम यस्त्वेतर्हि

ब्रूयान्मूर्धा ते विपतिष्यतीति मूर्धा ते विपतेदिति

अन्वय और पदार्थ-(शालावत्यः) शलावतका पुत्र (शिलकः) शिलक (तम्) उस (दाल्भ्यम्) दल्भगोत्री (चैकितायनम्) चैकितायनको (उवाच-ह) बोला (दाल्भ्य) हे दाल्भ्य (वै, किल) निश्चय (ते) तेरा (साम) साम (अप्रतिष्ठितम्) अप्रतिष्ठित है (यः तु) जो (एतर्हि) इस समय (ते) तेरा (मूर्धा) मस्तक (विपतिष्यति) गिर जायगा (इति) ऐसा (ब्रूयात्) कहे (ते) तेरा (मूर्धा) मस्तक (विपतेत्) गिर जाय (इति) इस प्रकार ॥ ६ ॥

(भावार्थ)-शलावतके पुत्र शिलकने दल्भगोत्री चैकितायनसे कहा, कि—हे दाल्भ्य ! तेरा साम अप्रतिष्ठित है, इस समय यदि कोई तुमसे कहे, कि—तेरा मस्तक गिर जायगा, तो तेरा मस्तक गिर जाय ? ॥ ६ ॥

हन्ताहमेतद्भगवतो वेदानीति विद्धीति होवाचामुष्य लोकस्य का गतिरित्ययं लोक इति होवाचास्य लोकस्य का गतिरिति न प्रतिष्ठां लोकमतिनयेदिति होवाच प्रतिष्ठां वयं लोकꣳ सामाभिसꣳस्थापयामः प्रतिष्ठासꣳस्तावꣳ हि सामेति

अन्वय और पदार्थ—(हन्त) क्या (अहम्) मैं (एतत्) यह (भगवतः) आपसे (वेदानि) जान सकता हूँ ? (इति) ऐसा कहने पर (विद्धि) जान (इति) ऐसा (उवाच-ह) बोला (अमुष्य) उस (लोकस्य) लोकको (का—गतिः)

क्या गति है (इति) ऐसा कहने पर (अयम्) यह (लोकः) लोक (इति) ऐसा (उवाच-ह) बोला (अस्य) इस (लोकस्य) लोककी (का गतिः) क्या गति है (इति) ऐसा कहने पर (प्रतिष्ठाम्) प्रतिष्ठारूप (लोकम्) लोकको (न) नहीं (अतिनयेत्) अतिक्रमण करे (इति) ऐसा (उवाच ह) बोला (वयम्) हम (साम) सामको (प्रतिष्ठाम्) प्रतिष्ठारूप (लोकम्) लोक (अभिसंस्थापयामः) निश्चय करते हैं (हि) क्योंकि (साम) साम (प्रतिष्ठासंस्तावम्) प्रतिष्ठारूपसे स्तुति किया जाता है (इति) इस कारण ॥ ७ ॥

भावार्थ--उस समय दाल्भ्यने कहा, कि-मैं तुमसे सामकी प्रतिष्ठा जानना चाहता हूँ, शालावत्यने कहा, कि-जानलो। दाल्भ्यने प्रश्न किया कि-परलोककी क्या गति है ? शालावत्यने कहा कि--यह लोक, तब बूझा, कि इस लोककी क्या गति है ? उत्तर मिला, कि-प्रतिष्ठारूप लोकको लांघना ठीक नहीं है, हम सामको प्रतिष्ठारूप लोक जानते हैं, क्योंकि साम की प्रतिष्ठारूपसे ही स्तुति की जाती है ॥ ७ ॥

तꣳ ह प्रवाहणो जैवलिरुवाचान्तवद्वै किल ते शालावत्य साम यस्त्वेतर्हि ब्रूयान्मूर्धा ते विपतिष्यतीति मूर्धा ते विपतेदिति हन्ताहमेतद्भगवतो वेदानीति विद्धीति होवाच ॥ ८ ॥

अन्वय और पदार्थ-(जैवलिः) जीवलका पुत्र (प्रवाहणः) प्रावहण (तम्) उसको (उवाच-ह) बोला (शालावत्य) हे शालावत्य (किल-वै) निश्चय (ते) तेरा (साम) साम

(अन्तवत्) अन्तवाला है (यः—तु) जो (एतर्हि) इस समय (ते) तेरा (मूर्धा) मस्तक (विपतिष्यति) गिर जायगा (इति) ऐसा (ब्रूयात्) कहै (ते) तेरा (मूर्धा) मस्तक (विपतेत्) गिरे (इति) इस प्रकार (अहम्) मैं (एतत्) यह (भगवतः) आपसे (वेदानि) जानूँ (इति) ऐसा कहने पर (विद्धि) जान (इति) ऐसा (उवाच ह) बोला ॥ ८ ॥

भावार्थ—तदनन्तर जीवलतनय प्रवाहणने उनसे कहा, कि हे शालावत्य ! तुम्हारा साम निश्चय अन्त वाला है, इस कारण इस समय यदि कोई कहे, कि तुम्हारा मस्तक गिर जायगा तो तुम्हारा मस्तक गिर जाय, इस पर शालावत्यने कहा कि तो मैं यह विषय क्या आपसे जान सकता हूँ ? प्रवाहणने कहा, कि—जानलो ॥ ८ ॥

इति प्रथम अध्यायका अष्टम खण्ड समाप्त

अस्य लोकस्य का गतिरित्याकाश इति होवाच सर्वाणि ह वा इमानि भूतान्याकाशादेव समुत्पद्यन्त आकाशं प्रत्यस्तं यन्त्याकाशो ह्येवैभ्यो ज्यायानाकाशः परायणम् ॥ १ ॥

अन्वय और पदार्थ—(अस्य) इस (लोकस्य) लोककी (का गतिः) क्या गति है (इति) ऐसा कहने पर (आकाशः) आकाश (इति) ऐसा (उवाच-ह) बोला (वै) निश्चय (इमानि) यह (सर्वाणि) सब (भूतानि) भूत (आकाशात्, एव) आकाशसे ही (समुत्पद्यन्ते, ह) उत्पन्न होते हैं (आकाशम्प्रति) आकाशके प्रति (अस्तम्, यन्ति) लीन

होते हैं (हि) निश्चय (आकाशः,एव) आकाश ही (एभ्यः) इनसे (ज्यायान्) श्रेष्ठ है (आकाशः) आकाश (परायणम्) परम आश्रय है ॥ १ ॥

भावार्थ—प्रश्न इस लोककी गति क्या है ? उत्तर आकाश। यह सकल भूत आकाशसे ही उत्पन्न होते हैं और आकाशमें ही लीन होते हैं आकाश ही सकल भूतोंमें श्रेष्ठ है और आकाश ही सकल भूतोंका परम आश्रय हैं ॥ १ ॥

स एष परोवरीयानुद्गीथः स एषोनन्तः परोवरीयो हास्य भवति परोवरीयसो ह लोकाञ्जयति य एतदेव विद्वान्परोवरीयाꣳसमुद्गीथमुपास्ते २

अन्वय और पदार्थ -(सः) वह (एषः) यह (परोवरीयान्) सबसे श्रेष्ठ (उद्गीथः) उद्गीथ है, (सः) वह (एषः) यह (अनन्तः) अनन्त है (एवम्) ऐसा (विद्वान्) जानने वाला (यः) जो (परोवरीयांसम्) सबसे श्रेष्ठ (उद्गीथम्) उद्गीथको (उपास्ते) उपासना करता है (अस्य) इसका (परोवरीयः) परमश्रेष्ठ जीवन (भवति, ह) होता है (जयति ह) जीतता है ॥ २ ॥

भावार्थ—आकाश ही सबसे श्रेष्ठ उद्गीथ है वह अनन्त है, जो ऐसा जानकर इस सर्वश्रेष्ठ उद्गीथको उपासना करते हैं उनका जीवन श्रेष्ठसे श्रेष्ठ होता है, वह आकाश पर्यन्त सकल श्रेष्ठ लोकोंको जीतते हैं ॥ २ ॥

तꣳहैतमतिधन्वा शौनक उदरशाण्डिल्या-

शौनकस्त्वोवाच यावत्त एनं प्रजायामुद्गीथं वेदिष्यंते परोवरीयो हैभ्यस्तावदस्मिंल्लोके जीवनं भविष्यति

अन्वय और पदार्थ—(तम्) तिस (एतम्) इसको (शौनकः) शुनकपुत्र (अतिधन्वा) अतिधन्वा (उदरशाण्डिल्याय) उदरशाण्डिल्यके अर्थ (उक्त्वा) कह कर (उवाच-ह) बोला (ते) तेरी (प्रजायाम्) प्रजामें (यावत्) जब तक (एनम्) इस (उद्गीथम्) उद्गीथको (वेदिष्यन्ते) जानेंगे (तावत्) तब तक (अस्मिन्) इस (लोके) लोकमें (एभ्यः) इनसे (परोवरीयः) परमोत्कृष्ट (जीवनम्) जीवन (भविष्यति-ह) होगा ॥ ३ ॥

भावार्थ--इस उद्गीथके ज्ञानसे सम्पन्न शुनकपुत्र अतिधन्वा ने उदरशाण्डिल्यसे कहा था, कि-तुम्हारे वंशधरोंमें जो जब तक उद्गीथको जानेंगे, तब तक उनका जीवन साधारण जीवनसे परमोत्तम होगा ॥ ३ ॥

तथामुष्मिंल्लोके लोक इति स य एतदेवं विद्वानुपास्ते परोवरीय एव हास्यस्मिंल्लोके जीवनं भवति तथामुष्मिंल्लोके लोक इति लोके लोक इति

अन्वय और पदार्थ (तथा) तैसे ही (अमुष्मिन्, लोके) परलोकमें (लोकः) श्रेष्ठ लोकवाला होगा (सः) वह (इति) इस प्रकार (एवम्) ऐसा (विद्वान्) जानने वाला (यः) जो (एतत्) इसको (उपास्ते) उपासना करता है (हि) निश्चय (अस्मिन्) इस (लोके) लोकमें (अस्य) इसका (परोवरीयः) परमोत्तम (जीवनम्) जीवन (तथा) तैसे ही

(अमुष्मिन्, लोके) परलोकमें (लोकः) श्रेष्ठ लोक (भवति) होता है (इति) इस प्रकार ॥ ४ ॥

भावार्थ—और परलोकमें परमोत्तम स्थान मिलेगा। इस समय भी जो ऐसा जानकर इस उद्गीथकी उपासना करते हैं, उनको इस लोकमें उत्तमोत्तम जीवन और परलोकमें परमोत्तम स्थानकी प्राप्ति होती है [इस प्रकार अष्टम और नवमखण्डमें अन्यप्रकारसे यह बात दिखाई है कि-सामादि वैदिक स्तोत्र स्वरसे उच्चारण किये जाते हैं, स्वर प्राणशक्तिकी ही क्रिया है, प्राणशक्ति अन्नके आश्रयसे पुष्ट होती है, अन्न जलका ही विकार है, जलका आश्रय आकाश है वह आकाश ब्रह्मसे उत्पन्न है इस प्रकार यत्नमें ब्रह्मदर्शनका उपदेश किया है] ४

प्रथमाध्यायका नवम खण्ड समाप्त

मटचीहतेषु कुरुष्वाटिक्या सह जाययोषस्तिर्ह चाक्रायण इभ्यग्रामे प्रद्राणक उवास ॥ १ ॥

अन्वय और पदार्थ-(कुरुषु) कुरुदेशोंमें (मटचीहतेषु) ओलोंसे अन्ननाश होने पर (चाक्रायणः) चक्रका पुत्र (उषस्तिः) उषस्ति (आटिक्या) आटिकी (जायया-सह) स्त्री सहित (प्रद्राणकः) मरणासन्नदशाको प्राप्त (इभ्यग्रामे) हस्तिपकों के ग्राममें (उवास) बसता हुआ ॥ १ ॥

भावार्थ—ओलोंकी वर्षासे अन्नका नाश होने पर कुरुदेश में दुष्काल पड जानेके कारण चक्रके पुत्र उषस्तिने अपने देश को छोड़कर अप्राप्तयौवना अपनी स्त्री आटिकीके साथ भ्रमण करते २ अन्न न पानेसे मरणापन्नपदशामें हस्तिपकों (हाथीवानों) के ग्राममें आकर आश्रय लिया ॥ १ ॥

सहेभ्यं कुल्माषान्खादन्तं बिभिक्षे तᳫँहोवाच नेतोऽन्ये विद्यन्ते यच्च ये म इम उपनिहिता इति

अन्वय और पदार्थ-(सः) वह (कुल्माषान्) गले हुए उड़दोंको (खादन्तम्) खाते हुए (इभ्यम्) हाथीवानको (बिभिक्षे, ह) याचना करता हुआ (तम्) उसको (उवाच ह) बोला (इतः) इनसे (अन्ये) और (न नहीं (विद्यन्ते) हैं (यत्-च) जितने (ये) जो (इमे) यह (मे) मेरे पात्र में (उपनिहिताः) पड़े हैं (इति) इस प्रकार ॥ २ ॥

भावार्थ—उषस्तिने अपनी इच्छासे, सड़े हुए उड़द खाने वाले एक हाथीवान्के पास जाकर वह उड़द माँगे उसको उड़द माँगते हुए देखकर उस हस्तिपकने कहा, कि मैं जो खारहा हूँ, इन उच्छिष्ट उड़दोंके सिवाय और उड़द मेरे पास नहीं हैं, मेरे पास जो कुछ थे वह इस पात्रमें ही हैं ॥ २ ॥

एतेषां मे देहीति होवाच तानस्मै प्रददौ हन्तानुपानमित्युच्छिष्टं वै मे पीतᳫँस्यादिति होवाच ३

अन्वय और पदार्थ-(एतेषाम्) इनमेंसे (मे) मुझे (देहि) दे (इति) ऐसा (उवाच ह) बोला (तान्) उनको (अस्मै) इसके अर्थ (प्रददौ) देता हुआ (हन्त) क्या (अनुपानम्) पीछेसे जल पियोगे (इति) ऐसा कहने पर (वै) निश्चय (मे) मुझ करके (उच्छिष्टम्) झूठा (पीतम्) पिया हुआ (स्यात्) होगा (इति) ऐसा (उवाच ह) बोला ॥ ३ ॥

भावार्थ-हस्तिपककी बात सुनकर उषस्तिने कहा कि इनमेंसे कुछ मुझे दे, तब हस्तिपकने उनमेंसे ही कुछ थोड़ेसे उड़द दिये

और फिर कहा, कि-लो खाकर कुछ जल पीलो तब उषस्तिने कहा कि यह जल पीनेसे तो मुझे उच्छिष्ट पीनेका दोष लगेगा ।३।

न स्विदेतेऽप्युच्छिष्टा इति न वा अजीविष्यमिमानखादन्निति होवाच कामो म उदकपानमिति ४

अन्वय और पदार्थ-(स्वित्) क्या (एते-अपि) यह भी (उच्छिष्टाः) उच्छिष्ट (न) नहीं थे (इति) ऐसा कहने पर (इमान्) इनको (अखादन्) न खाता हुआ (वै) निश्चय (न) नहीं (अजीविष्यम्) जीता (इति) ऐसा (उदकपानम्) जलपान (मे) मेरा (कामः) इच्छापूर्वक होगा (इति) ऐसा (उवाच-ह) बोला ॥ ४ ॥

भावार्थ—यह सुन कर हस्तिपकने कहा कि-आपने जो उड़द लिये थे, यह क्या उच्छिष्ट नहीं थे, उषस्तिने उत्तर दिया कि-इन उड़दोंको नहीं खाता तो मेरे जीवनकी रक्षा नहीं हो सकती थी, इस कारण ही मैंने यह खालिये, परन्तु पानी तो इस समय मेरी इच्छानुसार अन्यत्र भी मिल सकता है, इस कारण मैं उच्छिष्ट जल नहीं पीऊँगा ॥ ४ ॥

स ह खादित्वातिशेषाञ्जायाया आजहार साग्र एव सुभिक्षा बभूव तान्प्रतिगृह्य निदधौ ॥ ५ ॥

अन्वय और पदार्थ-(सः) वह (खादित्वा) खाकर (अतिशेषान्) शेष रहोंको (जायायै) स्त्रीके अर्थ (आजहार ह) देता हुआ (सा) वह (अग्रे एव) पहिले ही (सुभिक्षा) भिक्षाको प्राप्त (बभूव) हुई (तान्) उनको (प्रतिगृह्य) लेकर (निदधौ) स्थापन करती हुई ॥ ५ ॥

भावार्थ—ऐसा कहकर उषस्तिने हस्तिपकके झूँठे उड़द कुछ खाकर जो शेष रहे वह अपनी स्त्रीको अर्पण करे, आटिकी इससे पहिले ही ऐसे कुछ उड़द पाकर खाचुकी थी, इस कारण उषस्तिके दिये हुए यह उड़द लेकर रख दिये ॥ ५ ॥

स ह प्रातः संजिहान उवाच यद्बतान्नस्य लभेमहि लभेमहि धनमात्राꣳ राजासौ यक्ष्यते स मा सर्वैरार्त्विज्यैर्वृणीतेति ॥ ६ ॥

अन्वय और पदार्थ—(सः) वह (प्रातः) प्रातःकालके समय (संजिहानः) शय्याको त्यागता हुआ (उवाच ह) बोला (अन्नस्य) अन्नके (यत् -बत) कुछ एक भागको (लभेमहि) पावें (धनमात्राम्) धनकी मात्राको (लभेमहि) पावें (असौ) यह (राजा) राजा (यक्ष्यते) यज्ञ करेगा (सः) वह (माम्) मुझको (सर्वैः) सब (आर्त्विज्यैः) ऋत्विजों के साथ (वृणीत) वरण करलेय (इति) इस प्रकार ॥ ६ ॥

भावार्थ तदनन्तर उषस्तिने प्रातःकालके समय शय्यासे उठकर कहा, कि कुछ एक अन्न पाने पर उसको भोजन करके राजाके यहाँ जाऊँ तो यथेष्ट धन लाऊँ, यहाँ राजा यज्ञका आरम्भ करने वाला है, वह और ऋत्विजोंके साथ मेरा भी वरण करलेगा ॥ ६ ॥

तं जायोवाच हन्त पत इम एव कुल्माषा इति तान्खादित्वामुं यज्ञं विततमेयाय ॥ ७ ॥

अन्वय और पदार्थ—(जाया) स्त्री (तम्) उसको (उवाच) बोली (हन्त) हाँ (पते) हे स्वामी (इमे) यह (कुल्माषाः) उड़द

हुए उड़द (ते) तुमने (एव) ही [दत्ताः] दिये थे (इति)
इस प्रकार (तान्) इनको (खादित्वा) खाकर (अमुम्)
इस (विततम्) फैले हुए (यज्ञम्) यज्ञको (एयाय) गया ॥७॥

भावार्थ- यह सुनकर उनकी स्त्री आटिकीने कहा कि आपने कल मुझे जो उड़द दिये थे वही यह रक्खे हैं उनको खालो, तब उषस्ति खाकर यज्ञमें गए ॥ ७ ॥

तत्रोद्गातॄनास्तावे स्तोष्यमाणानुपोपविवेश स ह प्रस्तोतारमुवाच ॥ ८ ॥

अन्वय और पदार्थ-(तत्र) तहाँ (आस्तावे) स्तुति करने करनेके स्थलमें (स्तोष्यमाणानाम्) स्तुति करने वाले (उद्गातॄणाम्) उद्गाताओंके (उप) समीपमें (उपविवेश) बैठे (सः) वह (प्रस्तोतारम्) प्रस्तोताको (उवाच-ह) बोला ॥ ८ ॥

भावार्थ- वह यज्ञस्थलमें जाकर स्तुतिके स्थानमें स्तुति करने वाले उद्गाताओंके समीपमें बैठे, तदनन्तर प्रस्तोतासे कहा ८

प्रस्तोतर्या देवता प्रस्तावमन्वायत्ता तां चेदविद्वान् प्रस्तोष्यसि मूर्धा ते विपतिष्यतीति ॥ ९ ॥

अन्वय और पदार्थ-(प्रस्तोतः) हे प्रस्तोता ! (या) जो (देवता) देवता (प्रस्तावम्) प्रस्तावभागके (अन्वायत्ता) अनुगत है (चेत्) जो (ताम्) उसको (अविद्वान्) न जानता हुआ (स्तोष्यसि) स्तुति करेगा (ते) तेरा (मूर्धा) मस्तक (विपतिष्यति) गिरेगा (इति) इस प्रकार ॥ ९ ॥

भावार्थ-हे प्रस्तोता ! जो देवता स्तुति भागके अनुगत रहता है उसको विना जाने उद्गान करेगा तो तेरा मस्तक गिर जायगा

एवमेवोद्गातारमुवाचोद्गातर्या देवतोद्गीथमन्वायत्ता तां चेदविद्वानुद्गास्यसि मूर्धा ते विपतिष्यतीति

अन्वय और पदार्थ- (एवम्-एव) ऐसे ही (उद्गातारम्) उद्गाताको (उवाच) बोला (उद्गातः) हे उद्गाता (या) जो (देवता) देवता (उद्गीथम्) उद्गीथके (अन्वायत्ता) अनुगत है (चेत्) जो (ताम्) उसको (अविद्वान्) न जानता हुआ (उद्गास्यति) उद्गान करेगा (ते) तेरा (मूर्धा) मस्तक (विपतिष्यति) गिर जायगा (इति) इस प्रकार १०

भावार्थ—इसी प्रकार उद्गातासे कहा, कि—हे उद्गातः! जो देवता उद्गीथ भागके अनुगत है, यदि तुम उसको बिना जाने उद्गान करोगे तो तुम्हारा मस्तक गिर जायगा ॥ १० ॥

एवमेव प्रतिहर्त्तारमुवाच प्रतिहर्त्तर्या देवता प्रतिहारमन्वायत्ता तां चेदविद्वान्प्रतिहरिष्यसि मूर्धा ते विपतिष्यतीति ते ह समारतास्तूष्णीमासांचक्रिरे ११

अन्वय और पदार्थ—(एवम्-एव) ऐसे ही (प्रतिहर्त्तारम्) प्रतिहर्त्ताको (उवाच) बोला (प्रतिहर्त्तः) हे प्रतिहर्त्ता (या) जो है (चेत्) जो (ताम्) उसको (अविद्वान्) न जानता हुआ (प्रतिहरिष्यति) प्रतिहार करेगा (ते) तेरा (मूर्धा) मस्तक (विपतिष्यति) गिरेगा (इति) इस प्रकार (ते) वह (समारताः) कर्मसे उपरत (तूष्णीम्) मौन (आसाञ्चक्रिरे) होते हुए ॥ ११ ॥

भावार्थ—ऐसे ही प्रतिहर्त्तासे भी कहा, कि—हे प्रतिहर्त्तः!

जो देवता प्रतिहारके अनुगत है, यदि तुम उसको विना जाने प्रतिहार करोगे तो तुम्हारा मस्तक गिर जायगा, यह सुनकर स्तोता, उद्गाता और प्रतिहर्त्ता अपने २ कर्मको छोड़कर मस्तक गिरनेके भयसे मौन होकर बैठ रहे ॥ ११ ॥

इति प्रथम अध्यायका दशम खण्ड समाप्त

अथ हैनं यजमान उवाच भगवन्तं वा अहं विविदिषाणीत्युषस्तिरस्मि चाक्रायण इति होवाच

अन्वय और पदार्थ—(अथ) अनन्तर (यजमानः) यजमान (एनम्) इसको (उवाच -ह) बोला (वै) निश्चय (अहम्) मैं (भगवन्तम्) आपको (विविदिषाणि) जानना चाहता हूँ (इति) इस प्रकार (चाक्रायणः) चक्रका पुत्र (उषस्तिः) उषस्ति (अस्मि) हूँ (इति) ऐसा (उवाच ह) बोला १

भावार्थ तदनन्तर यजमान राजाने कहा कि हे भगवन् ! मैं आपका परिचय जानना चाहता हूँ इस पर उषस्तिने कहा कि मैं चक्रका पुत्र उषस्ति हूँ ॥ १ ॥

स होवाच भगवन्तं वा अहमेभिः सर्वैरार्त्विज्यैः पर्यैषिषं भगवतो वा अहमवित्त्यान्यानवृषि ।२।

अन्वय और पदार्थ- (सः) वह उवाच ह बोला (अहम्) मैं (एभिः) इन (सर्वैः) सब (आर्त्विज्यैः) ऋत्विजोंके साथ (भगवन्तम्) आपको (वै) निश्चय (पर्यैषिषम्) अन्वेषण करता हुआ (भगवतः) आपके (अवित्त्या) न मिलनेसे अन्यान्, वै, औरोंको ही (अवृषि) वरण देता हुआ

भावार्थ—राजाने कहा कि मैंने इन याज्ञियोंके साथ आपका

भी अन्वेषण किया था, परन्तु आपके न मिलनेसे अन्तमें उन का ही वरण कर लिया है ॥ २ ॥

भगवाँस्त्वेव मे सर्वैरार्त्विज्यैरिति तथेत्यथ तर्ह्येत एव समतिसृष्टाः स्तुवतां यावत्त्वेभ्यो धनं दद्यास्ता-वन्मम दद्या इति तथेति ह यजमान उवाच ।३।

अन्वय और पदार्थ—(मे) मेरे (सर्वैः) सब (आर्त्विज्यैः) ऋत्विजोंके साथ (भगवान् तु एव) आप भी (इति) ऐसा कहने पर (तथा—इति) वैसा ही होगा इस प्रकार कहा (अथ) अब (तर्हि) तो (एते—एव) यह ही (समतिसृष्टाः) आज्ञा दिये हुए (स्तुवताम्) स्तुति करें (तु) परन्तु (एभ्यः) इनको (यावत्) जितना (धनम्) धन (दद्याः) दो (तावत्) उतना ही (मम) मुझको (दद्याः) दो (इति) ऐसा कहा (यजमानः) यजमान (तथा—इति) ऐसा ही होगा इस प्रकार (उवाच—ह) बोला ॥ ३ ॥

भावार्थ—अब यदि भाग्यवश आप आगए हैं तो इनके साथ आप भी मेरे यज्ञमें ऋत्विक्कर्म कीजिये । उषस्तिने कहा, कि—बहुत अच्छा, परन्तु आप इन सबको जितना धन दें उतना ही मुझे देना, मैं आज्ञा देता हूँ, कि—आपके पहिलेसे वरण किये हुए ऋत्विक् ही स्तुति आदि कर्म करें, राजाने कहा, कि—आप जैसी आज्ञा करेंगे वही होगा ॥ ३ ॥

अथ हैनं प्रस्तोतोपससाद प्रस्तोतर्या देवता प्रस्तावमन्वायत्ता तां चेदविद्वान् प्रस्तोष्यसि मूर्धा ते विपतिष्यतीति मा भगवानवोचत्कतमा सा देवतेति

अन्वय और पदार्थ—(अथ) अनन्तर (प्रस्तोता) स्तुति कर्म करने वाला (एनम्–उपससाद, ह) इनके समीप आया (भगवान्) आप (मा) मुझसे (अवोचत्) कहते थे (प्रस्तोतः) हे प्रस्तोता (या) जो (देवता) देवता (प्रस्तावम्) प्रस्ताव के (अन्वायत्ता) अनुगत है (ताम्) उसको (चेत्) जो (अविद्वान्) न जानता हुआ (प्रस्तोष्यसि) स्तुति करेगा (ते) तेरा (मूर्धा) मस्तक (विपतिष्यति) गिरेगा (इति) इस प्रकार (सा) वह (देवता) देवता (कतमा) कौनसा है (इति) इस प्रकार ॥ ४ ॥

भावार्थ—तदनन्तर उद्गाताने विनीत भावसे उषस्तिके पास आकर कहा कि–हे भगवन् ! आपने जो मुझसे कहा था कि–जो देवता प्रस्ताव-भागके अनुगत है तुम यदि उसको न जानकर स्तव करोगे तो तुम्हारा मस्तक गिर जायगा, वह देवता कौनसा है ? मैं आपसे उसको जानना चाहता हूँ ।४।

प्राण इति होवाच सर्वाणि ह वा इमानि भूतानि प्राणमेवाभिसंविशन्ति प्राणमभ्युज्जिहते सैषा देवता प्रस्तावमन्वायत्ता तां चेदविद्वान्प्रास्तोष्यो मूर्धा ते व्यपतिष्यत्तथोक्तस्य मयेति ॥ ५ ॥

अन्वय और पदार्थ—(प्राणः) प्राण (इति) ऐसा (उवाच ह) बोला (सर्वाणि) सब (इमानि) यह (भूतानि) प्राणी (वै) निश्चय (प्राणम् एव) प्राणमें ही (अभिसंविशन्ति) प्रवेश करते हैं (प्राणम् अभ्युज्जिहते) प्राणमेंसे ही निकलते हैं (सा) वह (एषा) यह (देवता) देवता (प्रस्ता-

थम्) प्रस्तावके (अन्वायत्ता) अनुगत है (चेत्) जो (ताम्) उसको (अविद्वान्) न जानता हुआ (प्रस्तोष्यः) स्तुति करता (मया) मुझ करके (तथोक्तस्य) तैसे कहे हुए (ते) तेरा (मूर्द्धा) मस्तक (व्यपतिष्यत्) गिर पड़ना ॥ ५ ॥

भावार्थ—उषस्तिने कहा कि-प्राण ही देवता है यह सकल भूत प्रलयकालमें प्राणमें ही प्रवेश करते हैं और सृष्टिकालमें प्राणमेंसे ही प्रकट होते हैं, इस कारण वह प्राण ही प्रस्ताव-भागका अनुगत देवता है इस देवताको बिना जाने यदि तू स्तुति करता, तो मेरे कथनानुसार तेरा मस्तक गिर जाता ।५।

अथ हैनमुद्गातोपससादोद्गातर्या देवतोद्गीथमन्वायत्ता तां चेदविद्वानुद्गास्यसि मूर्धा ते व्यपतिष्यतीति मा भगवानवोचत्कतमा सा देवतेति ६

अन्वय और पदार्थ—(अथ) अनन्तर (उद्गाता) उद्गान कर्मका कर्त्ता (एनम् उपससाद ह) इसके समीप आकर बोला (भगवान्) आप (मा) मुझसे (अवोचत्) कहते थे, (उद्गातः) हे उद्गाता (या) जो (देवता) देवता (उद्गीथम्) उद्गीथके (अन्वायत्ता) अनुगत है (चेत्) जो (ताम्) उसको (अविद्वान्) न जानता हुआ (उद्गास्यति) उद्गान करेगा (ते) तेरा (मूर्धा) मस्तक (विपतिष्यति) गिरेगा (इति) इस प्रकार (सा) वह (देवता) देवता (कतमा) कौनसा है (इति) यह प्रश्न किया ॥ ६ ॥

भावार्थ—तदनन्तर उद्गाताने विनीतभावसे उषस्तिके समीप जाकर कहा कि हे भगवन् ! आपने मुझसे कहा था, कि—जो

देवता उद्गीथका अनुगामी है, तुम यदि उसको बिना जाने उद्गान–कर्म करोगे तो तुम्हारा मस्तक गिर जायगा, सो वह देवता कौनसा है ? यह मैं आपसे जानना चाहता हूँ ॥ ६ ॥

आदित्य इति होवाच सर्वाणि ह वा इमानि भूतान्यादित्यमुच्चैः सन्तं गायन्ति सैषा देवतोद्गीथमन्वायत्ता तां चेदविद्वानुदगास्यो मूर्धा ते व्यपतिष्यत्तथोक्तस्य मयेति ॥ ७ ॥

अन्वय और पदार्थ (आदित्यः) आदित्य (इति) ऐसा (उवाच-ह) बोला (वै) निश्चय (इमानि) यह (सर्वाणि) सब (भूतानि) प्राणी (उच्चैः, सन्तम्) उदय होते हुए (आदित्यम्) आदित्यको (गायन्ति) गाते हैं (सा) वह (एषा) यह (देवता) देवता (उद्गीथम्) उद्गीथके (अन्वायत्ता) अनुगत है (चेत्) जो (ताम्) उसको (अविद्वान्) न जानता हुआ (उद्गास्यः) उद्गान करता (मया) मुझ करके (तथोक्तस्य) तैसे कहे हुए (ते) तेरा (मूर्धा) मस्तक (व्यपतिष्यत्) गिर जाता (इति) इस प्रकार ॥ ७ ॥

भावार्थ—उषस्तिने कहा, कि-आदित्य ही वह देवता है, क्योंकि यह सब प्राणी आदित्यके उदय होने पर ऊँचे स्वरसे गान करते हैं, इस कारण आदित्य देवता ही उद्गीथका अनुगामी है, उस देवताको बिना जाने यदि तुम उद्गानकर्म करते तो मेरे कहनेके अनुसार तुम्हारा मस्तक गिर पड़ता ॥ ७ ॥

अथ हैनं प्रतिहर्त्तोपससाद प्रतिहर्तर्या देवता

प्रतिहारमन्वायत्ता तां चेदविद्वान् प्रतिहरिष्यसि मूर्धा ते विपतिष्यतीति मा भगवानवोचत्कतमा सा देवतेति ॥ ८ ॥

अन्वय और पदार्थ—(अथ) अनन्तर (प्रतिहर्त्ता) प्रतिहार कर्म करने वाला (एनम् उप-ससाद-ह) इसके समीप आकर बोला (भगवान्) आप (मा) मुझसे (अवोचत्) कहते थे (प्रतिहर्त्तः) हे प्रतिहर्त्ता (या) जो (देवता) देवता (प्रतिहारम् अन्वायत्ता) प्रतिहारका अनुगामी है (चेत्) जो (ताम्) उसको (अविद्वान्) न जानता हुआ (प्रतिहरिष्यसि) प्रतिहार कर्म करेगा (ते) तेरा (मूर्धा) मस्तक (विपतिष्यति) गिर जायगा (इति) इस प्रकार (सा) वह (देवता) देवता (कतमा) कौनसा है (इति) ऐसा कहा ८

भावार्थ—तदनन्तर प्रतिहर्त्ताने विनीतभावसे उषस्तिके समीप जाकर कहा कि—हे भगवन् ! आपने कहा था, कि जो देवता प्रतिहारका अनुगामी है उसको बिना जाने प्रतिहारकर्म करोगे, तो तुम्हारा मस्तक गिर जायगा सो वह देवता कौन है ? मैं आपसे उसको जानना चाहता हूँ ॥ ८ ॥

अन्नमिति होवाच सर्वाणि ह वा इमानि भूतान्यन्नमेव प्रतिहरमाणानि जीवन्ति सैषा देवता प्रतिहारमन्वायत्ता तां चेदविद्वान्प्रत्यहरिष्यो मूर्धा ते व्यपतिष्यत्तथोक्तस्य मयेति तथोक्तस्य मयेति ६

अन्वय और पदार्थ—(अन्नम्) अन्न (इति) ऐसा

(उवाच ह) बोला (वै) निश्चय (इमानि यह सर्वाणि) सब (भूतानि) प्राणी (अन्नम् अन्नको प्रतिहरमाणानि एव) ग्रहण करते हुए ही (जावन्ति, ह) जाते हैं (सा) वह (एषा) यह (देवता) देवता (प्रतिहारम् अन्वायत्ता) प्रतिहारके अनुगत है (चेत्) जो (ताम्) उसको (अविद्वान्) न जानता हुआ (प्रतिहरिष्यः) प्रतिहारकर्म करता (मया) मुझ करके (तथोक्तस्य) तैसे कहते हुए (ते) तेरा (मूर्धा) मस्तक (व्यपतिष्यत्) गिर जाता ॥ ९ ॥

भावार्थ—उषस्तिने कहा, कि वह देवता अन्न ही है, क्योंकि यह सकल प्राणी अन्नको ग्रहण करके ही जीवन धारण करते हैं, अतएव इस देवताको विना जाने यदि तुम प्रतिहारकर्म करते तो मेरे कथनानुसार अवश्य ही तुम्हारा मस्तक गिर जाता [इस दशम और एकादश खण्डका भाव यह है कि—प्राणशक्तिने ही पहिले सूर्यचन्द्रादि विशिष्ट होकर सौर जगत्को उत्पन्न किया है और प्राणशक्ति अन्नके (जडांशके) आश्रयसे सर्वत्र क्रिया करती है, यह प्राणशक्ति ही देहमें वाक्य आदि इन्द्रियोंकी शक्तिरूपसे क्रिया करती है, यज्ञोंके मन्त्र आदि वाक्योंके द्वारा उच्चारण किये जाते हैं, अतएव प्राणशक्ति ही यज्ञका उपास्य देवता है] ॥ ९ ॥

॥ इति प्रथम अध्यायका एकादश खण्ड समाप्त ॥

अथातः शौव उद्गीथस्तद्ध वको दाल्भ्यो ग्लावो वा मैत्रेयः स्वाध्यायमुद्वव्राज ॥ १ ॥

अन्वय और पदार्थ—(अथ) अनन्तर (अतः) यहाँसे

(शौवः) श्वान करके देखा हुआ (उद्गाथ उद्गीथ (प्रस्तूयते प्रारम्भ किया जाता है (तत्) तिससे (ह) निश्चय (दाल्भ्यः) दल्भकुमार (मैत्रेयः) मित्राके गर्भसे उत्पन्न हुआ (ग्लावः) ग्लावनामक (बकः) बक ऋषि (स्वाध्यायम्) स्वाध्याय करनेको (उद्वव्राज) बाहर जाता हुआ

(भावार्थ)—पहिले खण्डमें अन्नप्राप्तिकी अपेक्षा दिखाई अब श्वनामक ऋषिसे दृष्ट उद्गीथकी प्रस्तावना की जाती है। इस विषयमें एक आख्यायिका है, कि—मित्राके गर्भसे उत्पन्न हुए दल्भके पुत्र जिनको ग्लाव भी कहते थे, वह बक ऋषि वेदका पारायण करनेको प्रतिदिन ग्रामसे बाहर जाया करते थे।

तस्मै श्वा श्वेतः प्रादुर्बभूव तन्मये श्वान उपसमेत्योचुरन्नं नो भगवानागायत्वशनायाम वा इति ॥ २ ॥

अन्वय और पदार्थ—(तस्मै) तिसके अर्थ (श्वेतः) श्वेत (श्वा) श्वान (प्रादुर्बभूव) प्रकट हुआ (अन्ये) और (श्वानः) श्वान (तम्) उसके (उपसमेत्य) समीप आकर (ऊचुः) बोले (भगवान्) आप (नः) हमारे अर्थ (अन्नम्) अन्न को (आगायतु) गाओ (वै) निश्चय (अशनायामः) भूखे हैं (इति) इस प्रकार ॥ २ ॥

(भावार्थ)—एक समय स्वाध्यायसे प्रसन्न हुए उद्गीथ देवता, बक ऋषिके ऊपर अनुग्रह करनेके निमित्त श्वेत कुक्कुर का रूप धारण करके उनके सामने प्रकट हुए, उस समय और कितने ही श्वान श्वेत श्वानके समीप आकर कहने लगे, कि-

हम भूखसे व्याकुल होरहे हैं, इस कारण आप आगानके द्वारा हमको अन्न प्राप्त कराओ ॥ २ ॥

तान्होवाचेहैव मा प्रातरुपसमीयातेति तद्ध वको दाल्भ्यो ग्लावो वा मैत्रेयः प्रतिपालयांचकार ३

अन्वय और पदार्थ—(तान्) उनको (उवाच-ह) बोला (प्रातः) प्रातःकालमें (इह-एव) यहाँ ही (मा) मुझको (उपसमीयात) समीप आना (इति) इस प्रकार (तत्) इस को (दाल्भ्यः) दल्भपुत्र (वा) और (मैत्रेयः) मित्राके गर्भ से उत्पन्न (ग्लावः) ग्लाव नामक (बकः) बक (प्रतिपालयाञ्चकार ह) प्रतीक्षा करता हुआ ॥ ३ ॥

(भावार्थ)—उनकी इस बातको सुन कर श्वेत श्वानने कहा, कि—तुम कल प्रातःकाल यहाँ ही मेरे पास आना, बक यह सुन चित्तमें कुतूहल मान घर न गया तहाँ ही रहा और प्रातःकाल उनके आनेकी प्रतीक्षा करने लगा ॥ ३ ॥

ते ह यथैवेदं वहिष्पवमानेन स्तोष्यमाणाः सꣳरब्धाः सर्पन्तीत्येवमाससृपुस्ते ह समुपविश्य हिंचक्रुः ॥ ४ ॥

अन्वय और पदार्थ—(स्तोष्यमाणाः) अध्वर्यु आदि (बहिष्पवमानेन) बहिष्पवमानके द्वारा (यथा-एव) जैसे (संरब्धाः) संलग्न हुए (सर्पन्ति) परिभ्रमण करते हैं (एवम्, इति) इस प्रकार (ते) वह (इदम्) पूँछको [गृहीत्वा] ग्रहण करके (आससृपुः, ह) परिभ्रमण करते हुए (ते) वह (समुपविश्य) बैठ कर (हिञ्चक्रुः, ह) हिंकार करते हुए ॥ ४ ॥

(भावार्थ)-प्रातःकाल होने पर वह पहिलेकी समान प्रकट होकर अध्वर्युसे यजमानपर्यन्त यज्ञकर्त्ता, जैसे बहिष्पवमान नामक स्तोत्रका उच्चारण करते २ परस्पर मिले हुए घूमते हैं, तैसे ही मुखसे परस्परकी पूँछ पकड़ कर घूमने लगे, फिर बैठ कर पञ्चमकहिङ्काररूप हिंकारका ऊँचे स्वरसे गान करने लगे ४

ओ३मदा३ मो३ पिबा३ मो३ देवो वरुणः प्रजापतिः सविता२ऽन्नमिहा२हरदन्नपते३ऽन्नमिहा२हरा२हरो३मिति ॥ ५ ॥

अन्वय और पदार्थ—(ॐ अदामः) हम खायँगे (ॐ पिबामः हम पियेंगे (ॐदेवः) देवता बरुणः) वरुण (प्रजापतिः) प्रजापति सविता) सविता (इह) यहाँ (अन्नम्) अन्नको (आहरत्) आहरण करे (अन्नपते) हे अन्नपते (इह) यहाँ (अन्नम् अन्नको आहर) दो ॥ ५ ॥

(भावार्थ)—वह गान यह है, कि—हम भोजन करेंगे हम पान करेंगे, प्रजापति, वरुण और सविता यह हमें अन्न दें ५

॥ प्रथमाध्यायका द्वादश खण्ड समाप्त ॥

अयं वाव लोको हाउकारो वायुर्हाइकारश्चन्द्रमा अथकारः आत्मेहकारोऽग्निरीकारः ॥ १ ॥

अन्वय और पदार्थ-(अयम्, वाव) यह ही (लोकः) लोक (हा उकारः) हा उकार है (वायुः) वायु (हा इकारः) हा इकार है (चन्द्रमाः) चन्द्रमा (अथकारः) अथकार है (आत्मा) आत्मा (इहकारः) इहकार है (अग्निः) अग्नि (ईकारः) ईकार है ॥ १ ॥

(भावार्थ)—अब सामगान करनेके स्तोभनामक अक्षरों की उपासना कहते हैं, कि–इन अक्षरोंका अर्थ न होने पर भी गानका फल होता है, यह लोक हा हाके आगे उच्चारण किया हुआ उकार है अतः उस उकारकी पृथ्वीदृष्टिसे उपासना करे, वायु हाके आगे उच्चरित ईकार है और चन्द्रमा अथ है, क्योंकि–अन्नका आत्मा चन्द्रमा है और थकारका उच्चारण अन्नमें होता है, 'इह' को आत्मदृष्टिसे उपासना करे, क्योंकि आत्माको प्रत्यक्षमें इह शब्दसे बोलते हैं, और ईकारमें अग्नि दृष्टि करे, क्योंकि–जिसमें ईकारका गान होता है उसको आग्नेय साम कहते हैं ॥ १ ॥

आदित्य ऊकारो निहव एकारो विश्वे देवाः औ हो यिकारः प्रजापतिर्हिङ्कारः प्राणः स्वरोऽन्नं या वाग्विराट् ॥ २ ॥

अन्वय और पदार्थ–(आदित्यः) आदित्य (ऊकारः) ऊकार (निहवः) निहव (एकारः) एकार (विश्वेदेवाः) विश्वेदेवा (औ हो यिकारः) औ हो यिकार (प्रजापतिः) प्रजापति (हिंकारः) हिङ्कार (प्राणः) प्राण (स्वरः) स्वर (अन्नम्) अन्न (या) या (वाक्) वाक् (विराट्) विराट् है

(भावार्थ)—ऊकारकी आदित्यदृष्टिसे, एकारकी निहव दृष्टिसे, औ हो यिकारकी विश्वेदेवारूपसे, हिंकारकी प्रजापति-दृष्टिसे, स्वरकी प्राणदृष्टिसे, याकी अन्नदृष्टिसे क्योंकि मनुष्य अन्नसे ही या कहिये गमन करता है और वाक्‌की विराट् दृष्टिसे उपासना करें ॥ २ ॥

अनिरुक्तस्त्रयोदशः स्तोभः संचरो हुङ्कारः ॥ ३॥

अन्वय और पदार्थ- (अनिरुक्तः) अनिर्वचनीय (संचरः) शाखाभेदसे भिन्न (हुंकारः) हुंकार (त्रयोदशः) तेरहवाँ (स्तोभः) स्तोभ है ॥ ३ ॥

भावार्थ—हुंकाररूप तेरहवें स्तोभाक्षरका स्वरूप कहा नहीं जासकता, क्योंकि—वह शाखाभेदसे भिन्न २ प्रकारका है, इस कारण उसका कोई स्वरूप कल्पना करके उपासना करे ॥

दुग्धेऽस्मै वाग्दोहं यो वाचो दोहोऽन्नवानन्नादो भवति य एतामेव ँ साम्नामुपनिषदं वेदोपनिषदं वेद ॥ ४ ॥

अन्वय और पदार्थ—(यः) जो (एवम्) इस प्रकार (एताम्) इस (साम्नाम्) सामोंके (उपनिषदम्) उपनिषद्को (वेद) जानता है (अस्मै) इसके अर्थ (वाक्) वाक् (वाचः) वाणीका (यः) जो (दोहः) फल है (दोहम्) उस फलको (दुग्धे) दुह देती है (अन्नवान्) अन्नवाला (अन्नादः) अन्नभोक्ता (भवति) होता है ॥ ४ ॥

भावार्थ–जो पुरुष सामके अवयवभूत स्तोभाक्षर विषयक दर्शनको जानता है उस साधकके लिये यह वाक्–वाणीको देती है और वह पुरुष अन्नशाली तथा अन्नभोक्ता होता है

॥ प्रथमाध्यायका त्रयोदश खण्ड समाप्त ॥

॥ इति प्रथमाध्याय समाप्त ॥

——[:-*-:]——

अथ द्वितीयोऽध्यायः

समस्तस्य खलु साम्न उपासनꣳसाधु यत्खलु साधु तत्सामेत्याचक्षते यदसाधु तदसामेति ।१।

अन्वय और पदार्थ-(खलु) निश्चय (समस्तस्य) समस्त (साम्नः) सामका (उपासनम्) उपासन (साधु) श्रेष्ठ है (खलु) निश्चय (यत्) जो (साधु) श्रेष्ठ है (तत्) उसको (साम इति) साम इस नामसे (आचक्षते) कहते हैं (यत्) जो (असाधु) अश्रेष्ठ है (तत्) वह (असाम) असाम है (इति) इस प्रकार ॥ १ ॥

भावार्थ—पहिले अध्यायमें सामके अवयवोंकी उपासना और उसका फल कहा, परन्तु सर्वावयवयुक्त सामकी उपासना श्रेष्ठ है, जो श्रेष्ठ है वह ही साम है और जो असाधु है वह साम नहीं है ॥ १ ॥

तदुताप्याहुः साम्नैनमुपागादिति साधुनैनमुपागादित्येव तदाहुरसाम्नैनमुपागादित्यसाधुनैनमुपागादित्येव तदाहुः ॥ २ ॥

अन्वय और पदार्थ-(तत् उत अपि) तिस विषयमें भी (आहुः) कहते हैं (साम्ना) साम करके (एनम्) इसको (उपागात्) अनुगत हुआ (इति) इस कारण (साधुना) साधुव्यवहारसे (एनम्) उसको (उपागात्) अनुगत हुआ (इत्येव) ऐसा ही (तत्) उसको (आहुः) कहते हैं (असाम्ना) असामके द्वारा (एनम्) इसको (उपागात्) अनुगत हुआ

(इति) इस कारण (असाधुना) असाधुव्यवहारसे (एनम्) इसको (उपागात्) अनुगत हुआ (इत्येव) ऐसा ही (तत्) उसको (आहुः) कहते हैं ॥ २ ॥

भावार्थ—इस साधु असाधुका विवेक कहते हैं कि—जब किसीको सामके द्वारा वशमें किया जाता है तो साधुव्यवहार से ही उसको वशमें किया जाता है और जब किसीको असाम के द्वारा वशमें किया जाता है तब असाधुव्यवहारके द्वारा ही उसको वशमें किया जाता है ॥ २ ॥

अथोताप्याहुः साम नो वतेति यत्साधु भवति साधु वतेत्येव तदाहुरसाम नो! वतेति यदसाधु भवत्यसाधुवतेत्येव तदाहुः ॥ ३ ॥

अन्वय और पदार्थ—(अथ, उत, अपि) और यह भी (आहुः) कहते हैं (नः) हमारा (यत्) जो (साम,वत) साम है (साधु) साधु (भवति) होता है (तत्) उसको (साधु, वत) साधु है (इति-एव) ऐसा ही (आहुः) कहते हैं (यत् जो (नः) हमारा (असाम) असाम है (असाधु वत) असाधु (भवति) होता है (तत्) उसको (असाधु वत) असाधु है (इति-एव) ऐसा ही (आहुः) कहते हैं ३

भावार्थ—और इस विषयमें यह अनुभव भी है, कि—जब किसी उत्तम पुरुषको देखते हैं, तो 'साधु' ऐसा ही कहते हैं और जब किसी दुष्टको देखते हैं तो 'असाधु' कहते हैं, इस कारण सामको साधुदृष्टिसे उपासना करे ॥ ३ ॥

स य एतदेवं विद्वान्साधु सामेत्युपास्तेऽभ्याशो ह यदेनꣳसाधवो धर्मा आ च गच्छेयुरुप च नमेयुः ४

अन्वय और पदार्थ—(यः) जो (एतत्) यह (साम) साम (साधु) श्रेष्ठ है (इति-एवम्) इस प्रकार (विद्वान्) जानता हुआ (उपास्ते) उपासना करता है (सः) वह (अभ्याशः) शीघ्र सिद्धमनोरथ होता है (तत्) क्योंकि-(एनम्) इसको (साधवः) साधु (धर्माः) धर्म (आगच्छेयुः) समीप आवें (च) और (उपनमेयुः, च) नमें भी ॥ ४ ॥

भावार्थ—जो इस सामको साधुगुणयुक्त जानकर उपासना करता है, श्रुति स्मृतिके अनुकूल सकल धर्म शीघ्र ही उसका आश्रय करते हैं और उसके समीप भोग्यरूपसे उपस्थित रहते हैं

॥ द्वितीयाध्यायका प्रथम खण्ड समाप्त ॥

लोकेषु पञ्चविधꣳ सामोपासीत पृथिवी हिंकारः अग्निः प्रस्तावोऽन्तरिक्षमुद्गीथ आदित्यः प्रतिहारो द्यौर्निधनमित्यूर्ध्वेषु ॥ १ ॥

अन्वय और पदार्थ—(ऊर्ध्वेषु) ऊपर २ के (लोकेषु) लोकोंमें (पञ्चविधम्) पांच प्रकारके (साम) सामको (उपासीत) उपासना करे (पृथिवी) भूमि (हिंकारः) हिंकार है (अग्निः) अग्नि (प्रस्तावः) प्रस्ताव है (अन्तरिक्षम्) अन्तरिक्ष (उद्गीथः) उद्गीथ है (आदित्यः) आदित्य (प्रतिहारः) प्रतिहार है (द्यौः) द्यौ (निधनम्) निधन है (इति) ऐसा

भावार्थ—पृथिवी आदि लोकोंमें पाँच प्रकारसे विभक्त समस्त सामकी उपासना करे, पृथिवी हिंकार, अग्नि प्रस्ताव

अन्तरिक्ष उद्गीथ, आदित्य प्रतिहार और द्यौः निधन है, यह ही लोकोंमें ऊपर २ की सामदृष्टिका नियम है ॥ १ ॥

अथावृत्तेषु द्यौर्हिङ्कार आदित्यः प्रस्तावोऽन्तरिक्षमुद्गीथोऽग्निः प्रतिहारः पृथिवी निधनम् ॥२॥

अन्वय और पदार्थ—अनन्तर (आवृत्तेषु) नीचे के पदोंमें (द्यौः) द्युलो (हिङ्कारः) हिङ्कार (आदित्यः) आदित्य (प्रस्तावः) प्रस्ताव (अन्तरिक्षम्) अन्तरिक्ष (उद्गीथम्) उद्गीथ (अग्निः) अग्नि (प्रतिहारः) प्रतिहार (पृथिवी) पृथिवी (निधनम्) निधन ॥ २ ॥

भावार्थ—संसारमें दो प्रकारके लोक हैं। किन्हींको नीचेके लोकोंसे ऊपरके लोकोंमें जाना पड़ता है और कोई ऊपरके लोकोंसे नीचेके लोकोंमें आते हैं। नीचेसे ऊपरके लोकोंमें जाने वालोंके निमित्त पृथिव्यादि दृष्टिसे सामोपासनाकी रीति पिछले मन्त्रमें कही अब ऊपरसे नीचेके लोकोंमें आने वालों की उपासनाका प्रकार कहते हैं, कि—जो उच्चपद स्वर्गादिसे नीचे आता है वह पहिले द्युलोकमें आता है, साममें भी पहिले हिंकारका उच्चारण है, इस कारण द्युलोक दृष्टिसे हिंकारकी उपासना करे, सूर्योदय होनेपर कर्मोंका प्रस्ताव (आरम्भ) होता है, इस कारण आदित्यदृष्टिसे प्रस्तावकी उपासना करे। अन्तरिक्ष नाम गगनका है, गकारमात्रके सादृश्यसे अन्तरिक्षदृष्टि करके उद्गीथकी उपासना करे अग्निको प्राणी ही इधर उधर लेजाते हैं अतः अग्निदृष्टिसे प्रतिहारकी उपासना करे, ऊपरके लोकों से आये हुए पृथिवी पर आकर रहते हैं, इस कारण पृथिवी दृष्टिसे निधनकी उपासना करे ॥ २ ॥

कल्पन्तेहाऽस्मै लोका ऊर्ध्वाश्चावृत्ताश्च, य एतदेवं विद्वाँल्लोकेषु पञ्चविधꣳ सामोपास्ते ॥ ३ ॥

अन्वय और पदार्थ-(यः) जो (एतत्) इसको (एवम्) इस प्रकार (विद्वान्) जानने वाला (लोकेषु) लोकोंमें (पञ्चविधम्) पाँच प्रकारके (साम) सामको (उपास्ते उपासना करता है (अस्मै ह) उसके अर्थ (ऊर्ध्वाः) ऊपरके (च) और (आवृत्ताः च) नीचेके भी (लोकाः) लोक (कल्पन्ते) फल देनेमें समर्थ होते हैं ॥ ३ ॥

भावार्थ—जो ऐसा जानने वाला साधक पृथिवी आदि लोकोंकी दृष्टि से पाँच प्रकारके सामकी उपासना करता है उसको ऊपर और नीचेके आवागमन वाले स्वर्गादि और भूमि आदि लोकोंमें तहाँके भोग भोगनेको मिलते हैं ॥ ३ ॥

॥ द्वितीय अध्यायका द्वितीय खण्ड समाप्त ॥

वृष्टौ पञ्चविधꣳ सामोपासीत, पुरोवातो हिङ्कारो, मेघो जायते, स प्रस्तावो, वर्षति स उद्गीथो, विद्योतते स्तनयति स प्रतिहारः ॥ १ ॥

अन्वय और पदार्थ—(वृष्टौ) वर्षामें (पञ्चविधम्) पाँच प्रकारके (साम) सामको (उपासीत) उपासना करे (पुरोवातः) पूर्वका पवन (हिंकारः) हिंकार (मेघः) मेघ (जायते) होता है (सः) वह (प्रस्तावः) प्रस्ताव है (वर्षति) बरसता है (सः) वह (उद्गीथः) उद्गीथ है (विद्योतते) बिजली चमकती है (स्तनयति) गरजता है (सः) वह (प्रतिहारः) प्रतिहार है (उद्गृह्णाति) ऊपरको ग्रहण करता है (तत्)

वह (निधनम्) निधन है (यः) जो (एतत्) इसको (एवम्) इस प्रकार (विद्वान्) जानने वाला (वृष्टौ) वर्षामें (पञ्चविधम्) पाँच प्रकारके (साम) सामको (उपास्ते) उपासना करता है (अस्मै ह) इसके अर्थ (वर्षयति, ह) वर्षा कराता है

भावार्थ- यह संसार वर्षाके कारण ही स्थित है अतः वृष्टिमें पाँच प्रकारके सामकी उपासना करे। वर्षा होनेके समय पहिले पवन चलता है और साममें भी पहिले है, इस कारण पूर्वकी वायुदृष्टिसे हिंकारकी उपासना करे, मेघकी दृष्टिसे प्रस्तावकी उपासना करे,क्योंकि वर्षाकालमें मेघाडम्बर होने पर ही वर्षाका आरंभ होता है, वर्षा श्रेष्ठ है अतः वर्षादृष्टिसे उद्गीथकी उपासना करे, बिजली और गर्जना प्रतिहृत (एक स्थानमें न रहने वाले) हैं अतः प्रतिशब्दकी समानतासे बिजली और गर्जनेकी दृष्टि करके प्रतिहारकी उपासना करे, निधनपर्यन्त ही साम है और उपसंहार (थमजाने) पर्यन्त ही वर्षा है,जो इसको इस प्रकार जानकर सामकी उपासना करता है, वह अवर्षण होने पर भी वर्षा कर सकता है ॥ १ ॥ २ ॥

॥ द्वितीय अध्यायका तृतीय खण्ड समाप्त ॥

सर्वास्वप्सु पञ्चविधꣳ सामोपासीत, मेघो यत्सं प्लवते स हिङ्कारो,यद्वर्षति स प्रस्तावो, याःप्राच्यः स्यन्दन्ते स उद्गीथो, याः प्रतीच्यः स प्रतिहारः, समुद्रो निधनम् ॥ १ ॥

अन्वय और पदार्थ—(सर्वासु) सब (अप्सु) जलोंमें (पञ्चविधम्) पाँच प्रकारके (साम) सामको (उपासीत)

उपासना करे (मेघः) मेघ (यत्) जो (संप्लवते) घना होता है (सः) वह (हिंकारः) हिंकार है (यत्) जो (वर्षति) बरसता है (सः) वह [प्रस्तावः] प्रस्ताव है (याः) जो (प्राच्यः) पूर्वदेशकी नदियें (स्यन्दन्ते) बहती हैं (सः) वह (उद्गीथः) उद्गीथ है (याः) जो (प्रतीच्यः) पश्चिमकी नदियें [स्यन्दन्ते] बहती हैं (सः) वह (प्रतिहारः) प्रतिहार है (समुद्रः) समुद्र (निधनम्) निधन है ॥ १ ॥

भावार्थ–वर्षाके अनन्तर जल होता है, इस कारण वर्षाके अनन्तर जलोंमें सामोपासना कहते हैं, कि मेघघटाकी दृष्टिसे हिंकारकी वर्षणदृष्टिसे प्रस्तावकी पूर्वदेशकी गङ्गादि नदियों की दृष्टिसे उद्गीथकी पश्चिमदेशकी नर्मदादि नदियोंकी दृष्टि से प्रतिहारकी और जलमात्र समुद्रमें लीन होते हैं, अतः समुद्र की दृष्टिसे निधनकी उपासना करे ॥ १ ॥

न हाप्सु प्रैत्यप्सुमान् भवति, य एतदेवं विद्वान् सर्वास्वप्सु पञ्चविधꣳ सामोपास्ते ॥ २ ॥

अन्वय और पदार्थ–(यः) जो (एतत्) इसको (एवम्) इस प्रकार (विद्वान्) जानने वाला (सर्वासु) सब (अप्सु) जलोंमें (पञ्चविधम्) पाँच प्रकारके (साम) सामको (उपास्ते) उपासना करता है (अप्सु) जलोंमें (न ह) नहीं (प्रैति) मरता है (अप्सुमान्) जलशायी (भवति) होता है ॥२॥

भावार्थ–जो उपरोक्त मन्त्रके भावको जानकर जलमात्रमें पाँच प्रकारकी उपासना करता है, जलतत्त्व उसके वशमें हो

जाता है, वह न चाहे तो जलोंमें नहीं मरता और यदि चाहे तो मरुदेशमें भी जलमें शयन कर सकता है ॥ २ ॥

॥ द्वितीय अध्यायका चतुर्थ खण्ड समाप्त ॥

ऋतुषु पञ्चविधᳬसामोपासीत, वसन्तो हिंकारो ग्रीष्मः प्रस्तावो, वर्षा उद्गीथः, शरत्प्रतिहारो, हेमन्तो निधनम् ॥ १ ॥

अन्वय और पदार्थ–(ऋतुषु) ऋतुओंमें (पञ्चविधम्) पाँच प्रकारके (साम) सामको (उपासीत) उपासना करे (वसन्तः) वसन्त (हिंकारः) हिंकार (ग्रीष्मः) ग्रीष्म (प्रस्तावः) प्रस्ताव (वर्षा) वर्षा (उद्गीथः) उद्गीथ (शरत्) शरद् (प्रतिहारः) प्रतिहार (हेमन्तः) हेमन्त (निधनम्) निधन है ।

भावार्थ–वर्षा आदि होनेसे ऋतुओंकी व्यवस्था होती है अतः ऋतुओंमें पाँच प्रकारके सामकी उपासना करे, सब ऋतुओंमें पहिला होनेसे वसन्त हिंकार ग्रीष्ममें धान्यसंग्रहका प्रस्ताव होता है अतः ग्रीष्म, प्रस्ताव, वर्षा उद्गीथ, शरद्में रोगियोंका प्रतिहरण होनेसे शरद् प्रतिहार और हेमन्तमें प्राणियोंको मरण समान कष्ट होता है अतः हेमन्त निधन है इस दृष्टिसे उपासना करे ॥ १ ॥

कल्पन्ते हास्मा ऋतव ऋतुमान् भवति य एतदेवं विद्वानृतुषु पञ्चविधᳬसामोपास्ते ॥ २ ॥

अन्वय और पदार्थ–(यः) जो (एतत्) इसको (एवम्) इस प्रकार (विद्वान्) जानने वाला (ऋतुषु) ऋतुओंमें (पञ्चविधम्) पाँच प्रकारके (साम) सामको (उपास्ते)

उपासना करता है (अस्मै) इसके अर्थ (ऋतवः) ऋतु (कल्पन्ते) फलदायक होते हैं (ऋतुमान्) ऋतुवाला (भवति) होता है ॥ २ ॥

भावार्थ—जो ऐसा जानकर ऋतुओंमें पाँच प्रकारके साम की उपासना करता है ऋतुओंके सकल भोगोंको भोगता है मानो ऋतुओंका अधिपति बन जाता है ॥ २ ॥

॥ द्वितीय अध्यायका पञ्चम खण्ड समाप्त ॥

पशुषु पञ्चविधꣳ सामोपासीताजा हिंकारोऽवयः प्रस्तावो गाव उद्गीथोऽश्वाः प्रतिहारःपुरुषो निधनम् ॥ भवन्ति हास्य पशवः पशुमान् भवति य एवमेतदेवं विद्वान् पशुषु पञ्चविधꣳ सामोपास्ते ॥१॥२॥

अन्वय और पदार्थ–(पशुषु) पशुओंमें (पञ्चविधम्) पाँच प्रकारके (साम) सामको (उपासीत) उपासना करे (अजाः) बकरी (हिंकारः) हिंकार (अवयः) भेड़ें (प्रस्तावः) प्रस्ताव (गावः) गौएँ (उद्गीथः) उद्गीथ (अश्वाः) घोड़े (प्रतिहारः) प्रतिहार (पुरुषः) पुरुष (निधनम्) निधन है (यः) जो (एतत्) इसको (एवम्) इस प्रकार (विद्वान्) जानने वाला (पशुषु) पशुओंमें (पञ्चविधम्) पाँच प्रकारके (साम) सामको (उपास्ते) उपासना करता है (अस्य) इसके (पशवः) पशुः (भवन्ति ह) होते हैं (पशुमान्) पशुओं वाला (भवति) होता है ॥ १ ॥ २ ॥

(भावार्थ)—ऋतुओंमें उत्पन्न हुई सम्पत्ति पशुओंके उपयोगी होती है अतः साममें ऋतुदृष्टिके अनन्तर पशुदृष्टि करे,

अजाको पशुओंमें पहिला कहा है अतः अजाकी दृष्टिसे हिंकार को, अजाकी साथी होनेसे भेड़की दृष्टिसे प्रस्तावकी, पशुओंमें श्रेष्ठ होनेके कारण गौ-दृष्टिसे उद्गीथ को, अश्व प्रतिहरण (पहुँचानेका काम) करता है अतः अश्वदृष्टिसे प्रतिहारकी और पशु पुरुषके आश्रयसे रहता है अतः पुरुष दृष्टिसे निधनकी उपासना करे, जो इस तत्त्वको इस प्रकार जान कर पशुदृष्टि सामोपासना करता है उसके यहाँ पशुओंकी वृद्धि होती है और पशुओंके सुख तथा दानरूप फलसे युक्त होता है ॥ १॥ २ ॥

॥ द्वितीय अध्यायका षष्ठ खण्ड समाप्त ॥

प्राणेषु पञ्चविधं परोवरीयः सामोपासीत प्राणो हिंकारो वाक् प्रस्तावश्चक्षुरुद्गीथः श्रोत्रं प्रतिहारो मनो निधनं परोवरीयाᳬंसि वा एतानि ॥१॥

परोवरीयो हास्य भवति परोवरीयसो ह लोकान् जयति य एतदेवं विद्वान्प्राणेषु पञ्चविधं परोवरीयः सामोपास्त इति तु पञ्चविधस्य ॥ २ ॥

अन्वय और पदार्थ—(प्राणेषु प्राणोंमें (परोवरीयः) उत्तरोत्तर श्रेष्ठ पञ्चविधम्) पाँच प्रकारके (साम) सामको (उपासीत) उपासना करे, (प्राणः) प्राण (हिंकारः) हिंकार (वाक्) वाणी (प्रस्तावः) प्रस्ताव (चक्षुः) चक्षु (उद्गीथः) उद्गीथ (श्रोत्रम्) श्रोत्र (प्रतिहारः) प्रतिहार (मनः) मन (निधनम्) निधन है (वा) या (एतानि) यह (परोवरीयांसि) उत्तरोत्तर श्रेष्ठ हैं, (यः) जो (एतत्) इसको

(एवम्) इस प्रकार (विद्वान्) जानने वाला (प्राणेषु) प्राणोंमें (पञ्चविधम्) पाँच प्रकारका (परोवरीयः) उत्तरोत्तर श्रेष्ठ (साम) सामको (उपास्ते) उपासना करता है (अस्य) इसका (परोवरीयः) उत्तरोत्तर श्रेष्ठ (भवति ह) होता है (परोवरीयसः) उत्तरोत्तर श्रेष्ठ (लोकान्) लोकोंको (जयति ह) जीतता है (इति तु) यह तो (पञ्चविधस्य) पाँचप्रकार की है ॥ १ ॥ २ ॥

(भावार्थ)—पशुओंके दुग्ध घृतादिसे प्राणोंको पुष्टि मिलती है अतः पशुदृष्टिके अनन्तर प्राणदृष्टिकी उपासना कहते हैं, कि—प्राणोंमें उत्तरोत्तर श्रेष्ठ पाँच प्रकारके सामकी उपासना करे सबसे श्रेष्ठ होनेके कारण मुख्य प्राणसे उत्तम कोई भी नहीं है, अतः घ्राणमेंके प्राणकी दृष्टिसे हिंकारकी उपासना करे, घ्राणमेंका प्राण केवल प्राप्त गन्ध आदिको ही प्रकाशित करता है और वाणी अप्राप्तका भी उच्चारण करती है, उस वाक्से सबसे सबका प्रस्ताव होता है, अतः वाक्दृष्टिसे प्रस्तावकी उपासना करे, वाणीकी अपेक्षा अधिक विषयोंका प्रकाश करने से चक्षु उत्तम है अतः चक्षुगत प्राणदृष्टिसे उद्गीथकी उपासना करे, चक्षु सामनेकी वस्तुका ही प्रत्यक्ष करता है और श्रोत्रसे दूरके शब्दका भी प्रत्यक्ष होता है अतः उत्तम श्रोत्रकी दृष्टिसे प्रतिहारकी उपासना करे, सब इन्द्रियोंके विषय मनमें स्थित होते हैं, मन सब इन्द्रियोंके विषयमें व्यापक है, इन्द्रियोंके अगो-चर विषयका भी मनसे प्रत्यक्ष होता है, अतः श्रोत्रसे उत्तम जो मनकी दृष्टिसे निधनकी उपासना करे, यह प्राणादि उत्त-रोत्तर श्रेष्ठ हैं, जो इनके इसतत्त्वको इस प्रकार जान कर

प्राणोंमें सामकी उपासना करता है, उसका जीवन सबसे उत्तम होता है और उत्तरोत्तर श्रेष्ठ लोकोंको जीतता है यहाँ तक पाँच प्रकारके सामकी उपासना कही ॥ १ ॥ २ ॥

॥ द्वितीय अध्यायका सप्तम खण्ड समाप्त ॥

अथ सप्तविधस्य । वाचि सप्तविधꣳसामोपासीत यत्किञ्च वाचो हुमिति स हुंकारो यत्प्रेति स प्रस्तावो यदेति स आदिर्यदुदिति स उद्गीथो यत्प्रतीति स प्रतिहारो यदुपेति स उपद्रवो यन्नीति तन्निधनम् । दुग्धेऽस्मै वाग्दोहं यो वाचो दोहोऽन्नवानन्नादो भवति य एतदेवं विद्वान्वाचि सप्तविधꣳसामोपास्ते

अन्वय और पदार्थ—(अथ) अब (सप्तविधस्य) सात प्रकारके को [उपासना--उच्यते] उपासना कही जाती है (वाचि) वाणीमें (सप्तविधम्) सात प्रकारके (साम) साम को (उपासीत) उपासना करे (यत्किञ्च) जो कुछ (वाचः) वाणीका (हुम् इति) हुंकार ऐसा उच्चारण है (सः) वह (हिङ्कारः) हिंकार है (यत्) जो (प्र इति) प्र ऐसा है (सः) वह (प्रस्तावः) प्रस्ताव है (यत्) जो (आ इति) आ ऐसा है (सः) वह (आदिः) आदि है (यत्) जो (उत् इति) उत् ऐसा है (सः) वह (उद्गीथः) उद्गीथ है (यत्) जो (प्रति इति) प्रति ऐसा है (सः) वह (प्रतिहारः) प्रतिहार है (यत्) जो (उप इति) उप ऐसा है (सः) वह (उपद्रवः) उपद्रव है (यत्) जो (नि इति) नि ऐसा है (तत्) वह

(निधनम्) निधन है। (यः) जो (एतत्) इसको (एवम्) इस प्रकार (विद्वान्) जानने वाला (वाचि) वाणीमें (सप्तविधम्) सात प्रकारके (साम) सामको (उपास्ते) उपासना करता है (यः) जो (वाचः) वाणीका (दोहः) फल है (दोहम्) उस फलको (वाक्) वाणी (अस्मै) इसके अर्थ (दुग्धे) दुह देती है ॥ १ ॥ २ ॥

(भावार्थ)—अब सात प्रकारके सामकी उपासना कहते हैं-शब्दमें सात प्रकारके सामकी उपासना करे। हुम् शब्द हिंकार 'प्र' शब्द प्रस्ताव, 'आ' शब्द आदि 'उत्' शब्द उद्गीथ, प्रति शब्द प्रतिहार, 'उप' शब्द उपद्रव और नि शब्द निधन है। जो ऐसा जान कर शब्दमें सात प्रकारके सामकी उपासना करते हैं, वाणी उनके निमित्त ऋग्वेदादिके अनुष्ठान से जो फल होता है उसको दुह कर देती है, वह अन्नशाली और अन्नका भोक्ता होता है ॥ १ ॥ २ ॥

॥ द्वितीय अध्यायमें अष्टम खण्ड समाप्त ॥

अथ खल्वमुमादित्यꣳ सप्तविधꣳ सामोपासीत सर्वदा समस्तेन साम मां प्रति मां प्रतीति सर्वेण समस्तेन साम ॥ १ ॥ तस्मिन्निमानि सर्वाणि भूतान्यन्वायत्तानि विद्यात् ॥ २ ॥

अन्वय और पदार्थ-(अथ) अनन्तर (खलु) निश्चय (अमुम्) इस (आदित्यम्) आदित्यको (सप्तविधम्) सात प्रकारके (साम) सामको (उपासीत) उपासना करे (सर्वदा) सदा (समः) सम है (तेन) तिससे (साम) साम है (माम्

प्रति) मेरे प्रति है (माम् प्रति) मेरे प्रति है (इति) इस प्रकार (सर्वेण) सब करके (समः) सम है (तेन) तिससे (साम) साम है । (इमानि) इन (सर्वाणि) सब (भूतानि) प्राणियोंको (तस्मिन्) तिसमें (अन्वायत्तानि) अनुगत (विद्यात्) जाने ॥

भावार्थ—तदनन्तर आदित्यके अवयवोंका सात प्रकारके सामके अवयवोंमें अध्यास करके आदित्यदृष्टिसे सब सामकी उपासना करे, आदित्यका क्षय और वृद्धि नहीं होते अतः सर्वदा सम होनेके कारण आदित्यको साम कहते हैं। आदित्य मेरे सन्मुख है, मेरे सन्मुख है, इस प्रकार सबकी समान बुद्धि को उत्पन्न करता है, इस कारण सबके निमित्त सम होनेसे साम है। यह समस्त प्राणी उस आदित्यके द्वारा ही अपने जीवनको धारण करते हैं अतः उसके अनुगत रहते हैं ऐसा जानो ॥ १ ॥ २ ॥

तस्य यत्पुरोदयात्स हिङ्कारस्तदस्य पशवोऽन्वायत्तास्तस्मात्ते हिङ्कुर्वन्ति हिंकारभाजिनो ह्येतस्य साम्नः ॥ ३ ॥

अन्वय और पदार्थ—(तस्य) उसका (यत्) जो (उदयात्) उदयसे (पुरः) पहिला रूप है (सः) वह (हिङ्कारः) हिङ्कार है (पशवः) पशु (अस्य) इस आदित्यके (तत्) उस रूपके (अन्वायत्ताः) अनुगत हैं (तस्मात्) तिससे (एतस्य) इस (साम्नः) आदित्य नामक सामके (हिंकारभाजिनः) हिङ्कारका आश्रय करते हुए (हिंकुर्वन्ति हि) हिम् शब्द करते हैं ॥ ३ ॥

भावार्थ–सूर्योदयसे पहिले प्रकाश होनेका समय धर्मकार्य करनेका है और वह धर्मरूप होनेसे प्राणिमात्रको सुख देता है उस समयको हिङ्कार मानकर उपासना करे, उस भक्ति रूप हिंकार सामका आश्रय करके पशु सूर्योदयके पूर्वकालसे अपना उपजीवन करते हैं इसीसे वह हिन् हिन् शब्द करते हैं, मानो वह आदित्य सामकी हिंकार नामक भक्ति करते हैं ।। ३ ।।

अथ प्रथमोदिते स प्रस्तावस्तदस्य मनुष्या अन्वायत्तास्तस्मात्ते प्रस्तुतिकामाः प्रशꣳसाकामाः प्रस्तावभाजिनो ह्येतस्य साम्नः ।। ४ ।।

अन्वय और पदार्थ—(अथ) अनन्तर (प्रथमोदिते) प्रथम उदय होने पर (यत्) जो रूप होता है (सः) वह (प्रस्तावः) प्रस्ताव है (मनुष्याः) मनुष्य (अस्य) इस आदित्यके (तत्) तिस रूपके (अन्वायत्ताः) अनुगत हैं (तस्मात्) तिससे (ते) वह (प्रस्तुतिकामाः) परमस्तुति चाहते हैं (हि) क्योंकि (एतस्य) इस (साम्नः) सामके (प्रस्तावभाजिनः) प्रस्तावका आश्रय करते हैं इस कारण (प्रशंसाकामाः) परोक्ष स्तुतिको चाहते हैं ।। ४ ।।

भावार्थ–उदय होते ही सूर्यका जो रूप होता है वह आदित्य रूप सामका प्रस्ताव है अर्थात् सूर्योदयके समयकी दृष्टिसे प्रस्तावभक्तिकी उपासना करे, मनुष्य सूर्यके इसी रूपके अनुगत रहते हैं, इस कारण ही परोक्षमें और प्रत्यक्षमें प्रशंसाकी कामना करते हैं तथा सूर्यकी उस समय प्रशंसा करते हैं ।।४।।

अथ यत्सङ्गववेलायाꣳ स आदिस्तदस्य वयाꣳस्य-

न्वायत्तानि तस्मात्तान्यन्तरिक्षेऽनारम्भणान्यादा-
यात्मानं परिपतन्त्यादिभाजीनि ह्येतस्य साम्नः ५

अन्वय और पदार्थ— अथ अनन्तर (सङ्गववेलायाम्) पूर्वाह्नके समय (यत् जो रूप है (सः) वह (आदिः) आदि है (अस्य) इस सूर्यके (तत्) तिस रूपको (वयांसि) पक्षी (अन्वायत्तानि) अनुगत हैं (तस्मात्) तिससे (तानि) वह (अन्तरिक्षे अन्तरिक्षमें (अनारम्भणानि) आलम्ब-रहित (आत्मानम्) अपनेको (आदाय) लेकर (परिपतंति) उड़ते हैं (हि) क्योंकि (एतस्य) इस (साम्नः) सामके (आदिभाजीनि) आदिभागका आश्रय करे हुए हैं ॥ ५ ॥

भावार्थ —जिस समय सूर्यकी किरणोंका जगन्मण्डलसे और गौका बछड़ेसे सम्बन्ध होता है वह पूर्वाह्नरूप सूर्यका आदिभक्ति ॐकारस्वरूप है, उस सूर्यके रूपसे पक्षी अपना उपजीवन करते हैं, इसीसे वह अन्तरिक्षमें आलम्बनके विना ही अपने शरीरमात्रसे लेकर उड़ते हैं, पक्षी यह आदित्यके आदिभागका आश्रय करते हैं, इसीसे इस प्रकार गमन करते हैं ५

अथ यत्सम्प्रति मध्यन्दिने स उद्गीथस्तदस्य
देवा अन्वायत्तास्तस्मात्ते सत्तमाः प्राजापत्याना-
मुद्गीथभाजिनो ह्येतस्य साम्नः ॥ ६ ॥

अन्वय और पदार्थ—(अथ) अनन्तर (सम्प्रतिमध्य-न्दिने) सरल मध्यान्हमें (अस्य) इसका (यत्) जो रूप है (सः) वह (उद्गीथः) उद्गीथ है (तत्) उसको (देवाः)

देवता (अन्वायत्ताः) अनुगत हैं (तस्मात्) तिससे (ते) वह (प्राजापत्यानाम्) प्रजापतिकी सन्तानोंमें (सत्तमाः) परमश्रेष्ठ हैं (हि) क्योंकि-(एतस्य) इस (साम्नः) सामके (उद्गीथभाजिनः) उद्गीथके आश्रित हैं ॥ ६ ॥

भावार्थ—ठीक मध्यान्हके समय सूर्यका जो रूप दीखता है, उसकी दृष्टिसे उद्गीथकी उपासना करे, उस उद्गीथ भक्ति रूप आदित्यके रूपका देवता आश्रय लेते हैं, इसीसे देवता प्रजापतिकी सन्तानोंमें सबसे श्रेष्ठ हैं, उन देवताओंने आदित्य-सामके उद्गीथभागका आश्रय किया है, इसीसे श्रेष्ठ हुए हैं ६

अथ यदूर्ध्वं मध्यन्दिनात्प्रागपराह्णात्स प्रतिहार-स्तदस्य गर्भा अन्वायत्तास्तस्मात्ते प्रतिहृता नाव-पद्यन्ते प्रतिहारभाजिनो ह्येतस्य साम्नः ॥ ७ ॥

अन्वय और पदार्थ—(अथ) अनन्तर (मध्यन्दिनात्) मध्यान्हसे (ऊर्ध्वम्) आगे (अपराह्णात्) अपराह्णसे (प्राक्) पहिले (अस्य) इसका (यत्) जो रूप है (सः) वह (प्रति-हारः) प्रतिहार है (तत्) उसको (गर्भाः) गर्भ (अन्वायत्ताः) अनुगत हैं (हि) क्योंकि-(एतस्य) इस (साम्नः) सामके (प्रतिहृताः) प्रतिहारभक्तिका आश्रय करते हैं (तस्मात्) तिससे (ते) वह गर्भ (प्रतिहृताः) ऊपरको खिचे हुए (न) नहीं (अवपद्यन्ते) नीचे गिरते हैं ॥ ७ ॥

भावार्थ—फिर मध्यान्हके अनन्तर और अपराह्णसे पहिले जो सूर्यका रूप होता है उसकी प्रतिहार दृष्टिसे उपासना करे उससे उदरमें स्थित गर्भके प्राणियोंका जीवन धारण होता है

वह गर्भ आदित्यरूप सामके प्रतिहार भागका आश्रय लेते हैं, इसीसे ऊपरको खिचे हुए रहते हैं ॥ ७ ॥

अथ यदूर्ध्वमपराह्णात्प्रागस्तमयात्स उपद्रवस्तदस्यारण्या अन्वायत्तास्तस्मात्ते पुरुषं दृष्ट्वा कक्षँ श्वभ्रमित्युपद्रवंत्युपद्रवभाजिनो ह्येतस्य साम्नः ८

अन्वय और पदार्थ–(अथ) अनन्तर (अपराह्णात्) अपराह्णसे (ऊर्ध्वम्) आगे (अस्तमयात्) अस्त होनेसे (प्राक्) पहिले (अस्य) इसका (यत्) जो रूप है (सः) वह (उपद्रवः) उपद्रव है (तत्) उसको (आरण्याः) वनके पशु (अन्वायत्ताः) अनुगत हैं (हि) क्योंकि–(एतस्य) इस (साम्नः) सामके (उपद्रवभाजिनः) उपद्रवभक्तिका आश्रय करते हैं (तस्मात्) तिससे (ते) वह (पुरुषम्) पुरुषको (दृष्ट्वा) देखकर (कक्षम्) झाड़ोंमें (इति) इसी प्रकार (श्वभ्रम्) गुहामें (उपद्रवन्ति) भागकर जाते हैं ॥ ८ ॥

भावार्थ—अपराह्णके अनन्तर और अस्त होनेसे पहिले आदित्यका जो रूप दीखता है, उसकी उपद्रवदृष्टिसे उपासना करे, उससे वनके पशु अपना जीवन धारण करते हैं, क्योंकि-आदित्य सामको उपद्रवभक्तिका आश्रय करते हैं, इसीसे वह पशु जङ्गलमें मनुष्यादिको देखकर डरकर भागते हैं और झाड़ीमें तथा गढ़े गुहा आदिमें जाकर छुप जाते हैं ॥ ८ ॥

अथ यत्प्रथमास्तमिते तन्निधनं तदस्य पितरोऽन्वायत्तास्तस्मात्तान्निधाति निधनभाजिनो ह्येतस्य साम्न एवं खल्वमुमादित्यँ सप्तविधँ सामोपास्ते

अन्वय और पदार्थ—(अथ) अनन्तर (प्रथमास्तमिते) प्रथम अस्तकालमें (यत्) जो रूप होता है (तत्) वह (निधनम्) निधन है (अस्य) इसके (तत्) उस रूपको (पितरः) पितर (अन्वायत्ताः) अनुगत हैं (हि) क्योंकि (एतस्य) इस (साम्नः) सामके (निधनभाजिनः) निधन भक्तिका आश्रय करते हैं (तस्मात्) तिससे (तान्) उनको (निदधति) स्थापन करते हैं (एवम्) इस प्रकार (खलु) निश्चय (अमुम्) इस (आदित्यम्) आदित्यको (सप्तविधम्) सात प्रकारके (साम) सामको (उपास्ते) उपासना करता है ९

भावार्थ—जिस समय सूर्य प्रथम ही अस्त होता है, सूर्यके उस प्रथमास्त समयको निधनदृष्टिसे उपासना करे इस रूपसे पितर अपना उपजीवन करते हैं, क्योंकि—पितर आदित्य रूप सामको निधनभक्तिका आश्रय रखते हैं, इस कारण उनको पिता पितामह आदिके रूपसे कुशों पर स्थापन किया जाता है और उनके निमित्त कुशाओं पर पिण्डनिक्षेप किया जाता है। इस प्रकार इस आदित्यकी सात प्रकारके सामरूपसे उपासना करने वाला अभिलषित योग्य फलको पाता है ॥ ९ ॥

॥ इति द्वितीयाध्यायका नवम खण्ड समाप्त ॥

अथ खल्वात्मसंमितमतिमृत्यु सप्तविधꣳसामोपासीत । हिंकार इति त्र्यक्षरं प्रस्ताव इति त्र्यक्षरं तत्समम् ॥ १ ॥

अन्वय और पदार्थ—(अथ) अनन्तर (खलु) निश्चय (आत्मसंमितम्) आत्माकी तुल्य (अतिमृत्यु मृत्युको बाधन

के साधन (सप्तविधम्) सात प्रकारके (साम) सामको (उपासीत) उपासना करे (हिङ्कार इति) हिंकार यह (त्र्यक्षरम्) तीन अक्षरका है (प्रस्ताव इति) प्रस्ताव यह (तत्समम्) उसके समान (त्र्यक्षरम्) तीन अक्षरका है ॥ १ ॥

भावार्थ-आदित्य सामकी उपासनाके अनन्तर जो कि-निःसन्देह परमात्माकी समान मोक्षका कारण है और जो मृत्यु के पार होनेका साधन है उस सात प्रकारके सामकी उपासना करे तिसकी रीति कहते हैं, कि-हिंकार यह तीन अक्षरका प्रथम भक्तिका नाम है और प्रस्ताव भी तीन अक्षरका उसकी समान ही दूसरी भक्तिका नाम है ॥ १ ॥

आदिरिति द्व्यक्षरं प्रतिहार चतुरक्षरं तत इहैकं तत्समम् ॥ २ ॥

अन्वय और पदार्थ-(आदिः इति) आदि यह (द्व्यक्षरम्) दो अक्षरका है (प्रतिहार इति) प्रतिहार यह (चतुरक्षरम्) चार अक्षरका है (ततः) तिसमेंसे (इह) यहाँ (एकम्) एक को [अपच्छिद्य]लेकर (तत्समम्) तिसकी समान होता है २

भावार्थ-आदि यह दो अक्षरका नाम है, प्रतिहार, यह चार अक्षरका नाम है, अतः प्रतिहारके चार अक्षरोंमेंसे एक अक्षर को लेकर आदिके दो अक्षरोंमें मिला देनेसे यह दोनों हिंकार के समान होजाते हैं ॥ २ ॥

उद्गीथ इति त्र्यक्षरमुपद्रव इति चतुरक्षरं त्रिभिस्त्रिभिः समं भवत्यक्षरमतिशिष्यते त्र्यक्षरं तत्समम् ॥३॥

अन्वय और पदार्थ-(उद्गीथ इति) उद्गीथ यह (त्र्यक्ष-

रम्) तीन अक्षरका नाम है (उपद्रव इति) उपद्रव यह (चतु-रक्षरम्) चार अक्षरका नाम है (त्रिभिः त्रिभिः) तीन २ करके (समम्) समान (भवति) होता है (अक्षरम्) एक अक्षर (अवशिष्यते) बचता है (त्र्यक्षरम् सत्) तीन अक्षर का होता हुआ (तत्समम्) उसके समान होता है ॥ ३ ॥

भावार्थ—उद्गीथ तीन अक्षरका नाम है और उपद्रव चार अक्षरका नाम है, तीन २ अक्षर लेनेसे यह दोनों समान होते हैं, परन्तु चार अक्षर वाले शब्दमेंका एक अक्षर शेष रहता है उस एकको भी तीन मान लेना चाहिये इस कारण वह एक भी पहिले तीनकी समान है ॥ ३ ॥

निधनमिति त्र्यक्षरं तत्सममेव भवति ।
तानि ह वा एतानि द्वाविंशतिरक्षराणि ॥४॥

अन्वय और पदार्थ—(निधनं, इति) निधन यह (त्र्यक्षरम्) तीन अक्षरका नाम (तत्समम्, एव) पूर्वके समान हो (भवति) होता है (तानि) वह (ह) स्पष्ट (वै) निश्चय (एतानि) यह (द्वाविंशतिः) बाईस (अक्षराणि) अक्षर हैं ४

भावार्थ—निधन यह तीन अक्षरका नाम भी पूर्वके समान होने है अर्थात् जैसे आदित्यमें तीन अक्षर हैं तैसे ही इन सबों में भी तीन २ अक्षर होनेसे समानता है, इस कारण इन सब की आदित्य दृष्टिसे उपासना करे, इस प्रकार यह सब मिल कर बाईस अक्षर होते हैं ॥ ४ ॥

एकविंशत्यादित्यमाप्नोत्येकविंशो वा इतोऽसा-

वादित्यो द्वाविंशेन परमादित्याज्जयति तन्नाकं तद्विशोकम् ॥ ५ ॥

अन्वय और पदार्थ—(एकविंशत्या) इक्कीस अक्षरोंकी उपासना करके (आदित्यम्) आदित्यको (आप्नोति) प्राप्त होता है (असौ) यह (आदित्यः) आदित्य (इति) इस लोकसे (वै) निश्चय (एकविंशः) इक्कीसवाँ है (द्वाविंशेन) बाईसवें अक्षरकी उपासनाके द्वारा (आदित्यात्) आदित्य से (परम्) आगेके लोकको (जयति) जीतता है (तत्) वह (नाकम्) सुखमय है (विशोकम्) मानसिक दुःखरहित है ।५।

भावार्थ—जो इक्कीस अक्षर वाले सामको आदित्य दृष्टि से उपासना करता है, वह आदित्यरूप मृत्युको प्राप्त होता है, क्योंकि—आदित्य इस लोकसे इक्कीसवाँ है, जैसा कि—अन्यत्र श्रुतिमें कहा है—"बारह मास पाँच ऋतु, तीन लोक हैं और इक्कीसवाँ यह आदित्य है" । बाईसवें अक्षरकी उपासनासे मृत्युरूप आदित्यसे आगेके स्थानको जीतता है, वह स्थान सुखमय है और तहाँ कोई मानसिक दुःख नहीं होता है ।५।

आप्नोतीहादित्यस्य जयं परो हास्यादित्यजयाज्जयो भवति, य एतदेवं विद्वानात्मसंमितमतिमृत्यु सप्तविधꣳसामोपास्ते सप्तविधꣳसामोपास्ते

अन्वय और पदार्थ—(एतत्) इसको (एवम्) इसप्रकार (विद्वान्) जानने वाला (यः) जो (आत्मसंमितम्) आत्मातुल्य (अतिमृत्यु) मृत्युको अतिक्रमण करनेके साधन (सप्त-

विधम्) सात प्रकारके (साम) सामको (उपास्ते) उपासना करता है (इह) इस लोकमें (आदित्यस्य) आदित्यके (जयम्) जयको (आप्नोति) प्राप्त होता है (अस्य) इसको (आदित्यजयात्) आदित्यके जयसे (परः) अगला (जयः) जय (भवति) होता है ॥ ६ ॥

भावार्थ–इस तत्त्वको जानने वाला जो उपासक आत्मतुल्य और मृत्युके पार होनेके साधन सात प्रकारके सामकी उपासना करता है वह इक्कीस संख्याके द्वारा आदित्यको जीतता है और बाईसवीं संख्यासे इस ज्ञानीकी मृत्युगोचर आदित्यसे अगले लोक पर विजय होती है ॥ ६ ॥

॥ इति द्वितीयाध्यायस्य दशमः खण्डः ॥

मनो हिंकारो वाक् प्रस्तावश्चक्षुरुद्गीथः श्रोत्रं । प्रतिहारः प्राणो निधनमेतद्गायत्रं प्राणेषु प्रोतम् १

अन्वय और पदार्थ–(मनः) मन (हिंकारः) हिंकार है (वाक्) वाणी (प्रस्तावः) प्रस्ताव है (चक्षुः) चक्षु (उद्गीथः) उद्गीथ है (श्रोत्रम्) श्रोत्र (प्रतिहारः) प्रतिहार है (प्राणः) प्राण (निधनम्) निधन है (एतत्) यह (गायत्रम्) गायत्रसाम (प्राणेषु) प्राणोंमें (प्रोतम्) पुरा हुआ है १

भावार्थ-मन हिंकार, वाणी प्रस्ताव, चक्षु उद्गीथ श्रोत्र प्रतिहार और प्राण निधन है, यह गायत्र साम प्राणोंमें स्थित है १

स य एवमेतद्गायत्रं प्राणेषु प्रोतं वेद प्राणी भवति सर्वमायुरेति ज्योग्जीवति महान् प्रजया पशुभिर्भवति महान्कीर्त्या महामनाः स्यात्तद् व्रतम् २

अन्वय और पदार्थ—(यः) जो (एतत्) इस (गायत्रम्) गायत्रको (एवम्) इस प्रकार (प्राणेषु) प्राणोंमें (प्रोतम्) पुरा हुआ (वेद) जानता है (सः) वह (प्राणी) इन्द्रियोंकी अविकलतावाला (भवति) होता है (सर्वम्) पूर्ण पूर्ण (आयुः) आयुको (एति) पाता है (ज्योक्) निर्मल (जीवति) जीता है (प्रजया) सन्तान करके (पशुभिः) पशुओं करके (महान्) बड़ा (कीर्त्या) कीर्त्ति करके (महान्) बड़ा (भवति) होता है (महामनाः) उदारचित्त (स्यात्) हो (तत्) सो (व्रतम्) व्रत है ॥ २ ॥

भावार्थ-जो इस गायत्र सामको इस रीतिसे प्राणोंमें पुरा हुआ मान कर उपासना करता है उस उपासककी इन्द्रियोंकी शक्ति सदा पूर्ण रहती है, पूरी सौ वर्षकी आयु पाता है, अपना और दूसरोंका उपकार करने वाला जीवन पाता है, सन्तान पशु और कीर्त्तिसे उन्नति पाता है सदा उदारचित्त रहना चाहिये, यही गायत्र सामके उपासकका व्रत है ॥ २ ॥

॥ इति द्वितीयाध्यायस्य एकादशः खण्डः ॥

अभिमन्थति स हिंकारो धूमो जायते स प्रस्तावो ज्वलति स उद्गीथोऽङ्गारा भवन्ति स प्रतिहार उपशाम्यति तन्निधनꣳ संशाम्यति तन्निधनमेतद्रथन्तरमग्नौ प्रोतम् ॥ १ ॥

अन्वय और पदार्थ-(अभिमन्थति) मथता है (सः) वह (हिंकारः) हिंकार है (धूमः) धूम (जायते) होता है (सः) वह (प्रस्तावः) प्रस्ताव है (ज्वलति) प्रज्वलित होता है

(सः) वह (उद्गीथः) उद्गीथ है (अङ्गाराः) अंगारे (भवंति) होते हैं (सः) वह (प्रतिहारः) प्रतिहार है (उपशाम्यति) कुछ बुझता है (तत्) वह (निधनम्) निधन है (संशाम्यति) सर्वथा बुझता है (तत्) वह (निधनम्) निधन है (एतत्) यह (रथन्तरम्) रथन्तर (अग्नौ) अग्निमें (प्रोतम्) पुरा हुआ है ॥ १ ॥

भावार्थ—जब अग्निको दो अरणियोंमेंसे निकालते हैं तब अरणी मथी जाती हैं, वह मथना हिंकार है, अतः मथन दृष्टि से हिंकारकी उपासना करे, फिर धूम निकलता है अतः धूम दृष्टिसे प्रस्तावकी उपासना करे, फिर जलते हुए अग्निमें हवि सम्बन्धी ज्वालादृष्टिसे उद्गीथकी उपासना करे, अंगारदृष्टिसे प्रतिहारकी उपासना करे, अग्निका अल्पतेज होना संशम और सर्वथा बुझ जाना उपशम कहाता है उसकी दृष्टिसे निधनकी उपासना करे, मथनसे अग्नि उत्पन्न होनेके समय रथन्तर साम को गाते हैं, अतः रथन्तर साम अग्निमें स्थित है ॥ १ ॥

स य एवमेतद्रथन्तरमग्नौ प्रोतं वेद ब्रह्मवर्चस्व्य- न्नादो भवति सर्वमायुरेति ज्योग्जीवति महान् प्रजया पशुभिर्भवति महान्कीर्त्या न प्रत्यङ्ङग्नि- माचामन्नेनिष्ठीवेत्तद्व्रतम् ॥ २ ॥

अन्वय और पदार्थ—(यः) जो (एतत्) इस (रथन्तरम्) रथन्तर सामको (एवम्) इस प्रकार (अग्नौ) अग्निमें (प्रोतम्) पुरा हुआ (वेद) जानता है (ब्रह्मवर्चस्वी) ब्रह्मतेजसे युक्त (अन्नादः) दीप्त अग्निवाला (भवति) होता है

(सर्वम्) पूर्ण (आयुः) आयुको (एति) प्राप्त होता है (ज्योक्) उज्वल (जीवति) जीता है (प्रजया) सन्तान करके (पशुभिः) पशुओं करके (महान्) बड़ा (कीर्त्त्या) कीर्त्ति करके (महान्) बड़ा (भवति) होता है (प्रत्यङ्ङग्निम्) अग्निके सामने (न) नहीं (आचामेत्) आचमन करे (न) नहीं (निष्ठीवेत्) थूके (तत्) वह (व्रतम्) व्रत है॥ २ ॥

भावार्थ—जो इस रथन्तर सामको इस प्रकार अग्निमें पुरा हुआ जान उपासना करता है वह उपासक ब्रह्मतेजस्वी और दीप्ताग्नि होता है, पूरी सौ वर्षकी आयु पाता है, अपना और दूसरोंका उपकार करने योग्य निर्मल जीवन पाता है, उसकी सन्तान गौ आदि पशु और कीर्त्तिकी वृद्धि होती है उसको अपना यह नियम रखना चाहिये, कि—न कभी अग्निके सामने कुल्ला करे और न कभी अग्निमें थूक आदि उच्छिष्ट डाले २

॥ इति द्वितीयाध्यायस्य द्वादशः खण्डः ॥

उपमन्त्रयते स हिङ्कारो ज्ञपयते स प्रस्तावः स्त्रिया सह शेते स उद्गीथः प्रतिस्त्रिया सह शेते स प्रतिहारः कालं गच्छति तन्निधनं पारं गच्छति तन्निधनमेतद्वामदेव्यं मिथुने प्रोतम् ॥ १ ॥

अन्वय और पदार्थ—(उपमन्त्रयते) स्त्रीके साथ संकेत करता है (सः) वह (हिङ्कारः) हिंकार है (ज्ञपयते) संतुष्ट करता है (सः) वह (प्रस्तावः) प्रस्ताव है (स्त्रिया सह) स्त्रीके साथ (शेते) सोता है (सः) वह (उद्गीथः) उद्गीथ है (स्त्रिया सह) स्त्रीके साथ (प्रतिशेते) अभिमुख होकर

सोता है (सः) वह (प्रतिहारः) प्रतिहार है (कालम्) समय (गच्छति) जाता है (तत्) वह (निधनम्) निधन है (पारम्) समाप्तिको (गच्छति) प्राप्त होता है (तत्) वह (निधनम्) निधन है (एतत्) यह (वामदेव्यम्) वामदेव्य साम (मिथुने) मिथुनमें (प्रोतम्) पुरा हुआ है ॥ १ ॥

भावार्थ—ऊपर और नीचेकी अरणीरूप ग्राम्य कर्ममें प्रवृत्त स्त्री पुरुषोंका कर्म मन्थनके समान होता है, अतः मन्थनदृष्टिसे सामको उपासना कहकर अब मैथुनदृष्टिसे सामकी उपासनाका प्रकार कहते हैं—जब पुरुष किसी स्त्रीके साथ समागम करना चाहता है तो पहिले संकेत करता है, अतः संकेतदृष्टिसे हिंकार की उपासना करे, फिर स्त्रीको वस्त्रादि देकर प्रसन्न करता है, अतः प्रसन्नतादृष्टिसे प्रस्तावको उपासना करे, स्त्रीके साथ एक खट्वा पर गमन किया जाता है, उस गमनकी दृष्टिसे उद्गीथको उपासना करे, स्त्री प्रसन्नतासे पुरुषके सन्मुख होती है उस दृष्टिसे प्रतिहारकी उपासना करे, समय विताने और मिथुनसमाप्ति होनेकी दृष्टिसे निधनकी उपासना करे, यह वामदेव्य साम मिथुनमें स्थित है ॥ १ ॥

स य एतद्वामदेव्यं मिथुने प्रोतं वेद मिथुनी भवति मिथुनान्मिथुनात्प्रजायते सर्वमायुरेति ज्योग्जीवति महान्प्रजया पशुभिर्भवति महान् कीर्त्या न काञ्चन परिहरेत्तद्व्रतम् ॥ २ ॥

अन्वय और पदार्थ—(यः) जो (एतत्) इस (वामदेव्यम्) वामदेव्य सामको (मिथुने) मिथुनमें (एवम्) इस

प्रकार (प्रोतम्) पुरा हुआ (वेद) जानता है (सः) वह (मिथुनी भवति) सस्त्रीक रहता है (मिथुनात्-मिथुनात्) प्रत्येक मिथुनसे (प्रजायते) सन्तान उत्पन्न होती हैं (सर्वम्) पूर्ण (आयुः) आयुको (एति) प्राप्त होता है (ज्योक्) निर्मल (जीवति) जीता है (प्रजया) सन्तान करके (पशुभिः) पशुओं करके (महान्) बड़ा (कीर्त्या) कीर्त्ति करके (महान्) बड़ा (भवति) होता है (काञ्चन) किसी समय प्राप्त हुई को भी (न) नहीं (परिहरेत्) त्यागे (तत्) सो (व्रतम्) व्रत है ॥ २ ॥

भावार्थ—जो साधक इस वामदेव्य सामको इस प्रकार मिथुनमें सन्निविष्ट जानकर उपासना करता है, उसको कभी स्त्रीका वियोग नहीं होता, उसका वीर्य कभी निष्फल नहीं जाता, वह जब समागम करता है तब ही सन्तान होती है, पूर्णायु होता है, उज्ज्वल जीवन धारण करता है उसकी संतान पशु और कीर्त्ति बढ़ती है, उसकी अपनी धर्मपत्नी जिस समय भी समागमके निमित्त आवे उसको कभी निषेध न करे, यही उसका व्रत है, यह नियम केवल उपासनाकाल पर्यन्तका है सर्वदाको नहीं है ॥ २ ॥

॥ द्वितीयाध्यायस्य त्रयोदशः खण्डः समाप्तः ॥

उद्यन् हिंकार उदितः प्रस्तावो मध्यन्दिन उद्गीथोऽपराह्णः प्रतिहारोऽस्तं यन्निधनमेतद् बृहदादित्ये प्रोतम् ॥ १ ॥

अन्वय और पदार्थ-(उद्यन्) उदय होता हुआ (हिंकारः)

हिंकार (उदितः) उदय हुआ (प्रस्तावः) प्रस्ताव (मध्यन्दिनः) मध्याह्न (उद्गीथः) उद्गीथ (अपराह्णः) अपराह्ण (प्रतिहारः) प्रतिहार (अस्तं यन्) अस्त होता हुआ (निधनम्) निधन (एतत्) यह (बृहत्) बृहत् साम (आदित्ये) आदित्यमें (प्रोतम्) पुरा हुआ है ॥ १ ॥

भावार्थ—पहिले सूर्य उदित होता है, अतः उदय होते हुए सूर्यकी दृष्टिसे हिंकारकी उपासना करे, सूर्योदय होने पर कर्मों का प्रस्ताव [आरम्भ] होता है, इस कारण उदय होजाने पर सूर्यकी प्रस्तावदृष्टिसे उपासना करे, मध्याह्नदृष्टिसे उद्गीथकी उपासना करे सायङ्कालको लौट कर घरमें आते हैं इसकारण अपराह्णदृष्टिसे प्रतिहारकी उपासना करे और सूर्यास्तदृष्टिसे निधनकी उपासना करे, क्योंकि-रात्रिमें सब प्राणी घरमें रहते हैं, बृहत्सामका सूर्य देवता है, इस कारण बृहत्साम आदित्यमें स्थित है ॥ १ ॥

स य एवमेतद्बृहदादित्ये प्रोतं वेद तेजस्यन्नादो भवति सर्वमायुरेति ज्योग्जीवति महान् प्रजया पशुभिर्भवति महान् कीर्त्या तपन्तं न निंदेत्तद्व्रतम्

अन्वय और पदार्थ-(यः) जो (एतत्) इस (बृहत्) बृहत् सामको (एवम्) इस प्रकार (आदित्ये) आदित्यमें (प्रोतम्) पुरा हुआ (वेद) जानता है (तेजस्वी) कान्तिमान् (अन्नादः) दीप्ताग्नि (भवति) होता है (सर्वम्) पूर्ण (आयुः) आयुको (एति) प्राप्त होता है (ज्योक्) निर्मल (जीवति) जीता है (प्रजया) संतान करके (पशुभिः) पशुओं

करके (महान्) बड़ा (कीर्त्या) कीर्त्ति करके (महान्) बड़ा (भवति) होता है (तपन्तम्) तपते हुएको (न) नहीं (निंदेत्) निन्दा करे (तत्) सो (व्रतम्) व्रत है ॥ २ ॥

भावार्थ—जो पुरुष इस बृहत्सामको इस प्रकार आदित्यमें स्थित जानकर उपासना करता है वह तेजस्वी, दीप्ताग्नि, पूर्णायु और उज्ज्वल जीवन वाला होता है सन्तान, पशु और कीर्त्ति के द्वारा उसकी वृद्धि होती है, वह तपते हुए सूर्यकी निन्दा न करे यही उसका व्रत है ॥ २ ॥

॥ द्वितीयाध्यायस्य चतुर्दशः खण्डः समाप्तः ॥

अभ्राणि संप्लवन्ते स हिंकारो मेघो जायते स प्रस्तावो वर्षति स उद्गीथो विद्योतते स्तनयति स प्रतिहार उद्गृह्णाति तन्निधनमेतद्वैरूपं पर्जन्ये प्रोतम् ॥ १ ॥

अन्वय और पदार्थ—(अभ्राणि) जल भरने वाले मेघ (संप्लवन्ते) विचरते हैं (सः) वह (हिंकारः) हिंकार (मेघः) मेघ (जायते) होता है (सः) वह (प्रस्तावः) प्रस्ताव (वर्षति) बरसता है (सः) वह (उद्गीथः) उद्गीथ (विद्योतते) बिजली चमकती है (स्तनयति) गर्जता है (सः) वह (प्रतिहारः) प्रतिहार है (उद्गृह्णाति) हटता है (तत्) वह (निधनम्) निधन है (एतत्) यह (वैरूपम्) वैरूप साम (पर्जन्ये) पर्जन्यमें (प्रोतम्) पुरा हुआ है ॥ १ ॥

भावार्थ—मेघोंका जल ग्रहण किये हुए विचरना हिंकार, मेघोंका घिर जाना प्रस्ताव, बरसना उद्गीथ, बिजली चमकना

और गरजना प्रतिहार और फिर मेघोंका सिमटकर चले जाना निधन है, इस दृष्टिसे उपासना करे, इस प्रकार वैरूप साम मेघमें सन्निविष्ट है ॥ १ ॥

स य एवमेतद्वैरूपं पर्जन्ये प्रोतं वेद विरूपांश्च सुरूपांश्च पशूनवरुन्धे सर्वमायुरेति ज्योग्जीवति महान् प्रजया पशुभिर्भवति महान् कीर्त्त्या वर्षन्तं न निन्देत्तद्व्रतम् ॥ २ ॥

अन्वय और पदार्थ-(यः) जो (एतत्) इस (वैरूपम्) वैरूप सामको (एवम्) इस प्रकार (पर्जन्ये) मेघमें (प्रोतम्) पुराहुआ (वेद) जानता है (विरूपान्) विरूप (च) और (सुरूपान्) सुरूप (च) भी (पशून्) पशुओंका (अवरुन्धे) पाता है (सर्वम्) पूर्ण (आयुः) आयुको (एति) प्राप्त होता है (ज्योक्) उज्ज्वल (जीवति) जीता है (प्रजया) प्रजा करके (पशुभिः) पशुओंसे (महान्) बड़ा (कीर्त्त्या) कीर्त्तिसे (महान्) बड़ा (भवति) होता है (वर्षन्तम्) वर्षते हुएको (न) नहीं (निन्देत्) निन्दा करे (एतत्) यह (व्रतम्) व्रत है ॥ २ ॥

भावार्थ—जो इस प्रकार वैरूप सामको पर्जन्यमें स्तिथ मान कर उपासना करता है वह विरूप और सुरूप पशुओंको पाता है, पूर्ण आयु पाता है, निर्मलताके साथ जीता है, प्रजासे पशुओंसे और कीर्त्तिसे बड़ा होता है, वर्षते हुए मेघकी निन्दा न करे, यही उसका व्रत है ॥ २ ॥

॥ द्वितीयाध्यायस्य पञ्चदशः खण्डः समाप्तः ॥

वसन्तो हिंकारो ग्रीष्मः प्रस्तावो वर्षा उद्गीथः शरत्प्रतिहारो हेमन्तो निधनमेतद्वैराजमृतुषु प्रोतम्

अन्वय और पदार्थ–(वसन्तः) वसन्त (हिंकारः) हिंकार (ग्रीष्मः) ग्रीष्म (प्रस्तावः) प्रस्ताव (वर्षा) वर्षा (उद्गीथः) उद्गीथ (शरत्) शरद् (प्रतिहारः) प्रतिहार (हेमन्तः) हेमन्त (निधनम्) निधन है (एतत्) यह (वैराजम्) वैराज (ऋतुषु) ऋतुओंमें (प्रोतम्) पुरा हुआ है ॥ १ ॥

भावार्थ–वसन्त ऋतु मानो हिंकार है, ग्रीष्म प्रस्ताव है, वर्षा उद्गीथ है, शरद् प्रतिहार है और हेमन्त निधन है, यह वैराज साम ऋतुओंमें स्थित है ॥ १ ॥

स य एवमेवैतद्वैराजमृतुषु प्रोतं वेद विराजति प्रजया पशुभिर्ब्रह्मवर्चसेन सर्वमायुरेति ज्योग्जीवती महान्प्रजया पशुभिर्भवति महान् कीर्त्यर्त्तून्न निन्देत्तद् व्रतम् ॥ २ ॥

अन्वय और पदार्थ–(यः) जो (एवम्) इस प्रकार (वैराजम्) वैराजको (ऋतुषु) ऋतुओंमें (प्रोतम्) पुरा हुआ (वेद) जानता है (सः) वह (प्रजया) प्रजा करके (पशुभिः) पशुओं करके (ब्रह्मवर्चसेन) ब्रह्मतेज करके (विराजति) शोभायमान होता है (सर्वम्) सकल (आयुः) आयु को (एति) प्राप्त होता है (ज्योक्) उज्ज्वलतासे (जीवति) जीवित रहता है (प्रजया) करके (पशुभिः) पशुओं करके (महान्) बड़ा (कीर्त्त्या) कीर्त्ति करके (महान्) बड़ा (भवति)

होता है (ऋतून्) ऋतुओंको (न) नहीं (निन्देत्) निन्दा करे (तत्) सो (व्रतम्) व्रत है ॥ २ ॥

भावार्थ–जो इस प्रकार इस वैराज सामको ऋतुओंमें स्थित जानकर इसकी उपासना करता है वह पुत्र पौत्र आदि संतान अनेकों प्रकारके पशु और स्वाध्याय आदिसे उत्पन्न हुए ब्रह्मतेजसे इस प्रकार शोभा पाता है, जैसे ऋतुएँ अपने अपने धर्मोंसे शोभा पाती हैं, पूरी आयु पाता है, उसका जीवन उज्ज्वल होता है, वह प्रजा, पशु और कीर्त्तिके कारण बड़ाई पाता है, ऋतुओंकी निन्दा न करे, यही उसका व्रत है ॥२॥

॥ द्वितीयाध्यायस्य षोडशः खण्डः समाप्तः ॥

पृथिवी हिंकारोऽन्तरिक्षं प्रस्तावो द्यौरुद्गीथो दिशः प्रतिहारः समुद्रो निधनमेताः शक्वर्यो लोकेषु प्रोताः ॥ १ ॥

अन्वय और पदार्थ—(पृथिवी) भूमि (हिंकारः) हिंकार (अन्तरिक्षम्) अन्तरिक्ष (प्रस्तावः) प्रस्ताव (द्यौः) स्वर्ग (उद्गीथः) उद्गीथ (दिशः) दिशा (प्रतिहारः) प्रतिहार (समुद्रः) समुद्र (निधनम्) निधन (एताः) यह (शक्वर्यः) शक्वरी (लोकेषु) लोकोंमें (प्रोताः) प्रविष्ट हैं ॥१॥

भावार्थ–ऋतुएँ अपने २ धर्ममें वर्त्तती हैं तो उससे लोकों का पालन होता है, इस कारण ऋतुदृष्टिके पीछे लोकदृष्टि कहते हैं, कि-पृथिवी हिंकार, अन्तरिक्ष प्रस्ताव, स्वर्ग उद्गीथ, दिशा प्रतिहार और समुद्र निधन है, इस प्रकार शक्वरी साम लोकोंमें स्थित है ॥ १ ॥

स य एवमेताः शक्वर्यो लोकेषु प्रोता वेद लोकी भवति सर्वायुरेति ज्योग्जीवति महान् प्रजया पशुभिर्भवति महान्कीर्त्त्या लोकान्न निन्देत्तद्व्रतम्

अन्वय और पदार्थ—(यः) जो (एवम्) इस प्रकार (एताः) यह (शक्वर्यः) शक्वरी (लोकेषु) लोकोंमें (प्रोताः) प्रविष्ट हैं [इति] ऐसा (वेद) जानता है (सः) वह (लोकी भवति) लोकों वाला होता है (सर्वायुः) पूर्ण आयुको (एति) पाता है (ज्योक्) उज्ज्वलतासे (जीवति) जीता है (प्रजया) प्रजा करके (पशुभिः) पशुओं करके (महान्) बड़ा (कीर्त्त्या) कीर्त्ति करके (महान्) बड़ा (भवति) होता है (लोकान्) लोकोंको (न) नहीं (निन्देत्) बुरा कहे (तत्) सो (व्रतम्) व्रत है ॥ २ ॥

भावार्थ—जो इस प्रकार इस शक्वरी सामको लोकोंमें स्थित जानकर इसकी उपासना करता है वह सब लोकोंको पारहा है, पूर्ण आयु पाता है, उसका जीवन निर्मल होता है, संतान पशु और कीर्त्तिके कारण बड़ाई पाता है, वह लोकोंकी निन्दा न करे, यही उसके लिये व्रत है ॥ २ ॥

॥ द्वितीयप्रपाठकस्य सप्तदशः खण्डः समाप्तः ॥

अजा हिंकारोऽवयः प्रस्तावो गाव उद्गीथोऽश्वाः प्रतिहारः पुरुषो निधनमेता रेवत्यः पशुषु प्रोताः ॥

अन्वय और पदार्थ--(अजा) बकरियें (हिंकारः) हिंकार (अवयः) भेड़ें (प्रस्तावः) प्रस्ताव (गावः) गौएँ (उद्गीथः) उद्गीथ (अश्वाः) घोड़े (प्रतिहारः) प्रतिहार (पुरुषः)

पुरुष (निधनम्) निधन (एताः) यह (रेवत्यः) रेवतियें (पशुषु) पशुओंमें (प्रोताः) स्थित हैं ॥ १ ॥

भावार्थ—पशुओंका पालन करना लोकोंका कार्य है, इस कारण लोकदृष्टिके अनन्तर पशुदृष्टिसे सामकी उपासना कहते हैं, कि-बकरियें हिंकार, भेड़ें प्रस्ताव, गौएँ उद्गीथ घोड़े प्रति-हार और पुरुष निधन हैं, यह रेवती साम पशुओंमें स्थित हैं।१।

स य एवमेता रेवत्यः पशुषु प्रोता वेद पशुमान् भवति सर्वमायुरेति, ज्योग्जीवति, महान्प्रजया पशुभिर्भवति महान् कीर्त्त्या पशून्न निन्देत्तद् व्रतम्

अन्वय और पदार्थ—(यः) जो (एवम्) इस प्रकार (एताः) इन (रेवत्यः) रेवती (पशुषु) पशुओंमें (प्रोताः) स्थित हैं [इति] ऐसा (वेद) जानता है (सः) वह (पशुमान्) पशुओं वाला (भवति) होता है (सर्वायुः) पूर्ण आयुको (एति) पाता है (ज्योग्) उज्वल (जीवति) जीता है (प्रजया) प्रजा करके (पशुभिः) पशुओं करके (महान्) बड़ा (कीर्त्त्या) कीर्त्ति करके (महान्) बड़ा (भवति) होता है (पशून्) पशुओंको (न) नहीं (निन्देत्) बुरा कहे (तत्) सो (व्रतम्) व्रत है ॥२॥

भावार्थ—जो मनुष्य इस प्रकार इस रेवती नामक सामको सब पशुओंमें स्थित जानकर इसकी उपासना करता है, वह पशुओं वाला होता है, पूर्ण आयु पाता है, निर्मलताके साथ जीता है, प्रजा, पशु और कीर्त्तिके द्वारा बड़ाई पाता है, पशुओं की निन्दा न करे, यही उसका व्रत है ॥ २ ॥

॥ द्वितीयाध्यायस्यैकादशः खण्डः समाप्तः ।

लोम हिंकारस्त्वक् प्रस्तावो माꣳसमुद्गीथोऽस्थि प्रतिहारो मज्जा निधनमेतद्यज्ञायज्ञीयमंगेषु प्रोतम्

अन्वय और पदार्थ--(लोम) रोम (हिंकारः) हिंकार है (त्वक्) त्वचा (प्रस्तावः) प्रस्ताव है (मांसम्) मांस (उद्गीथम्) उद्गीथ है (अस्थि) हड्डी (प्रतिहारः) प्रतिहार है (मज्जा) मज्जा (निधनम्) निधन है (एतत्) यह (यज्ञायज्ञीयम्) यज्ञायज्ञीय साम (अङ्गेषु) अङ्गोंमें (प्रोतम्) पुरा हुआ है ॥ १ ॥

भावार्थ--पशुओंके दुग्ध दधि आदिसे अङ्गोंकी पुष्टि देखते हैं, इस कारण पशुदृष्टिके अनन्तर अङ्गदृष्टि कहते हैं--रोम हिंकार, त्वचा प्रस्ताव, मांस उद्गीथ, हड्डी प्रतिहार और मज्जा निधन है, यह यज्ञायज्ञीय साम शरीरके अङ्गोंमें स्थित है ।

स य एवमेतद्यज्ञायज्ञीयमङ्गेषु प्रोतं वेदाङ्गी भवति नाङ्गेन विहूर्छति, सर्वमायुरेति ज्योग्जीवति महान्प्रजया पशुभिर्भवति महान् कीर्त्त्या संवत्सरं मज्ज्ञो नाश्नीयात्तद् व्रतं मज्ज्ञो नाश्नीयादिति वा ॥२॥

अन्वय और पदार्थ--(यः) जो (एवम्) इस प्रकार (यज्ञायज्ञीयम्) यज्ञायज्ञीयको (अंगेषु) अंगोंमें (प्रोतम्) पुराहुआ (वेद) जानता है (सः) वह (अंगी भवति) अंगों वाला होता है (अंगेन) अङ्गसे (न) नहीं (विहूर्छति) कुटिल होता है (सर्वम्) सब (आयुः) आयुको (एति) पाता है (ज्योक्) निर्मलतासे (जीवति) जीता है (प्रजया)

प्रजा करके (पशुभिः) पशुओं करके (महान) बड़ा (कीर्त्या) कीर्त्ति करके (महान्) बड़ा (भवति) होता है (मज्ञः) मुझ सामका जानने वाला (सम्वत्सरम्) एक वर्ष तक (न) नहीं (अश्नीयात्) खाय (तत्) सो (वा) या (मज्ञः) सामका ज्ञाता (न) नहीं (अश्नीयात्) खाय (इति) यह (व्रतम्) व्रत है २ ॥

भावार्थ-जो इस प्रकार इस यज्ञायज्ञीय सामको (अङ्गोंमें स्थित) जानकर उपासना करता है वह पूर्ण अंगों वाला होता है, हाथ पैर आदि अंगोंसे कुटिल अर्थात् टुंटा वा लुञ्जा नहीं होता है, पूरी आयु पाता है, उसका जीवन निर्मल होता है, वह प्रजा, पशु और कीर्त्तिसे बड़ाई पाता है, यदि यह पहिले मत्स्य मांस आदि खाता रहा हो तो एक वर्षके लिये छोड़देय यह उसका साधारण व्रत है, और यदि सर्वदा मांस मत्स्य न खाय तो यह उसका पूरा व्रत है ॥ २ ॥

॥ द्वितीयाध्याये एकोनविंशः खण्डः समाप्तः ॥

अग्निर्हिङ्कारो वायुः प्रस्ताव आदित्य उद्गीथो नक्षत्राणि प्रतिहारश्चन्द्रमा निधनमेतद्राजनं देवतासु प्रोतम् ॥ १ ॥

अन्वय और पदार्थ—(अग्निः) अग्नि (हिंकारः) हिंकार (वायुः) वायु (प्रस्तावः) प्रस्ताव है (आदित्यः) आदित्य (उद्गीथः) उद्गीथ है (नक्षत्राणि) नक्षत्र (प्रतिहारः) प्रतिहार हैं (चन्द्रमाः) चन्द्रमा (निधनम्) है (एतत्) यह (राजनम्) राजन (देवतासु) देवताओंमें (प्रोतम्) पुरा हुआ है ॥ १ ॥

भावार्थ—अग्नि हिंकार वायु प्रस्ताव आदित्य उद्गीथ सकल नक्षत्र प्रतिहार और चन्द्रमा निधन है, यह राजन् नामक साम देवताओंमें स्थित है ॥ १ ॥

स य एवमेतद्राजनं देवतासु प्रोतं वेदैतासामेव देवतानाᳯँ सलोकताᳯँ सार्ष्टिताᳯँसायुज्यं गच्छति सर्वमायुरेति ज्योग्जीवति महान् प्रजया पशुभिर्भवति महान् कीर्त्या ब्राह्मणान्न निन्देत् तद् व्रतम् ॥ २ ॥

अन्वय और पदार्थ—(यः) जो (एवम्) इस प्रकार (एतत्) इस (राजनम्) राजन् सामको (देवतासु) देवताओंमें (प्रोतम्) स्थित (वेद) जानता है (सः) वह (एतासाम् एव) इन ही (देवतानाम्) देवताओंकी (सलोकताम्) समान लोकताको (सार्ष्टिताम्) समान ऋद्धिमान् पनेको (सायुज्यम्) एकदेहदेहीभावको (गच्छति) प्राप्त होता है (सर्वम्) सम्पूर्ण (आयुः) आयुको (एति) प्राप्त होता है (ज्योक्) उज्ज्वलताके साथ (जीवति) जीवित रहता है (प्रजया) सन्तानसे (पशुभिः) पशुओंसे (महान्) बड़ा (कीर्त्या) कीर्त्तिसे (महान्) बड़ा (भवति) होता है (ब्राह्मणान्) ब्राह्मणोंको (न) नहीं (निन्देत्) निन्दा करे (तत्) वह (व्रतम्) व्रत है ॥ २ ॥

भावार्थ—जो इस प्रकार राजन् नामक सामको देवताओं में स्थित मानकर उपासना करता है वह इन अग्नि वायु आदि देवताओंकी समान लोकोंको पाता है, इनकी समान ऐश्वर्य

वाला होता है, इनके साथ एकदेहदेहीभावको पाता है, पूरी आयु पाता है, उज्ज्वल जीवन पाता है, सन्तान और पशुओं से बड़ा होता है, कीर्त्तिसे बड़ा होता है, ब्राह्मण देवतारूप हैं इस लिये ब्राह्मणोंकी निन्दा न करे, यही उसका व्रत है २

॥ इति द्वितीयाध्याये विंशः खण्डः समाप्तः ॥

त्रयी विद्या हिंकारस्त्रय इमे लोकाः स प्रस्तावो-ऽग्निर्वायुरादित्यः स उद्गीथो नक्षत्राणि वयाꣳसि मरीचयः स प्रतिहारः सर्पा गन्धर्वाः पितरस्तन्नि-धनमेतत्साम सर्वस्मिन् प्रोतम् ॥ १ ॥

अन्वय और पदार्थ—(त्रयीविद्या) वेदविद्या (हिङ्कारः) हिंकार है (इमे) ये (त्रयः) तीन (लोकाः) लोक (सः) वह (प्रस्तावः) प्रस्ताव (अग्निः) अग्नि (वायुः) वायु (आदित्यः) आदित्य (सः) वह (उद्गीथः) उद्गीथ है (नक्षत्राणि) नक्षत्र (वयांसि) पक्षी (मरीचयः) किरणें (सः) वह (प्रतिहारः) प्रतिहार है (सर्पाः) सर्प (गन्धर्वाः) गन्धर्व (पितरः) पितर (तत्) वह (निधनम्) निधन है (एतत्) यह (साम) साम (सर्वस्मिन्) सबमें (प्रोतम्) पुरा हुआ है ॥ १ ॥

भावार्थ-त्रयी नामक वेदविद्या हिङ्कार, तीनों लोक प्रस्ताव, अग्नि वायु आदित्य तीनों देवता उद्गीथ, नक्षत्र पक्षी और किरणें प्रतिहार तथा सर्प गन्धर्व और पितृलोक निधन है, यह साम वेदविद्यादि सबमें प्रविष्ट है ॥ १ ॥

स य एवमेतत्साम सर्वस्मिन्प्रोतं वेद सर्वं ह भवति

अन्वय और पदार्थ—(यः) जो (एवम्) इस प्रकार (एतत्) इस (साम) सामको (सर्वस्मिन्) सबमें (प्रोतम्) पुरा हुआ (वेद) जानता है (सः, ह) वह ही (सर्वम्) सब (भवति) होजाता है ॥ २ ॥

भावार्थ–जो इस प्रकार इस सब सामोंको वेदविद्या आदि सबमें जानकर उपासना करता है वह सर्व अर्थात् सर्वेश्वर होजाता है ॥ २ ॥

तदेष श्लोको यानि पञ्चधा त्रीणि त्रीणि तेभ्यो न ज्यायः परमन्यदस्ति ॥ ३ ॥

अन्वय और पदार्थ—(तत्) तिसमें (एषः) यह (श्लोकः) मन्त्र है (यानि) जो (पञ्चधा) पाँच प्रकारसे (त्रीणि त्रीणि) तीन २ हैं (तेभ्यः) उनसे (ज्यायः) बढ़कर (परम्) भिन्न (अन्यत्) और वस्तु (न) नहीं (अस्ति) है ॥ ३ ॥

भावार्थ–इस विषयमें यह मन्त्र है, कि–जो हिङ्कार आदि त्रिभागसे पाँच प्रकारके कहे हुए त्रयीविद्या आदि तीन तीन सामके अवयव हैं उन पाँच त्रिकोंसे महान् तथा उत्कृष्ट और कोई वस्तु नहीं है ॥ ३ ॥

यस्तद्वेद स वेद सर्वꣳ सर्वा दिशो बलिमस्मै हरन्ति सर्वमस्मीत्युपासीत तद् व्रतं तद् व्रतम् ४

अन्वय और पदार्थ–(यः) जो (तत्) उसको (वेद) जानता है (सः) वह (सर्वम्) सबको (वेद) जानता है (सर्वाः) सब (दिशः) दिशायें (अस्मै) इसके लिये (बलिम्) बलिको (हरन्ति) अर्पण करती हैं (सर्वम्) सब

(अस्मि) हूँ (इति) इस प्रकार (उपासीत) उपासना करे (तद्) वह (व्रतम्) व्रत है (तत्) वह (व्रतम्) व्रत है ४

भावार्थ—जो इस सर्वरूप सामको जानता है वह सबको जानता है तथा इसको सब दिशाओंमें रहने वाले प्राणी उस को भोग अर्पण करते हैं, मैं ही सर्वरूप हूँ, इस ज्ञानसे उपासना करना ही इसका व्रत है ॥ ४ ॥

॥ द्वितीयाध्यायस्यैकविंशः खण्डः समाप्तः ॥

विनर्दि साम्नो वृणे पशव्यमित्यग्नेरुद्गीथोऽनिरुक्तः सोमस्य मृदुः श्लक्ष्णं वायोः श्लक्ष्णं बलवदिन्द्रस्य क्रौञ्चं बृहस्पतेरपध्वान्तं वरुणस्य तान् सर्वानेवोपसेवेत त्वेव वर्जयेत् ॥ १ ॥

अन्वय और पदार्थ—(विनर्दि) बैलके बोलनेकी समान स्वरवाले (साम्नः) सामके सम्बन्धी (पशव्यम्) पशुओंके हितकारी (अग्नेः) अग्निरूप देवता वाला (उद्गीथः इति) जो उद्गान है उसकी (वृणे) प्रार्थना करता हूँ (प्रजापतेः) प्रजापतिका (अनिरुक्तः) अस्पष्ट है (सोमस्य) सोमका (निरुक्तः) स्पष्ट है (वायोः) वायुका (मृदु) कोमल (श्लक्ष्णम्) मधुर है (इन्द्रस्य) इन्द्रका (श्लक्ष्णम्) कोमल (बलवत्) बलवाला है (बृहस्पतेः) बृहस्पतिका (क्रौञ्चम्) क्रौञ्च पक्षीकी समान है (वरुणस्य) वरुणका (उपध्वान्तम्) फूटी हुई काँसीके स्वरकी समान है (तान्) उन (सर्वान्) सबोंको (वारुणम् एव) वरुणकेको ही (वर्जयेत्) त्याग देय १

भावार्थ—बैलके दहाड़नेकी समान स्वर वाला जो गायन है

वह साम्नके सम्बन्धवाला पशुओंका हित—रूप और अग्निरूप देवता वाला उद्गान है, उसकी मैं प्रार्थना करता हूँ, ऐसा कोई यजमान वा उद्गाता मानता है। प्रजापति देवतावाला यह उद्गीथ अस्पष्ट है अर्थात् अमुककी समान है ऐसा नहीं कहा जाता, सोम देवतावाला स्पष्ट उद्गान है, कोमल और मधुर देवता वाला गान है, कोमल और अधिक प्रयत्न वाला इन्द्र देवता का उद्गान है, क्रौञ्च पक्षीके शब्दकी समान बृहस्पति देवता का गान है और फूटी हुई काँसीके समान वरुण देवताका गान है, साधक उन सबोंका ही उच्चारण करे एक वरुणके गानको अवश्य त्याग देय ॥ १ ॥

अमृतं देवेभ्य आगायानीत्यागायेत् स्वधां पितृभ्य आशां मनुष्येभ्यस्तृणोदकं पशुभ्यः स्वर्गं लोकं यजमानायान्नमात्मन आगायानीत्येतानि मनसा ध्यायन्नप्रमत्तः स्तुवीत ॥ २ ॥

अन्वय और पदार्थ–(देवेभ्यः) देवताओंके लिये (अमृतत्वम्) अमृतपना (आगायानि) साधन करूँ (इति) ऐसा कहकर (आगायेत्) उद्गान करे (पितृभ्यः) पितरोंके लिये (स्वधाम्) स्वधाको (मनुष्येभ्यः) मनुष्योंके लिये (आशाम्) आशाको (पशुभ्यः) पशुओंके लिये (तृणोदकम्) तृणजल को (यजमानाय) यजमानके लिये (स्वर्गं लोकम्) स्वर्ग लोकको (आत्मने) अपने लिये (अन्नम्) अन्नको (आगायानि) साधन करूँ (इति) इस प्रकार (एतानि) इनको

(मनसा) मनसे (ध्यायन्) ध्यान करता हुआ (अप्रमत्तः) सावधानीके साथ (स्तुवीत) स्तुति करे ॥ २ ॥

भावार्थ—देवताओंके लिये अमृतपना साधन करूँगा ऐसा कह कर उद्गान करे, पितरोंके लिये स्वधा, मनुष्योंके लिये इच्छित पदार्थ, पशुओंके लिये तृण, यजमानके लिये स्वर्गलोक और अपने लिये अन्न साधन करूँगा ऐसा इनका मनसे ध्यान करता हुआ तथा स्वर ऊष्म व्यञ्जन स्थान और प्रयत्न आदि में सावधान रह कर स्तुति करे ॥ २ ॥

सर्वे स्वरा इन्द्रस्यात्मानः सर्व ऊष्माणः प्रजापतेरात्मानः सर्वे स्पर्शा मृत्योरात्मानस्तं यदि स्वरेषूपालभेतेन्द्रꣳ शरणं प्रपन्नोऽभूवं स त्वा प्रति वक्ष्यतीत्येवं ब्रूयात् ॥ ३ ॥

अन्वय और पदार्थ–(सर्वे) सब (स्वराः) स्वर (इन्द्रस्य) इन्द्रके (आत्मानः) अवयव हैं (सर्वे) सब (ऊष्माणः) ऊष्म (प्रजापतेः) प्रजापतिके (आत्मानः) आत्मा हैं (सर्वे) सब (स्पर्शाः) स्पर्श (मृत्योः) मृत्युके (आत्मानः) आत्मा हैं (तम्) उसको (यदि) जो (स्वरेषु) स्वरोंके विषयमें (उपालभेत) उलाहना देय [तर्हि] तो (इन्द्रम्) इन्द्रको (शरणं प्रपन्नः अभूवम्) इन्द्रकी शरणमें गया हूँ (सः) वह (त्वा प्रति) तुझसे (वक्ष्यति) कहेगा (इति) ऐसा (एनम्) इसको (ब्रूयात्) कहे ॥ ३ ॥

भावार्थ–उद्गानके समय कोई उद्गाताके ऊपर आक्षेप करे तो उसके उपायके लिये स्वर आदिके देवताका ज्ञान कहते हैं,

कि–अकार आदि सब स्वर इन्द्रके आत्मा कहिये शरीरके अवयव हैं। श ष स ह ये सब ऊष्म अक्षर प्रजापतिके आत्मा हैं और क आदि व्यञ्जन रूप सब स्पर्श अक्षर मृत्युके आत्मा हैं। इस उद्गाताके स्वरोंमें कोई आक्षेप करे तो मैं इन्द्रका आश्रय लेकर स्वरोंका प्रयोग करता हूँ, वह ही तुम्हें इसका उत्तर देंगे ऐसा कह देय ॥ ३ ॥

अथ यद्येनमूष्मसूपालभेत प्रजापतिꣳ शरणं प्रपन्नोऽभूवं स त्वा प्रति प्रेक्ष्यतीत्येनं ब्रूयादथ यद्येनं स्पर्शेषूपालभेत् मृत्युं शरणं प्रपन्नोऽभूवं स त्वा प्रति धक्ष्यतीत्येनं ब्रूयात् ॥ ४ ॥

अन्वय और पदार्थ--(अथ) और (यदि) जो (एनम्) इसको (ऊष्मसु) ऊष्म अक्षरोंके विषयमें (उपालभेत) उपालम्भ देय [तर्हि] तो (प्रजापतिम्) प्रजापतिकी (शरणम्) शरणको (प्रपन्नः अभूवम्) प्राप्त हुआ हूँ (इति) ऐसा (सः) वह (त्वा) तुझे (प्रतिपेक्ष्यति) पीस डालेगा (इति) ऐसा (एनम्) इसको (ब्रूयात्) कहे (अथ) और (यदि) जो (एनम्) इसको (स्पर्शेषु) स्पर्श अक्षरोंके विषयमें(उपालभेत) उपालम्भ देय [तर्हि] तो (मृत्युम्) मृत्युको (शरणम्) शरण (प्रपन्नः अभूवम्) प्राप्त हुआ हूँ (सः) वह (त्वा) तुझे (प्रतिधक्ष्यति) भस्म कर डालेगा (इति) ऐसा (एनम्) इससे (ब्रूयात्) कहे ॥ ४ ॥

भावार्थ–यदि कोई उद्गाताको ऊष्म अक्षरोंके विषयमें उपालम्भ देय तो–मैं प्रजापतिकी शरण लेता हुआ ऊष्म अक्षरोंका

अयोम करता हूँ वह तुझे चूर्ण कर देगा, यह बात आक्षेप करने वालेसे कहे और यदि कोई ककारादि व्यञ्जनरूप स्पर्श अक्षरोंके विषयमें आक्षेप करे तो उससे कहे, कि—मैं मृत्यु देवताकी शरण लेता हुआ स्पर्श अक्षरोंका उच्चारण करता हूँ वह तुझे भस्म कर डालेगा ॥ ४ ॥

सर्वे स्वरा घोषवन्तो बलवन्तो वक्तव्या इन्द्रे बलं ददानीति, सर्व ऊष्माणो अग्रस्ता अनिरस्ता विवृता वक्तव्याः प्रजापतेरात्मानं परिददानीति, सर्वे स्पर्शा लेशेनानभिनिहिता वक्तव्या मृत्यो-रात्मानं परिहराणीति ॥ ५ ॥

अन्वय और पदार्थ-(इन्द्रे) इन्द्रमें (बलम्) बल (ददानि) देता हूँ (इति) ऐसा विचार (सर्वे) सब (स्वराः) स्वर (घोषवन्तः) घोष वाले (बलवन्तः) बलवाले (वक्तव्याः) उच्चारण करने चाहियें (प्रजापतेः) प्रजापतिको (आत्मा-नम्) आत्मा (परिददानि) देता हूँ (इति) ऐसा विचार कर (सर्वे) सब ऊष्माणः) ऊष्म (ग्रस्ताः) भीतर प्रवेश न किये हुए (अनिरस्ताः) मुखसे बाहर न फेंके हुए (विवृताः) उघड़े प्रयत्न वाले (वक्तव्याः) उच्चारण करने चाहियें (मृत्योः) मृत्युके (आत्मानम्) देहको (परिहराणि) दूर करता हूँ (इति) ऐसा विचार करके (सर्वे) सब (स्पर्शाः) स्पर्श (लेशेन) धीरेसे (अनभिनिहिताः) अमिलितभावसे (वक्तव्याः) कहने योग्य हैं ॥ ५ ॥

भावार्थ—स्वरोंका उच्चारण करते समय, मैं इन्द्रमें बल स्थापन करता हूँ, ऐसा चिन्तवन करके सब स्वरोंको घोष प्रयत्न वाले और बलके साथ उच्चारण करे। मैं प्रजापतिके शरीरके अवयवोंको अपना जीवन अर्पण करता हूँ, ऐसा ध्यान करके सब ऊष्म कहिये श ष स ह इन अक्षरोंको कण्ठके भीतर न घुसे हुए तथा विवृत कहिये उघड़े प्रयत्न वाले उच्चारण करे। मैं मृत्युके आत्मा कहिये शरीरके अवयवोंको अपने शरीरमेंसे बाहर निकालता हूँ, ऐसा ध्यान करके सकल स्पर्श कहिये ककारसे मकार पर्यन्त अक्षरोंको धीरेसे तथा एक अक्षर दूसरेसे मिल न जाय, इस प्रकार उच्चारण करे ॥ ५ ॥

॥ इति द्वितीयाध्यायस्य द्वाविंशः खण्डः समाप्तः ॥

त्रयो धर्मस्कन्धा यज्ञोऽध्ययनं दानमिति, प्रथमस्तप एव, द्वितीयो ब्रह्मचार्याचार्यकुलवासी, तृतीयोऽत्यन्तमात्मानमाचार्यकुलेऽवसादयन्, सर्व एते पुण्यलोका भवंति, ब्रह्मसꣳस्थोऽमृतत्वमेति१

अन्वय और पदार्थ—(त्रयः) तीन (धर्मस्कन्धाः) धर्म के विभाग [सन्ति] हैं (यज्ञः) यज्ञ (अध्ययनम्) अध्ययन (दानम्) दान (इति) इस प्रकार (प्रथमः) पहिला (तपः, एव) तप ही है (द्वितीयः) दूसरा (आचार्यकुलवासी) आचार्यके कुलमें बसने वाला (ब्रह्मचारी) ब्रह्मचारी है (तृतीयम्) तीसरा (आचार्यकुले) आचार्यकुलमें (आत्मानम्) अपनेको (अत्यन्तम्) अत्यन्त (अवसादयन्) कष्ट देने वाला है (एते) ये (सर्वे) सब (पुण्यलोकाः) पुण्य

लोक वाले (भवन्ति) होते हैं (ब्रह्मसंस्थः) ब्रह्ममें स्थित हुआ (अमृतत्वम्) अमरभावको (एति) प्राप्त होता है ।१।

भावार्थ—यहाँ तक अधिकारीके अधिकारके अनुसार शरीर के साथ सम्बन्ध रखने वाली उपासनायें कहीं अब स्वतंत्र अधिकारीके लिये ॐकारकी उपासना कहते हुए पहिले धर्मके तीन विभाग और प्रणवोपासकको अमृतकी प्राप्ति कहते हैं—धर्मके तीन विभाग हैं उनमें प्रथम हैं अध्ययन और दान अर्थात् अग्निहोत्र आदि यज्ञ, नियमके साथ ऋग्वेद आदि का अभ्यासरूप अध्ययन और यज्ञकी वेदीके बाहर भिक्षुकों को यथाशक्ति अन्न आदि देना रूप दान यह गृहस्थसे संबंध रखने वाला धर्मका पहिला विभाग है। कृच्छ्रचान्द्रायण आदि व्रतरूप तप वानप्रस्थ वा संन्यासीसे संबन्ध रखने वाला दूसरा विभाग है। ब्रह्मचर्यको धारण किये हुए जीवन भर आचार्य के घर रहकर शरीरान्त कर देना तीसरा धर्म विभाग है, ये तीनों आश्रमों वाले इन कहे हुए धर्मोंसे पुण्यलोकोंको पाते हैं इनमें गृहस्थी यज्ञ अध्ययन और दानके द्वारा चन्द्रलोकको पाता है। तपस्वी तपस्याके द्वारा सूर्यलोकमें जाता है और नैष्ठिक ब्रह्मचारी निष्ठाके द्वारा ऋषिलोकमें जाता है तथा इनमें यदि कोई ब्रह्मज्ञानी होजाता है तो वह मोक्ष पाता है ॥ १ ॥

प्रजापतिर्लोकानभ्यतपत्, तेभ्योऽभितप्तेभ्यस्त्रयी विद्या सम्प्रास्रवत्तामभ्यतपत्तस्या अभितप्ताया एता-न्यक्षराणि सम्प्रास्रवन्त भूर्भुवः स्वरिति ॥ २ ॥

अन्वय और पदार्थ—(प्रजापतिः) प्रजापति (लोकान्,

अभि) लोकोंको लक्ष्य करके (अभ्यतपत्) तप करता हुआ (तेभ्यः) तिन (अभितप्तेभ्यः) तपे हुए लोकोंमेंसे (त्रयी विद्या) ऋगादि वेदविद्या (संप्रास्रवत्) ध्यानमें आयी (ताम्) उस त्रयी विद्याको (अभ्यतपम्) लक्ष्य करके तप किया (तस्याः) तिस (अभितप्तायाः) तपी हुई त्रयीविद्यासे (भूः भुवः स्वः इति) भूः भुवः स्वः इस प्रकारके (एतानि) यह (अक्षराणि) अक्षर (संप्रास्रवन्त) प्रकट हुए ॥ २ ॥

भावार्थ—ऊपर जो कहा, कि—तीन प्रकारके धर्मोंसे पुण्य-लोकोंकी प्राप्ति होती है, तिसमें गृहस्थधर्मके द्वारा त्रिलोकीमें ही आवागमन होता रहता है। उपकुर्वाण अर्थात् समावर्त्तन तक स्थायी ब्रह्मचर्यके द्वारा त्रिलोकीके बाहर महर्लोकमें और नैष्ठिक (आजन्म) ब्रह्मचर्यके द्वारा जनलोकमें गति होती है परन्तु ज्ञानी प्रकृतिके पार होजाता है। किस प्रकार प्रकृतिके पार होजाता है सो दिखाते हैं, विराट वा कश्यप प्रजापतिने सकल लोकोंका सार क्या है, इस बातको जाननेके लिये ध्यान रूप तप किया अर्थात् शब्दात्मक सकल लोकोंका ध्यान करने लगे। ध्यान करते २ उन सब लोकोंसे उनका सार-भूत ऋग्-यजुः-सामरूपा त्रयी विद्या प्रजापतिके अन्तःकरणमें प्रकाशित हुई तदनन्तर प्रजापति त्रयी विद्याका सार संग्रह करनेकी इच्छासे उसका ध्यानरूप तप करने लगा, ध्यान करते करते उस त्रयोविद्यामेंसे उसका साररूप भूः भुवः स्वः ये व्याहृतिरूप तीन अक्षर उसके मनमें प्रकाशित हुए ॥ २ ॥

तान्यभ्यतपत्तेभ्योऽभितप्तेभ्य ॐकारः सम्प्रास्रवत्

तद्यथा शङ्कुना सर्वाणि पर्णानि सन्तृण्णान्ये-वमोङ्कारेण सर्वा वाक् सन्तृण्णोङ्कार एवेदꣳसर्व-मोङ्कार एवेदं सर्वम् ॥ ३ ॥

अन्वय और पदार्थ—(तानि, अभ्यतपत्) उनका ध्यान किया (तेभ्यः) तिन (अभितप्तेभ्यः) ध्यान किये हुओंसे (ॐकारः) ॐकार (संप्रास्रवत्) प्रतीत हुआ (तत्) वह (यथा) जैसे (शंकुना) पत्तोंकी दण्डीसे (सर्वाणि) सब (पर्णानि) पत्ते (सन्तृण्णानि) व्याप्त हैं (एवम्) ऐसे ही (ॐकारेण) ॐकारके द्वारा (सर्वा) सब (वाक्) वाणी (सन्तृण्णा) व्याप्त होरही हैं (इदम्) यह (सर्वम्) सब (ॐकारः एव) ॐकार ही है (इदम्) यह (सर्वम्) सब (ॐकारः एव) ॐकार ही है ॥ ३ ॥

भावार्थ—तदनन्तर प्रजापति उन तीन अक्षरोंका सार ग्रहण करनेकी इच्छासे इनका ध्यान करने लगा, ध्यान करते करते उन तीन अक्षरोंमेंसे उनका सारभूत ओंकार प्रजापतिके मनमें प्रकाशित हुआ, जैसे पत्तोंकी दण्डीसे पत्तोंके सब अवयव व्याप्त होते हैं तैसे ही परमात्माके प्रतीक ॐकारके द्वारा सकल शब्द-भण्डार व्याप्त होरहा है। जगत् परमात्माका कार्य होनेके कारण परमात्मासे भिन्न नहीं है और परमात्मा ॐकारसे भिन्न नहीं है, इस कारण ॐकार ही सर्वरूप है ॐकार ही सर्वरूप है ॥ ३ ॥

॥ द्वितीयाध्यायस्य त्रयोविंशः खण्डः समाप्तः ॥

———o———

ब्रह्मवादिनो वदन्ति यद्वसूनां प्रातः सवनं रुद्राणां माध्यन्दिनं सवनमादित्यानाञ्च विश्वेषाञ्च देवानां तृतीयसवनम् ॥ १ ॥

अन्वय और पदार्थ—(ब्रह्मवादिनः) ब्रह्मवादी (वदन्ति) कहते हैं (यत्) जो (प्रातः सवनम्) प्रातः सवन है वह (वसूनाम्) वसुओंका है (माध्यन्दिनम्) मध्य दिवसका (सवनम्) सवन (रुद्राणाम्) रुद्रोंका है (च) और (तृतीयसवनम्) तीसरा सवन (आदित्यानाम्) आदित्योंका (च) और (विश्वेषाम्) सकल (देवानाम्) देवताओंका है ।१।

भावार्थ—ब्रह्मवादी कहते हैं, कि--जो प्रातःकालका सवन है वह वसु देवताओंका है, उन वसुओंने इस प्रातःसवनके सम्बन्धी भूलोकको वशमें कर रक्खा है । मध्यदिनका सवन रुद्रोंका है, उन रुद्रोंने माध्यन्दिन सवनके सम्बन्धी अन्तरिक्ष लोकको वशमें कर रक्खा है । तीसरा अर्थात् सायङ्कालका सवन आदित्य तथा विश्वेदेवाओंका है, उन्होंने सायंसवनके सम्बन्धी स्वर्गलोकको वशमें कर रक्खा है । इस कारण यजमानके लिये कोई लोक शेष नहीं रहता है, प्रातः मध्यान्ह और सायंकालमें सोमसे देवताओंको जो तर्पणरूप क्रिया कीजाती है, वह उस २ समयका सवन कहलाती है ॥ १ ॥

क्व तर्हि यजमानस्य लोक इति स यस्तं न विद्यात् कथं कुर्यादथ विद्वान् कुर्यात् ॥ २ ॥

अन्वय और पदार्थ—(तर्हि) तो (यजमानस्य) यजमानका (लोकः) लोक (क्व) कहाँ है (इति) इस प्रकार

(यः) जो (तम्) उसको (न) नहीं (विद्यात्) जाने (सः) वह (कथम्) कैसे (कुर्यात्) करे (अथ) इससे (विद्वान्) जानने वाला (कुर्यात्) करे ॥ २ ॥

भावार्थ—तो देहपातके अनन्तर यजमानका लोक कहाँ है ? कि—जिस लोकके लिये वह यजन करता है, इस प्रकार लोक का अभाव होनेके कारण जो यजमान उस साम, होम, मन्त्र और उत्थानरूप लोक स्वीकारके उपायको न जाने वह अज्ञानी यज्ञ कैसे करसकता है ? इस लिये अब जो कहे जायँगे उन साम आदिको जानने वाला ही यज्ञ करसकता है ॥ २ ॥

पुरा प्रातरनुवाकस्योपाकरणाज्जघनेन गार्हपत्यस्योदङ्मुख उपविश्य स वासवं सामाभिगायति

अन्वय और पदार्थ–(प्रातरनुवाकस्य) प्रातःकालीन अनुवाकके (उपाकरणात्) आरम्भ करनेसे (पुरा) पहिले (गार्हपत्यस्य) गार्हपत्य अग्निके (जघनेन) पश्चाद्भागमें (उदक्मुखः) उत्तराभिमुख (उपविश्य) बैठकर (सः) वह यजमान (वासवम्) वसु देवतावाले (साम) सामको (गायति) गाता है ३

भावार्थ—प्रातःकालके समय किये जाने वाले यज्ञके उपांगी अनुवाक कहिये गान रहित ऋचाओंके समूहका उच्चारण करनेसे पहिले गार्हपत्य अग्निके पीछेके भागमें उत्तराभिमुख बैठकर वह यजमान वसुदेवतावाले अर्थात् वसु आदि नामक भगवत्सम्बन्धी सामका गान करे ॥ ३ ॥

लो३ कद्वारमपावा ३ र्णू ३३ पश्येम त्वा

वयथ्ँरा ३३३३३ हुं ३ आ ३३ जा ३ यो ३ आ ३२१११ इति ॥ ४ ॥

अन्वय और पदार्थ-(लोकद्वारम्) लोकके द्वारको (अपःवर्णु) उघाड़ो (वयम्) हम (त्वा) तुम्हें (राज्याय) राज्य के लिये (पश्येम) देखते हैं ॥

भावार्थ—वह साम यह है हैं कि-हे अग्ने ! पृथिवीलोक की प्राप्तिके लिये द्वारको उघाड़ो, उस द्वारसे हम आपको पृथिवीलोककी प्राप्तिके लिये देखें ॥ ४ ॥

अथ जुहोति नमोऽग्नये पृथिवीक्षिते लोकक्षिते लोकं मे यजमानाय विन्दैष वै यजमानस्य लोक एतास्मि ॥ ५ ॥

अन्वय और पदार्थ—(अथ) इसके अनन्तर (जुहोति) होम करता है (पृथिवीक्षिते) पृथिवी पर निवास करनेवाले (लोकक्षिते) लोकमें निवास करने वाले (अग्नये) अग्निके अर्थ (नमः) नमस्कार है (मे) मुझ (यजमानाय) यजमानके लिये (लोकम्) लोकको (विन्द) प्राप्त करा (वै) निश्चय (एषः) यह (यजमानस्य) यजमानका (लोकः) लोक है (एतास्मि) जाऊँगा ॥ ५ ॥

भावार्थ-तदनन्तर इस मन्त्रसे आहुति देय, पृथिवीमें निवास करने वाले तथा लोकमें निवास करने वाले अग्निदेवको नमस्कार है, हे भगवन् ! आप मुझ यजमानको लोक प्राप्त कराइये यह मुझ यजमानका लोक है, कि—जिसमें मैं मरणके अनन्तर जानेवाला हूँ ॥ ५ ॥

अत्र यजमानः परस्तादायुषः स्वाहापजहि परिघमित्युक्त्वोत्तिष्ठति तस्मै वसवः प्रातःसवनꣳ संप्रयच्छन्ति ॥ ६ ॥

अन्वय और पदार्थ–(अत्र) इस लोकमें (यजमानः) यजमान (आयुषः) आयुके (परस्तात्) पीछे (स्वाहा) यह आहुति हुत हो (परिघम्) अर्गलाको (अपजहि) दूर करो (इति) ऐसा (उक्त्वा) कह कर (उत्तिष्ठति) उठता है (तस्मै) उसके लिये (वसवः) वसु (प्रातःसवनम्) प्रातःसवन (संप्रयच्छन्ति) देते हैं ॥ ६ ॥

भावार्थ–इस लोकमें जो मैं यजमान हूँ सो मैं आयुकी समाप्ति पर मरणको प्राप्त होकर परलोकमें जाने वाला हूँ, उस समय मनोरथकी सिद्धिके लिये यह सुन्दर आहुति अर्पण करता हूँ, हे अग्ने ! भूलोककी अर्गलाको दूर करो यह मन्त्र पढ़कर उठता है । इस प्रकार इस साम होम और मन्त्रके प्रभावसे वसुओंसे प्रातःसवनके सम्बन्ध वाला पृथिवीलोक खरीदा हुआ सा होजाता है, इस कारण उसको वसु प्रातःसवन देते हैं ॥६॥

पुरा माध्यन्दिनस्य सवनस्योपाकरणाज्जघनेनाग्नीध्रीयस्योदङ्मुख उपविश्य स रौद्रꣳ सामाभिगायति ॥ ७ ॥

अन्वय और पदार्थ–(माध्यन्दिनस्य) मध्यदिनके (सवनस्य) सवनके (उपाकरणात्) आरम्भसे (पुरा) पहिले (अग्नीध्रीयस्य) दक्षिणाग्निके (जघनेन) पीछे (उदङ्मुखः)

उत्तराभिमुख (उपविश्य) बैठ कर (सः) वह यजमान (रौद्रम्) रुद्र देवता वाले (साम) सामको (अभिगायति) गाता है ॥ ७ ॥

भावार्थ-मध्यदिनके सवनके आरम्भसे पहिले दक्षिणाग्नि के पीछे उत्तराभिमुख बैठकर वह यजमान अन्तरिक्षलोककी प्राप्तिके लिये रुद्र देवतावाले सामको उत्तम रीतिसे गाता है ७

लो३कद्वारमपावा३र्णू ३३ पश्येम त्वा वयं वैरा३३३३३ हुं३ आ३३ ज्या३ यो३ आ ३२१११ इति ॥ ८ ॥

अन्वय और पदार्थ-(लोकद्वारम्) अन्तरिक्ष-लोकके द्वार को (अपावार्णु) उघाड़ (वयम्) हम (वैराज्याय) अंतरिक्ष-लोककी प्राप्तिके लिये (त्वा) तुम्हें (पश्येम) देखते हैं ।८।

भावार्थ-हे अग्निदेव ! अन्तरिक्ष-लोककी प्राप्तिके लिये द्वारको उघाड़िये, उस द्वारसे हम आपको अन्तरिक्ष-लोककी प्राप्तिके निमित्त देखें ॥ ८ ॥

अथ जुहोति नमो वायवेऽन्तरिक्षक्षिते लोकक्षिते लोकं मे यजमानाय विन्दैष वै यजमानस्य लोक एतास्मि ॥ ९ ॥

अन्वय और पदार्थ-(अथ) अनन्तर (जुहोति) इस मंत्र से होम करता है (अन्तरिक्षक्षिते) अन्तरिक्षलोकमें बसने वाले (लोकक्षिते) लोकमें बसने वाले (वायवे) वायुके अर्थ (नमः) प्रणाम है (मे) मुझ (यजमानाय) यजमानके अर्थ (लोकम्)

लोक (विद) प्राप्त कराओ (वै) निश्चय (एषः) यह (लोकः) लोक (यजमानस्य) यजमानका है (एतास्मि) मैं जाऊँगा९

भावार्थ —फिर इस मन्त्रसे होम करता है- अन्तरिक्षमें बसने वाले तथा अन्तरिक्षलोकमें बसने वाले वायुको नमस्कार है, मुझ यजमानको लोक प्राप्त कराओ, यह यजमानका लोक है, कि-जिसमें मैं मरणके अनन्तर जाऊँगा ॥ ९ ॥

अत्र यजमानः परस्तादायुषः स्वाहा जहि परिघमित्युक्त्वोत्तिष्ठति तस्मै रुद्रा माध्यन्दिनꣳ सवनꣳ संप्रयच्छन्ति ॥ १० ॥

अन्वय और पदार्थ—(अत्र) इस लोकमें (यजमानः) यजमान (आयुषः) आयुके (परस्तात्) पीछे [गन्तास्मि] जाऊँगा (स्वाहा) यह आहुति उत्तम प्रकारसे हुत हो (परिघम्) अर्गलाको (अपजहि) हटाओ (इति) ऐसा (उक्त्वा) कह कर (उत्तिष्ठति) उठता है (तस्मै) उसको (रुद्राः) रुद्र (माध्यन्दिनम्) मध्यदिनका (सवनम्) सवन (संप्रयच्छन्ति) अर्पण करते हैं ॥ १० ॥

भावार्थ—इस लोकमें जो मैं यजमान हूँ वह आयु पूरी होने पर मरणके अनन्तर जाने वाला हूँ, ऐसा मैं यह आहुति देता हूँ, अन्तरिक्षलोककी अर्गलाको दूर करो, यह मन्त्र उच्चारण करके उठता है, इस प्रकार साम, होम और मन्त्रसे रुद्रोंसे मध्यदिनके सवनके सम्बन्ध वाला अन्तरिक्षलोक खरीदा हुआ होजाता है, इस कारण उसको रुद्र मध्यदिनका सवन अर्पण करते हैं ॥ १० ॥

पुरा तृतीयसवनस्योपाकरणाज्जघनेनाहवनीयस्योदङ्मुख उपविश्य स आदित्यꣳ स वैश्वदेवꣳ सामाभिगायति ॥ ११ ॥

अन्वय और पदार्थ—(तृतीयसवनस्य) तीसरे सवनके (उपाकरणात्) प्रारम्भ करनेसे (पुरा) पहिले (आहवनीयस्य) आहवनीय अग्निके (जघनेन) पीछे (उदङ्मुखः) उत्तराभिमुख (उपविश्य) बैठ कर (सः) वह (आदित्यम्) आदित्य देवताके (सः) वह (वैश्वदेवम्) विश्वेदेवाके (साम) सामको (अभिगायति) गाता है ॥ ११ ॥

भावार्थ—सायङ्कालके तीसरे सवनके आरम्भसे पहिले आहवनीयके पिछवाड़े उत्तराभिमुख बैठकर वह यजमान क्रमसे स्वाराज्य और साम्राज्यकी प्राप्तिके लिये आदित्य देवता वाले सामका और विश्वेदेवा देवता वाले सामका उत्तम रीतिसे गान करता है ॥ ११ ॥

लो३ कद्वारमपवा३र्णू ३३ पश्येम त्वा वयꣳ स्वारा ३३३३३ हुं ३ आ ३३ ज्या३ यो ३ आ३२१११ इति ॥ १२ ॥

अन्वय और पदार्थ—(लोकद्वारम्) स्वर्गलोकके द्वारको (अपावार्णू) उघाड़ (वयम्) हम (स्वाराज्याय) स्वर्गलोक की प्राप्तिके लिये (त्वा) तुझे (पश्येम) देखें ॥ १२ ॥

भावार्थ--हे अग्निदेव ! स्वर्गलोककी प्राप्तिके लिये द्वारको उघाड़िये,उस द्वारसे हम तुम्हें स्वर्गलोकको पानेके लिये देखें॥

आदित्यमथ वैश्वदेव लो३कद्वारमपावा३र्णू३ ३ पश्येम त्वा वयथ्ँ साम्ना ३ ३ ३ ३ ३ हुं३ आ ३ ३ ज्या३ यो३ आ३२१११ इति ॥ १३ ॥

अन्वय और पदार्थ-(अथ) इसके अनन्तर (आदित्यम्) आदित्य देवता वाले (वैश्वदेवम्) विश्वेदेवा देवता वाले (लोक-द्वारम्) लोकके द्वारको (अपावार्णू) उघाड़ (वयम्) हम (साम्राज्याय) साम्राज्यकी प्राप्तिके लिये (त्वा) तुझको (पश्येम) देखें ॥ १३ ॥

भावार्थ-इस प्रकार आदित्य देवता वाले सामका गान करने के अनन्तर विश्वेदेवा देवता वाले सामका गान करता है-हे अग्ने ! स्वर्गलोककी प्राप्तिके लिये द्वारको उघाड़ो, उस द्वारसे हम आपको स्वर्गलोककी प्राप्तिके लिये देखें ॥ १३ ॥

अथ जुहोति नम आदित्येभ्यश्च विश्वेभ्यश्च देवेभ्यो दिविक्षिद्भ्यो लोकक्षिद्भ्यो लोकं मे यजमानाय विन्दत ॥ १४ ॥

अन्वय और पदार्थ —(अथ) इसके अनन्तर (जुहोति) होम करता है (दिविक्षिद्भ्यः) स्वर्गमें बसने वाले (लोक-क्षिद्भ्यः) लोकमें बसने वाले (आदित्येभ्यः) आदित्योंके अर्थ (च) और (विश्वेभ्यः, देवेभ्यः) विश्वेदेवताओंके अर्थ (च) भी (नमः) नमस्कार है (मे) मुझ (यजमानाय) यजमानके अर्थ (लोकम्) लोकको (विन्दत) प्राप्त कराओ १४

भावार्थ—फिर इस मन्त्रसे होम करता है स्वर्गमें बसने वाले

तथा स्वर्गलोकमें बसने वाले आदित्योंको और विश्वेदेवताओं को भी प्रणाम है, मुझ यजमानके लिये लोक प्राप्त कराओ१४

एष वै यजमानस्य लोक एतास्म्यत्र यजमानः परस्तादायुषः स्वाहापहत परिघमित्युक्त्वोत्तिष्ठति

अन्वय और पदार्थ—(वै) निश्चय) (एषः) यह (यजमानस्य) यजमानका (लोकः) लोक है (अत्र) इस लोकमें (यजमानः) मैं यजमान (आयुषः) आयुके (परस्तात्) पीछे (एतास्मि) जाऊँगा (स्वाहा) यह आहुति उत्तमरूपसे हुत हो (परिघम्) अर्गलाको (अपहत) दूर करो (इति) ऐसा (उक्त्वा) कहकर (उत्तिष्ठति) उठता है ॥ १५ ॥

भावार्थ—यह यजमानका लोक है, इस लोकमें मैं यजमान आयुकी समाप्तिमें मरण होने पर जाऊँगा स्वाहा स्वर्गलोककी प्रतिबन्धकरूप अर्गलाको हटादो, यह मन्त्र पढ़कर उठता है ॥

तस्मा आदित्याश्च विश्वे च देवास्तृतीयसवनꣳ संप्रयच्छन्त्येष हु वै यज्ञस्य मात्रां वेद य एवं वेद य एवं वेद ॥ १६ ॥

अन्वय और पदार्थ–(तस्मै) तिसके अर्थ (आदित्याः) आदित्य (च) और (विश्वेदेवाः) विश्वेदेवा (च) भी (तृतीयसवनम्) तीसरे सवनको (संप्रयच्छन्ति) अर्पण करते हैं (यः) जो (एवम्) ऐसा (वेद) जानता है (यः) जो (एवम्) ऐसा (वेद) जानता है (ह) प्रसिद्ध (एषः) यह यजमान (वै) निश्चय (यज्ञस्य) यज्ञके (मात्राम्) स्वरूपको (वेद) जानता है ॥ १६ ॥

भावार्थ—इस प्रकार इन साम, होम, मन्त्र और उत्थानसे आदित्य तथा विश्वेदेवा देवताओंसे तीसरे सवनके संबन्धको प्राप्त हुआ। स्वर्गलोक क्रय किया हुआ होजाता है, इसकारण उसके लिये आदित्य और विश्वेदेवा देवता तीसरा सायंसवन देते हैं जो कहे हुए साम आदिको इस प्रकार जानता है ऐसा यह प्रसिद्ध यजमान यज्ञके कहेहुए स्वरूपको जानता है इस कारण उसको इसके अनुष्ठानसे इसका फल मिलना संभव है

॥ द्वितीयाध्यायस्य चतुर्विंशः खण्डः समाप्तः ॥

अथ तृतीयोऽध्यायः

ॐ असौ वा आदित्यो देवमधु तस्य द्यौरेव तिरश्चीनवꣳशोऽन्तरिक्षमपूपो मरीचयः पुत्राः १

अन्वय और पदार्थ-(वै) निश्चय (असौ) यह (आदित्यः) सूर्य (देवमधु) देवताओंका मधु है (द्यौः एव) स्वर्गलोक ही (तस्य) तिस मधुका (तिरश्चीनवंशः) तिरछा बाँस है (अन्तरिक्षम्) अन्तरिक्ष (अपूपः) पुआ है (मरीचयः) किरणें (पुत्राः) पुत्र हैं ॥ १ ॥

भावार्थ—यह प्रसिद्धसूर्य ही आनन्दका हेतु होनेसे देवताओं का मधु है स्वर्गलोक ही उस मधुका आधारभूत तिरछा बाँस है अर्थात् जैसे मधुचक्र कहिये शहदका छत्ता तिरछे काठमें लटका होता है तैसे ही सूर्यरूप मधुचक्र द्युलोकके आश्रयमें है अन्तरिक्ष अर्थात् शून्य उसका अपूप अर्थात् छिद्रयुक्त पुएकी समान है और सूर्यकी किरणोंमेंका जल कहिये भौमरस उसके पुत्र अर्थात् पुत्ररूप (मधुमक्षिकाओंके अण्डे) हैं ॥ १ ॥

तस्य ये प्राञ्चो रश्मयस्ता एवास्य प्राच्यो मधुनाड्य ऋच एव मधुकृत ऋग्वेद एव पुष्पं ता अमृता आपस्ता वा एता ऋचः ॥ २ ॥

अन्वय और पदार्थ—(तस्य) तिस सूर्यकी (ये) जो (प्राच्यः) पूर्वदिशामेंकी (रश्मयः) किरणें हैं (ताः, एव) वह ही (अस्य) इसी (प्राच्यः) पूर्वकी ओरकी (मधुनाड्यः) मधुकी नाड़ियें हैं (ऋचः एव) ऋचायें ही (मधुकृतः) मधुमक्षिका हैं (ऋग्वेदः एव) ऋग्वेद ही (पुष्पम्) पुष्प है (ताः) वह (एताः) यह (ऋचः) ऋचायें (वै) निश्चय (ताः) वह (अमृताः) अमृतरूप (आपः) जल हैं ॥२॥

भावार्थ—इस सूर्यकी पूर्व दिशामेंकी जो किरणें हैं वह ही पूर्व दिशाकी मधुनाड़ियें अर्थात् शहदके छत्तेके छिद्र हैं ऋचा नामके सकल मन्त्र ही मधु बनाने वाली मक्षिका हैं। ऋग्वेदमें विधान किया हुआ कर्म ही पुष्प है। कर्मके व्यवहारमें आने वाले सोमादि जल ही अमृतरूप जल हैं उनमेंके रसको लेकर ये मधुमक्षिकारूप ऋचायें रसको उत्पन्न करती हैं अर्थात् जैसे मधुमक्खियें पुष्पोंमेंसे रस लेकर मधु बनाती हैं तैसे ही ऋचा नामक मन्त्र ऋग्वेदमें विधान किये हुए कर्ममेंसे फलरूप रसको लेकर आदित्यके आश्रयसे रहने वाले मधुको उत्पन्न करते हैं कर्ममें प्रयोग किये हुए ये सकल ऋक्‌मन्त्र ही सोम और घृत आदिके साथ अग्निमें अर्पित हो पकते हुए अमृतमय रसरूप बनजाते हैं ॥ २ ॥

एतमृग्वेदमभ्यतपंस्तस्याभितप्तस्य यशस्तेज

इन्द्रियं वीर्यमन्नाद्यं रसोऽजायत ॥ ३ ॥

अन्वय और पदार्थ-(एतम्) इस (ऋग्वेदम्) ऋग्वेदको (अभ्यतपन्) अभितप्त करती हुई (अभितप्तस्य) तपे हुए (तस्य) तिसका (यशः) यश (तेजः) तेज (इन्द्रियम्) इन्द्रिय (वीर्यम्) बल (अन्नाद्यम्) खाने योग्य अन्न (रसः) रस (अजायत) उत्पन्न हुआ ॥ ३ ॥

भावार्थ-जैसे मधुमक्षिकायें फलोंमेंसे रस लेती हुई उस रस को अभितप्त और मधुरूपमें परिणत करती हैं तैसे ही ऋचा नामक मन्त्र सकल कर्मोंमें स्थित जलमय रसको ग्रहण करते हुए उस रसको अभितप्त करते हुए फल नामक मधुरूपमें परिणत कर देते हैं वह कर्ममेंके जलमय रस अभितप्त होकर कीर्ति शरीरमेंके प्रकाशरूप तेज शक्तियुक्त इन्द्रियोंकी अविकलता बल और भक्षण करने योग्य अन्न आदि रसरूपसे परिणत होजाते हैं यही मधु है ॥ ३ ॥

तद् व्यक्षरत्तदादित्यमभितोऽश्रयत्तद्वा एतद्यदेतदादित्यस्य रोहितꣳ रूपम् ॥ ४ ॥

अन्वय और पदार्थ-(तत्) वह यश आदि रस (व्यक्षरत्) विशेष रूपसे गमन करता हुआ (आदित्यम्) सूर्यको (अभितः) सब ओरसे (अश्रयत्) आश्रय करता हुआ (वै) निश्चय (यत्) जो (एतत्) यह (यत्) जो (रोहितम्) लाल (रूपम्) रूप है (एतत्) वह रस है ॥ ४ ॥

भावार्थ—यशसे लेकर अन्न पर्यन्त रस विशेषरूपसे फलने लगा और उसने आदित्यका चारों ओरसे आश्रय लिया, जो

उदय होते हुए आदित्यका लाल २ रूप दीखता है वही यह रस है ॥ ४ ॥

॥ तृतीयाध्यायस्य प्रथमः खण्डः समाप्तः ॥

अथ येऽस्य दक्षिणा रश्मयस्ता एवास्य दक्षिणा मधुनाड्यो यजूꣳष्येव मधुकृतो, यजुर्वेद एव पुष्पं ता अमृता आपः ॥ १ ॥

अन्वय और पदार्थ—(अथ) और (ये) जो (अस्य) इसकी (दक्षिणाः) दक्षिणकी ओरकी (रश्मयः) किरणें हैं (ताः,एव) वह ही (अस्य) इसकी (दक्षिणाः) दाहिनी ओरकी (मधुनाड्यः) मधुनाड़ी हैं (यजूंषि, एव) यजु ही (मधुकृतः) मधुमक्खियें हैं (यजुर्वेदः, एव) यजुर्वेद ही (पुष्पम्) पुष्प है (ताः) वह (अमृताः) अमृतरूप (आपः) जल है ॥ १ ॥

भावार्थ—और जो आदित्यकी दक्षिणकी ओरकी किरणें हैं वह ही इस शहद मुहालकी दक्षिणकी मधुनाड़ी हैं, यजुर्वेदके कर्ममें प्रयोग किये जानेवाले मन्त्र ही मधुमक्खी हैं, यजुर्वेदमें विहित कर्म ही पुष्प है, सोम आदि जल ही अमृतरूप जल देते हैं ॥ १ ॥

तानि वा एतानि यजूंष्येतं यजुर्वेदमभ्यतपंस्तस्याभितप्तस्य यशस्तेज इन्द्रियं वीर्यमन्नाद्यं रसोऽजायत ॥ २ ॥

अन्वय और पदार्थ-(वै) निश्चय (तानि) वह (एतानि) ये (यजूंषि) यजु (एतम्) इस (यजुर्वेदम्) यजुर्वेदको

(अभ्यतपन्) तपते हुए (अभितप्तस्य) तपे हुए (तस्य) तिसको (यशः) यश (तेजः) तेज (इन्द्रियम्) इन्द्रिय (वीर्यम्) बल (अन्नाद्यम्) भक्षण करने योग्य अन्न (रसः) रस (अजायत) उत्पन्न हुआ ॥ २ ॥

भावार्थ—उन ही इन मधु-मक्षिकारूप यजुओंने यजुर्वेदको तपा अर्थात् यजुर्वेदमें विधान किये हुए कर्मोंका निपीडन किया वा आलोचना की, उस आलोचित यागादि कर्मका कीर्ति, तेज, इन्द्रिय, बल और भक्षण करने योग्य अन्नरूप रस उत्पन्न हुआ ॥ २ ॥

तद् व्यक्षरत्तदादित्यमभितोऽश्रयत्तद्वा एतद्यदे-तदादित्यस्य शुक्लं रूपम् ॥ ३ ॥

अन्वय और पदार्थ—(तत्) वह (व्यक्षरत्) गमन करने लगा (तत्) वह (आदित्यम्, अभितः) आदित्यको चारों ओरसे (अश्रयत्) आश्रय करता हुआ (वै) निश्चय (यत्) जो (एतत्) यह (आदित्यस्य) सूर्यका (शुक्लम्) स्वेत (रूपम्) रूप है (एतत्) यह रस है ॥ ३ ॥

भावार्थ—कीर्त्तिसे लेकर अन्न पर्यन्तका वह रस इधर उधर को गमन करने लगा, उसने आदित्यका सब ओरसे आश्रय किया जो यह सूर्यका स्वेतरूप दीखता है यह वही रस है ॥३॥

॥ तृतीयाध्यायस्य द्वितीयः खण्डः समाप्तः ॥

अथ येऽस्य प्रत्यञ्चो रश्मयस्ता एवास्य प्रती-च्यो मधुनाड्यः सामान्येव मधुकृतः सामवेद एव पुष्पं ता अमृता आपः ॥ १ ॥

अन्वय और पदार्थ—(अथ) और (ये) जो (अस्य) इसकी (प्रत्यञ्चः) पश्चिमकी ओरकी (रश्मयः) किरणें हैं (ताः एव) वह ही (अस्य) इसकी (प्रतीच्यः) पश्चिमकी (मधुनाड्यः) मधुनाड़ियें हैं (सामानि, एव) साम ही (मधुकृतः) शहद बनाने वाली मक्षिका हैं (सामवेदः,एव) सामवेद ही (पुष्पम्) फूल है (ताः) वह (अमृताः) अमृतरूप (आपः) जल हैं ॥ १ ॥

भावार्थ—और जो इसकी पश्चिमकी ओरकी किरणें हैं वह ही इसकी पश्चिमकी मधुनाड़ी हैं, सामवेदी कर्ममें प्रयोग किये जानेवाले मन्त्र ही मधुमक्षिका हैं सामवेदमें विहित कर्म ही पुष्प हैं, सोम आदि जल ही अमृतरूप जल हैं ॥ १ ॥

तानि वा एतानि सामान्येतं सामवेदमभ्यतपंस्तस्याभितप्तस्य यशस्तेज इन्द्रियं वीर्यमन्नाद्यं रसोऽजायत ॥ २ ॥

अन्वय और पदार्थ—(वै) निश्चय (तानि) वह (एतानि) यह (सामानि) साम (एतम्) इस (सामवेदम्) सामवेद को (अभ्यतपन्) तपते हुए (तस्य) तिस (अभितप्तस्य) तपे हुए का (यशः) यश (तेजः) तेज (इन्द्रियम्) इन्द्रिय (वीर्यम्) बल (अन्नाद्यम्) भक्षण करने योग्य अन्न (रसः) रस (अजायत) उत्पन्न हुआ ॥ २ ॥

भावार्थ–उसमेंके रसको लेकर वही ये सामवेदके कर्ममें प्रयुक्त मन्त्रोंने इस सामवेदमें विहित कर्मकी आलोचना की उस आलो-

चित याग आदि कर्मका यश, तेज, इन्द्रिय, बल और भक्षण करने योग्य अन्नरूप रस उत्पन्न हुआ ॥ २ ॥

तद् व्यक्षरत्तदादित्यमभितोऽश्रयत्तद्वा एतद्यदे-तदादित्यस्य कृष्णꣳ रूपम् ॥ ३ ॥

अन्वय और पदार्थ—(तत्) वह (व्यक्षरत्) विशेषरूप से गमन करने लगा (तत्) वह (आदित्यम्) आदित्यको (अभितः) चारों ओरसे (अश्रयत्) आश्रय करता हुआ (वै) निश्चय (यत्) जो (एतत्) यह (आदित्यस्य) आदित्यका (कृष्णम्) काला (रूपम्) रूप है (तत्) वह (एतत्) यह है ॥ ३ ॥

भावार्थ—वह यशसे अन्न पर्यन्त रस विशेषरूप गमन करता हुआ चारों ओरसे आदित्यमण्डलका आश्रय लेकर स्थित होता है, आदित्यका जो कृष्णरूप है वही यह रस है ॥ ३ ॥

॥ तृतीयाध्यायस्य तृतीयः खण्डः समाप्तः ॥

अथ येऽस्योदञ्चो रश्मयस्ता एवास्योदीच्यो मधु-नाड्योऽथर्वाङ्गिरस एव मधुकृत इतिहासपुराणं पुष्पं ता अमृता आपः ॥ १ ॥

अन्वय और पदार्थ—(अथ) और (ये) जो (अस्य) इसके (उदञ्चः) उत्तरकी ओरकी (रश्मयः) किरणें हैं (ताः, एव) वह ही (अस्य) इसकी (मधुनाड्यः) मधुनाड़ी हैं (अथर्वाङ्गिरसः, एव) अथर्वाङ्गिरस मन्त्र ही (मधुकृतः) मधु-मक्षिका हैं (इतिहासपुराणम्) इतिहास और पुराण (पुष्पम्) पुष्प हैं (ताः) वह (अमृताः) अमृतरूप (आपः) जल हैं १

भावार्थ—और जो इसकी उत्तरकी ओरकी किरणें हैं वह ही इसकी उत्तरकी ओरकी मधुनाड़ियें हैं, अथर्वा और अङ्गिराके देखे हुए कर्ममें प्रयोग किये जानेवाले मन्त्र ही मधुमक्षिका हैं, इतिहास और पुराणके सम्बन्धका कर्म ही पुष्प है और सोम आदिका जल ही अमृतरूप जल होता है ॥ १ ॥

ते वा एतेऽथर्वाङ्गिरस एतदितिहासपुराणमभ्यतपंस्तस्याभितप्तस्य यशस्तेज इन्द्रियं वीर्यमन्नाद्यं रसोऽजायत ॥ २ ॥

अन्वय और पदार्थ—(वै) निश्चय (ते) वह (एते) ये (अथर्वाङ्गिरसः) अथर्वाङ्गिरस (इतिहासपुराणम्) इतिहास पुराणको (अभ्यतपन्) निष्पीड़न करते हुए (अभितप्तस्य) निष्पीड़ित हुए (तस्य) उसका (यशः) यश (तेजः) तेज (इन्द्रियम्) इन्द्रिय (वीर्यम्) बल (अन्नाद्यम्) खाने योग्य अन्न (रसः) रस (अजायत) उत्पन्न हुआ ॥ २ ॥

भावार्थ—उन अथर्वा और अंगिराके देखे हुए मन्त्रोंसे इतिहास पुराणका निष्पीड़न किया उस निष्पीड़ित कर्मका कीर्त्ति, प्रकाश, इन्द्रिय, बल और भक्षण करने योग्य अन्नरूप रस उपजा ॥ २ ॥

तद् व्यक्षरत्तदादित्यमभितोऽश्रयत्तद्वा एतद्यदेतदादित्यस्य परं कृष्णं रूपम् ॥ ३ ॥

अन्वय और पदार्थ—(तद्) वह (व्यक्षरत्) विशेषरूपसे गमन करता हुआ (तत्) वह (आदित्यम्) सूर्यको (अभितः) सब ओरसे (अश्रयत्) आश्रय करता हुआ (वै) निश्चय

(यत्) जो (एतत्) यह (आदित्यम्) आदित्यका (परम्) अत्यन्त (कृष्णम्) काला (रूपम्) रूप है (तत्) वह (एतत्) यह रस है ॥ ३ ॥

भावार्थ—वह कीर्त्तिसे लेकर अन्न पर्यंत रस आदित्यमण्डल में जा चारों ओरसे उसका ही आश्रय करके स्थित होगया, आदित्यका जो अतिकाला रूप साधकोंको दीखता है वही यह रस है ॥ ३ ॥

॥ इति तृतीयाध्यायस्य चतुर्थः खण्डः ॥

अथ येऽस्योर्ध्वा रश्मयस्ता एवास्योर्ध्वा मधुनाड्यो गुह्या एवाऽऽदेशा मधुकृतो ब्रह्मैव पुष्पं ता अमृता आपः ॥ १ ॥

अन्वय और पदार्थ-(अथ) और (ये) जो (अस्य) इसकी (ऊर्ध्वाः) ऊपरके भागकी (रश्मयः) किरणें हैं (ताः एव) वह ही (अस्य) इसकी (ऊर्ध्वाः) ऊपरकी (मधुनाड्यः) मधुनाड़ी हैं (गुह्याः) गुप्त रखने योग्य (आदेशाः, एव) आज्ञायें ही (मधुकृतः) मधुमक्षिका हैं (ब्रह्म, एव) प्रणव नामक ब्रह्म ही (पुष्पम्) पुष्प है (ताः) वह (अमृताः) अमृतरूप (आपः) जल हैं ॥ १ ॥

भावार्थ—आदित्यकी ऊपरके भागकी जो किरणें हैं वह ही उसकी ऊपरी मधुनाड़ियें हैं, लोकके द्वारको उघाड़ो इत्यादि विधियें और कर्माङ्गसम्बन्धी सकल उपासनायें ही मधुमक्षिका हैं प्रणव नामक ब्रह्म ही पुष्प है ये सब उपासनायें ही अमृत रसरूपसे परिणामको प्राप्त होती हैं ॥ १ ॥

ते वा एते गुह्या आदेशा एतद्ब्रह्माभ्यतपंस्त-स्याभितप्तस्य यशस्तेज इन्द्रियं वीर्यमन्नाद्यं रसोऽजायत ॥ २ ॥

अन्वय और पदार्थ—(वै) निश्चय (ते) वह (एते) ये (गुह्याः) गोप्य (आदेशाः) आदेश (एतत्) इस (ब्रह्म) ब्रह्मको (अभ्यतपन्) अभितप्त करते हुए (अभितप्तस्य) अभितप्त हुए (तस्य) उसका (यशः) यश (तेजः) तेज (इन्द्रियम्) इन्द्रिय (वीर्यम्) बल (अन्नाद्यम्) भक्षणयोग्य अन्न (रसः) रस (अजायत) उत्पन्न हुआ ॥ २ ॥

भावार्थ—उसके रसको लिये हुए यह सब उपासनायें ही प्रणव ब्रह्मको अभितप्त करती हैं, उस अभितप्त हुए प्रणवमेंसे कीर्ति तेज इन्द्रिय बल और अन्नरूप रस उत्पन्न होता है २

तद् व्यक्षरत्तदादित्यमभितोऽश्रयत्तद्वा एतद्यदे-तदादित्यस्य मध्ये क्षोभत इव ॥ ३ ॥

अन्वय और पदार्थ—(तत्) वह (व्यक्षरत्) विशेषरूप से गमन करता हुआ (तत्) वह (आदित्यम्) आदित्यको (अभितः) सब ओरसे (अश्रयत्) आश्रय करता हुआ (यत्) जो (एतत्) यह (आदित्यस्य) आदित्यके (मध्ये) मध्यमें (क्षोभते इव) चलता हुआसा दीखता है (वै) निश्चय (तत्) वह (एतत्) यही रस है ॥ ३ ॥

भावार्थ—वह कीर्त्तिसे लेकर अन्न पर्यन्त रस आदित्य-मण्डलमें जाकर उसके ही आश्रयसे रहता है, आदित्यमें जो

आस्त्रमें कहे हुए विषयमें एकाग्र चित्त वाले पुरुषको स्पन्दन होता दीखता है वही रस है ॥ ३ ॥

ते वा एते रसानां रसा वेदा हि रसास्तेषामेते रसास्तानि वा एतान्यमृतानाममृतानि वेदा ह्यमृतास्तेषामेतान्यमृतानि ॥ ४ ॥

अन्वय और पदार्थ-(वै) निश्चय (ते) वह (एते) यह (रसानाम्) रसोंके (रसाः) रस हैं (वेदाः, हि) वेद ही (रसाः) रस हैं (तेषाम्) उनके (एते) ये (रसाः) रस हैं (तानि) वह (एतानि) यह (वै) निश्चय (अमृतानाम्) अमृतोंके (अमृतानि) अमृत है (वेदाः, हि) वेद ही (अमृताः) अमृत हैं (तेषाम्) उनके (एतानि) ये (अमृतानि) अमृत हैं॥

भावार्थ-आदित्यके ये लोहित आदि रूप ही रसोंमें श्रेष्ठ रस हैं, कर्म आदि भावको प्राप्त हुए वेद ही त्रिलोकीके सारभूत होनेके कारण रस हैं और उनके ये लोहित आदिरूप रस हैं, इनसे ही अन्न आदि रसोंकी उत्पत्ति होती है। ये ही अमृतोंके अमृत हैं और इनका यह लोहित आदि रूप अमृत हैं, वेद ही अमृत हैं, वेदसे ही और सकल अमृतोंकी उत्पत्ति होती है ॥ ४ ॥

॥ इति तृतीयाध्यायस्य पञ्चमः खण्डः समाप्तः ॥

तद्यत्प्रथमममृतं तद्वसव उपजीवन्त्यग्निना मुखेन न वै देवा अश्नन्ति पिबन्त्येतदेवामृतं दृष्ट्वा तृप्यन्ति

अन्वय और पदार्थ-(तत्) तिसमें (यत्) जो (प्रथमम्) पहला (अमृतम्) अमृत है (तत्) उसको (अग्निना) अग्नि-

रूप (मुखेन) मुखके द्वारा (वसवः) वसु (उपजीवन्ति) जीवनका साधन हैं (देवाः) देवता (न) नहीं (अश्नन्ति) खाते हैं (न) नहीं (पिबन्ति) पीते हैं (एतत्-एव) इस ही (अमृतम्) अमृतको (दृष्ट्वा) देख कर (तृप्यन्ति) तृप्त होते हैं ॥ १ ॥

भावार्थ—आदित्यमें जो लोहितरूप पहिला अमृत है, उसको प्रातःसवनके अधिपति वसुदेवता अग्निरूप मुखसे ग्रहण करते हैं, निःसन्देह देवता न खाते हैं, न पीते हैं, किन्तु इस अमृत को देख कर ही तृप्त होजाते हैं। तात्पर्य यह है, कि—सूर्यका जो लोहितरूप है वही कीर्त्ति शरीरका तेज, इन्द्रियोंकी तथा शरीरकी सामर्थ्य और शरीरकी स्थितिका हेतु अन्न है तथा वही मधु वा अमृत है। शरीर और कारणके दोषोंसे रहित देवता उस अमृतका अपनी इन्द्रियोंसे अनुभवमात्र करके तृप्त होजाते हैं ॥ १ ॥

त एतदेव रूपमभिसंविशन्त्येतस्माद्रूपादुद्यन्ति २

अन्वय और पदार्थ—(ते) वह (एतत्, एव) इस ही (रूपम्) रूपके प्रति (अभिसंविशन्ति) उपरामको प्राप्त होते हैं (एतस्मात्) इस (रूपात्) रूपसे (उद्यन्ति) उत्साह वाले होते हैं ॥ २ ॥

भावार्थ—वह वसु इस ही रूपकी ओरको देख, भोगका समय न जानकर उपरामको प्राप्त होते हैं और जब भोगका अवसर आता है तब अमृतके भोगके लिये इस रूपकी ओरको उत्साह वाले होते हैं ॥ २ ॥

स य एतदेवममृतं वेद वसूनामेवैको भूत्वाग्नि-नैव मुखेनैतदेवामृतं दृष्ट्वा तृप्यति, स य एतदेव रूपमभिसंविशत्येतस्माद् रूपादुदेति ॥ ३ ॥

अन्वय और पदार्थ—(यः) जो (एतत्) इस (अमृतम्) अमृतको (एवम्) इस प्रकार (वेद) जानता है (सः) वह (वसूनाम्, एव) वसुओंमेंका ही (एकः) एक (भूत्वा) होकर (अग्निना, एव) अग्निरूप ही (मुखेन) मुखसे (एतत्, एव) इस ही (अमृतम्) अमृतको (दृष्ट्वा) देख कर (तृप्यति) तृप्त होता है (यः) जो (एतत्, एव) इस ही (रूपम्) रूपके प्रति (अभिसंविशति) उपरामको प्राप्त होता है (एतस्मात्) इस (रूपात्) रूपसे (उदेति) उत्साह वाला होता है (सः) वह [तथा भवति] तैसा ही होता है ३

भावार्थ–जो इस अमृतको इस रीतिसे उपासना करता है, वह वसुओंमेंका एक होकर अग्निरूप मुखसे ही इस अमृतका सब इन्द्रियोंके द्वारा अनुभव करके तृप्त होता है, इस रूपको देख कर भोगके अभावकालमें उपरत रहता है और भोगकाल में इस ही रूपके प्रति उत्साह वाला होता है वह भी वसुओं की समान सबका इसी प्रकार अनुभव करता है ॥ ३ ॥

त एतदेव रूपमभिसंविशन्त्येतस्माद् रूपादुद्यंति

अन्वय और पदार्थ— (ते) वह (एतत्, एव) इस ही (रूपम् अभि) रूपके प्रति (संविशन्ति) उपरत होते हैं (एतस्मात्) इस ही (रूपात्) रूपसे (उद्यन्ति) उत्साह वाले होते हैं ॥ २ ॥

भावार्थ—वह रुद्र इस ही रूपकी ओरको देख भोगका समय न जानकर उपरामको प्राप्त होते हैं और भोगका समय होने पर अमृतके भोगके लिये इस रूपके प्रति उत्साह वाले होते हैं

स य एतदेवममृतं वेद रुद्राणामेवैको भूत्वेन्द्रेणैव मुखेनैतदेवामृतं दृष्ट्वा तृप्यति स एतदेव रूपमभिसंविशत्येतस्माद्रूपादुदेति ॥ ३ ॥

अन्वय और पदार्थ—(यः) जो (एतत्) इस (अमृतम्) अमृतको (एवम्) इस प्रकार (वेद) उपासना करता है (सः) वह (रुद्राणाम्, एव) रुद्रोंमेंका ही (एकः) एक (भूत्वा) होकर (इन्द्रेण, एव) इन्द्ररूप ही (मुखेन) मुखसे (एतदेव) इस ही (अमृतम्) अमृतको (दृष्ट्वा) देखकर (तृप्यति) तृप्त होता है (सः) वह (एतत्—एव) इस ही (रूपम्) रूपके प्रति (संविशति) उपरत होता है (एतस्मात्) इस (रूपात्) रूपसे (उदेति) उदयको प्राप्त होता है ॥ ३ ॥

भावार्थ—जो इस अमृतको इस प्रकार जानकर उपासना करता है वह रुद्रोंमेंका ही एक रुद्र होकर इन्द्ररूप मुखके द्वारा ग्रहण करनेके अनन्तर इस अमृतको देखकर ही तृप्त होजाता है, वह भोगकाल न होने पर इस रूपमें ही प्रवेश करता है और भोगकालमें इस रूपसे ही उदयको प्राप्त होकर उत्साह वाला होता है ॥ ३ ॥

स यावदादित्यः पुरस्तादुदेता। पश्चादस्तमेता वसूनामेव तावदाधिपत्यं स्वाराज्यं पर्येता ॥४॥

अन्वय और पदार्थ—(यावत्) जबतक (आदित्यः) आदित्य (पुरस्तात्) पूर्वमें (उदेता) उदय होता रहेगा (पश्चात्) पश्चिममें (अस्तम्) अस्तको (एता) प्राप्त होता रहेगा (तावत्) तबतक (सः) वह (वसूनाम् एव) वसुओं के ही (आधिपत्यम्) प्रभुत्वको (स्वाराज्यम्) स्वाराज्यको (पर्येता) पूर्णरूपसे प्राप्त होगा ॥ ४ ॥

भावार्थ—जब तक आदित्यका पूर्वमें उदय होता है और पश्चिममें अस्त होता है तबतक वह उपासक प्रसिद्ध वसुओंकी प्रभुताको और साम्राज्यको पाता है अर्थात् वसुओंका अधीन और उनका भोग्यरूप नहीं होता है ॥ ४ ॥

॥ तृतीयाध्यायस्य षष्ठः खण्डः समाप्तः ॥

अथ यद् द्वितीयममृतं तद्रुद्रा उपजीवन्तीन्द्रेण मुखेन वै देवा अश्नन्ति न पिबन्त्येतदेवामृतं दृष्ट्वा तृप्यन्ति ॥ १ ॥

अन्वय और पदार्थ–(अथ) और (यत्) जो (द्वितीयम्) दूसरा अमृत है (तत्) उसमें (रुद्राः) रुद्र (इन्द्रेण) इन्द्ररूप (मुखेन) मुखसे (उपजीवन्ति) उपजीवन करते हैं (देवाः) देवता (वै) निश्चय (न) नहीं (अश्नन्ति) भक्षण करते हैं (न) नहीं (पिबन्ति) पीते हैं (एतत्) इस (अमृतम्) अमृतको (दृष्ट्वा, एव) देखकर ही (तृप्यन्ति) तृप्त होजाते हैं १

भावार्थ—अब जो दूसरा शुक्लरूप अमृत है उसको मध्य दिन सवनके नियन्ता रुद्र इन्द्ररूप मुखसे ग्रहण करते हैं, वह देवता न खाते हैं, न पीते हैं, किन्तु उस अमृतको देखकर ही तृप्त होजाते हैं ॥ १ ॥

स यावदादित्यः पुरस्तादुदेता पश्चादस्तमेता द्विस्तावद्दक्षिणत उदेतोत्तरतोऽस्तमेता रुद्राणामेव तावदाधिपत्यं स्वाराज्यं पर्येता ॥ ४ ॥

अन्वय और पदार्थ-(यावत्) जबतक (आदित्यः) आदित्य (पुरस्तात्) पूर्वमें (उदेता) उदय होगा (पश्चात्) पश्चिम में (अस्तम्-एता) अस्तको प्राप्त होगा (द्विस्तावत्) उससे द्विगुण काल (दक्षिणतः) दक्षिणमें (उदेता) उदय होगा (तावत्) उतने कालतक (रुद्राणाम् एव) रुद्रोंके ही (आधिपत्यम्) प्रभुत्वको (स्वाराज्यम्) स्वाराज्यको (पर्येता) पूर्ण रूपसे प्राप्त होगा ॥ ४ ॥

भावार्थ-जबतक आदित्य पूर्व दिशामें उदय और पश्चिम दिशामें अस्त होता रहेगा और उससे द्विगुण कालतक दक्षिण में उदय और उत्तरमें अस्त होता रहेगा उतने काल तक वह उपासक रुद्रोंके ही आधिपत्य तथा स्वाराज्यको पावेगा ॥४॥

॥ तृतीयाध्यायस्य सप्तमः खण्डः समाप्तः ॥

अथ यत् तृतीयममृतं तदादित्या उपजीवन्ति वरुणेन मुखेन न वै देवा अश्नन्ति न पिबन्त्येत-देवामृतं दृष्ट्वा तृप्यन्ति ॥ १ ॥

अन्वय और पदार्थ-(अथ) और (यत्) जो (तृतीयम्) तीसरा (अमृतम्) अमृत है (तत्) उसको (आदित्याः) आदित्य (वरुणेन) वरुणरूप (मुखेन) मुखसे (उपजीवन्ति) उपजीवनका साधन करते हैं (वै) निश्चय (देवाः) देवता (न) नहीं (अश्नन्ति) खाते हैं (न) नहीं (पिबन्ति)

पीते हैं (एतत् एव) इस ही (अमृतम्) अमृतको (दृष्ट्वा) देखकर (तृप्यन्ति) तृप्त होते हैं ॥ १ ॥

भावार्थ—और जो तीसरा अमृत है उससे आदित्य अपना जीवन वरुणरूप मुखके द्वारा करते हैं, देवता न खाते हैं, न पीते हैं किन्तु इस अमृतको देखकर ही तृप्त रहते हैं १

त एतदेव रूपमभिसंविशन्त्येतस्माद् रूपादुद्यन्ति

अन्वय और पदार्थ- (ते) वह (एतत् एव) इस ही (रूपम् अभि) रूपके प्रति (संविशन्ति) उपरामको प्राप्त होते हैं (एतस्मात्) इस (रूपात्) रूपसे (उद्यन्ति) उदयको प्राप्त होते हैं ॥ २ ॥

भावार्थ–वह आदित्य भोग न होनेके अवसरमें इस ही रूप के प्रति उपरामको प्राप्त होते हैं और भोगकालमें इस रूपके प्रति ही उद्योग वाले होते हैं ॥ २ ॥

स य एतदेवममृतं वेदादित्यानामेवैको भूत्वा वरुणेनैव मुखेनैतदेवामृतं दृष्ट्वा तृप्यति स एतदेव रूपमभिसंविशत्येतस्माद् रूपादुदेति ॥ ३ ॥

अन्वय और पदार्थ--(यः) जो (एतत्) इस (अमृतम्) अमृतको (एवम्) इस प्रकार (वेद) जानकर उपासना करता है (सः) वह (आदित्यानाम् एव) आदित्योंमेंका ही (एकः) एक (भूत्वा) होकर (वरुणेन एव) वरुणरूप ही (मुखेन) मुखसे (एतत् एव) इस ही (अमृतम्) अमृत को (दृष्ट्वा) देखकर (तृप्यति) तृप्त होता है (सः) वह (एतत् एव) इस ही (रूपम् अभि) रूपके प्रति (संविशति)

उपरामको प्राप्त होता है (एतस्मात्) इस (रूपात्) रूपसे (उदेति) उदयको प्राप्त होता है ॥ ३ ॥

भावार्थ–जो इस अमृतको इस प्रकार जानकर उपासना करता है वह आदित्योंमेंका एक आदित्य होकर वरुणरूप मुखके द्वारा इस अमृतका सब इन्द्रियोंसे अनुभव करके ही तृप्त होजाता है तथा वह भोगकाल न होने पर इस रूपमें प्रवेश करके उपरत होजाता है और भोगकालमें इस रूपमेंसे ही उदय को प्राप्त होजाता है ॥ ३ ॥

स यावदादित्यो दक्षिणत उदेतोत्तरतोऽस्तमेता द्विस्तावत्पश्चादुदेता पुरस्तादस्तमेताऽऽदित्याना-मेव तावदाधिपत्यं स्वाराज्यं पर्येता ॥ ४ ॥

अन्वय और पदार्थ--(यावत्) जबतक (आदित्यः) आदित्य (दक्षिणतः) दक्षिणमें (उदेता) उदय होता रहेगा (उत्तरतः) उत्तरमें (अस्तम् एता) अस्तको प्राप्त होता रहेगा (द्विस्तावत्) उससे द्विगुण समय तक (पश्चात्) पश्चिममें (उदेता) उदय होता रहेगा (उत्तरतः) उत्तरमें (अस्तम्-एता) अस्तको प्राप्त होता रहेगा (तावत्) तब तक (सः) वह (आदित्यानाम् एव) आदित्योंके ही (आधिपत्यम्) प्रभुत्वको (स्वाराज्यम्) स्वाराज्यको (पर्येता) पूर्ण रूपसे प्राप्त होगा ॥ ४ ॥

भावार्थ–जब तक सूर्य दक्षिणमें उदय होता रहेगा और उत्तरमें अस्त होता रहेगा तथा उससे द्विगुण समय पर्यन्त

पश्चिममें उदय होता रहेगा और पूर्वमें अस्त होता रहेगा तब तक वह आदित्योंकी प्रभुता और स्वाराज्यको पावेगा ॥४॥

॥ तृतीयाध्यायस्याष्टमः खण्डः समाप्तः ॥

अथ यच्चतुर्थममृतं तन्मरुत उपजीवन्ति सोमेन मुखेन न वै देवा अश्नन्ति न पिबन्त्येत-देवामृतं दृष्ट्वा तृप्यन्ति ॥ १ ॥

अन्वय और पदार्थ—(अथ) और (यत्) जो (चतुर्थम्) चौथा (अमृतम्) अमृत है (तत्) उसको (मरुतः) मरुत् (सोमेन) सोमरूप (मुखेन) मुखसे (उपजीवन्ति) जीवनका साधन करते हैं (देवाः) देवता (वै) निश्चय (न) नहीं (अश्नन्ति) खाते हैं (न) नहीं (पिबन्ति) पीते हैं (एतत्-एव) इस ही (अमृतम्) अमृतको (दृष्ट्वा) देख कर (तृप्यन्ति) तृप्त होते हैं ॥ १ ॥

भावार्थ—और जो चौथा अमृत है उससे देवता सोमरूप मुखके द्वारा जीवन धारण करते हैं, देवता न खाते हैं, न पीते हैं किन्तु इस अमृतको देखकर ही तृप्त रहते हैं ॥ १ ॥

त एतदेव रूपमभिसंविशन्त्येतस्माद्रूपादुद्यन्ति २

अन्वय और पदार्थ-(ते) वह (एतत्, एव) इस ही (रूपम्-अभि) रूपके प्रति (संविशन्ति) उपरामको प्राप्त होते हैं (एतस्मात्) इस (रूपात्) रूपसे (उद्यन्ति) उदयको प्राप्त होते हैं ॥२॥

भावार्थ—वह भोग न होनेके समय इस ही रूपमें प्रवेश करके उपरामको प्राप्त होते हैं और भोगकालमें इस ही रूपमें से उदयको प्राप्त होते हैं ॥ २ ॥

स य एतदेवममृतं वेद मरुतामेवैको भूत्वा सोमेनैव मुखेनैतदेवामृतं दृष्ट्वा तृप्यति स एत-देव रूपमभिसंविशत्येतस्माद्रूपादुदेति ॥ ३ ॥

अन्वय और पदार्थ—(यः) जो (एतत्-एव) इस ही (अमृतम्) अमृतको (वेद) जानकर उपासना करता है (सः) वह (मरुताम्-एव) मरुतोंमेंका ही (एकः) एक (भूत्वा) होकर (सोमेन एव) सोमरूप ही (मुखेन) मुख मुखसे (एतत्-एव) इस ही (अमृतम्) अमृतको (दृष्ट्वा) देखकर (तृप्यति) तृप्त होजाता है (सः) वह (एतत्-एव) इस ही (रूपम्-अभि) रूपके प्रति (संविशति) उपरामको प्राप्त होता है (एतस्मात्) इस (रूपात्) रूपसे (उदेति) उदयको प्राप्त होता है ॥ ३ ॥

भावार्थ–जो इस अमृतको इस प्रकार जानकर उपासना करता है वह मरुतोंमेंका एक होकर सोमरूप मुखके द्वारा इस अमृतका सकल करणोंसे अनुभव करके तृप्त होजाता है तथा भोगकाल न होने पर इस रूपके प्रति उदासीन रहता है और भोगकालमें उत्साह युक्त रहता है ३ ॥

स यावदादित्यः पश्चादुदेता पुरस्तादस्तमेता द्विस्तावदुत्तरत उदेता दक्षिणतोऽस्तमेता मरुता-मेव तावदाधिपत्यं स्वाराज्यं पर्येता ॥ ४ ॥

अन्वय और पदार्थ—(यावत्) जब तक (आदित्यः) आदित्य (पश्चात्) पश्चिममें (उदेता) उदय होता रहेगा

(पुरस्तात्) पूर्वमें (अस्तम्-एता) अस्तको प्राप्त होगा (द्विस्तावत्) उससे द्विगुण काल तक (उत्तरतः) उत्तरमें (उदेता) उदय होता रहेगा (दक्षिणतः) दक्षिणमें (अस्तम्, एता) अस्त होता रहेगा (तावत्) तब तक (सः) वह (मरुताम्, एव) मरुतोंके ही (आधिपत्यम्) प्रभुत्वको (स्वाराज्यम्) स्वाराज्यको (पर्येता) प्राप्त होगा ॥ ४ ॥

भावार्थ—जब तक सूर्य पश्चिममें उदय और पूर्वमें अस्त होता रहेगा और उससे दुगने समय तक उत्तर में उदय और दक्षिणमें अस्त होता रहेगा, उतने समय तक वह उपासक मरुतोंके ही प्रभुत्व और स्वाराज्यको पावेगा ॥ ४ ॥

॥ तृतीयाध्यायस्य नवमः खण्डः समाप्तः ॥

अथ यत्पञ्चमममृतं तत्साध्या उपजीवन्ति ब्रह्मणा मुखेन न वै देवा अश्नन्ति न पिबन्त्येतदेवामृतं दृष्ट्वा तृप्यन्ति ॥ १ ॥

अन्वय और पदार्थ--(अथ) और (यत्) जो (पञ्चमम्) पाँचवाँ (अमृतम्) अमृत है (तत्) उसको (साध्याः) साध्य (ब्रह्मणा) ब्रह्मरूप (मुखेन) मुखसे (उपजीवन्ति) उपजीवनका साधन करते हैं (देवाः) देवता (वै) निश्चय (न) नहीं (अश्नन्ति) खाते हैं (न) नहीं (पिबन्ति) पीते हैं (एतत् एव इस ही (अमृतम्) अमृतको (दृष्ट्वा) देखकर (तृप्यन्ति) तृप्त होते हैं ॥ १ ॥

भावार्थ-और जो पाँचवाँ अमृत है उसको साध्य ब्रह्मरूप मुखसे ग्रहण करते हैं, वह न खाते हैं, न पीते हैं, इस अमृतको देखकर ही तृप्त रहते हैं ॥ १ ॥

त एतदेव रूपमभि संविशन्त्येतस्माद्रूपादुद्यन्ति

अन्वय और पदार्थ—(ते) वह (एतत्-एव) इस ही (रूपम् अभि) रूपको लक्ष्य करके (संविशन्ति) उपराम को प्राप्त होते हैं (एतस्मात्) इस (रूपात्) रूपसे (उद्यन्ति) उदय को प्राप्त होते हैं ॥ २ ॥

भावार्थ-वह भोग न होनेके समय इस रूपमें ही उपरामको प्राप्त होते हैं और भोगके समय इस रूपमेंसे ही उदयको प्राप्त होते हैं ॥ २ ॥

स य एतदेवममृतं वेद साध्यानामेवैको भूत्वा ब्रह्मणैव मुखेनैवैतदेवामृतं दृष्ट्वा तृप्यति स एतदेव रूपमभिसंविशन्त्येतस्माद्रूपादुदेति ॥ ३ ॥

अन्वय और पदार्थ—(यः) जो (एतत्) इस (अमृतम्) अमृतको (वेद) जानता है (सः) वह (साध्यानाम्-एव) साध्योंमेंका ही (एकः) एक (भूत्वा) होकर (ब्रह्मणा एव) ब्रह्मरूप ही (मुखेन) मुखसे (एतत्-एव) इस ही (अमृतम्) अमृतको (दृष्ट्वा) देखकर (तृप्यति) तृप्त होता है (सः) वह (एतत्-एव) इस ही (रूपम्-अभि) रूपके प्रति (संविशति) उपरामको प्राप्त होता है (एतस्मात्) इस (रूपात्) रूपसे (उदेति) उदयको प्राप्त होता है ॥ ३ ॥

भावार्थ—जो इस अमृतको इस प्रकार जानकर उपासना करता है वह साध्योंमेंका ही एक साध्य होकर ब्रह्मरूप मुख से इस अमृतको ग्रहण करता हुआ सब करणोंसे उसका अनुभव करके ही तृप्त होजाता है वह भोगका काल न होने पर

इस रूपमें ही प्रवेश करके उपरामको प्राप्त होता है और भोग-कालमें इस रूपमेंसे ही उदयको प्राप्त होता हुआ उत्साहयुक्त होता है ॥ ३ ॥

स यावदादित्य उत्तरत उदेता दक्षिणतोऽस्तमेता द्विस्तावदूर्ध्वमुदेताऽर्वागस्तमेता साध्यानामेव तावदाधिपत्यं स्वाराज्यं पर्येता ॥ ४ ॥

अन्वय और पदार्थ—(यावत्) जब तक (आदित्यः) आदित्य (उत्तरतः) उत्तरमें (उदेता) उदय होता रहेगा (दक्षिणतः) दक्षिणमें (अस्तम्–एता) अस्तको प्राप्त होगा (द्विस्तावत्) उससे द्विगुण काल तक (ऊर्ध्वम्) ऊपरको (उदेता) उदय होता रहेगा (अर्वाक्) नीचे (अस्तम् एता) अस्त होता रहेगा (तावत्) तब तक (सः) वह (साध्यानाम् एव) साध्योंके ही (आधिपत्यम्) प्रभुत्वको (स्वाराज्यम्) स्वाराज्यको (पर्येता) पावेगा ॥ ४ ॥

भावार्थ—जब तक आदित्य उत्तरमें उदय होता रहेगा, दक्षिणमें अस्त होता रहेगा और उससे दुगने समय तक ऊपरको उदय और नीचेको अस्त होता रहेगा तब तक वह उपासक साध्योंके प्रभुत्व और स्वाराज्यको पावेगा ॥ ४ ॥

॥ तृतीयाध्यायस्य दशमः खण्डः समाप्तः ॥

अथ तत ऊर्ध्व उदेत्य नैवोदेता नास्तमेतैकल एव मध्ये स्थाता तदेष श्लोकः ॥ १ ॥

अन्वय और पदार्थ—(अथ) इसके अनन्तर (ततः) फिर

स्थानसे (ऊर्ध्वः) ऊपर (उदेत्य) उदयको प्राप्त होकर (नैव) नहीं (उदेता) उदयको प्राप्त होगा (न) नहीं (अस्तम् एता) अस्तको प्राप्त होगा (एकलः, एव) अकेला ही (मध्ये) मध्यमें (स्थाता) स्थित होगा (तत्) उसके विषयमें (एषः) यह (श्लोकः) श्लोक है ॥ १ ॥

भावार्थ—प्राणियोंको अपने २ कर्मोंका फल देना रूप अनुग्रह करनेके अनन्तर ब्रह्मरूप हो अपनी महिमामें प्रकाश पाकर, जिनके लिये सूर्य उदय होता है उन प्राणियोंका अभाव होनेके कारण अपनी महिमामें स्थित होकर न फिर उदय ही पावेगा और न अस्तको प्राप्त ही होगा किन्तु अद्वितीय होकर आत्मस्वरूपमें ही स्थित होगा। ब्रह्मलोकमें सूर्यका उदय और अस्त नहीं होता है, तहाँ ही किसी उपासकने यह मंत्र कहा है, कि-

न वै तत्र निम्लोच नोदियाय कदाचन। देवास्तेनाहं सत्येन मा विराधिषि ब्रह्मणेति॥ २ ॥

अन्वय और पदार्थ—(तत्र) तिस ब्रह्मलोकमें (वै) निश्चय (न) नहीं (कदाचन) कभी (निम्लोच न) अस्त नहीं होता है (उदियाय न) उदय नहीं होता (तेन) तिस से (देवाः) हे देवताओ ! (सत्येन) सत्य करके (अहम्) मैं (ब्रह्मणा) ब्रह्मसे (मा) नहीं (विराधिषि) विरोध करूँ २

भावार्थ—उस ब्रह्मलोकमें निःसन्देह सूर्य रात्रि दिनसे मनुष्यकी आयुका नाश नहीं करता है। तहाँ किसी भी कारण मे कभी भी सूर्यका अस्त नहीं होता है, तथा उदय भी नहीं

होता है, हे देवताओं ! मैं सत्य कहता हूँ, उस सत्यके प्रभाव से मैं ब्रह्मकी प्राप्तिसे विलग न होऊँ ॥ २ ॥

न ह वा अस्मा उदेति न निम्लोचति सकृद्दिवा हैवास्मै भवति य एतामेवं ब्रह्मोपनिषदं वेद ३

अन्वय और पदार्थ-(यः) जो (एताम्) इस (ब्रह्मोपनिषदम्) वेदके रहस्यको (एवम्) इस प्रकार (वेद) जानता जानता है (अस्मै) इसके लिये (वै ह) निश्चय (न) नहीं (उदेति) उदय होता है (न) नहीं (निम्लोचति) अस्त होता है (अस्मै) इसके लिये (सकृत्) एक साथ (दिवा ह, एव) दिन ही (भवति) होता है ॥ ३ ॥

भावार्थ—जो इस वेदके रहस्यरूप मधुविद्याको इस प्रकार जानता है, उस उपासकके लिये निःसन्देह सूर्यका उदय तथा अस्त नहीं होता है, किन्तु उसके लिये सदा दिन ही रहता है ३

तद्धैतद् ब्रह्मा प्रजापतये उवाच प्रजापतिर्मनवे मनुः प्रजाभ्यस्तद्धैतदुद्दालकायारुणये ज्येष्ठाय पुत्राय पिता ब्रह्म प्रोवाच ॥ ४ ॥

अन्वय और पदार्थ-(तत्) उस (ह) प्रसिद्ध (एतत्) इसको (ब्रह्मा) ब्रह्मा (प्रजापतये) प्रजापतिके अर्थ (उवाच) कहता हुआ (प्रजापतिः) प्रजापति (मनवे) मनुके अर्थ (मनुः) मनु (प्रजाभ्यः) प्रजाओंके अर्थ कहता हुआ (तत्) उस (ह) प्रसिद्ध (एतत्) इस (ब्रह्म) ब्रह्मको (पिता) अरुणि नामका पिता (ज्येष्ठाय) बड़े (उद्दालकाय) उद्दा-

नाम वाले (आरुणये) आरुणि (पुत्राय) पुत्रके अर्थ (प्रोवाच) कहता हुआ ॥ ४ ॥

भावार्थ–यह प्रसिद्ध मधुविज्ञान ब्रह्माने प्रजापतिसे, प्रजापतिने मनुसे और मनुने अपनी सन्तानोंसे कहा इस ब्रह्मविज्ञानको आरुणि मुनिने अपने बड़े पुत्र उद्दालकसे कहा ।४।

इदं वाव तज्ज्येष्ठाय पुत्राय पिता ब्रह्म प्रब्रूयात् प्रणाय्याय वान्तेवासिने ॥ ५ ॥

अन्वय और पदार्थ–(वाव) प्रसिद्ध (तत्) वह (इदम्) यह (ब्रह्म) ब्रह्म (पिता) पिता (ज्येष्ठाय) बड़े (पुत्राय) पुत्रको (वा) या (प्रणाय्याय) योग्य (अन्तेवासिने) विद्यार्थीको (प्रब्रूयात्) कहै ॥ ५ ॥

भावार्थ–यह प्रसिद्ध ब्रह्मविज्ञान पिता बड़े पुत्रसे और गुरु योग्य शिष्यसे कहै ॥ ५ ॥

नान्यस्मै कस्मैचन यद्यप्यस्मा इमामद्भिः परिगृहीतां धनस्य पूर्णां दद्यादेतदेव ततो भूय इत्येतदेव ततो भूय इति ॥ ६ ॥

अन्वय और पदार्थ–(यदि) जो (अस्मै) इसको (अद्भिः) समुद्ररूप जलसे (परिगृहीताम्) परिवेष्टित (धनस्य पूर्णाम्) धनसे भरी हुई (इमाम्–अपि) इस वसुधाको भी (दद्यात्) देय (तदा अपि) तो भी (अन्यस्मै) और (कस्मैचन) किसीको भी (न) नहीं देय (एतत्–एव) यह ही (ततः) तिससे (भूयः) अधिक है (इति) इस कारणसे ६

भावार्थ-यदि आचार्यको कोई समुद्रसे घिरी और धनसे भरी हुई यह समस्त पृथिवी मधुविद्याके बदलेमें देय तो भी उसको यह मधुविद्या न देय क्योंकि-यह मधुविद्या उस धन भरे भूमण्डलसे भी अधिक मूल्यका पदार्थ है ॥ ६ ॥

॥ तृतीयाध्यायस्यैकादशः खण्डः समाप्तः ॥

गायत्री वा इदँ सर्वं भूतं यदिदं किञ्च वाग् वै गायत्री वाग्वा इदँ सर्वं भूतं गायति च त्रायते च ॥ १ ॥

अन्वय और पदार्थ-(इदम्) यह (सर्वम्) सब (भूतम्) प्राणिसमूह (यत् किञ्च) जो कुछ (इदम्) यह है (वै) निश्चय (गायत्री) गायत्री है (वाक् वै) वाणी ही (गायत्री) गायत्री है (वाक् वै) वाणी ही (इदम्) इस (सर्वम्) सब (भूतम्) प्राणिसमूहको (गायति) कहती है (च) और (त्रायते) रक्षा करती है ॥ १ ॥

भावार्थ -यह सकल प्राणियोंका समूह अथवा यह जो कुछ चराचर है, यह सब गायत्री ही है क्योंकि गायत्रीका कारण शब्दरूप वाणी है, वह गायत्री ही है वह गायत्रीका कारण रूप वाणी ही इन सब भूतोंका, यह गौ है, यह घोड़ा है, इस प्रकार वर्णन करती है और इससे भय न कर, ऐसे कथनके द्वारा उनकी भयसे रक्षा करती है वाणी और गायत्रीमें भेद न होनेके कारणसे वाणी जो कुछ कहती वा रक्षा करती है वह मानो गायत्री ही कहती और रक्षा करती है ॥ १ ॥

या वै सा गायत्रीयं वाव सा येयं पृथिव्यस्याँ

ह्यीदꣳसर्वं भूतं प्रतिष्ठितमेतामेव नातिशीयते २

अन्वय और पदार्थ—(वै) निश्चय (या) जो (सा) वह (गायत्री) गायत्री है (इयम्–वाव) यह ही (सा) वह (या इयम्) जो यह (पृथिवी) पृथिवी है (अस्याम् हि) इस में ही (इदम्) यह (सर्वं भूतम्) सब प्राणिसमूह (प्रतिष्ठितम्) स्थित है (एताम् एव) इसको ही (न अतिशीयते) अतिक्रमण नहीं करते हैं ॥ २ ॥

भावार्थ—जो सर्वभूतरूप प्रसिद्ध गायत्री है वह यही है जो कि यह पृथिवी है, सकल भूत इस पृथिवीके आश्रयसे स्थित हैं, कोई भी इस पृथिवीके आश्रयको त्यागकर स्थित नहीं रह सकता, इस कारण सकल भूतोंके सम्बन्धसे गायत्री पृथिवी है ॥ २ ॥

या वै सा पृथिवीयं वाव सा यदिदमस्मिन्पुरुषे शरीरमस्मिन् हीमे प्राणाः प्रतिष्ठिता एतदेव नातिशीयन्ते ॥ ३ ॥

अन्वय और पदार्थ—(या) जो (सा) वह (पृथिवी) पृथिवी है (इयम् वाव) यह ही (सा) वह है (यत् इदम्) जो यह (अस्मिन् पुरुषे) इस पुरुषमें (शरीरम्) शरीर है (अस्मिन् हि) इसमें ही (इमे प्राणाः) यह प्राण (प्रतिष्ठिताः) स्थित हैं (एतत्-एव) इसको ही (न अतिशीयन्ते) उल्लंघन नहीं कर सकते ॥ ३ ॥

भावार्थ—जो यह प्रसिद्ध पृथिवीरूप गायत्री है यही वह है। जो यह इस पुरुषमें शरीर है। इस शरीरमें ये भूत शब्द

से कहे जाने वाले प्राण स्थित हैं और ये प्राण इस शरीरको छोड़कर नहीं रहसकते, इस कारण सकल भूतरूप प्राणोंके सम्बन्धसे गायत्री हृदय है ॥ ३ ॥

यद्वै तत्पुरुषे शरीरमिदं वाव तद्यदिदमस्मिन्नन्तः पुरुष हृदयमस्मिन् हीमे प्राणाः प्रतिष्ठिता एतदेव नातिशीयन्ते ॥ ४ ॥

अन्वय और पदार्थ—(वै) निश्चय (यत्) जो (तत्) वह (पुरुषे) पुरुषमें (शरीरम्) शरीर है (इदम् वाव) यह ही (तत्) वह है (अस्मिन्) इस (पुरुषे) पुरुषमें (यत् इदम्) जो यह (अन्तः हृदयम्) भीतर हृदय है (अस्मिन् हि) इसमें ही (इमे प्राणाः) ये प्राण (प्रतिष्ठिताः) स्थित हैं (एतत् एव) इसको ही (न अतिशीयन्ते) उल्लंघन करके स्थित नहीं रह सकते ॥ ४ ॥

भावार्थ—जो यह पुरुषमें गायत्रीरूप शरीर है, यही पुरुषका शरीरके भीतरका हृदय है, क्योंकि इस हृदयमें प्राण वा सब इन्द्रियें प्रतिष्ठित हैं और वह इस हृदयकमलको त्यागकर नहीं रहसकतीं, इस कारण सकल भूतरूप प्राणोंके सम्बन्धसे गायत्री हृदय है ॥ ४ ॥

सैषा चतुष्पदा षड्विधा गायत्री तदेतदृचाभ्यनूक्तम् ॥ ५ ॥

अन्वय और पदार्थ—(सा) वह (एषा) यह (गायत्री) गायत्री (चतुष्पदा) चार चरणवाली (षड्विधा) छः प्रकार

की है (तत्-एतत्) सो यह (ऋचा) मन्त्रने (अभ्यनूक्तम्) कहा है ॥ ५ ॥

भावार्थ—वह यह गायत्री जिनमें छः अक्षर होते हैं ऐसे चार पदों वाली और वाणी, भूत, पृथिवी, शरीर, हृदय और प्राणरूप छः प्रकार वाली है। यह बात आगेके ऋक् मन्त्रों से भी प्रकाशित होती है ॥ ५ ॥

तावानस्य महिमा ततो ज्यायांश्च पूरुषः पादोऽस्य सर्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवीति ।६।

अन्वय और पदार्थ—(तावान्) उतना (अस्य) इस गायत्री नामक ब्रह्मका (महिमा) विभूतिविस्तार है (च) और (पूरुषः) पुरुष (ततः) तिससे (ज्यायान्) महान् है (सर्वा भूतानि) सकल भूत (अस्य) इसका (पादः) एक पाद हैं (अस्य) इसका (अमृतम्) अमृतरूप (त्रिपाद्) तीन पाद (दिवि) द्युलोकमें स्थित हैं ॥ ६ ॥

भावार्थ—यह जो गायत्रीरूप ब्रह्मके चार पाद और छः प्रकार कहे यह सब उसकी विभूतिका विस्तार है, पुरुष इस गायत्री की विभूतिसे अतिमहान् है, सकल लोक इस पुरुषका एक पाद हैं और इसके अमृतरूप तीन पाद स्वर्गलोक वा प्रकाशमय आत्मस्वरूपमें स्थित हैं ॥ ६ ॥

यद्वै तद् ब्रह्मेतीदं वाव तद्योऽयं बहिर्धा पुरुषादाकाशो यो वै स बहिर्धाः पुरुषादाकाशः ॥ ७॥

अन्वय और पदार्थ—(वै) निश्चय (यत्) जो (तत्) वह (वाव) प्रसिद्ध (ब्रह्म) ब्रह्म है (इति) ऐसा कहा है

(तत्) वह (इदम्) यह है (यत्) जो (अयम्) यह (पुरुषात्) पुरुषसे (बहिर्धा) बाहर (आकाशः) आकाश है (यः) जो (सः) वह (पुरुषात्) पुरुषसे (बहिर्धा, वै) बाहर (आकाशः) आकाश है ॥ ७ ॥

भावार्थ–जिसमें अमृत तत्त्व प्रधान है ऐसा जो त्रिपाद ब्रह्म गायत्रीके द्वारा कहा है वह यही है । पुरुषके बाहर बाह्य इन्द्रियोंका विषय जो जागरितस्थानरूप महाकाश है वह भी यह ब्रह्म ही है ॥ ७ ॥

अयं वाव स योऽयमन्तः पुरुष आकाशो यो वै सोऽन्तः पुरुष आकाशः ॥ ८ ॥

अन्वय और पदार्थ--(अयम् वाव) यह ही (सः) वह है (यः, अयम्) जो यह (पुरुषे--अन्तः) पुरुषके शरीरके भीतर (आकाशः) आकाश है (यः) जो (वै) निश्चय (सः) वह (पुरुषे अन्तः) पुरुषके भीतर (आकाशः) आकाश है

भावार्थ—पुरुषके शरीरके भीतर जो आकाश है वह भी यह ब्रह्म ही है अर्थात् अन्तरिन्द्रियका विषयीभूत स्वप्नस्थान-रूप शरीराकाश भी वह ब्रह्म ही है ॥ ८ ॥

अयं वाव स योऽयमन्तर्हृदय आकाशस्तदेत-त्पूर्णमप्रवर्त्ति पूर्णामप्रवर्त्तिनीꣳ श्रियं लभते य एवं वेद ॥ ९ ॥

अन्वय और पदार्थ—(अयम्, वाव) यह ही (सः) वह है (यः अयम्) जो यह (हृदये अन्तः) हृदयके भीतर (आकाशः) आकाश है (तत्) वह (एतत्) यह (पूर्णम्)

सर्वव्यापक है (अप्रवर्त्ति) जन्ममरणरहित है (यः) जो (एवम्) ऐसा (वेद) जानता है (पूर्णाम्) पूर्ण (अप्रवर्त्तिनीम्) नाशरहित (श्रियम्) विभूतिको (लभते) पाता है ९

भावार्थ–पुरुषके हृदयके भीतर वर्त्तमान इन्द्रियोंके अगोचर सुसूक्ष्मस्थानरूप जो हृदयाकाश है, वह भी यह ब्रह्म ही है यह ब्रह्म पूर्ण और जन्मनाशसे रहित है, जो ब्रह्मको ऐसा जानता है वह पूर्ण और अविनाशी ऐश्वर्यको पाता है ॥९॥

॥ तृतीयाध्यायस्य द्वादशः खण्डः समाप्तः ॥

तस्य ह वा एतस्य हृदयस्य पञ्च देवसुषयः स योऽस्य प्राङ् सुषिः स प्राणस्तच्चक्षुः स आदित्यस्तदेतत्तेजोऽन्नाद्यमित्युपासीत तेजस्व्यन्नादो भवति य एवं वेद ॥ १ ॥

अन्वय और पदार्थ–(तस्य) तिस (ह) प्रसिद्ध (एतस्य) इस हृदयके (वै) निश्चय (पञ्च) पाँच (देवसुषयः) देवताओंसे अधिष्ठित छिद्र हैं (अस्य) इसका (यः) जो (प्राङ्) पूर्वका (सुषिः) छिद्र है (सः) वह (प्राणः) प्राण है (तत्) वह (चक्षुः) चक्षु है (सः) वह (आदित्यः) आदित्य है (तत्) वह (एतत्) यह (तेजः) तेज है (अन्नाद्यम्) अन्नको भक्षण करनेवाला (इति) ऐसा जानकर (उपासीत) उपासना करे (यः) जो (एवम्) ऐसा (वेद) जानता है (तेजस्वी) तेजस्वी (अन्नादः) अन्नका भोक्ता (भवति) होता है ॥ १ ॥

भावार्थ--इस हृदयके पाँच प्राण और आदित्य आदि देवताओंसे रक्षित परमात्माकी प्राप्तिके द्वाररूप छिद्र हैं। उस परमात्माके स्थानरूप इस हृदयकमलका जो पूर्वकी ओरका छिद्र है उसमें जो स्थित है वह प्राण है। जो वायु हृदयके पूर्वके छिद्रसे चलता है वह प्राण कहलाता है उसका और चक्षुका सम्बन्ध है, चक्षुका अधिष्ठाता आदित्य है, वह प्राण परमात्मा का द्वारपाल है इस कारण परमात्माको पानेका अभिलाषी पुरुष ऐसे इस प्राणको तेजःस्वरूप और अन्नको भक्षण करने वाला जानकर उपासना करे। जो ऐसा जानकर उपासना करता है, वह तेजस्वी और अजीर्णरोगसे रहित होता है। प्राण चक्षु इन्द्रिय और सूर्यका परस्पर सम्बन्ध है, इस कारण इन तीनोंका उपासनाके लिये अभेद कहा है, यही बात आगे के मन्त्रोंमें समझो। प्राणका उपासक तेजस्वी और अजीर्ण रोगसे रहित होता है यह उपासनाका गौण फल है, और उपासनाके द्वारा वशमें किया हुआ प्राणरूप द्वारपाल परमात्मा की प्राप्तिका हेतु होता है, यह मुख्य फल है। इसी प्रकार गौण और मुख्य फलका भेद अगले मन्त्रोंमें भी समझना चाहिये १

अथ योऽस्य दक्षिणः सुषिः स व्यानस्तच्छ्रोत्रं स चन्द्रमास्तदेतच्छ्रीश्च यशश्चेत्युपासीत श्रीमान् यशस्वी भवति य एवं वेद ॥ २ ॥

अन्वय और पदार्थ—(अथ) और (यः) जो (अस्य) इसका (दक्षिणः) दक्षिणकी ओरका (सुषिः) छिद्र है (सः) वह (व्यानः) व्यान है (तत) वह (श्रोत्रम) श्रोत्र है (सः)

वह (चन्द्रमाः) चन्द्रमा है (तत्) वह (एतत्) यह (श्रीः) विभूति है (च) और (यशः-च) यश भी है (इति) ऐसा जानकर (उपासीत) उपासना करे (यः) जो (एवम्) ऐसा (वेद) जानता है (सः) वह (श्रीमान्) ऐश्वर्यवान् (यशस्वी) कीर्त्तिमान् (भवति) होता है ॥ २ ॥

भावार्थ-इस हृदयके दक्षिणकी ओरका जो द्वार है, उस में स्थित जो वायु है वह व्यान है, वह श्रोत्र है, वह चन्द्रमा है, वह व्यान विभूति तथा कीर्त्ति है ऐसा जानकर उपासना करे, जो ऐसा जानकर उपासना करता है वह श्रीमान् और कीर्त्तिमान् होता है ॥ २ ॥

अथ योऽस्य प्रत्यङ् सुषिः सोऽपानः सा वाक् सोऽग्निस्तदेतद् ब्रह्मवर्चसमन्नाद्यमित्युपासीत ब्रह्मवर्चस्व्यन्नादो भवति य एवं वेद ॥ ३ ॥

अन्वय और पदार्थ—(अथ) और (यः) जो (अस्य) इसका (प्रत्यक्) पश्चिमका (सुषिः) छिद्र है (सः) वह (अपानः) अपान है (सा) वह (वाक्) वाणी है (सः) वह (अग्निः) अग्नि है (तत्) वह (एतत्) यह (ब्रह्म-वर्चसम्) स्वाध्यायसे उत्पन्न होने वाला तेजःस्वरूप (अन्ना-द्यम्) अन्नको भक्षण करने वाला है (इति) ऐसा जानकर (उपासीत) उपासना करे (यः) जो (एवम्) ऐसा (वेद) जानता है (ब्रह्मवर्चस्वी) ब्रह्मतेजसे युक्त (अन्नादः) अन्नका भक्षण करने वाला (भवति) होता है ॥ ३ ॥

भावार्थ—इस हृदयका जो पश्चिमकी ओरका द्वार है, उसमें

रहनेवाला जो वायु है वह अपान है, वह वाणी है, वह अग्नि है। इस अपानको जो स्वाध्यायसे उत्पन्न हुआ तेजःस्वरूप और अन्नको भक्षण करने वाला जानकर उपासना करता है वह स्वाध्यायसे उत्पन्न हुए ब्रह्मतेजवाला और प्रदीप्त जठराग्निवाला होता है ॥ ३ ॥

अथ योस्योदङ् सुषिः स समानस्तन्मनः स पर्जन्यस्तदेतत्कीर्त्तिश्च व्युष्टिश्चेत्युपासीत कीर्त्तिमान् व्युष्टिमान् भवति य एवं वेद ॥ ४ ॥

अन्वय और पदार्थ—(अथ) और (अस्य) इसका (यः) जो (उदङ्) उत्तरका (सुषिः) छिद्र है (सः) वह (समानः) समान है (तत्) वह (मनः) मन है (सः) वह (पर्जन्यः) मेघ है (तत्) सो (एतत्) यह (कीर्त्तिः) कीर्त्ति है (च) और (व्युष्टिः, च) कान्ति भी है (इति) ऐसा जान कर (उपासीत) उपासना करे (यः) जो (एवम्) ऐसा (वेद) जानता है (कीर्त्तिमान्) कीर्त्तिवाला (व्युष्टिमान्) कान्तिवाला (भवति) होता है ॥ ४ ॥

भावार्थ—इस हृदयका जो उत्तरकी ओर द्वार है, उसमें स्थित जो वायु वह समान है, वह अन्तःकरण है, वह वृष्टिका देवता पर्जन्य है, ऐसे इस समानको यश और कान्तिरूप जान कर उपासना करे, जो ऐसा जान कर उपासना करता है वह कीर्त्तिमान् और कान्तिमान् होता है ॥ ४ ॥

अथ योस्योर्ध्वः सुषिः स उदानः स वायुः स

आकाशस्तदेतदोजश्च महश्चेत्युपासीतौजस्वी महस्वान् भवति य एवं वेद ॥ ५ ॥

अन्वय और पदार्थ—(अथ) और (यः) जो (अस्य) इसका (ऊर्ध्वः) ऊपरका (सुषिः) द्वार है (सः) वह (उदानः) उदान है (सः) वह (वायुः) वायु है (सः) वह (आकाशः) आकाश है (तत्) सो (एतत्) यह (ओजः) ओज है (च) और (महः--च) मह भी है (इति) ऐसा जान कर (उपासीत) उपासना करे (यः) जो (एवम्) ऐसा (वेद) जानता है (ओजस्वी) ओज वाला (च) और (महस्वान्) महत्त्व वाला (भवति) होता है ॥ ५ ॥

भावार्थ—और इस हृदयका जो ऊपरका द्वार है, उसमें रहने वाला जो वायु है वह उदान है, वह वायु है, वह आकाश है, वही मनोबल और ज्ञानेन्द्रियोंका बल है ऐसा जान कर उपासना करे, जो ऐसा जान कर उपासना करता है वह मनके और ज्ञानेन्द्रियोंके बलको पाता है ॥ ५ ॥

ते वा एते पञ्च ब्रह्मपुरुषाः स्वर्गस्य लोकस्य द्वारपाः स य एतानेवं पञ्च ब्रह्मपुरुषान् स्वर्गस्य लोकस्य द्वारपान् वेदास्य कुले वीरो जायते प्रतिपद्यते स्वर्गं लोकं य एतानेवं पञ्च ब्रह्मपुरुषान् स्वर्गस्य लोकस्य द्वारपान् वेद ॥ ६ ॥

अन्वय और पदार्थ—(वै) निश्चय (ते) वह (एते) ये (पञ्च) पाँच (ब्रह्मपुरुषाः) परमात्माके पुरुष (स्वर्गस्य

लोकस्य) स्वर्गलोकके (द्वारपाः) द्वारपाल हैं (सः) वह (यः) जो (एतान्) इन (पञ्च) पाँच (ब्रह्मपुरुषान्) ब्रह्मपुरुषोंको (स्वर्गस्य--लोकस्य) स्वर्गलोकके (द्वारपान्) द्वारपाल (एवम्) इस प्रकार (वेद) जानता है (अस्य) इसके (कुले) कुलमें (वीरः) वीर (जायते) होता है (यः, एतान्, पञ्च, ब्रह्मपुरुषान्, स्वर्गस्य, लोकस्य, द्वारपान्, एवं, वेद) जो इन पाँच ब्रह्मपुरुषोंको स्वर्गलोकके द्वारपाल हैं ऐसा जानता है वह (स्वर्गम् -लोकम्) स्वर्गलोकको (प्रतिपद्यते) प्राप्त होता है ॥ ६ ॥

भावार्थ—जो ये प्रसिद्ध हृदयमेंके परमात्माके पाँच पुरुष हैं ये स्वर्गलोकके द्वारपाल हैं, जो इन पाँच ब्रह्मपुरुषोंको स्वर्ग-लोकके द्वारपाल जान कर उपासना करता है, उसके कुलमें वीरपुरुष उत्पन्न होता है और वह स्वर्गलोकको पाता है, बहिर्मुख होकर प्रवृत्त हुए इन चक्षु, श्रोत्र, वाणी मन और प्राण से हृदयमेंके ब्रह्मकी प्राप्तिके द्वार ढके हुए हैं तथा विषयोंसे हटे हुए इन ही करणोंसे हृदयमेंके ब्रह्मकी प्राप्तिके द्वार समाधि आदिके द्वारा उघड़ जाते हैं, इस कारण ही इनको द्वारपाल कहा है ॥ ६ ॥

अथ यदतः परो दिवो ज्योतिर्दीप्यते विश्वतः पृष्ठेषु सर्वतः पृष्ठेष्वनुत्तमेषूत्तमेषु लोकेष्विदं वाव तद्यदिदमस्मिन्नन्तः पुरुषे ज्योतिस्तस्यैषा दृष्टि-र्यत्रैतदस्मिञ्छरीरे संस्पर्शेनोष्णिमानं विजानाति

तस्यैषा श्रुतिर्यत्रैतत्कर्णावपि गृह्य निनदमिव नदथुरिवाग्नेरिव ज्वलत उपशृणोति तदेतद् दृष्टञ्च श्रुतञ्चेत्युपासीत चक्षुष्यः श्रुतो भवति य एवं य एवं वेद ॥ ७ ॥

अन्वय और पदार्थ--(अथ) और (अतः) इस (दिवः) द्युलोकसे (परः) उत्कृष्ट (यत्) जो (ज्योतिः) ज्योति (दीप्यते) दीप्त होता है (विश्वतः) विश्वके (पृष्ठेषु) ऊपरके (सर्वतः) सबके (पृष्ठेषु) ऊपरके (उत्तमेषु) उत्तम (अनुत्तमेषु) अनुत्तम (लोकेषु) लोकोंमें [दीप्यते] दीप्त होता है (इदं वाव) यह ही [ब्रह्म] ब्रह्म है (अस्मिन् पुरुषे अन्तः) इस पुरुषके भीतर (तत्) वह (इदम्) यह (यत्) जो (ज्योतिः) ज्योति है (तस्य) उसको (एषा) यह (दृष्टिः) दर्शन है (यत्र) जिस कालमें (अस्मिन् शरीरे) इस शरीरमें (संस्पर्शेन) स्पर्शके द्वारा (उष्णिमानम्) गरमीको (विजानाति) जानता है (एतत्) यह है (तस्य) उसका (एषा) यह (श्रुतिः) श्रवण है (यत्र) जिस काल में (कर्णौ) कान (अपिगृह्य) ढक कर (निनदम् इव) रथ की घरघराहटसे शब्दको (नदथुः-इव) बैलके डकरानेकेसे शब्दको (ज्वलतः अग्नेः इव) बलते हुए अग्निकेसे शब्द को (उपशृणोति) सुनता है (एतत्) यह है (तत्) सो (एतत्) इसको (दृष्टम्) दृष्ट है (च) और (श्रुतम् च) सुना हुआ भी है (इति) ऐसा जानकर (उपासीत) उपासना करे (यः) जो (एवम्) ऐसा (वेद) जानता है

(चक्षुष्यः) दर्शनीय (भवति) होता है (यः) जो (एवम्) ऐसा (वेद) जानता है (श्रुतः) विख्यात [भवति] होता है

भावार्थ—इस स्वर्गलोकसे ऊपर जो परम ज्योति प्रकाशती है और जो परम ज्योति विश्वसे ऊपर वा संसाररूप सबसे ऊपर तथा जिनसे कोई उत्तम नहीं ऐसे सत्य लोक आदि उत्तम लोकोंमें प्रकाशती है वह ही परमज्योति इस पुरुषके शरीरके भीतर जो ज्योति है उस ज्योतिका यह स्पर्शसे होने वाला ज्ञान है। जब इस शरीरमें स्पर्शसे रूपके साथ रहने वाली इस उष्णताको जानता है तब जीवके शरीरमें सद्भाव को जानता है इस प्रकार उष्णता परमात्माका तथा जीवका लिङ्ग है। उस ज्योतिका यह श्रवणका उपाय है कि-जब पुरुष ज्योतिके लिङ्गको सुनना चाहता है तब दोनों अंगुलियोंसे दोनों कानोंको बन्द करके रथके घोषकी समान, बैलके रम्भानेकी समान और जलते हुए अग्निके शब्दकी समान शब्द शरीरके भीतर होता है उसको यह सुनता है। जो इस ज्योतिको दृष्ट कहिये त्वचा और नेत्रसे अनुभव किया हुआ मानकर तथा श्रुत कहिये कानोंसे सुना हुआ मानकर उपासना करता है वह दर्शनीय और प्रसिद्ध होता है ॥ ७ ॥

॥ तृतीयाध्यायस्य त्रयोदशः खण्डः समाप्तः ॥

सर्वं खल्विदं ब्रह्म तज्जलानिति शान्त उपासीत। अथ खलु क्रतुमयः पुरुषो यथाक्रतुरस्मिंल्लोके पुरुषो भवति तथेतः प्रेत्य भवति स क्रतुं कुर्वीत ॥ १ ॥

अन्वय और पदार्थ-(इदम्) यह (सर्वम्) सब (खलु) निश्चय (ब्रह्म) ब्रह्म है (तज्जलान्) यह जगत् ब्रह्मसे उत्पन्न हुआ है, उसमें ही लय होता है और उसमें ही स्थित है (इति) ऐसा जान (शान्तः) शान्त हुआ (उपासीत) उपासना करे (अथ) और (खलु) निश्चय (पुरुषः) पुरुष (क्रतुमयः) निश्चयरूप है (अस्मिन् लोके) इस लोकमें (पुरुषः) पुरुष (यथाक्रतुः) जैसे निश्चय वाला (भवति) होता है (तथा) तैसा (इतः) इस लोकसे (प्रेत्य) जाकर (भवति) होता है (सः) वह (क्रतुम्) आगे कहे हुए निश्चयको (कुर्वीत) करे ।१।

भावार्थ-यह सब नामरूपात्मक ब्रह्म निश्चय ही ब्रह्म है, क्योंकि-यह जगत् उस ब्रह्ममेंसे ही उपजा है, उसमें ही लय पावेगा और उसमें ही स्थित है । यह सब ब्रह्म ही है, इस लिये राग द्वेष आदिसे रहित होकर उस ब्रह्मकी आगे कहे हुए गुणोंसे उपासना करे, ऐसा ही है, इसके अन्यथा नहीं है, ऐसी अविचल वृत्ति रक्खे, क्योंकि-जीव निश्चयरूप है, जीव इस शरीरमें जैसे निश्चयवाला रहेगा, इस शरीरको त्यागनेके अनन्तर तैसा ही होजायगा । इस प्रकार निश्चयके अनुसार फल होता है, इस लिये पुरुषको चाहिये, कि-आगे कहा हुआ निश्चय रक्खे ॥ १ ॥

मनोमयः प्राणशरीरो भारूपः सत्यसङ्कल्प आकाशात्मा सर्वकर्मा सर्वकामः सर्वगन्धः सर्वरसः सर्वमिदमभ्यात्तोऽवाक्यनादरः ॥ २ ॥

अन्वय और पदार्थ—(मनोमयः) मनोमय (प्राणशरीरः)

प्राणरूप शरीरवाला (भारूपः) प्रकाशस्वरूपवाला (सत्य-संकल्पः) सत्य संकल्पवाला (आकाशात्मा) आकाशकी समान स्वरूपवाला (सर्वकर्मा) सब जगत् जिसका कर्म है ऐसा (सर्वकामः) सकल कामवाला (सर्वगन्धः) सकल गन्धवाला (सर्वरसः) सकल रसवाला (इदम्, सर्वं-अभ्यात्तः) इस सब जगत्के प्रति व्याप्त (अवाकी) वाणीरहित (अना-दरः) संभ्रमरहित है ॥ २ ॥

भावार्थ—वह परमात्मा मनोमय कहिये मनकी प्रवृत्ति निवृत्ति के अनुसार प्रतीत होनेवाला, प्राणरूप कहिये लिङ्ग विज्ञान और क्रियाशक्ति रहित शरीरवाला चेतनरूप, प्रकाशस्वरूप वाला अर्थात् सर्वव्यापक अत्यन्त सूक्ष्म और आदि रहित, सकल जगत् जिसका कर्म है ऐसा सकल जगत्का कर्त्ता दोष-रहित सकल कामवाला सकल गन्धवाला, सकल रसोंवाला इस सब जगत्में व्याप्त वाणी आदि सब इन्द्रियोंसे रहित तथा आप्तकाम होनेसे अप्राप्त वस्तुकी प्राप्तिमें अपेक्षा न रखने वाला है ॥ २ ॥

एष म आत्मान्तर्हृदयेऽणीयान् व्रीहेर्वा यवाद्वा सर्षपाद्वा श्यामाकाद्वा श्यामाकतण्डुलाद्वैष म आत्माऽन्तर्हृदये ज्यायान् पृथिव्या ज्यायानन्त-रिक्षाऽज्ज्यायान् दिवो ज्यायानेभ्यो लोकेभ्यः

अन्वय और पदार्थ- (एषः) यह (मे) मेरा (आत्मा) आत्मा (अन्तर्हृदये) हृदयके भीतर (व्रीहेः) व्रीहिसे (वा) या (यवात्) यवसे (वा) या (सर्षपात्) सरसोंसे (वा)

या (श्यामाकात्) समेंसे (वा) या (श्यामाकतण्डुलात्) समेके चावलसे (अणीयान्) सूक्ष्म है (एषः) यह (मे) मेरा (आत्मा) आत्मा (अन्तर्हृदये हृदयके भीतर (पृथिव्याः) पृथिवीसे (ज्यायान्) बड़ा है (अन्तरिक्षात्) अन्तरिक्षसे (ज्यायान्) बड़ा है (दिवः) द्युलोकसे (ज्यायान्) बड़ा है (एभ्यः) इन (लोकेभ्यः) लोकोंसे (ज्यायान्) बड़ा है ३

भावार्थ—यह मेरे हृदयके भीतर वर्त्तमान आत्मा व्रीहिसे जौं से, सरसोंसे, समेसे और समेके तण्डुलसे भी अतीव सूक्ष्म है इससे सिद्ध हुआ कि-यह आत्मा अणुपरिमाणवाला है इस भावको हटानेके लिये कहते हैं, कि-यह हृदयके भीतर वर्त्तमान मेरा आत्मा पृथिवीसे भी बड़ा है अन्तरिक्षसे भी बड़ा है स्वर्गसे भी बड़ा है और सब लोकोंसे भी बड़ा है ॥ ३ ॥

सर्वकर्मा सर्वकामः सर्वगन्धः सर्वरसः सर्वमिदमभ्यात्तोऽवाक्यनादर एष म आत्मान्तर्हृदय एतद्ब्रह्मैतमितः प्रेत्याभिसंभवितास्मीति यस्य स्यादद्धा न विचिकित्साऽस्तीति ह स्माह शाण्डिल्यः शाण्डिल्यः ॥ ४ ॥

अन्वय और पदार्थ-(सर्वकर्मा) सकल कर्म वाला (सर्वकामः) सकल काम वाला (सर्वगन्धः) सकल गन्धों वाला (सर्वरसः) सकल रसों वाला (इदं सर्वं अभ्यात्तः) इस सब में व्याप्त (अवाकी) वाणी रहित (अनादरः) संभ्रमरहित (एषः) यह (मे) मेरा (आत्मा) आत्मा (अन्तर्हृदये)

हृदयके भीतर है (एतत्) यह (ब्रह्म) ब्रह्म है (एतत्) इस ब्रह्मको (इतः) इस शरीरसे (प्रेत्य) प्रयाण करके (अभिसंभवितास्मि) मैं अवश्य ही प्राप्त होने वाला हूँ (इति) ऐसा (यस्य) जिसको (श्रद्धा) निश्चय है (विचिकित्सा) संदेह (न) नहीं (अस्ति) है [सः तत् प्राप्नोति] वह उसको प्राप्त होजाता है (इति ह) ऐसा (शाण्डिल्यः) शाण्डिल्य (आह स्म) कहता हुआ ॥ ४ ॥

भावार्थ—सकल कर्म वाला, दोष रहित सकल काम वाला सुखकारी सकल गन्ध वाला सुखदायक सकल रसों वाला, इस सबमें व्याप्त वाणीरहित और किसीसे आदरकी अपेक्षा न रखने वाला यह मेरा आत्मा हृदयके भीतर विद्यमान है, यह ब्रह्म है, इस ब्रह्मको इस शरीरसे वियोग होनेके अनन्तर पाकर मैं अवश्य ही प्राप्त होने वाला हूँ ऐसा निश्चय जिसको होगया है तथा इस निश्चयके फलमें जिसको सन्देह नहीं है वह विद्वान् ईश्वरभावको अवश्य ही प्राप्त होता है, इस प्रकार प्रसिद्ध शांडिल्य ऋषिने यह विद्या कही है ॥ ४ ॥

॥ इति तृतीयाध्यायस्य चतुर्दशः खण्डः समाप्तः ॥

अन्तरिक्षोदरः कोशो भूमिबुध्नो न जीर्यति दिशो ह्यस्य स्रक्तयो द्यौरस्योत्तरं बिलꣳ स एष कोशो वसुधानस्तस्मिन् विश्वमिदꣳ श्रितम् १

अन्वय और पदार्थ-(अन्तरिक्षोदरः) अन्तरिक्षरूप छिद्र वाला (भूमिबुध्नः) भूमिरूप मूल वाला (कोशः) कोश (न) नहीं (जीर्यति) नष्ट होता है (हि) निश्चय (दिशः) दिशायें

(अस्य) इसके (स्रक्तयः) कोने हैं (द्यौः) स्वर्गलोक (अस्य) इसका (उत्तरम्) ऊपरका (बिलम्) छिद्र है (सः) वह (एषः) यह (कोशः) कोश (वसुधानः) धनरक्षाका स्थान है (तस्मिन्) तिसमें (इदम्) यह (विश्वम्) सकल (श्रितम्) आश्रित है ॥ १ ॥

भावार्थ-जिसमें अन्तरिक्ष ही छिद्र है और पृथिवी जिसको मूल है ऐसा यह कोश (भण्डार) सहस्र युग पर्यन्त जीर्ण नहीं होता । प्रसिद्ध सब दिशायें इस कोशके कोने हैं, स्वर्ग-लोक इस कोशका ऊपरका छिद्र है, ऐसा यह कोश वसुधान है अर्थात् इसमें प्राणियोंका कर्मफल रूप धन सुरक्षित रहता है इसमें साधनों सहित सकल कर्मफल स्थित हैं ॥ १ ॥

तस्य प्राची दिग्जुहूर्नाम, सहमाना नाम दक्षिणा राज्ञी नाम प्रतीची सुभूता नामोदीची तासां वायु-र्वत्सः स य एतमेवं वायुं दिशां वत्सं वेद न पुत्र-रोदꣳ रोदिति सोऽहमेतमेवं वायुं दिशां वत्सं वेद मा पुत्ररोदꣳ रुदम् ॥ २ ॥

अन्वय और पदार्थ-(तस्य) इसकी (प्राची दिक्) पूर्व-दिशा (जुहू नाम) जुहू नाम वाली है (दक्षिणा) दक्षिण दिशा (सहमाना नाम) सहमाना नाम वाली है (प्रतीची) पश्चिम दिशा (राज्ञी नाम) राज्ञी नाम वाली है (उदीची) उत्तर दिशा (सुभूता नाम) सुभूता नाम वाली है (वायुः) वायु (तासाम्) उनका (वत्सः) वत्स है (यः) जो (एतम्)

इस (वायुम्) वायुको (एवम्) इस प्रकार (दिशाम्) दिशाओं का (वत्सम्) वत्स (वेद) जानता है (सः) वह (पुत्र-रोदम्) पुत्रके निमित्त विलापसे युक्त (न) नहीं (रोदिति) रोता है (सः) वह (अहम्) मैं (एतम्) इस (वायुम्) वायुको (एवम्) इस प्रकार (वत्सम्) वत्स (वेद) जानता हूँ (पुत्ररोदम्) पुत्रके निमित्त विलापसे युक्त (मा रुदम्) न रोऊँ ॥ २ ॥

भावार्थ-कर्मकाण्डी लोग पूर्व दिशाकी ओरको मुख करके होम करते हैं । इस कारण इस कोशकी पूर्व दिशाका नाम जुहू है । दक्षिणदिशामें यमपुरीमें पहुँचे हुए पुरुष पापकर्मोंके फलों को सहते हैं, इस लिये उस कोशकी दक्षिण दिशाका नाम सहमाना है, क्योंकि-पश्चिम दिशामें सायङ्कालके समय राग कहिये लालिमाका योग होता है,इस कारण उस कोशकी पश्चिम दिशाका नाम राज्ञी है,उत्तर दिशामें महेश्वर और कुबेर आदिकी प्रभुता है, इस कारण उस कोशको उत्तर दिशाका नाम सुभूता है, वायु इन दिशाओंका वत्स है जो पुत्रका दीर्घजीवन चाहने वाला इस प्रकार वायुको सब दिशाओंका वत्स और अमृत-रूप जान कर उपासना करता है वह पुत्रके लिये रुदन नहीं करता है अर्थात् उसके पुत्रका मरण नहीं होता है, मैं पुत्रका दीर्घजीवन चाहता हूँ और मैं इस वायुको दिशाओंको वत्स तथा अमृत जान कर उपासना करता हूँ, इस लिये मुझे पुत्र के लिये रुदन न करना पड़े ॥ २ ॥

अरिष्टं कोशं प्रपद्येऽमुनाऽमुनाऽमुना प्राणं प्रपद्येऽ-

मुनाऽमुनाऽमुना भूः प्रपद्येऽमुनाऽमुनाऽमुना भुवः प्रपद्येऽमुनाऽमुनाऽमुना स्वः प्रपद्येऽमुनाऽमुनाऽमुना ॥ ३ ॥

अन्वय और पदार्थ—(अमुना, अमुना, अमुना) अमुकके साथ अमुकके साथ अमुकके साथ (अरिष्टम्) अविनाशी (कोशम्) कोशको (प्रपद्ये) शरणमें जाता हूँ (अमुना, अमुना, अमुना) अमुकके साथ, अमुकके साथ, अमुकके साथ (प्राणम्) प्राणको (प्रपद्ये) शरणमें जाता हूँ (अमुना, अमुना, अमुना) अमुकके साथ, अमुकके साथ, अमुकके साथ (भूः) भूको (प्रपद्ये) शरणमें जाता हूँ (अमुना, अमुना, अमुना) अमुकके साथ, अमुकके साथ, अमुकके साथ (भुवः) भुवको (प्रपद्ये) शरणमें जाता हूँ (अमुना, अमुना, अमुना) अमुकके साथ, अमुकके साथ, अमुकके साथ (स्वः) स्वर्को (प्रपद्ये) शरणमें जाता हूँ ॥ ३ ॥

भावार्थ—मैं पुत्रकी आयुके लिये अमुकके, अमुकके, अमुकके साथ अविनाशी कोशरूप पुरुषका आश्रय लेता हूँ । अमुकके, अमुकके, अमुकके साथ प्राणका आश्रय लेता हूँ । अमुकके, अमुकके, अमुकके साथ भूलोकका आश्रय लेता हूँ । अमुकके, अमुकके, अमुकके साथ भुवर्लोकका आश्रय लेता हूँ । अमुकके, अमुकके, अमुकके साथ स्वर्लोकका आश्रय लेता हूँ ॥ ३ ॥

स यदवोचं प्राणं प्रपद्य इति प्राणो वा इदꣳ सर्वं भूतं यदिदं किञ्च तमेव तत्प्रापत्सि ॥ ४ ॥

अन्वय और पदार्थ—(सः) वह (प्राणम् प्रपद्ये) प्राण को शरण लेता हूँ (इति) ऐसा (यत्) जो (अवोचम् कहा था (इदम्) यह (सर्वम्) सब (भूतम्) भूतसमू (वै) निश्चय (प्राणः) प्राण है (तत्) तिससे (इदम्) यह (यत् किञ्च) जो कुछ है (तमेव) उसको ही (प्रापत्सि) शरण गया हूँ ॥ ४ ॥

भावार्थ-मैं प्राणका आश्रय लेता हूँ ऐसा जो कहा उसका कारण यह है, कि—यह सब चराचर विश्व प्राण ही है इस लिये ही मैंने उसकी शरण ली है ॥ ४ ॥

अथ यदवोचं भूः प्रपद्य इति पृथिवीं प्रपद्येऽन्तरिक्षं प्रपद्ये दिवं प्रपद्ये इत्येव तदवोचम् ।५।

अन्वय और पदार्थ—(अथ) और (यत्) जो (भूः प्रपद्ये) भूकी शरणमें जाता हूँ (इति) ऐसा (अवोचम्) कहा था (तत्) सो (पृथिवीम्) पृथिवीको (प्रपद्ये) शरण जाता हूँ (अन्तरिक्षम्) अन्तरिक्षको (प्रपद्ये) शरण जाता हूँ (दिवम्) स्वर्गको (प्रपद्ये) शरण जाता हूँ (इति,एव) ऐसा ही (अवोचम्) कहा था ॥ ५ ॥

भावार्थ-मैंने जो भूलोकका आश्रय लेता हूँ ऐसा कहा था, उसके द्वारा पृथिवीकी शरण हूँ, अन्तरिक्षकी शरण हूँ और स्वर्गकी शरण हूँ, यह ही कहा था ॥ ४ ॥

अथ यदवोचं भुवः प्रपद्य इति, अग्निं, प्रपद्ये वायुं प्रपद्य आदित्यं प्रपद्य इत्येव तदवोचम् ।६।

अन्वय और पदार्थ—(अथ) और (यत्) जो (भुवः, प्रपद्ये) भुवर्लोकका आश्रय लेता हूँ (इति, अवोचम्) ऐसा कहा था (तत्) सो (अग्निम् प्रपद्ये) अग्निकी शरण लेता हूँ (वायुम्, प्रपद्ये) वायुकी शरण लेता हूँ (आदित्यम्, प्रपद्ये) आदित्यका शरण लेता हूँ (इति एव) ऐसा ही (अवोचम्) कहा था ॥ ६ ॥

भावार्थ—और भुवर्लोककी शरण लेता हूँ, ऐसा जो कहा था उससे यह समझना, कि—मैं अग्निकी शरण लेता हूँ और आदित्यकी शरण लेता हूँ ॥ ६ ॥

अथ यदवोचं स्वः प्रपद्य इति, ऋग्वेदं प्रपद्ये, यजुर्वेदं प्रपद्ये सामवेदं प्रपद्य इत्येव तदवोचं तद-वोचम् ॥ ७ ॥

अन्वय और पदार्थ-(अथ) और (यत्) जो (स्वः, प्रपद्ये) स्वर्लोककी शरण लेता हूँ (इति) ऐसा (अवोचम्) कहा था (तत्) सो (ऋग्वेदम्, प्रपद्ये) ऋग्वेदकी शरण लेता हूँ (यजुर्वेदम्, प्रपद्ये) यजुर्वेदकी शरण लेता हूँ (सामवेदम्, प्रपद्ये) सामवेदकी शरण लेता हूँ (इति, एव) ऐसा ही (अवोचम्) कहा था ॥ ७ ॥

भावार्थ—मैं स्वर्लोकका आश्रय लेता हूँ ऐसा जो कहा था उससे ऋग्वेदकी शरण लेता हूँ, यजुर्वेदकी शरण लेता हूँ साम-वेदकी शरण लेता हूँ ऐसा कहा है ॥ ७ ॥

॥ तृतीयाध्यायस्य पञ्चदशः खण्डः समाप्तः ॥

पुरुषो वाव यज्ञस्तस्य यानि चतुर्विंशतिवर्षाणि

तत्प्रातःसवनं चतुर्विंशत्यक्षरा गायत्री गायत्रं प्रातःसवनं तदस्य वसवोऽन्वायत्ताः प्राणाः वाव वसव एते हीदꣳ सर्वं वासयन्ति ॥ १ ॥

अन्वय और पदार्थ—(पुरुषः, वाव) पुरुष ही (यज्ञः) यज्ञ है, (तस्य) उसके (यानि) जो (चतुर्विंशतिवर्षाणि) चौबीस वर्ष हैं (तत्) सो (प्रातःसवनम्) प्रातःसवन है (गायत्री) गायत्री (चतुर्विंशत्यक्षरा) चौबीस अक्षरोंकी है (प्रातःसवनम्) प्रातःसवन (गायत्रम्) गायत्रीसे सम्बन्ध वाला है (वसवः) वसु (अस्य) इसके (अन्वायत्ताः) अनुगत हैं (एते) ये (प्राणाः वाव) प्राण ही (वसवः) वसु हैं (हि) क्योंकि—(इदम्) इस (सर्वम्) सबको (वासयन्ति) वास कराते हैं ॥ १ ॥

भावार्थ—पुरुष ही यज्ञ है, पुरुषकी आयुके पहिले चौबीस वर्षोंको पुरुषका प्रातःसवन अर्थात् प्रातःकालका यज्ञकर्म कहते हैं, क्योंकि—चौबीस अक्षरों वाली गायत्री है और गायत्रीके सम्बन्धवाला प्रातःकालका यज्ञकर्म है। इस पुरुषयज्ञके, वह प्रातःकालके यज्ञप्रति विधिपूर्वक अनुष्ठान किये हुए बाह्य यज्ञ के प्रातःकालके यज्ञकी समान वसु स्वामिरूपसे अनुगत हैं। यहाँ अग्नि आदि वसु नहीं हैं किन्तु वाक् आदिरूप और वायुरूप प्राण ही वसु हैं क्योंकि—ये प्राण पुरुष आदि सकल प्राणियोंके समूहको वास कराते हैं ॥ १ ॥

तं चेदेतस्मिन् वयसि किञ्चिदुपतपेत्स ब्रूयात् प्राणा वसव इदं मे प्रातःसवनं माध्यन्दिनꣳ

सवनमनुसन्तनुतेति माऽहं प्राणानां वसूनां मध्ये यज्ञो विलोप्सीयेत्युद्धैव तत एत्यगदो ह भवति २

अन्वय और पदार्थ-(तम्) उसको (चेत्) यदि (एतस्मिन्, वयसि) इस अवस्थामें (किञ्चित्) कुछ (उपतपेत्) सन्ताप देय (सः) वह (ब्रूयात्) कहै (प्राणाः वसवः) हे प्राणरूप वसुओ ! (इदम्) यह (मे) मेरा (प्रातःसवनम्) प्रातःसवन (माध्यन्दिनम्, सवनम्, अनुसन्तनुत) मध्यन्दिन सवनके प्रति एकीभूत करो (इति) इससे (अहम्) मैं (यज्ञः) यज्ञ (प्राणानाम्, वसूनाम्, मध्ये) प्राणरूप वसुओंके मध्यमें (मा विलोप्सीय) विच्छेदको न प्राप्त होऊँ (ततः) उस दुःखसे (उदेति एव ह) अवश्य ही उत्तीर्ण होता है (अगदः, ह, भवति) नीरोग भी अवश्य होता है २

भावार्थ—पुरुषकी आयुके इन चौबीस वर्षोंके भीतर यदि कोई प्राणान्तकारी रोग उत्पन्न होजाय तो वह इस मन्त्रके मूलका पाठ करता हुआ इस प्रकार प्रार्थना करे, कि हे प्राणरूप वसुओ ! यह मेरी प्रातः सवनरूप प्रथम वय है इससे माध्यन्दिन सवनरूप मध्यम अवस्था पर्यन्त रक्षा करो, मैं प्राणरूप वसुओंमें यज्ञरूप हूँ, मैं उन प्राणोंसे वियुक्त न होऊँ, इस प्रकार प्रार्थना करनेसे उस प्राणान्तकर दुःखसे उत्तीर्ण होकर अवश्य ही नीरोग होजाता है ॥ २ ॥

अथ यानि चतुश्चत्वारिंशद्वर्षाणि तन्माध्यन्दिनꣳ सवनं चतुश्चत्वारिꣳशदक्षरा त्रिष्टुप्

त्रैष्टुभं माध्यन्दिनꣳ सवनं तदस्य रुद्रा अन्वा-
यत्ताः प्राणा वाव रुद्रा एते हीदꣳ सर्वꣳ रोदंति ३

अन्वय और पदार्थ–(अथ) और (यानि) जो (चतु-श्चत्वारिंशद्वर्षाणि) चौवालीस वर्ष हैं (तत्) (माध्यन्दि-नम्, सवनम्) मध्यदिनका यज्ञकर्म है (त्रिष्टुप्) त्रिष्टुप् छन्द (चतुश्चत्वारिंशदक्षरा) चौवालीस अक्षरका है (माध्य-न्दिनम्, सवनम्) मध्य दिनका यज्ञ कर्म (त्रैष्टुभम्) त्रिष्टुप् के सम्बन्ध वाला (अस्य) इसके (तत्) उसके प्रति (रुद्राः अन्वायत्ताः) रुद्र अनुगत हैं (प्राणाः वाव) प्राण ही रुद्राः) रुद्र हैं (हि) क्योंकि (एते हि) ये ही (इदं, सर्वम्) इस सबको (रोदयन्ति) रुलाते हैं ॥ ३ ॥

भावार्थ--और जो चौवालीस वर्ष हैं वह मध्य दिनका यज्ञ कर्म हैं, क्योंकि–चौवालीस अक्षर वाला त्रिष्टुप् और मध्य-दिनके यज्ञ कर्मका त्रिष्टुप्से सम्बन्ध है, इसके उस मध्यन्दिन के यज्ञकर्मके अनुगत स्वामी रुद्र हैं, यहां पूर्वोक्त प्राण ही रुद्र हैं, क्योंकि–ये प्राण उस अवस्थामें क्रूर होनेके कारण सबों को रुलाते हैं ॥ ३ ॥

तं चेदेतस्मिन् वयसि किञ्चिदुपतपेत्स ब्रूयात् प्राणा रुद्रा इदं मे माध्यन्दिनꣳ सवनं तृतीय-सवनमनुसन्तनुतेति माऽहं प्राणानाꣳ रुद्राणां मध्ये यज्ञो विलोप्सीयेत्युद्धैव तत एत्यगदो ह भवति ॥ ४ ॥

अन्वय और पदार्थ--(तम्) उसको (चेत्) यदि (एतस्मिन्, वयसि) इस अवस्थामें (किञ्चित्) कोई रोग (उपतपेत्) सन्ताप देय (सः) वह (प्रब्रूयात्) कहै (प्राणाः, रुद्राः) हे प्राणरूप रुद्रों ! (इदम्) इस (मे) मेरे (माध्यन्दिनम्, सवनम्) मध्यदिनके सवनको (तृतीयसवनम्, अनुसन्तनुत) तीसरे सवनके प्रति एकीभूत करो (इति) इससे (अहम्) मैं यज्ञ (प्राणानाम्, रुद्राणाम्, मध्ये) प्राण रूप रुद्रोंके मध्यमें (मा विलोप्सीय) विच्छेदको न प्राप्त होऊँ (इति) ऐसा हो (ततः, उदेति, एव, ह) उससे अवश्य ही सन्तापके पार होता है (अगदः, ह, भवति) अवश्य ही नीरोग होता है ॥ ४ ॥

भावार्थ–इसके अनन्तर पुरुषकी आयुके दूसरे भाग चौवालीस वर्षके भीतर यदि कोई प्राणघातक रोगका दुःख आपड़े तो इस मन्त्रके मूलका पाठ करता हुआ इस प्रकार प्रार्थना करे, कि–हे प्राणरूप रुद्रगणों ! यह मेरी माध्यन्दिन सवनरूप मध्यम अवस्था है, मेरी तृतीय सवनरूप अन्तिम अवस्था पर्यन्त रक्षा करो, मैं प्राणरूप रुद्रोंमें भगवद्यज्ञ हूँ, मैं लुप्त न होऊं । ऐसी प्रार्थना करनेसे प्राणान्तकर दुःखके पार होता हुआ नीरोग होजाता है ॥ ४ ॥

अथ यान्यष्टचत्वारिंशद्वर्षाणि तत् तृतीयसवनमष्टाचत्वारिंशदक्षरा जगती, जागतं तृतीयसवनं तदस्यादित्या अन्वायत्ताः प्राणा वावादित्या एते हीदꣳ सर्वमाददते ॥ ५ ॥

अन्वय और पदार्थ—(अथ) और (यानि) जो (अष्टाचत्वारिंशद्वर्षाणि) अड़तालीस वर्ष हैं (तत्) वह (तृतीयसवनम्) तीसरा सवन है (अष्टाचत्वारिंशदक्षरा) अड़तालीस अक्षरका (जगती) जगती छन्द है (तृतीयसवनम्) तीसरा सवन (जागतम्) जगती छन्दके सम्बन्ध वाला है। (तत्) सो (आदित्याः) आदित्य (अस्य) इसके (अन्वायत्ताः) अनुगत हैं (प्राणाः, वाव) प्राण ही (आदित्याः) आदित्य हैं (एते, हि) ये ही (इदम्) इस (सर्वम्) सब को (आददते) ग्रहण करते हैं ॥ ५ ॥

भावार्थ—पुरुषकी आयुके तीसरे अड़तालीस वर्षको अर्थात् एकसौ सोलह वर्षकी आयु पर्यन्तके समयको तृतीय सवन कहते हैं। तृतीय सवन सम्बन्धी स्तोत्र आदिका जगती छन्द है, उस जगती छन्दमें अड़तालीस अक्षर होते हैं। तृतीय सवन के स्तोत्र आदिका जगती छन्द होनेसे तृतीय सवन जागत नामसे कहा जाता है तृतीय सवनके देवता आदित्य हैं। वह आदित्य तृतीय सवनके अनुगत हैं। ये सब प्राण ही आदित्य हैं। प्राण शब्द समूह आदि सबको ग्रहण करते हैं, इस कारण ही आदित्य कहलाते हैं ॥ ५ ॥

तं चेदेतस्मिन् वयसि किञ्चिदुपतपेत स ब्रूयात्प्राणा आदित्या इदं मे तृतीयसवनमायुरनुसन्तनुतेति माऽहं प्राणानामादित्यानां मध्ये यज्ञो विलोप्सीयेत्युद्धैव तत एत्यगदो हैव भवति ।६।

अन्वय और पदार्थ—(तम्) उसको (चेत्) यदि (एतस्मिन् वयसि) इस अवस्थामें (किञ्चित्) कुछ (उपतपेत्) सन्ताप देय (सः) वह (ब्रूयात्) कहे (प्राणाः आदित्याः) हे प्राणरूप आदित्यों ! (इदम्) इस (मे) मेरे (तृतीयसवनम्) तीसरे सवनको (आयुः, अनु) आयुके प्रति (सन्तनुत) एकीभूत करो (इति) इससे (अहं, यज्ञः) मैं यज्ञ (प्राणानाम् आदित्यानाम् मध्ये) प्राणरूप आदित्योंके मध्यमें (मा विलोप्सीय) विच्छेदको न प्राप्त होऊँ (इति) ऐसा हो (ततः, उद्धैति, एव, ह) उससे अवश्य ही सन्तापके पार होता है। (अगदः, एव, ह, भवति) अवश्य ही नीरोग होता है ॥ ६ ॥

भावार्थ—पुरुषकी आयुके इस तीसरे भाग अड़तालीस वर्ष के भीतर यदि कोई मरणकी शङ्काका दुःख उपस्थित होय तो मूलोक्त इस मन्त्रको पढ़ता हुआ इस प्रकार प्रार्थना करे, कि हे प्राणरूप आदित्यों ! यह मेरी तृतीय–सवन–रूप अन्तिम अवस्थाके शेषपर्यन्त रक्षा करो अर्थात् पूर्ण आयु देकर यज्ञको समाप्त करो जिससे कि–मैं यज्ञ प्राणरूप आदित्योंसे विच्छेद न पाऊँ। इस जप तथा ध्यानसे प्राणान्तकर दुःखके पार हो जाता है और नीरोग होकर जीवित रहता है ॥ ६ ॥

एतद्ध स्म वै तद्विद्वानाह महीदास ऐतरेयः स किं म एतदुपतपसि योऽहमनेन न प्रेष्यामीति स ह षोडशं वर्षशतमजीवत्स ह षोडशं वर्षशतं जीवति य एवं वेद ॥ ७ ॥

अन्वय और पदार्थ—(तत् एतत्) उस इसको (विद्वान्)

जानने वाला (ऐतरेयः, ह, महीदासः) इतराका पुत्र प्रसिद्ध महीदास (सः) वह तू (किम्) किस कारणसे (मे) मुझे (एतत्) यह (उपतपसि) दुःख देता है (यः, अहम्) जो मैं (अनेन) इससे (न) नहीं (प्रेष्यामि) मरणको प्राप्त होऊँगा (इति) ऐसा (आह, स्म) कहता हुआ (ह) प्रसिद्ध है (सः) वह (षोडशम्) सोलह (वर्षशतम्) सौ वर्ष (अजीवत्) जिया (यः) जो (एवम्) ऐसा (वेद) जानता है (सः,ह) वह ही (षोडशम्) सोलह (वर्षशतम्) सौ वर्ष (जीवति) जीवित रहता है ॥ ७ ॥

भावार्थ—इतराके पुत्र महीदास नामक ऋषिने इस पुरुषयज्ञ की रीति और वसु आदि देवताओंके समीप की हुई प्रार्थना के द्वारा तिस२ अवस्थामें प्राप्त हुए प्राणान्तकर रोगको दूर करनेकी रीतिको जान कर ऐसा कहा था, कि—हे रोग! तू मुझे यह दुःख क्यों देता है ? मैं यज्ञपुरुष हूँ, तेरे इस दुःख देनेसे मेरा मरण नहीं होगा इस लिये तेरा यह परिश्रम वृथा है। ऐसा निश्चय प्राप्त करके वह एकसौ सोलह वर्ष पर्यन्त जीवित रहे थे और भी जो कोई इस यज्ञकी इस प्रकार उपासना करेगा वह रोगादि दुःखसे रहित होकर एकसौ सोलह वर्षकी आयु पर्यंत जीवित रह सकता है ॥ ७ ॥

॥ तृतीयाध्यायस्य षोडशः खण्डः समाप्तः ॥

स यदशिशिषति यत्पिपासति यन्न रमते ता अस्य दीक्षा ॥ १ ॥

अन्वय और पदार्थ—(सः) वह (यत्) जो (अशिशिषति) खाना चाहता है (यत्) जो (पिपासति) पीना चाहता

है (यत्) जो (न) नहीं (रमते) अनुभव करता है (ताः) ये सब (अस्य) इसकी (दीक्षा) दीक्षा है ॥ १ ॥

भावार्थ—वह पुरुष जो खाना चाहता है, जो पीना चाहता है और इष्ट आदिकी अप्राप्तिके कारणसे जो सुखका अनुभव नहीं करता है, यह सब उसकी यज्ञकी दीक्षा है ॥ १ ॥

अथ यदश्नाति यत्पिबति यद्रमते तदुपसदैरेति २

अन्वय और पदार्थ—(अथ) और (यत्) जो (अश्नाति) खाता है (यत्) जो (पिबति) पीता है (यत्) जो (रमते) सुखका अनुभव करता है (तत्) सो (उपसदैः) उपसदोंकी समानताको (एति) पाता है ॥ २ ॥

भावार्थ—और जो खाता है,जो पीता है,जो सुखका अनुभव करता है, सो उपसदोंके साथ समानताको पाता है। सोमयाग में उपसद् व्रत किया जाता है, उसमें जैसे दूध पीनेसे स्वस्थता होती है तैसे ही अशन आदिमें भी है, इस लिये अशन आदि और उपसदोंकी समानता है ॥ २ ॥

अथ यद्धसति यज्जक्षति यन्मैथुनं चरति स्तुतशस्त्रैरेव तदेति ॥ ३ ॥

अन्वय और पदार्थ—(अथ) और (यत्) जो (हसति) हँसता है (यत्) जो (जक्षति) भक्षण करता है (यत्) जो (मैथुनम्) मैथुनको (चरति) करता है (तत्) सो (स्तुत शस्त्रैः, एव) स्तुति किये हुए स्तोत्रोंके साथ समानताको ही (एति) प्राप्त होता है ॥ ३ ॥

भावार्थ-अब जो हँसता है, जो भक्षण करता है और जो मैथुन करता है सो शब्दवान्पनेकी समानतासे स्तुति किये हुए स्तोत्रोंके साथ समानपनेको ही पाता है ॥ ३ ॥

अथ यत्तपो दानमार्जवमहिंसा सत्यवचनमिति ता अस्य दक्षिणाः ॥ ४ ॥

अन्वय और पदार्थ-(अथ) और (यत्) जो (तपः) तप (दानम्) दान (आर्जवम्) सरलता (अहिंसा) अहिंसा (सत्यवचनम्) सत्य-वचन (इति) ये हैं (ताः) वह (अस्य) इसकी (दक्षिणाः) दक्षिणा हैं ॥ ४ ॥

भावार्थ—अब जो तप, दान, सरलता, अहिंसा और सत्य वचन ये शुभ क्रिया हैं, ये धर्मके पुष्टकारीपनेकी समतासे उस पुण्ययज्ञकी दक्षिणा हैं ॥ ४ ॥

तस्मादाहुः सोष्यत्यसोष्टेति पुनरुत्पादनमेवास्य तन्मरणमेवावभृथः ॥ ५ ॥

अन्वय और पदार्थ—(तस्मात्) तिससे (सोष्यति) प्रसूत होगा (असोष्ट) प्रसूत हुई (इति) ऐसा (आहुः) कहते हैं (पुनः) फिर (अस्य) इसका (उत्पादनम् एव) उत्पादन ही (तन्मरणम्, एव) वह मरण ही (अवभृथः) यज्ञान्त स्नान है ॥ ५ ॥

भावार्थ-सवन शब्दका अर्थ सन्तान उत्पन्न करना और सोमको कूटना है, इस लिये प्रसूत होगा अर्थात् पुत्रको जन्म देगा वा सोमको कूटेगा तथा प्रसूत हुआ अर्थात् पुत्रको जन्म दिया वा सोमको कूटा ऐसा कहते हैं, फिर इस पुरुष नामक

यज्ञका विधियज्ञकी समान जो प्रसूत होगा, इत्यादि शब्दसे सम्बन्धीपना है वह उसकी उत्पत्ति ही है और समाप्तिकी समता से वह मरण ही इस यज्ञपुरुषका अवभृथ नामक यज्ञांत स्नान है

तद्धैतद् घोर आङ्गिरसः कृष्णाय देवकीपुत्रायोक्त्वोवाचापिपास एव स बभूव सोऽन्तवेलायामेतत् त्रयं प्रतिपद्येताक्षितमस्यच्युतमसि प्राणसꣳशितमसीति तत्रैते द्वे ऋचौ भवतः ॥ ६ ॥

अन्वय और पदार्थ—(ह) प्रसिद्ध (तत्) उसे (एतत्) इसको (आङ्गिरसः) आङ्गिरस गोत्र वाला (घोरः) घोर नामक ऋषि (देवकीपुत्राय) देवकीके पुत्र (कृष्णाय) कृष्ण को (उक्त्वा) कह कर (उवाच) बोला (सः) वह (अन्तवेलायाम्) मरण समयमें (एतत्) इन (त्रयम्) तीनको (प्रतिपद्येत) जपे—(अक्षितम्, असि) क्षत रहित है (अच्युतम् असि) नाशरहित है (प्राणसंशितम्, असि) सूक्ष्म प्राण है (इति) इस प्रकार (तत्र) तिस पर (एते) ये (द्वे) दो (ऋचौ) मन्त्र (भवतः) हैं (सः) यह (अपिपासः, एव) पियास रहित ही (बभूव) हुआ ॥ ६ ॥

भावार्थ—आङ्गिरस गोत्र वाले घोर नामक ऋषिने देवकीके पुत्र कृष्णको प्रणाम करके कहा, कि—आयुर्यज्ञकी रीतिको जानने वाला पुरुष मरणके समय आदित्यमें स्थित प्राणको एककी समान करके "अक्षितमसि" "अच्युतमसि" "प्राणसंशितमसि" इन तीन मन्त्रोंका जप करे। इनका अर्थ यह

है, कि—तू क्षतरहित है, तू नाशरहित है और तू अति सूक्ष्म प्राण वा प्राणसे भी अधिक सुखवाला है, इस प्रकार दीक्षित होकर घोर ऋषिका शिष्य पिपासारहित हुआ था, श्रीभगवान्की उपासनासे उनका साक्षात्कार और उनके साक्षात्काररसे उनकी प्राप्ति होनेमें दो मन्त्र कहे हैं ॥ ६ ॥

आदित्प्रत्नस्य रेतसः। उद्वयं तमसस्परि ज्योतिः पश्यन्त उत्तरं स्वः पश्यन्त उत्तरं देवं देवत्रा सूर्यमगन्म ज्योतिरुत्तममिति ज्योतिरुत्तममिति ।७।

अन्वय और पदार्थ—(प्रत्नस्य) पुरातन (रेतसः) कारणके (तमसः परि) अज्ञानके पार (आदित्) आदित्यमें स्थित (उत्) उत्तम (ज्योतिः) ज्योतिको (पश्यन्तः) देखते हुए (उत्तरम्) उत्कृष्ट ज्योतिको (पश्यन्तः) देखते हुए (देवत्रा) सब देवताओंमें (देवम्) प्रकाश वाले (स्वः) अपने (उत्तमम्) उत्कृष्ट (सूर्यम्) सूर्यरूप (ज्योतिः) ज्योतिको (वयम्) हम (अगन्म) प्राप्त हुए ॥ ७ ॥

भावार्थ—जिन्होंने इन्द्रियोंको विषयोंसे हटा लिया है, तथा जिनके अन्तःकरण ब्रह्मचर्य आदि निवृत्तिके साधनोंसे शुद्ध होगये हैं ऐसे हम पुरातन कारणरूप सर्वव्यापक परम प्रकाशका और अज्ञानसे पर आदित्यमें स्थित दिव्य ज्योतिका अनुभव करते हुए तथा सकल देवताओंको प्रकाश देने वाली अपनी सूर्यरूप उत्तम ज्योतिको हम प्राप्त होगये ॥ ७ ॥

॥ तृतीयाध्यायस्य सप्तदशः खण्डः समाप्तः ॥

——[:-*-:]——

मनो ब्रह्मेत्युपासीतेत्यध्यात्ममथाधिदैवतमाकाशो ब्रह्मेत्युभयमादिष्टं भवत्यध्यात्मं चाधिदैवतं च ।१।

अन्वय और पदार्थ—(मनः) अन्तःकरण (ब्रह्म) ब्रह्म (इति) ऐसी (उपासीत) उपासना करे (इति) यह (अध्यात्मम्) अध्यात्म है (अथ) अब (अधिदैवतम्) अधिदैव उपासना कहते हैं (आकाशः) आकाश (ब्रह्म) ब्रह्म है (इति) इस प्रकार (अध्यात्मम्) अध्यात्म (च) और (अधिदैवतम्, च) आधिदैविक भी (उभयम्) दोनों (उपदिष्टम्) उपदेश किये हुए (भवति) होते हैं ॥ १ ॥

भावार्थ—परमात्मा अन्तःकरणसे साक्षात् करने योग्य है, इस कारण अन्तःकरण परमात्मा है, इस प्रकार उपासना करे यह सूक्ष्मशरीरके सम्बन्ध वाली आध्यात्मिक उपासना है। अब देवता—विषयक उपासनाको कहते हैं, कि—आकाश सर्वव्यापक, सूक्ष्म और उपाधिरहित होनेसे आकाश ब्रह्म है, ऐसी उपासना करे। इस प्रकार अध्यात्म और अधिदैवत दोनों परमात्मदृष्टिके विषय कहे हैं ॥ १ ॥

तदेतच्चतुष्पाद् ब्रह्म वाक् पादः प्राणः पादश्चक्षुः पादः श्रोत्रं पाद इत्यध्यात्ममथाधिदैवतमग्निः पादो वायुः पाद आदित्यः पादो दिशः पाद इत्युभयमेवादिष्टं भवत्यध्यात्मं चैवाधिदैवतं च ॥ २ ॥

अन्वय और पदार्थ—(तत्) वह (एतत्) यह (ब्रह्म) ब्रह्म (चतुष्पाद्) चार पाद वाला है (वाक्) वाणी (पादः)

पाद है (प्राणः, पादः) प्राण पाद है (चक्षुः, पादः) चक्षु पाद है (श्रोत्रम्, पादः) श्रोत्र पाद है (इति, अध्यात्मम्) यह अध्यात्म है (अथ, अधिदैवतम्) अब अधिदैवत कहते हैं (अग्निः, पादः) अग्नि पाद है (वायुः, पादः) वायु पाद है (आदित्यः, पादः) आदित्य पाद है (दिशः, पादः) दिशायें पाद हैं (इति) इस प्रकार (अध्यात्मम्) अध्यात्म (च) और (अधिदैवतम्, च, एव) अधिदैवत भी (उभयम्) दोनों (उपदिष्टम्) उपदेश किये हुए (भवति) होते हैं ॥ २ ॥

भावार्थ—वाणी, प्राण, चक्षु और श्रोत्र ये चार अध्यात्म मनरूप ब्रह्मके चार पाद हैं और अग्नि, वायु, आदित्य और दिशाएँ ये चार अधिदैवत आकाशरूप ब्रह्मके चार पाद हैं, इस प्रकार अध्यात्म और अधिदैवत दोनोंका उपदेश होगया २

वागेव ब्रह्मणश्चतुर्थः पादः सोऽग्निना ज्योतिषा भाति च तपति च भाति च तपति च कीर्त्या यशसा ब्रह्मवर्चसेन य एवं वेद ॥ ३ ॥

अन्वय और पदार्थ—(वाक्, एव) वाणी ही (ब्रह्मणः) ब्रह्मका (चतुर्थः, पादः) चौथा पाद है (सः) वह अग्निना ज्योतिषा) अग्निरूप ज्योतिसे (भाति) प्रकाशित होता है (च) और (तपति, च) तपता भी है (यः) जो (एवम्) इस प्रकार (वेद) जानता है (सः) वह (कीर्त्या) कीर्त्ति से (यशसा) यशसे (च और (ब्रह्मवर्चसेन) ब्रह्मतेज से (भाति) प्रकाशित होता है (च) और (तपति) तपता है ३

भावार्थ—वाणी ही मनोरूप ब्रह्मका तीन पादकी अपेक्षा

चौथा पाद है, वह पाद अग्निरूप ज्योतिसे वक्तव्यके लिये प्रकाशित होता है और बोलनेमें गति पाता है, जो ऐसा जान कर उपासना करता है वह कीर्त्तिसे यशसे और ब्रह्मतेजसे प्रकाशित होता है तथा तपता है जैसे गौ चरणोंसे गमन करती है तैसे ही मन वाणी, घ्राण, नेत्र और श्रोत्रके द्वारा उन इन्द्रियोंके विषयोंमेंको गमन करता है इस कारण वाणी आदि को मनोरूप ब्रह्मका पाद कहा है और अग्नि, वायु, आदित्य तथा दिशा ये आकाशरूप ब्रह्मके, गौके उदरमें लगे हुए चरणों को समान, उदरमें लगे हुएसे प्रतीत होते हैं, इस कारण उन को आकाशरूप ब्रह्मके पाद कहा है ॥ ३ ॥

घ्राण एव ब्रह्मणश्चतुर्थः पादः स वायुना ज्योतिषा भाति च तपति च भाति च तपति च कीर्त्या यशसा ब्रह्मवर्चसेन य एवं वेद ॥ ४ ॥

अन्वय और पदार्थ-(घ्राणः, एव) घ्राण ही (ब्रह्मणः) ब्रह्मका (चतुर्थः, पादः) चौथा पाद है (सः) वह (वायुना, ज्योतिषा) वायुरूप ज्योतिके द्वारा (भाति) प्रकाशित होता है (च) और (तपति च) तपता भी है (यः) जो (एवम्) ऐसा (वेद) जानता है [सः] वह (कीर्त्त्या) कीर्त्तिसे (यशसा) यशसे (च) और (ब्रह्मवर्चसेन) ब्रह्मतेजसे (भाति) प्रकाशित होता है (च) और (तपति) तपता है ४

भावार्थ -घ्राण ही ब्रह्मका चौथा पाद है, वह वायुमें स्थित ज्योतिके द्वारा दीप्ति पाता है और ताप देता है, जो ऐसा

जानकर उपासना करता है वह कीर्त्ति, यश और ब्रह्मतेजसे यश दीप्ति पाता है और ताप देता है ॥ ४ ॥

चक्षुरेव ब्रह्मणश्चतुर्थः पादः स आदित्येन ज्योतिषा भाति च तपति च भाति च तपति च कीर्त्या यशसा ब्रह्मवर्चसेन य एवं वेद ॥ ५ ॥

अन्वय और पदार्थ—(चक्षुः एव) चक्षु ही (ब्रह्मणः) ब्रह्मका (चतुर्थः) चौथा (पादः) चरण है (सः) वह (आदित्येन, ज्योतिषा) आदित्यरूप ज्योतिके द्वारा (भाति) प्रकाशित होता है (च) और (तपति, च) तपता भी है (यः) जो (एवम्) ऐसा (वेद) जानता है [सः] वह (कीर्त्या) कीर्त्तिसे (यशसा) यशसे (च) और (ब्रह्मवर्चसेन) ब्रह्मतेजसे (भाति) प्रकाशित होता है च और (तपति) तपता है ॥ ५ ॥

भावार्थ—चक्षु ही ब्रह्मका चौथा पाद है, यह आदित्यमें स्थित ज्योतिके द्वारा रूपके निमित्त प्रकाशित होता है और तपता है, जो ऐसा जानकर उपासना करता है वह कीर्त्ति, यश और वेदादिके अध्ययनसे उत्पन्न हुए तेजसे दीप्ति पाता है और ताप देता है ॥ ५ ॥

श्रोत्रमेव ब्रह्मणश्चतुर्थः पादः स दिग्भिर्ज्योतिषा भाति च तपति च भाति च तपति च कीर्त्या यशसा ब्रह्मवर्चसेन य एवं वेद, य एवं वेद ६

अन्वय और पदार्थ—(श्रोत्रम्, एव) श्रोत्र ही (ब्रह्मणः)

ब्रह्मका (चतुर्थः) चौथा (पादः) चरण है (सः) वह (दिग्भिः, ज्योतिषा) दिशारूप ज्योतिके द्वारा (भाति) प्रकाशित होता है (च) और (तपति, च) तपता भी है (यः) जो (एवम्) ऐसा (वेद) जानता है [सः] वह (कीर्त्या) कीर्त्तिसे (यशसा) यशसे (च) और (ब्रह्मवर्चसेन) ब्रह्म तेजसे (भाति) प्रकाशित होता है (च) और (तपति) तपता है ॥ ६ ॥

भावार्थ–श्रोत्र ही ब्रह्मका चौथा पाद है, वह दिशाओंमें स्थित ज्योतिके द्वारा शब्द ग्रहणके लिये प्रकाशित होता है और ताप देता है, जो ऐसा जानकर उपासना करता है वह कीर्त्ति यश और ब्रह्मतेजके द्वारा दीप्ति पाता है और ताप देता है

॥ तृतीयाध्यायस्याष्टादशः खण्डः समाप्तः ॥

आदित्यो ब्रह्मेत्यादेशस्तस्योपव्याख्यानमसदेवेदमग्र आसीत् । तत्सदासीत्तत्समभवत्तदाण्डं निरवर्त्तत तत्संवत्सरस्य मात्रामशयत, तन्निरभिद्यत, ते आण्डकपाले रजतञ्च सुवर्णं चाभवताम्

अन्वय और पदार्थ–(आदित्यः) आदित्य (ब्रह्म) ब्रह्म है (इति) ऐसा (आदेशः) उपदेश है (तस्य) उसका (उपव्याख्यानम्) व्याख्यान [क्रियते] किया जाता है (इदम्) यह (अग्रे) आगे (असत्, एव) असत् ही (आसीत्) था (तत्) वह (सत्) सत् (आसीत्) था (तत्) वह (समभवत्) भलेप्रकार हुआ (तत्) वह (आण्डम्) अण्ड-रूप (निरवर्त्तत) हुआ (तत्) वह (संवत्सरस्य) संवत्सर

को (मात्राम्) परिमाणको (अशयत) सोता रहा (तत्) वह (निरभिद्यत) फूटा (ते) वह (आण्डकपाले) अण्डे के दो कपाल (रजतम्) चाँदी (च) और (सुवर्णम् च) सोना भी (अभवताम्) हुए ॥ १ ॥

भावार्थ—आदित्यकी उपासना करे ऐसा उपदेश दिया जाचुका है, अब उसकी व्याख्या की जाती है । यह सकल जगत् सृष्टि होनेकी पूर्व अवस्थामें असत् कहिये नामरूपसे रहित और स्पन्दन-शून्य था, फिर उसने स्पन्दन पाया और कुछ २ प्रवृत्तिवाला हुआ फिर किञ्चिन्मात्र नाम रूपकी प्रकटता के द्वारा अंकुरित हुए बीजकी समान क्रमसे स्थूल हुआ, तद-नन्तर पञ्चीकरण हुआ जलसे अण्डा उत्पन्न हुआ वह अंड एक वर्षभर तक तैसा ही पड़ा रहा वर्षभरके अनन्तर वह ऊपर से फटकर दो टुकड़े होगया उन दोनों भागोंमेंसे एक भाग रजत (चाँदी) और दूसरा भाग सुवर्ण होगया ॥ १ ॥

तद्यद्रजतं सेयं पृथिवी यत्सुवर्णं सा द्यौर्यज्जरायु ते पर्वता यदुल्बꣳ स मेघो नीहारो या धमनयस्ता नद्यो यद्वास्तेयमुदकꣳ स समुद्रः ॥ २ ॥

अन्वय और पदार्थ—(तत्) वह (यत्) जो (रजतम्) रजत है (सा) वह (इयम्) यह (पृथिवी) पृथिवी है (यत्) जो (सुवर्णम्) सुवर्ण है (सा) वह (द्यौः) स्वर्ग है (यत्) जो (जरायु) जरायु है (ते) वह (पर्वताः) पहाड़ हैं (यत्) जो (उल्बम्) सूक्ष्मांश है (सः) वह (मेघः, नीहारः) मेघसहित नीहार है (याः) जो (धमनयः) नाड़ी

हैं (ताः) वह (नद्यः) नदी हैं (यत्) जो (वास्तेयम्) मूत्र-स्थानमेंका (उदकम्) जल है (सः) वह (समुद्रः) समुद्र है ॥ २ ॥

भावार्थ—उन दोनों कपालोंमेंका जो रजतरूप कपाल है वही यह पृथिवी है, जो सुवर्णरूप कपाल है वह स्वर्ग है। उस अंडके भीतर गर्भवेष्टनका जो स्थूल अंश है वही ये पहाड़ हैं और जो सूक्ष्म अंश है वह मेघसहित कुहरा है जो नाड़ियें हैं, वही ये नदियें हैं और उस गर्भमेंके मूत्राशयका जो जल है वही यह समुद्र है ॥ २ ॥

अथ यत्तदजायत सोऽसावादित्यस्तं जायमानं घोषा उलूलवोऽनूदतिष्ठन्त्सर्वाणि च भूतानि सर्वे च कामास्तस्मात्तस्योदयम्प्रति प्रत्यायनं प्रति घोषा उलूलवोऽनूत्तिष्ठन्ति सर्वाणि च भूतानि सर्वे च कामाः ॥ ३ ॥

अन्वय और पदार्थ—(अथ) इसके अनन्तर (यत्) जो (तत्) वह (अजायत) उत्पन्न हुआ (सः) वह (असौ) यह (आदित्यः) आदित्य है (जायमानम्) उत्पन्न हुए (तम्) उसके प्रति (उलूलवः) बड़े भारी नाद वाले (घोषाः) शब्द (च) और (सर्वाणि) सब (भूतानि) भूत (च) और (सर्वे) सब (कामाः) विषय (उदतिष्ठन्) उत्पन्न हुए (तस्मात्) तिससे (तस्य, उदयम्, प्रति) उसके उदय के निमित्त (प्रत्यायनम्, प्रति) वारम्वार आगमनके निमित्त

(उलूलवः) बड़े भारी नाद वाले (घोषाः) शब्द (च) और (भूतानि) भूत (च) और (सर्वे) सब (कामाः) विषय (अनूत्तिष्ठन्ति) उत्पन्न होते हैं ॥ ३ ॥

भावार्थ-उस अण्डेके फूटजाने पर उस अंडेमें जो गर्भरूप था वह उत्पन्न हुआ वही आदित्य है, उस जन्मे हुए आदित्य के प्रति उत्सवके लिये बड़े २ नादरूप शब्द उत्पन्न हुए तथा सकल स्थावर जङ्गमरूप भूत तथा स्त्री वस्त्र आदि सकल विषय उत्पन्न हुए इसी कारण अब भी उस आदित्यके उदय के समय और अस्तके समय बड़े २ नादरूप शब्द सकल भूत और सब विषय उठते हैं ॥ ३ ॥

स य एतमेवं विद्वानादित्यं ब्रह्मेत्युपास्तेऽभ्याशो ह यदेनꣳ साधवो घोषा आ च गच्छेयुरुप च निम्रेडेरन्निम्रेडेरन् ॥ ४ ॥

अन्वय और पदार्थ-(यः) जो (एवम्) इसको (एवम्) ऐसा (विद्वान्) जानता हुआ (आदित्यम्) आदित्यको (ब्रह्म इति) ब्रह्म है ऐसा मानकर (उपासते) उपासना करता है (सः) वह (तद्भावम्, प्रतिपद्यते) उस ही भाव को पाता है (यत्) जो (एनम्) इसको (अभ्याशः, ह) शीघ्र ही (साधवः) निर्दोष (घोषाः) शब्द (आगच्छेयुः) आते हैं (च) और (उपनिम्रेडेरन्) समीपमें आकर सुख भी देते हैं ॥ ४ ॥

भावार्थ—जो इस तत्त्वको जानकर आदित्यकी ब्रह्मदृष्टि से उपासना करता है वह उस भावको पाता है तथा उसको

पभोगमें पापके सम्पर्कसे रहित शब्द प्राप्त होते हैं अर्थात् चारों ओर उसकी निर्मल कीर्त्ति फैलजाती है तथा उस कीर्त्ति के कारणसे उसको आनन्द प्राप्त होता है ॥ ४ ॥

इति श्री सामवेदीयछान्दोग्योपनिषदन्वयपदार्थभाषा-
भावार्थसहितस्तृतीयाध्यायस्यैकोनविंशः
खण्डस्तृतीयाध्यायश्च समाप्तः

* अथ चतुर्थोऽध्यायः *

ॐ जानश्रुतिर्हि पौत्रायणः श्रद्धादेयो बहुदायी बहुपाक्य आस स ह सर्वत आवसथान्मापयाञ्चक्रे सर्वत एव मेऽत्स्यन्तीति ॥ १ ॥

अन्वय और पदार्थ-(ह) प्रसिद्ध (जानश्रुतिः) जनश्रुत राजाका (पौत्रायणः) पुत्रका पौत्र (श्रद्धादेयः) श्रद्धा के साथ दान करनेवाला (बहुदायी) बहुत देनेवाला (बहुपाक्यः) जिसके घर बहुतसा पाक होता है ऐसा (आस) था (सः) वह (ह) प्रसिद्ध [राजा] राजा (सर्वतः) सर्वत्र (मे, एव अत्स्यन्ति) मेरा ही खायेंगे (इति) ऐसा विचार कर (सर्वतः) सर्वत्र (आवसथान्) सदाव्रतके स्थानों को (मापयाञ्चक्रे) बनवाता हुआ ॥ १ ॥

भावार्थ-जनश्रुत राजाके पुत्रका पौत्र एक जानश्रुति नाम का राजा था, वह बड़ी श्रद्धाके साथ बहुतसा दान दिया करता था, उसके यहाँ अतिथियोंके निमित्त बहुतसा भोजन पकाया जाता था, उस राजाकी यह इच्छा थी ग्राम और नगरोंमें ब्राह्मण, ब्रह्मचारी, यति मेरा ही भोजन पाया करें, इस लिये

उसने जहाँ तहाँ सर्वत्र ऐसी धर्मशालायें बनवादी थीं, कि-जिनमें आकर लोग ठहरें, और भोजन पावें ॥ १ ॥

अथ ह हꣳसा निशायामतिपेतुस्तद्धैवꣳ हꣳसो हꣳसमभ्युवाद हो होऽयि भल्लाक्ष भल्लाक्ष जानश्रुतेः पौत्रायणस्य समं दिवा ज्योतिराततं तन्मा प्रसाङ्क्षीस्तत्त्वा मा प्रधाक्षीरिति ॥ २ ॥

अन्वय और पदार्थ-(अथ) अनन्तर (ह) प्रसिद्ध (हंसाः) हंस (निशायाम्) रात्रिमें (अतिपेतुः) उड़ने लगे (तत्, ह) उस समय ही (हंसः) हंस (हंसम्) दूसरे हंसको (एवम्) इस प्रकार (अभ्युवाद) बोला (हो हो अयि) भो भो अरे (भल्लाक्ष, भल्लाक्ष) हे मन्ददृष्टिवाले ! हे मन्ददृष्टिवाले ! (जानश्रुतेः, पौत्रायणस्य) जनश्रुत राजा के पुत्रके पौत्रका (दिवा समम्) दिनकी समान (ज्योतिः) प्रकाश (आततम्) फैला हुआ है (तत्) उसको (मा प्रसांक्षीः) मत स्पर्श कर (तत्) वह (त्वा) तुझको (मा प्रधाक्षीः) न भस्म करे (इति) इस प्रकार ॥ २ ॥

भावार्थ-तदनन्तर राजाके दानगुणसे प्रसन्न हुए ऋषियों ने वा देवताओंने हंसोंका रूप धारण किया और जिस प्रकार राजाकी दृष्टि उनके ऊपर पड़े तैसे वह रात्रिमें उड़ने लगे, उस समय पीछेका हंस आगेके हंससे कहने लगा, कि-अरे ओ मन्ददृष्टिवाले ! जनश्रुत राजाके पुत्रके पौत्रका दिनकी समान तेज फैल रहा है उसको स्पर्श न कर, कहीं ऐसा न हो कि-उसको स्पर्श करके भस्म होजाय ? ॥ २ ॥

तमु ह परः प्रत्युवाच कम्वर एतमेतत्सन्तॐ सयुग्वानमिव रैक्वमात्थेति यो नु कथॐ सयुग्वा रैक्व इति ॥ ३ ॥

अन्वय और पदार्थ—(ह) कहते हैं कि-(तम्, उ) उसको (परः) अगला हंस (प्रत्युवाच) उत्तरमें बोला (अरे) ओ (एतत्) इस महलमें (सन्तम्) विद्यमान (कम्, च) खोटे माहात्म्य वाले (एतम्) इसको (सयुग्वानम्) गाड़ी के जुए पर बैठे हुए (रैक्वम्, इव) रैक्वकी समान (आत्थ) कहता है (इति) इस प्रकार कहा हुआ दूसरा हंस बोला (यः) जो (सयुग्वा, रैक्वः) गाड़ीवाला रैक्व है [सः] वह (कथम्, नु) कौन और कैसा है ? ॥ ३ ॥

भावार्थ-यह सुनकर अगले हंसने कहा, कि-तुझे धिक्कार है, जो तू इस महल पर सोते हुए जानश्रुतिको गाड़ीवाले रैक्व को समान बताता है। यह सुन कर पिछले हंसने कहा, कि कि-वह रैक्व कौन है और उसका कैसा प्रभाव है ? ॥३॥

यथः कृताय विजितायाधरेयाः संयन्त्येवमेनॐ सर्वं तदभिसमेति यत्किञ्च प्रजाः साधु कुर्वन्ति यस्तद्वेद यत्स वेद स मयैतदुक्त इति ॥ ४ ॥

अन्वय और पदार्थ—(यथा) जैसे (विजिताय) विजय पाये हुए (कृताय) कृतके लिये (अधरेयाः) नीचेके भाग (संयन्ति) अन्तर्गत होते हैं (एवम्) ऐसे ही (प्रजाः) प्रजायें (यत्किंच) जो कुछ (साधु) शुभकर्म (कुर्वन्ति)

करती हैं (तत्) वह (सर्वम्) सब (एनम्, अभिसमेति) इस रैक्वके पुण्यमें अन्तर्गत होता है (सः) वह (यत्) जो (वेद) जानता है (यः) जो (तत्) उसको (वेद) जानता है (सः) वह (मया) मैंने (एतत्) यह (उक्तः) कहा है (इति) इस प्रकार ॥ ४ ॥

भावार्थ—जैसे विजय पाये हुए पासेके चार अङ्कवाले कृत (करवट) के नीचेके तीन भाग अर्थात् तीन अंकवाला त्रेता दो अङ्क वाला द्वापर और एक अङ्क वालेके लिये पासेके तीन भाग अन्तर्गत होते हैं, इसी प्रकार प्रजायें जो कुछ शुभ कर्म करती हैं वह सब शुभ कर्म और उनका फल इस रैक्वके धर्म और उसके फलके अन्तर्गत है, यह रैक्व जिस जानने योग्य (वेद्य) पदार्थको जानता है, उस वेद्यको जो जानता है उसको भी सब प्राणियोंके धर्मका समूह और उसका फल रैक्वकी समान प्राप्त होता है, उस विद्वान्को ही मैंने इस प्रकार कहा है ॥ ४ ॥

तदु ह जानश्रुतिः पौत्रायण उपशुश्राव स ह सञ्जिहान एव क्षत्तारमुवाचाङ्गारेह सयुग्वानामिव रैक्वमात्थेति यो नु कथं सयुग्वा रैक्व इति ५

अन्वय और पदार्थ—(ह) कहते हैं, (कि—) (तत्, उ) उसको ही (जानश्रुतिः, पौत्रायणः) जनश्रुत राजाके पुत्रका पौत्र (उपशुश्राव) समीपमें ही सुनता हुआ (सः) वह (सञ्जिहानः एव) शय्याको त्यागते ही (क्षत्तारम्) बन्दीजन को (उवाच, ह) कहता हुआ (अरे, अंग) अरे प्रिय (सयु-

ग्वानम् इव रैक्वम्) गाड़ीवालेकी समान रैक्वको (इति) ऐसा (आत्थ) कह (यः) जो (सयुग्वा, रैक्वः) गाड़ीवाला रैक्व है (कथम्, नु) वह कैसा है (इति) इस प्रकार ॥५॥

भावार्थ-हंसको इस बातको जनश्रुतके पुत्रका पौत्र जानश्रुति सुन रहा था, सुने हुए इन वचनोंका वारम्वार स्मरण करते हुए उसने रात्रि बिताई, फिर प्रातःकालके समय वन्दीजनोंकी स्तुतियुक्त वाणीसे निद्राका त्याग करते ही उसने वन्दीजनोंसे कहा, कि—हे प्यारे ! प्रसिद्ध गाड़ी वाले रैक्वके पास जाकर कहो, कि—मैं उससे मिलना चाहता हूँ, उन वन्दीजनोंने कहा, कि-हे राजन् ! वह गाड़ी वाला रैक्व कौन है और कैसा है ? ॥ ५ ॥

यथा कृतायविजितायाधरेयाः संयन्त्येवमेनꣳ सर्वं तदभिसमेति यत्किञ्च प्रजाः साधु कुर्वन्ति यस्तद्वेद यत्स वेद स मयैतदुक्त इति ॥ ६ ॥

अन्वय और पदार्थ—चौथे मन्त्रके अनुसार जानो ॥६॥

भावार्थ—राजाने उत्तर दिया, कि—जैसे सदाचरणके द्वारा सत्ययुगको वशमें कर लेनेसे त्रेता आदि सब युगोंको जीत लिया जाता है तैसे ही ये सब लोग जो कुछ पुण्यकर्म करते हैं संवर्ग विद्याका जानने वाला रैक्व उस सबको जानता है, मैंने हंसके मुखसे रैक्वका यह परिचय पाया है ॥ ६ ॥

स ह क्षत्ताऽन्विष्य नाविदमिति प्रत्येयाय तꣳ होवाच यत्रारे ब्राह्मणस्यान्वेषणा तदेनमर्च्छेति ६

अन्वय और पदार्थ-(ह) कहते हैं, कि (सः) वह (क्षत्ता) बन्दीजन (अन्विष्य) खोज कर (न) नहीं (अविदम्) पाता हुआ (इति) ऐसा कहता हुआ (प्रत्येयाय) लौट आया (तम्, ह) उसको ही (उवाच) बोला (अरे) हे क्षत्तः (यत्र) जहाँ (ब्राह्मणस्य) ब्रह्मवेत्ताकी (अन्वेषणा) खोज की जाती है (तत्) तहाँ (एनम्) इसको (आर्च्छ) प्राप्त हो (इति) इस प्रकार ॥ ७ ॥

भावार्थ—वह बन्दीजन अनेकों ग्राम और नगरोंमें ढूँढ कर लौट आया और राजासे कहने लगा, कि—मुझे रैक्व नहीं मिला राजाने उससे फिर कहा, कि अरे ! जहाँ अरण्य आदि एकांत स्थानमें ब्रह्मवेत्ताओंको खोजना चाहिये उन ही सब स्थानोंमें जाकर खोज कर ॥ ७ ॥

सोऽधस्ताच्छकटस्य पामानं कषमाणमुपोपविवेश तᳬ हाभ्युवाद त्वं नु भगवः सयुग्वा रैक्व इत्यहᳬ ह्यरा इति ह प्रतिजज्ञे स ह क्षत्ताऽविदमिति प्रत्येयाय ॥ ८ ॥

अन्वय और पदार्थ—(सः) वह (शकटस्य) गाड़ीके (अधस्तात्) नीचे (पामानम्) खुजलीको (कषमाणम् उप) खुजलाते हुए समीपके (उपविवेश) बैठ गया (तत्, ह) उसको ही (अभ्युवाद) कहने लगा (भगवः) हे भगवन् (त्वम्, नु) क्या आप ही (सयुग्वा, रैक्वः) शकट वाले रैक्व हैं (इति) इस प्रकार (अरे) हे (अहम्, हि) मैं ही हूँ

(इति) ऐसा (प्रतिजज्ञे, ह) प्रतिज्ञा करता हुआ (सः) वह (क्षत्ता) बन्दीजन (अविदम्) मैंने जान लिया (इति) ऐसा मान कर (प्रत्येयाय) लौट आया ॥ ८ ॥

भावार्थ—बन्दीजन राजाकी आज्ञानुसार फिर खोजनेको चल दिया और एक निर्जन स्थानमें गाड़ीके नीचेके स्थानमें बैठे हुए तथा शरीरको खुजलाते हुए एक मुनिको देख उनके पास जाकर बैठ गया और फिर उनसे प्रश्न किया, कि—हे भगवन् ! क्या आप ही गाड़ी वाले रैक्व हैं ? उन्होंने उत्तर दिया, कि—हाँ मैं ही शकटी रैक्व हूँ, तब बन्दीजनने समझा, कि—मैंने रैक्वको पहचान लिया और राजाके पासको लौट आया, तथा राजाको उनके पानेका समाचार दिया ॥ ६ ॥

॥ चतुर्थाध्यायस्य प्रथमः खण्डः समाप्तः ॥

तदु ह जानश्रुतिः पौत्रायणः षट्शतानि गवां निष्कमश्वतरीरथं तदादाय प्रतिचक्रमे तꣳ हाभ्युवाद ॥ १ ॥

अन्वय और पदार्थ-(तदु, ह) तब (जानश्रुतिः, पौत्रायणः) जनश्रुतके पुत्रका पौत्र (गवाम्, षट्शतानि) छः सौ गाएं (निष्कम्) सुवर्णका हार (अश्वतरीरथम्) खच्चरियोंसे जुता हुआ रथ (तत्) इसको (आदाय) लेकर (तम्, प्रतिचक्रमे) उन मुनिके पासको चल दिया (तम्) उनको (अभ्युवाद ह) कहता हुआ ॥ १ ॥

भावार्थ—उस समय जनश्रुतके पुत्रका पौत्र जानश्रुति लोकोंके द्वारा मुनिके गृहस्थकी बातोंको जानकर छः सौ गौएँ,

एक सोनेका हार और एक खच्चरियोंसे जुता हुआ रथ लेकर रैक्कके पास गया और उनसे कहने लगा ॥ १ ॥

रैक्वेमानि षट्शतानि गवामयं निष्कोयमश्वतरीरथोऽनु म एतां भगवो देवताꣳ शाधि यां देवतामुपास्स इति ॥ २ ॥

अन्वय और पदार्थ—(रैक्व) हे रैक्व (इमानि) ये (गवाम्) गौओंके (षट्शतानि) छः सैंकड़े (अयम्) यह (निष्कः) सुवर्णहार (अयम्) यह (अश्वतरीरथः) खच्चरियोंसे जुता रथ [गृह्यताम्] ग्रहण करिये (भगवः) हे भगवन् ! (याम्, देवताम्) जिस देवताको (उपास्से) उपासना करते हो (एताम्) इस (देवताम्) देवताको (मे) मेरे अर्थ (अनुशाधि) उपदेश करो (इति) इस प्रकार ॥ २ ॥

भावार्थ—हे भगवन् ! ये छः सौ गौएँ, एक सुवर्णका हार और एक खिच्चरियोंसे जुता हुआ रथ, यह सब ग्रहण करिये और आप जिस देवताकी उपासना करते हैं उसका मुझे उपदेश दीजिये ॥ २ ॥

तमु ह परः प्रत्युवाचाह हारेत्वा शूद्र तवैव सह गोभिरस्त्विति तदु ह पुनरेव जानश्रुतिः पौत्रायणः सहस्रं गवां निष्कमश्वतरीरथं दुहितरं तदादाय प्रतिचक्रमे ॥ ३ ॥

अन्वय और पदार्थ—(तम्, उ, ह) उस राजाके प्रति (परः) वह रैक्व (प्रत्युवाच) बोला (शूद्र) हे शूद्र (हारे-

श्वा) हारोंसे युक्त (गोभिः सह) गौओंके साथ रथ (तव-एव) तेरा ही (अस्तु) हो (इति) इस प्रकार (जानश्रुतिः, पौत्रायणः) जनश्रुतके पुत्रका पौत्र (पुनः, एव) फिर भी (तदु ह) उस रैक्कके लिये (गवाम्, सहस्रम्) सौ गौएँ (निष्कम्) सुवर्णका हार (अश्वतरीरथम्) खच्चरियोंका रथ (दुहितरम्) पुत्री (तत्) यह सब (आदाय) लेकर (प्रतिचक्रमे) फिर उन रैक्क मुनिके पास गया ॥ ३ ॥

भावार्थ—रैक्क मुनिने कहा, कि–अरे ! (शोकेन आद्रुत शूद्र) शोकसे व्याकुल होनेके कारण शूद्र नामके योग्य राजन् ! तू इन सबको लेकर लौट जा, यह सब अपने पास ही रख, तब राजा लौट आया और विचार करके एक सहस्र गौएँ एक सोनेका हार, एक खच्चरियोंसे जुता रथ और अपनी पुत्री को लेकर मुनिके पास फिर गया । क्षत्रिय जातिके राजा जानश्रुतिको शूद्र शब्दसे संबोधन करनेमें रैक्क ऋषिके दो अभिप्राय कल्पना किये जासकते हैं–तू हंसोंके वचन सुन शोक पाकर मेरे पास आया है, एक कारण यह है और दूसरा हेतु शूद्र कहनेका यह है, कि–तू थोड़ा धन देकर उत्तम विद्या पानेका अनुचित यत्न करता है, राजाने ऋषिके कथनमें दूसरे हेतुको समझा, इस लिये वह फिर पुत्री सहित बहुतसा धन लेकर आया ॥ ३ ॥

तꣳ हाभ्युवाद रैक्केदꣳ सहस्रं गवामयं निष्कोऽयमश्वतरीरथ इयं जायाऽयं ग्रामो यस्मिन्नास्सेऽन्वेव मा भगवः शाधीति ॥ ४ ॥

अन्वय और पदार्थ-(तम्, ह) उसके प्रति (अभ्युवाद) बोला (रैक्व) हे रैक्व (इदम्) यह (गवाम्) गौओंका (सहस्रम्) सहस्र (अयम्) यह (निष्कः) सुवर्णहार (अयम्) यह (अश्वतरीरथः) खच्चरियोंका रथ (इयम्) यह (जाया) स्त्री (अयम्) यह (ग्रामः) ग्राम (यस्मिन्) जिसमें (आस्से) रहते हो (भगवः) हे भगवन् (अनु एव) पीछेसे ही (मा) मुझको (शाधि) उपदेश दीजिये (इति) इस प्रकार ॥ ४ ॥

भावार्थ-राजा जानश्रुति रैक्वसे कहने लगा, कि-हे रैक्व! यह सहस्र गौएँ, यह हार, यह खच्चरियोंका रथ, यह आपकी धर्मपत्नी बननेके लिये मेरी पुत्री तथा जिसमें आप रहते हैं यह ग्राम मैं आपको अर्पण करता हूँ हे भगवन ! इस सबको ग्रहण करके पीछेसे मुझे उपदेश दीजिये ॥ ४ ॥

तस्या ह मुखमुपोद्गृह्णन्नुवाचाऽऽजहारेमाः शूद्रानेनैव मुखेनालपयिष्यथा इति ते हैते रैक्वपर्णा नाम महावृषेषु यत्रास्मा उवास तस्मै होवाच

अन्वय और पदार्थ—(तस्या ह) उसके (मुखम्) मुख को (उपोद्गृह्णन्) जानते हुए (उवाच) बोले (शूद्र) हे शूद्र (इमाः) इनको (आजहार) लाया है (अनेन एव) इस ही (मुखेन) साधनसे (आलपयिष्यथाः) कह रहा है (ते ह) वह (एते) यह (महावृषेषु) महापवित्र देशोंमें (रैक्वपर्णा नाम) रैक्वपर्ण नामसे प्रसिद्ध थे (तत्र) जहाँ (उवास) रहता था (तस्मै) इस रैक्वको [अदात्] राजाने

दे दिये (तस्मै ह) तिस राजाके अर्थ (उवाच) उपदेश करता हुआ ॥ ५ ॥

भावार्थ—रैक्वने देखा, कि-ऐसी सुन्दर कन्या और गौ आदि पदार्थ दक्षिणामें देनेको लाया है जो कि पर्याप्त है तथा यह राजा विद्यादानका पात्र भी है, यह जानकर कहा, कि-हे शोकविदुन ! तू जो ये गौएँ तथा बहुतसा धन लाया है, यह ठीक है, इस उपायसे ही तू मुझसे विद्याका दान करनेको कहरहा है। महापवित्र देशरूप जिन ग्रामोंमें यह ऋषि रहते थे वह ग्राम रैक्वपर्ण नामसे प्रसिद्ध थे वह ग्राम राजाने रैक्वको दे दिये तब राजाको मुनिने विद्याका उपदेश दिया ।५।

॥ इति चतुर्थाध्यायस्य द्वितीयः खण्डः समाप्तः ॥

वायुर्वाव संवर्गो यदा वा अग्निरुद्वायति वायुमेवाप्येति यदा सूर्योऽस्तमेति वायुमेवाप्येति यदा चन्द्रोऽस्तमेति वायुमेवाप्येति ॥ १ ॥

अन्वय और पदार्थ-(वायुः, वाव) वायु ही (संवर्गः) संवर्ग है (वै) निश्चय (यदा) जब (अग्निः) अग्नि (उद्वायति) शान्त होता है (वायुम्, एव) वायुको ही (अप्येति) प्राप्त होता है (यदा) जब (सूर्यः) सूर्य (अस्तम्, एति) अस्तको प्राप्त होता है (वायुम्, एव) वायुको ही (अप्येति) प्राप्त होता है (यदा) जब (चन्द्रः) चन्द्रमा (अस्तम्, एति) अस्तको प्राप्त होता है (वायुम्, एव) वायुको ही (अप्येति) प्राप्त होता है ॥ १ ॥

भावार्थ—बाहरी वायु ही (अग्नि आदिको भले प्रकार

निगलजानेके कारण) संवर्ग (भले प्रकारसे निगलजाने वाला) है। जब यह प्रसिद्ध अग्नि शान्त होता है तब वायुमें ही लीन होता है अर्थात् वायुके स्वभावको पाता है। प्रलयकाल में जब सूर्य अस्त होता है तब वह उस वायुमें ही लीन होता है और प्रलयकालमें जब जब चन्द्रमा अस्त होता है तो वायुमें ही लीन होता है ॥ १ ॥

यदाप उच्छुष्यन्ति वायुमेवापियन्ति, वायुर्ह्येवै-तान्सर्वान् संवृङ्क्त इत्यधिदैवतम् ॥ २ ॥

अन्वय और पदार्थ-(यदा) जब (आपः) जल (उच्छुष्यन्ति) सूखते हैं (वायुम् , एव, अपियन्ति) वायुमें ही लीन होते हैं (हि) क्योंकि-(वायुः, एव) वायु ही (एतान्-सर्वान्) इन सबोंको (संवृङ्क्ते) निगल जाता है (इति) इस प्रकार (अधिदैवतम्) अधिदैवत कहा ॥ २ ॥

भावार्थ—जल जब सूखते हैं तो वायुमें ही लीन होते हैं, क्योंकि-वायु ही अग्नि आदि इन सबोंको ग्रस जाता है, इस लिये वह संवर्ग गुणवाला वायु उपास्य है इस प्रकार अधि-दैवत कहिये देवताओंमें संवर्गकी उपासना कही ॥ २ ॥

अथाध्यात्मम् । प्राणो वाव संवर्गः स यदा स्वपिति प्राणमेव वागप्येति प्राणं चक्षुः प्राणꣳ श्रोत्रं प्राणं मनः प्राणो ह्येवैतान् सर्वान् संवृङ्क्त इति

अन्वय और पदार्थ-(अथ) अब (अध्यात्मम्) अध्यात्म कहा जाता है (प्राणः वाव) प्राण ही (संवर्गः) संवर्ग है

(सः) वह (यदा) जब (स्वपिति) सोता है (वाक्) वाणी (प्राणम्, एव, अप्येति) प्राणमें ही लीन होती है (चक्षुः) चक्षु (प्राणम्) प्राणमें लीन होता है (श्रोत्रम्) श्रोत्र (प्राणम्) प्राणमें लीन होता है (मनः) मन (प्राणम्) प्राणमें लीन होता है (हि) निश्चय (प्राणः एव) प्राण ही (एतान्) इन (सर्वान्) सबको (संवृङ्क्ते) ग्रस लेता है (इति) इस प्रकार ॥ ३ ॥

भावार्थ—अब सूक्ष्म शरीरमें संवर्गकी उपासना कहते हैं कि—मुख्य प्राण ही संवर्ग है । यह पुरुष जब सोता है तो वाणी मनमें ही लीन होती है, चक्षु प्राणमें ही लीन होता है, श्रोत्र प्राणमें ही लीन होता है, मन प्राणमें ही लीन होता है, क्योंकि-प्राण वाणी आदि सबको ही निगल जाता है, इस कारण संवर्ग गुण वाले प्राणकी उपासना करनी चाहिये ।३।

तौ वा एतौ द्वौ संवर्गौ वायुरेव देवेषु प्राणः प्राणेषु ॥ ४ ॥

अन्वय और पदार्थ—(वै) निश्चय (तौ) वह (एतौ) यह (द्वौ) दो (संवर्गौ) संवर्ग हैं (देवेषु) अग्नि आदि देवताओंमें (वायुः, एव) वायु ही है (प्राणेषु) वाक् आदि इन्द्रियोंमें (प्राणः) प्राण है ॥ ४ ॥

भावार्थ—वायु और प्राण ये दो ही संवर्ग हैं । वायु अग्नि आदि देवताओंमें संवर्ग है और प्राण वाणी आदि इन्द्रियोंमें संवर्ग है ॥ ४ ॥

अथ ह शौनकञ्च कापेयमभिप्रतारिणं च काक्ष-

सेनिं परिविष्यमाणौ ब्रह्मचारी बिभिक्षे तस्मा उ ह न ददतुः ॥ ५ ॥

अन्वय और पदार्थ—(अथ) अब (शौनकम्) शुनकके पुत्र (कापेयम्) कापेय (च) और (काक्षसेनिम्) कक्षसेन के पुत्र (अभिप्रतारिणम् च) अभिप्रतारी भी (परिविष्यमाणौ) भोजन परोसे हुए उन दोनोंसे (ब्रह्मचारी) ब्रह्मचारी (बिभिक्षे) भिक्षा माँगता हुआ (तस्मै, उ, ह) उस ब्रह्मचारीको (न) नहीं (ददतुः) देते हुए ॥ ५ ॥

भावार्थ—अब वायु और प्राणकी स्तुतिके लिये आख्यायिका कहते हैं, कि—शुनकका पुत्र कापेय और कक्षसेनका पुत्र अभिप्रतारी ये दोनों भोजनको बैठे और रसोइयेने इनको भोजन परोसा इतनेमें ही एक ब्रह्मचारीने आकर इनसे भिक्षा माँगी, परन्तु ब्रह्मचारीमें ब्रह्मवेत्तापनके चिह्न देख उसकी परीक्षा करनेके लिये इन्होंने भिक्षा देनेका निषेध करदिया।

स होवाच महात्मनश्चतुरो देव एकः कः स जगार भुवनस्य गोपास्तं कापेय नाभिपश्यन्ति मर्त्या अभिप्रतारिन् बहुधा वसन्तं यस्मै वा एतदन्नं तस्मा एतन्न दत्तमिति ॥ ६ ॥

अन्वय और पदार्थ—(सः ह) वह (उवाच) बोला (महात्मनः) बड़े आकार वाले (चतुरः) चारको (भुवनस्य, गोपाः) भुवनोंका रक्षक (सः) वह (एकः, देवः) एक देवता (जगार) निगल गया (कापेय) हे कापेय (बहुधा) अनेक

प्रकारसे (वसन्तम्) वसते हुए (तम्) उसको (मर्त्याः) मनुष्य (न) नहीं (अभिपश्यन्ति) देखते हैं (अभिप्रतारिन्) हे अभिप्रतारिन् (वै) निश्चय (यस्मै, एव) जिसके लिये ही (एतत् अन्नम्) यह अन्न है (तस्मै) उसके लिये (एतत्) यह (न) नहीं (दत्तम्) दिया (इति) इसप्रकार

भावार्थ–उस समय वह ब्रह्मचारी कहने लगा, कि–भू आदि भुवनोंका रक्षक जो एक प्रजापति देवता पीछे कहे हुए महाप्रभावशाली अग्नि वायु चन्द्रमा और सूर्य इन चार देवताओंका ग्रास करता है वह अध्यात्म अधिदैव और अधिभूत इन बहुतसे प्रकारोंसे संसारमें बस रहा है तो भी मनुष्य उसको नहीं देख पाते । हे कापेय ! हे अभिप्रतारिन् ! तुम जिसके इस अन्नका भोजन करते हो क्या उसको जानते हो ? तुमने उस को यह अन्न नहीं दिया ? ॥ ६ ॥

तदु ह शौनकः कापेयः प्रतिमन्वानः प्रत्येयायात्मा देवानां जनिता प्रजानाꣳहिरण्यदंष्ट्रो बभसोऽनसूरिर्महान्तमस्य महिमानमाहुरनद्यमानो यदनन्नमत्तीति वै वयं ब्रह्मचारिन्नेदमुपास्महे दत्तास्मै भिक्षामिति ॥ ७ ॥

अन्वय और पदार्थ–(शौनकः)शुनकका पुत्र (कापेयः) कापेय (तदु ह) उसको (प्रतिमन्वानः) विचार करता हुआ (प्रत्येयाय) उसके समीप गया (देवानाम्) देवताओंका (आत्मा) आत्मारूप (प्रजानाम्) प्रजाओंका (जनिता) उत्पा-

दक (हिरण्यदंष्ट्रः) अभग्न दाढ़ वाला (बभसः) भक्षण करने के स्वभाव वाला (अनसूरिः) चेष्टा कराने वाला और ज्ञानी है (यत्) क्योंकि (अनद्यमानः) उसका कोई भक्षण नहीं कर सकता (अनन्नम्) दूसरेके अभक्ष्यको (अत्ति) खाता है (इति) इस कारण (वै) निश्चय (अस्य) इसके (महान्तम्) बड़े भारी (महिमानम्) ऐश्वर्यको (आहुः) कहते हैं (ब्रह्मचारिन्) हे ब्रह्मचारी (वयम्) हम (इदम्) इस को (आ उपास्महे) चारों ओरसे उपासना करते हैं [भृत्याः] हे सेवकों ! (अस्मै) इसको (भिक्षाम्, दत्त) भिक्षा दो (इति) ऐसा कहा ॥ ७ ॥

भावार्थ -शुनकपुत्र कापेयने ब्रह्मचारीके इस प्रकार प्रश्न करने पर देवताके विषयमें विचार किया और फिर ब्रह्मचारी के प्रश्नका उत्तर देते हुए कहा, कि—हे ब्रह्मचारिन् ! जो देवताओंका आत्मा प्रजाओंका उत्पादक, परिश्रम न मान कर सबका संहार करने वाला, भक्षण करनेके स्वभाव वाला, चेष्टा कराने वाला ज्ञानी जिसको कोई भक्षण नहीं कर सकता ऐसा और जिसको कोई न भक्षण कर सके ऐसे अग्नि वाक् आदि अभक्ष्यका भक्षण करने वाला है, उसकी बड़ी भारी विभूति है उसकी ही हम सब प्रकारसे उपासना करते हैं । कापेय ने अपने सेवकोंको आज्ञा दी, कि—इस ब्रह्मचारीको अन्न दो ७

तस्मा उ ह ददुस्ते वा एते पञ्चान्ये पञ्चान्ये दश सन्तस्तत्कृतं तस्मात्सर्वासु दिक्ष्वन्नमेव दश कृतँ सैषा विराडन्नादी तयेदँ सर्वं दृष्टँ

सर्वमस्येदं दृष्टं भवत्यन्नादो भवति य एवं वेद य एवं वेद ॥ ८ ॥

अन्वय और पदार्थ—(ते) वह सेवक (तस्मै उ, ह) उस ब्रह्मचारीको (ददुः) देते हुए (वै) निश्चय (एते) यह (अन्ये, पञ्च) अलग पाँच (अन्ये पञ्च) और अलग पाँच (दश, सन्तः) दश होते हुए (तत्) यह सब (कृतम्) कृत है (तस्मात्) उस दश संख्या वालेसे (सर्वासु) सब (दिक्षु) दिशाओंमें (अन्नम्) अन्न (दशकृतम्) दशका किया हुआ है (सा) वह (एषा) यह (विराट्) विराट् (अन्नादी) अन्नको भक्षण करने वाली है (तया) उससे (इदम्) यह (सर्वम्) सब (दृष्टम्) देखा हुआ होता है (यः) जो (एवम्) ऐसा (वेद) जानता है (तस्य) उसका (इदम्) यह (सर्वम्) सब (दृष्टम्) देखा हुआ (भवति) होता है (अन्नादः) अन्नका भक्षण करने वाला (भवति) होता है ॥ ८ ॥

भावार्थ—इस प्रकार आज्ञा पाकर सेवकोंने ब्रह्मचारीको भिक्षा दी। अग्नि आदिक चार और वायु यह वाक् आदिसे अन्य पाँच हैं तथा उनसे अन्य वाक् आदि पाँच हैं ये सब मिलकर दश होते हैं और कृत (चार, तीन दो और एक ऐसे अंकों वाला जुआ खेलनेका पासा वा अन्न) कहलाता है इससे सब दिशाओंमें अग्नि आदि और वाक् आदि देवता ही पूर्ण अन्न हैं। यह प्रसिद्ध अन्न देवता है विराट् विष्णु ही इस अन्नका भोक्ता है और विराट् शब्दसे कहा जाने वाला

विष्णु देवता ही इस सबको देखता है। जो ऐसा जान कर उपासना करता है वह अन्नका भोक्ता होता है और सबके तत्त्वको देख पाता है ॥ ८ ॥

॥ चतुर्थाध्यायस्य तृतीयः खण्डः समाप्तः ॥

सत्यकामो ह जाबालो जबालां मातरमामन्त्रयाञ्चक्रे ब्रह्मचर्यं भवति विवत्स्यामि किंगोत्रोन्वहमस्मीति ॥ १ ॥

अन्वय और पदार्थ—(जाबालः) जबालाका पुत्र (सत्यकामः) सत्यकाम (जबालाम्) जबाला नामवाली (मातरम्) माताको (आमन्त्रयाञ्चक्रे) कहता हुआ (भवति) हे पूज्य मातः (ब्रह्मचर्यम्, विवत्स्यामि) ब्रह्मचर्य पूर्वक गुरुकुलमें बसूँगा (अहम्) मैं (किंगोत्रः, नु) किस गोत्रका (अस्मि) हूँ (इति) इस प्रकार ॥ १ ॥

भावार्थ—जबालाके पुत्र सत्यकामने अपनी माता जबाला से कहा, कि–हे पूज्यमाता ! मैं वेद पढ़नेके लिये ब्रह्मचारी होकर गुरुकुलमें वास करना चाहता हूँ, बताओ मैं किस गोत्र में उत्पन्न हुआ हूँ ॥ १ ॥

सा हैनमुवाच नाहमेतद्वेद तात यद्गोत्रस्त्वमसि बह्वहं चरन्ती परिचारिणी यौवने त्वामलभे साऽहमेतन्न वेद यद्गोत्रस्त्वमसि जबाला तु नामाऽहमस्मि सत्यकामो नाम त्वमसि स सत्यकाम एव जाबालो ब्रुवीथा इति ॥ २ ॥

अन्वय और पदार्थ-(सा) वह (एनम्) इसको (उवाच) बोली (तात) हे तात (त्वम्) तू (यद्गोत्रः) जिस गोत्र का (असि) है (एतत्) यह (अहम्) मैं (न) नहीं (वेद) जानती हूँ (बहु) बहुत (चरन्ती) सेवा करती हुई (परिचारिणी) अतिथिसेवामें लगी रह कर ही (यौवने) युवावस्थामें (त्वाम्) तुझको (अलभे) पाती हुई (सा, अहम्) ऐसी मैं (यद्गोत्रः) जिस गोत्रका (त्वम्) तू (असि) है (एतत्) इसको (न) नहीं (वेद) जानती हूँ (अहम् तु) मैं तो (जबाला नाम) जबाला नाम वाली (अस्मि) हूँ (त्वम्) तू (सत्यकामः) सत्यकाम नाम वाला (असि) है (सः) वह तू (जाबालः सत्यकामः) जबालाका पुत्र सत्यकाम [अस्मि] हूँ (इति, एव) ऐसा ही (ब्रुवीथाः) कहना २

भावार्थ—जबालाने कहा, कि–हे बेटा ! तू किस गोत्रमें उत्पन्न हुआ है, यह मैं नहीं जानती क्योंकि–मैं यौवनकालमें पतिके घर जो अतिथि आते थे उनकी सेवाके काममें लगी रहती थी, इस कारण मैंने तेरे पितासे गोत्र आदि नहीं बूझा था और ज्यों ही युवावस्थामें तू उत्पन्न हुआ कि–तेरे पिता का मरण होगया, इस प्रकार अनाथ होनेके कारण तू किस गोत्रका है इस बातको मैं नहीं जानसकी, परन्तु मेरा नाम जबाला और तेरा नाम सत्यकाम है, तुझसे यदि आचार्य बूझें तो कहना कि–मैं जबालाका पुत्र सत्यकाम हूँ ॥ २ ॥

स ह हारिद्रुतं गौतममेत्योवाच ब्रह्मचर्यं भगवति वत्स्याम्युपेयां भगवन्तामिति ॥ ३ ॥

अन्वय और पदार्थ—(सः) वह (ह) प्रसिद्ध (हारिद्रुतम्) हरिद्रुतके पुत्र (गौतमम्) गौतमको (एत्य) प्राप्त होकर (उवाच) बोला (भगवति) श्रीमान्‌के यहाँ (ब्रह्मचर्यं, वत्स्यामि) ब्रह्मचर्यपूर्वक निवास करूँगा (इति) इस कारणसे (भगवन्तम्) श्रीमान्‌को (उपेयाम्) प्राप्त हुआ हूँ ३

भावार्थ-माताकी बात सुनकर सत्यकामने हरिद्रुतके पुत्र गौतमके समीप जाकर कहा, कि-हे भगवन् ! मैं ब्रह्मचर्य धारण करके विद्याध्ययन करनेके लिये आपके समीप रहनेकी इच्छासे आया हूँ ॥ ३ ॥

तथ्ँ होवाच किंगोत्रो नु सोम्यासीति सहोवाच नाहमेतद्वेद भो यद्गोत्रोऽहमस्म्यपृच्छं मातरथ्ँ सा मा प्रत्यब्रवीद् बह्वहं चरन्ती परिचारिणी यौवने त्वामलभे साऽहमेतन्न वेद यद्गोत्रस्त्वमसि जबाला तु नामाऽहमस्मि सत्यकामो नाम त्वमसीति सोऽहथ्ँ सत्यकामो जाबालोऽस्मि भो इति

अन्वय और पदार्थ—(सोम्य) हे प्रियदर्शन (किंगोत्रः, नु) किस गोत्रवाला (असि) है (इति) ऐसा (तम्) उसको (उवाच) बोला (सः) वह (उवाच) बोला (भोः) हे महाराज (यद्गोत्रः) जिस गोत्रका (अहम्) मैं (अस्मि) हूँ (एतत्) यह (अहम्) मैं (न) नहीं (वेद) जानता हूँ (मातरम्) माताको (अपृच्छम्) प्रश्न करता हुआ (सा) वह (मा, प्रति) मुझसे (अब्रवीत्) कहती हुई (बहु, चरन्ती)

अधिक सेवा करती हुई (परिचारिणी) सेवामें चित्त वाली (अहम्) मैं (यौवने) युवावस्थामें (त्वाम्) तुझको (अलभे) पाती हुई (सा) वह (अहम्) मैं (यद्गोत्रः) जिस गोत्र का (त्वम्) तू (असि) है (एतत्) यह (न) नहीं (वेद) जानती हूँ (अहम् तु) मैं तो (जबाला, नाम) जबाला नाम वाली (अस्मि) हूँ (त्वम्) तू (सत्यकामः, नाम) सत्य-काम नाम वाला (असि) है (इति) इस प्रकार (भोः) हे भगवन् (सः) वह (अहम्) मैं (जाबालः) जबालाका पुत्र (सत्यकामः) सत्यकाम (अस्मि) हूँ (इति) इस प्रकार ४

भावार्थ-गौतमने कहा, कि-हे प्रियदर्शन ! तेरा क्या गोत्र है ? सत्यकामने उत्तर दिया, कि-हे भगवन् ! मैं नहीं जानता, कि-मेरा क्या गोत्र है । मैंने अपनी मातासे गोत्रके विषयमें प्रश्न किया था, उसने उत्तर दिया, कि स्वामीके घर अतिथि-सेवाका काम बहुत किया करती थी, सेवामें चित्त लगा रहने के कारण मैंने तेरे पितासे व्यवसाय और लज्जाके कारण गोत्र आदि नहीं बूझा था, तू युवावस्थामें उत्पन्न हुआ और उसी अवसरमें तेरे पिताका मरण होगया, इस कारण मैं दुःख में पड़गयी और शोकविह्वल होनेके कारण मैंने दूसरोंसे भी तेरा गोत्र आदि नहीं बूझा, इस कारण मैं तेरे गोत्रको नहीं जानती, परन्तु मेरा नाम जबाला है और तेरा नाम सत्यकाम है । सो हे भगवन् ! मैं जबालाका पुत्र सत्यकाम हूँ ॥ ४ ॥

तथ्ँ होवाच नैतदब्राह्मणो विवक्तुमर्हति समि-धथ्ँ सोम्याऽऽहरोप त्वा नेष्ये न सत्यादगा इति

तमुपनीय कृशानामबलानां चतुःशता गा निराकृत्योवाचेमाः सोम्यानुसंव्रजेति, ता अभिप्रस्थापयन्नुवाच नासहस्रेणावर्त्तयेति स ह वर्षगणं प्रोवास ता यदा सहस्रꣳ सम्पेदुः ॥ ५ ॥

अन्वय और पदार्थ- (तम्) उसको (उवाच) बोला (अब्राह्मणः) जो ब्राह्मण न हो वह (एतत्) यह (विवक्तुम् , न, अर्हति) स्पष्टरूपसे नहीं कह सकता (सोम्य) हे प्रियदर्शन (समिधम्) समिधाको (आहर) ला (त्वा) तुझको (उपनेष्ये) उपनीत करूँगा (सत्यात्) सत्यसे (न) नहीं (अगाः) हटा (इति) इस कारण (तम्) उसको (उपनीय) गायत्रीका उपदेश देकर (कृशानाम्, अबलानाम्) कृश और बलहीनोंमेंसे (चतुःशता गाः निराकृत्य) चारसौ गौओंको निकालकर (सोम्य) हे प्रियदर्शन (इमाः अनुसंव्रज) इनके पीछे २ जा (इति) ऐसा (उवाच) बोला (ताः) उनको (अभिप्रस्थापयन्) विदा करता हुआ (असहस्रेण) विना सहस्रके (न, आवर्त्तय) लौटाकर न लाना (इति) ऐसा (उवाच) बोला (सः) वह (वर्षगणम्) वर्षोंके समूह तक (प्रोवास) बाहर ही रहा (ताः) वह (यदा) जब (सहस्रम्) सहस्र (सम्पेदुः) हुईं ॥ ५ ॥

भावार्थ–उससे गौतमने कहा, कि–ब्राह्मणसे भिन्न जातिवाला मनुष्य ऐसा सरल और अर्थ भरा वचन स्पष्ट रूपसे नहीं कह सकता, क्योंकि–ब्राह्मण स्वभावसे ही सरल होता है, दूसरा स्वभावसे सरल नहीं होता, इस प्रकार तू सत्यसे

नहीं डिगा है, इस कारण हे प्रियदर्शन ! मैं तेरा उपनयन कराऊंगा, तू होमके लिये समिधायें लेआ, फिर उसको गायत्री का उपदेश देकर कृश और बलहीन गौओंमेंसे चारसौ गौएँ उसको देकर कहा, कि हे सोम्य ! इनके पीछे २ जा और जब तक ये एक सहस्र न होजायँ तब तक लौटाकर न लाना. वह उनको लेकर उपद्रवरहित तृणोंवाले वनमें बहुत वर्षोंतक रहा जब तक कि वह सहस्र न हुईं ॥ ५ ॥

॥ चतुर्थाध्यायस्य चतुर्थः खण्डः समाप्तः ॥

अथ हैनमृषभोऽभ्युवाद सत्यकाम ३ इति भगव इति ह प्रतिशुश्राव प्राप्ताः सोम्य सहस्रꣳस्मः प्रापय न आचार्यकुलम् ॥ १ ॥

अन्वय और पदार्थ—(अथ) इसके अनन्तर (एनम्) इसको (सत्यकाम ३) हे सत्यकाम (इति) इस प्रकार (वृषभः) वृषभ (अभ्युवाद) बोला (भगवः) हे भगवन् (इति) ऐसा (प्रतिशुश्राव) प्रत्युत्तर देता हुआ (सोम्य) हे प्रियदर्शन (सहस्रम्) सहस्र संख्याको (प्राप्ताः स्मः) प्राप्त होगये हैं (नः) हमें (आचार्यकुलम्, प्रापय आचार्य कुलमें पहुँचाओ ॥ १ ॥

भावार्थ—तदनन्तर एक दिन जिसमें वायुदेवताका प्रवेश हुआ था ऐसे एक वृषभने कहा कि—हे सत्यकाम ! इसने उत्तर दिया, कि हाँ भगवन् ! उसने कहा, कि-हे सोम्य ! हमारी संख्या सहस्र होगयी, अब हमें आचार्यकुलमें पहुँचा ॥ १ ॥

ब्रह्मणश्च ते पादं ब्रवाणीति ब्रवीतु मे भगवा-

निति तस्मै होवाच प्राची दिक्कला प्रतीची दिक्कला दक्षिणा दिक्कलोदीची दिक्कलैष वै सोम्य चतुष्कलः पादो ब्रह्मणः प्रकाशवान्नाम २

अन्वय और पदार्थ- (च) और (ते) तेरे अर्थ (ब्रह्मणः) ब्रह्मके (पादम्) पादको (ब्रवाणि) कहता हूँ (इति) इस प्रकार [ब्रुवति] कहने पर (भगवान्) आप (मे) मेरे अर्थ (ब्रवीतु) कहिये (इति) इस प्रकार कहने पर (तस्मै) तिसके अर्थ (उवाच) बोला (प्राची, दिक्) पूर्व दिशा (कला) चतुर्थांश है (प्रतीची, दिक्) पश्चिम दिशा (कला) चतुर्थांश है (दक्षिणा, दिक्) दक्षिण दिशा (कला) चतुर्थांश है (उदीची, दिक्) उत्तर दिशा (कला) चतुर्थांश है (सोम्य) हे प्रियदर्शन (वै) निश्चय (एषः) यह (ब्रह्मणः) ब्रह्मका (प्रकाशवान्नाम) प्रकाशवान् नाम वाला (चतुष्कलः) चार कलावाला (पादः) पाद है ॥ २ ॥

भावार्थ—और मैं तुझसे ब्रह्मका पाद कहता हूँ ऐसा कहने पर सत्यकामने कहा, कि हे भगवन् ! मुझसे कहिये, तब वृषभ उससे कहने लगा, कि पूर्वदिशा ब्रह्मके पादका चौथा भाग है, पश्चिमदिशा चौथा भाग है, दक्षिणदिशा चौथा भाग है और उत्तरदिशा चौथा भाग है, हे प्रियदर्शन ! यह ही चार अवयवों वाला ब्रह्मका पाद है और उसका नाम प्रकाशवान् है

स य एतमेवं विद्वांश्चतुष्कलं पादं ब्रह्मणः प्रकाशवानित्युपास्ते प्रकाशवानस्मिँल्लोके भवति

प्रकाशवतो ह लोकाञ्जयति य एतमेवं विद्वांश्च-तुष्कलं पादं ब्रह्मणः प्रकाशवानित्युपास्ते ॥३॥

अन्वय और पदार्थ-(यः) जो (ब्रह्मणः) ब्रह्मके (एतम्) इस (चतुष्कलम्) चार कलावाले (पादम्) पादको (एवम्) इस प्रकार (विद्वान्) जाननेवाला (प्रकाशवान्, इति) प्रकाशवान है इस प्रकार (उपास्ते) उपासना करता है (सः) वह (अस्मिन्, लोके) इस लोकमें (प्रकाशवान्) प्रकाश वाला (भवति) होता है (यः) जो (एतम्) इस (ब्रह्मणः) ब्रह्मके (चतुष्कलम्) चार कलावाले (पादम्) पादको (एवम्) इस प्रकार (प्रकाशवान्, इति) प्रकाशवान् है ऐसा (विद्वान्) जानता हुआ (उपास्ते) उपासना करता है [सः] वह (प्रकाशवतः) प्रकाशवाले (लोकान्) लोकों को (जयति) जीतता है ॥ ३ ॥

भावार्थ—जो ब्रह्मके इस चार कलावाले पादको इस प्रकार जानता हुआ, वह प्रकाशवान् है, ऐसा मान कर उपासना करता है वह इस लोकमें प्रसिद्ध होता है जो ब्रह्मके इस चार भागवाले पादको इस प्रकार जानता हुआ, वह प्रकाशवान् है ऐसा मानता हुआ उपासना करता है, वह मरणके अनन्तर देवता आदिके सम्बन्ध वाले प्रकाशवान् लोकोंको पाता है ३

चतुर्थाध्यायस्य पञ्चमः खण्डः समाप्तः ॥

अग्निष्टे पादं वक्तेति स ह श्वोभूते गा अभि-प्रस्थापयाञ्चकार ता यत्राभिसायं बभूवुस्तत्राग्नि-

मुपसमाधाय गा उपरुध्य समिधमादाय पश्चा-
दग्नेः प्राङुपोपविवेश ॥ १ ॥

अन्वय और पदार्थ-(अग्निः) अग्नि (ते) तेरे अर्थ (पादम्) पादको (वक्ता) कहेगा (इति) इस प्रकार कहा (सः) वह (श्वोभूते) दूसरे दिन (गाः) गौओंको (अभि-प्रस्थापयाञ्चकार) आचार्यके घरके लिये हाँकता हुआ (ताः) वह (यत्र) जहाँ (अभिसायम्, बभूवुः) सायङ्कालके समय को प्राप्त हुईं (तत्र) तहाँ (गाः) गौओंको (उपरुध्य) रोककर (अग्निम्) अग्निको (उप, समाधाय) स्थापित करके (समिधम्) समिधाको (आदाय) धारण करके (अग्नेः) अग्निके (पश्चात्) पश्चिममें (प्राङ्) पूर्वाभिमुख होकर (उपोपविवेश) समीपमें बैठा १ ॥

भावार्थ—अग्नि तुझे ब्रह्मके दूसरे पादका उपदेश देगा, ऐसा कहकर वह वृषभ चुप होगया। वृषभकी इस बातको सुनकर सत्यकाम दूसरे दिन गौओंको हाँककर आचार्यके घर की ओरको चल दिया, जाते २ जहाँ सन्ध्याका समय हुआ तहाँ ही सत्यकामने सब गौओंको एक स्थान पर रोक दिया और अग्नि स्थापन कर अग्निके पश्चिममें पूर्वाभिमुख बैठ गया १

तमग्निरभ्युवाद सत्यकाम ३ इति भगव इति ह प्रतिशुश्राव ॥ २ ॥

अन्वय और पदार्थ-(तम्) उसको (अग्निः) अग्नि (सत्य-काम ३, इति) हे सत्यकाम ऐसा कह कर (अभ्युवाद) पुकारता

हुआ (भगवः, इति) हे भगवन् ऐसा ! कह कर (प्रति-शुश्राव) उत्तर सुनाता हुआ ॥ २ ॥

भावार्थ—उसको हे सत्यकाम ! कह कर अग्निने पुकारा तब सत्यकामने हाँ भगवन् ! कह कर उनको उत्तर दिया २

ब्रह्मण: सोम्य ते पादं ब्रवाणीति ब्रवीतु मे भगवानिति तस्मै होवाच पृथिवी कलाऽन्तरिक्षं कला द्यौः कला समुद्रः कलैष वै सोम्य चतुष्कलः पादो ब्रह्मणोऽनन्तवान्नाम ॥ ३ ॥

अन्वय और पदार्थ—(सोम्य) हे प्रियदर्शन (ते) तेरे अर्थ (ब्रह्मणः) ब्रह्मके (पादम्) पादको (ब्रवाणि) कहता हूं (इति) ऐसा कहने पर (भगवान्) श्रीमान् (मे) मेरे अर्थ (ब्रवीतु) कहें (इति) ऐसा कहने पर (तस्मै) तिस के अर्थ (उवाच) बोला (पृथिवी) पृथिवी (कला) कला है (अन्तरिक्षम्) अन्तरिक्ष (कला) कला है (द्यौः) स्वर्ग (कला) कला है (समुद्रः) समुद्र (कला) कला है (सोम्य) हे प्रियदर्शन (वै) निश्चय (एषः) यह (ब्रह्मणः) ब्रह्मका (अनन्तवान्नाम) अनन्तवान् नामका (चतुष्कलः) चार कला वाला (पादः) पाद है ॥ ३ ॥

भावार्थ-हे प्रियदर्शन ! तुझसे ब्रह्मका दूसरा पाद कहता हूँ, सत्यकामने कहा-हाँ भगवन ! कहिये, तब अग्नि उससे कहने लगा, कि-पृथिवी कला है, अन्तरिक्ष कला है, स्वर्ग कला है और समुद्र कला है, हे सोम्य ! इन चार कलाओंका ब्रह्मका एक पाद है और इस पादका नाम अनन्तवान् है ३

स य एतमेवं विद्वांश्चतुष्कलं पादं ब्रह्मणोऽनन्तवानित्युपास्तेऽनन्तवानस्मिँल्लोके भवत्य नंतवतो ह लोकाञ्जयति य एतमेवं विद्वांश्चतुष्कलं पादं ब्रह्मणोऽनन्तवानित्युपास्ते ॥ ४ ॥

अन्वय और पदार्थ—(यः) जो (ब्रह्मणः) ब्रह्मके (एतम्) इस (चतुष्कलम्) चार कलावाले (पादम्) पादको (एवम्) इस प्रकार (विद्वान्) जानता हुआ (अनन्तवान्, इति) अनन्तवान् नहीं है ऐसा जानकर (उपास्ते) उपासना करता है (सः) वह (अस्मिन्, लोके) इस लोकमें (अनन्तवान्) विच्छेद रहित सन्तान वाला (भवति) होता है (यः) जो (ब्रह्मण) ब्रह्मके (एतम्) इस (चतुष्कलम्) चार कला वाले (पादम्) पादको (एवम्) इस प्रकार (विद्वान्) जानता हुआ (अनन्तवान्) अनन्तवान् है (इति) ऐसा जानकर (उपास्ते) उपासना करता है [सः] वह (अनन्तवतः) अन्तरहित (लोकान्) लोकोंको (जयति) जीतता है ४

भावार्थ—जो ब्रह्मके इस चार कलावाले पादको इस प्रकार जानता हुआ 'अनन्तवान्' ऐसा मानकर उपासना करता है वह इस लोकमें विच्छेदरहित सन्तान वाला होता है। जो ब्रह्मके इस चार कला वाले पादको इस प्रकार जानता हुआ इसका अन्त नहीं होता ऐसा जानकर उपासना करता है वह मरणको प्राप्त होकर अक्षय लोकोंमें पहुँचता है ॥ ४ ॥

॥ इति चतुर्थाध्यायस्य षष्ठः खण्डः समाप्तः ॥

हꣳसस्ते पादं वक्तेति स ह श्वोभूते गा अभिप्रस्थापयाञ्चकार ता यत्राभिसायं बभूवुस्तत्राग्निमुपसमाधाय गा उपरुध्य समिधमादाय पश्चादग्नेः प्राङुपोपविवेश ॥ १ ॥

अन्वय और पदार्थ—(हंसः) हंस (ते) तेरे अर्थ (पादम्) पादको (वक्ता) कहेगा (इति) ऐसा कहने पर (सः) वह (श्वोभूते) दूसरे दिन (गाः) गौओंको (अभिप्रस्थापयाञ्चकार) आचार्यके स्थानकी ओरको हाँकता हुआ (ताः) वह (यत्र) जहाँ (अभिसायम्, बभूवुः) सायंकाल हुआ तहाँ इकट्ठी होगयीं (तत्र) तहाँ (अग्निम्) अग्निको (उपसमाधाय) स्थापित करके (गाः) गौओंको (उपरुध्य) रोककर (समिधम्) समिधाको (आदाय) ग्रहण करके (अग्नेः) अग्निके (पश्चात्) पश्चिममें (प्राङ्) पूर्वाभिमुख (उपोपविवेश) स्थित होगया ॥ १ ॥

भावार्थ—हंसरूप सूर्य तुझे तीसरे पादका उपदेश देंगे ऐसा कहकर अग्नि चुप होरहा, तब वह सत्यकाम दूसरे दिन नित्य कर्मसे निबट गौओंको लेकर आचार्यके घरकी ओरको चल दिया, वह गौएँ जहाँ सन्ध्या हुई तहाँ इकट्ठी होकर खड़ी होगयीं तहाँ सत्यकाम भी अग्निकी स्थापना कर तथा गौओं को रोककर समिधा ले अग्निके पश्चिममें पूर्वाभिमुख होकर अग्निके वचनका चिन्तवन करता हुआ उन दोनोंके समीप में बैठगया ॥ १ ॥

तꣳहꣳस उपनिपत्याभ्यु वाद सत्सकाम ३ इति भगवः इति ह प्रतिशुश्राव ॥ २ ॥

अन्वय और पदार्थ—(हंसः) हंस (तम्, उपनिपत्य) उसके समीपमें उड़ कर समीपमें आकर (सत्यकाम ३) हे सत्यकाम (इति) ऐसा (अभ्युवाद) सम्बोधित करता हुआ (भगवः इति,) हे भगवन्, इस प्रकार (प्रतिशुश्राव) प्रत्युत्तर देता हुआ ॥ २ ॥

भावार्थ—हंस उड़ता हुआ उसके समीपमें आ बैठा और उसको पुकारा, कि—हे सत्यकाम ! सुन, सत्यकामने प्रत्युत्तर दिया, कि—हे भगवन् ! कहिये ॥ २ ॥

ब्रह्मणः सोम्य ते पादं ब्रवाणीति ब्रवीतु मे भगवानिति तस्मै होवाचाग्निः कला सूर्यः कला चन्द्रः कला विद्युत्कलैष वै सोम्य चतुष्कलः पादो ब्रह्मणो ज्योतिष्मान्नाम ॥ ३ ॥

अन्वय और पदार्थ—(सोम्य) हे प्रियदर्शन (ते) तेरे अर्थ (ब्रह्मणः) ब्रह्मके (पादम्) पादको (ब्रवीणि) कहता हूँ (इति) ऐसा कहने पर (भगवान्) आप (मे) मेरे अर्थ (ब्रवीतु) कहिये (इति) ऐसा सत्यकामके कहने पर (तस्मै) उसको (उवाच) बोला (अग्निः) अग्नि (कला) कला है (सूर्यः) सूर्य (कला) कला है (चन्द्रः) चन्द्रमा (कला) कला है (विद्युत्) बिजली (कला) कला है (सोम्य) हे प्रियदर्शन (वै) निश्चय (एषः) यह (ब्रह्मणः) ब्रह्मका

(ज्योतिष्मान् नाम) ज्योतिष्मान् नामका (चतुष्कलः) चार कला वाला (पादः) पाद है ॥ ३ ॥

भावार्थ—हंसने कहा, कि—हे सोम्य ! मैं तुझसे ब्रह्मके तीसरे पादको कहूँगा । सत्यकामने कहा, कि—हे भगवान् ! कहिये ! हंसने कहा, अग्नि एक कला, सूर्य एक कला चन्द्रमा एक कला और बिजली एक कला इस प्रकार हे सोम्य ! ये चार कलायें ब्रह्मका एक पाद है और इस पादका नाम ज्योतिष्मान् है ३

स य एतमेवं विद्वांश्चतुष्कलं पादं ब्रह्मणो ज्योतिष्मानित्युपास्ते ज्योतिष्मानस्मिन् लोके भवति ज्योतिष्मतो ह लोकाञ्जयति य एतमेवं विद्वांश्चतुष्कलं पादं ब्रह्मणो ज्योतिष्मानित्युपास्ते ४

अन्वय और पदार्थ—(यः) जो (ब्रह्मणः) ब्रह्मके (एतत्) इस (विद्वान्) जानता हुआ (ज्योतिष्मान्, इति) ज्योतिष्मान है ऐसा (उपास्ते) उपासना करता है (सः) वह (अस्मिन्, लोके) इस लोकमें (ज्योतिष्मान्) प्रकाश वाला (भवति) होता है (यः) जो (ब्रह्मणः) ब्रह्मके (एतम्) इस (चतुष्कलम्) चार अवयव वाले (पादम्) पादको (एवम्) इस प्रकार (विद्वान्) जानता हुआ (ज्योतिष्मान्, इति) ज्योतिष्मान् है, ऐसा (उपास्ते) उपासना करता है [सः] वह (ज्योतिष्मतः) प्रकाशवाले (लोकान्) लोकोंको (जयति) जीतता है ॥ ४ ॥

भावार्थ—जो इसको ऐसा जानकर ब्रह्मके इस ज्योतिष्मान् नामक चतुष्कल पादकी उपासना करता है वह इस लोकमें

प्रकाश वाला होता है और मर कर चन्द्र सूर्य आदिके प्रकाश वाले लोकोंमें जाता है ॥ ४ ॥

॥ चतुर्थाध्यायस्य सप्तमः खण्डः समाप्तः ॥

मद्गुष्टे पादं वक्तेति स ह श्वोभूते गा अभिप्रस्थापयाञ्चकार या यत्राभिसायं बभूवुस्तत्राग्निमुपसमाधाय पश्चादग्नेः प्राङुपोपविवेश ॥ १ ॥

अन्वय और पदार्थ—(मद्गुः) मद्गुरूप प्राण (ते) तेरे अर्थ (पादम्) चौथे पादको (वक्ता) कहेगा (इति) ऐसा कहने पर (सः) वह (श्वोभूते) प्रातःकाल होने पर (गाः) गौओंको (अभिप्रस्थापयाञ्चकार) हाँकता हुआ (ताः) वह गौएँ (यत्र) जहाँ (सायं बभूवुः) सायंकालके समय इकट्ठी हुईं (तत्र) तहाँ (अग्निम्) अग्निको (उपसमाधाय) स्थापित करके (गाः) गौओंको (उपरुध्य) रोक कर (समिधम्) समिधाको (आदाय) लेकर (अग्नेः) अग्निके (पश्चात्) पश्चिममें (प्राङ्) पूर्वाभिमुख (उपोपविवेश) समीपमें बैठ गया

भावार्थ—प्राणने जलमुरगका रूप धारण करके सत्यकामसे कहा, कि–मैं तुझे ब्रह्मके चौथे पादका उपदेश दूँगा, ऐसा कह कर हंस चुप होगया तदनन्तर दूसरे दिन सत्यकामने फिर गौओंको आचार्यके घरकी ओरको हाँक दिया, वह गौएँ चलते २ जहाँ साँझ हुई तहाँ इकट्ठी होकर खड़ी होगयीं तहाँ अग्निकी स्थापना करके और गौओंको रोककर समिधायें लिये हुए सत्यकाम अग्निके पश्चिममें पूर्वाभिमुख होकर हंसके बचन को स्मरण करता हुआ गौएँ और अग्निके समीपमें बैठ गया १

तं मद्गुरुपनिपत्याभ्युवाद सत्यकाम ३ इति भगव इति ह प्रतिशुश्राव ॥ २ ॥

अन्वय और पदार्थ-(मद्गुः) जल मुरगरूप प्राण (उपनिपत्य) उड़ कर आ (तम्) उसको (अभ्युवाद) पुकारता हुआ (सत्यकाम) सत्यकाम (इति) इस प्रकार (भगवः, इति) हे भगवन् इस प्रकार (प्रतिशुश्राव) प्रत्युत्तर देता हुआ २

भावार्थ—जलमुरगका रूप धारण किये हुए प्राण उसके पास आबैठा और कहने लगा, कि—हे सत्यकाम ! सुन । सत्यकामने उत्तर दिया, कि—हाँ कहिये सुनता हूँ ॥ २ ॥

ब्रह्मणः सोम्य ते पादं ब्रवाणीति ब्रवीतु ते भगवानिति तस्मै होवाच प्राणः कला चक्षुः कला श्रोत्रं कला मनः कलैष वै सोम्य चतुष्कलः पादो ब्रह्मण आयतनवान्नाम ॥ ३ ॥

अन्वय और पदार्थ—(सोम्य) हे प्रियदर्शन ! (ते) तेरे अर्थ (ब्रह्मणः) ब्रह्मके (पादम्) पादको (ब्रवाणि) कहता हूँ (इति) मद्गुके ऐसा कहने पर (भगवान्) आप (मे) मेरे अर्थ (ब्रवीतु) कहिये (इति) ऐसा कहने पर (तस्मै) तिसके अर्थ (उवाच) बोला (प्राणः) प्राण (कला) कला है (चक्षुः) चक्षु (कला) कला है (श्रोत्रम्) श्रोत्र (कला) कला है (मनः) मन (कला) कला है (सोम्य) हे प्रियदर्शन (वै) निश्चय (एषः) यह (आयतनवान्नाम) आयतनवान् नामका (चतुष्कलः) चार कला वाला (ब्रह्मणः) ब्रह्मका (पादः) पाद है ॥ ३ ॥

भावार्थ—हे प्रियदर्शन ! तुझसे ब्रह्मका पाद कहता हूँ, ऐसा जलमुरगरूप प्राणने कहा, सत्यकामने कहा, कि—हे भगवन् ! मुझसे कहिये, तब उससे जलमुरगने कहा, कि—नासिका सहित प्राण कला है, चक्षु कला है, श्रोत्र कला है और मन कला है, हे सोम्य ! इन चार कलाओंमें ब्रह्मका एक पाद है, इस पादका नाम आयतनवान् है । सब करणोंके ग्रहण किये हुए भागोंका आयतन कहिये स्थान मन है, वह मन जिस पाद में है वह पाद आयतनवान् कहलाता है ॥ ३ ॥

स य एतमेवं विद्वांश्चतुष्कलं पादं ब्रह्मण आयतनवानित्युपास्त आयतनवानस्मिन् लोके भवत्यायतनवतो ह लोकाञ्जयति य एतमेवं विद्वांश्चतुष्कलं पादं ब्रह्मण आयतनवानित्युपास्ते ४

अन्वय और पदार्थ—(यः) जो (ब्रह्मणः) ब्रह्मके (एतम्) इस (चतुष्कलम्) चार कला वाले (पादम्) पादको (एवम्) इस प्रकार (आयतनवान्, इति) आयतनवाला है ऐसा जान कर (उपास्ते) उपासना करता है (सः) वह (अस्मिन् लोके) इस लोकमें (आयतनवान्) आश्रय वाला (भवति) होता है (यः) जो (ब्रह्मणः) ब्रह्मके (चतुष्कलम्) चार कला वाले (एतम्) इस (पादम्) पादको (एवम्) इस प्रकार (विद्वान्) जानता हुआ (आयतनवान्, इति) आयतन वाला है, इस प्रकार (उपास्ते) उपासना करता है [सः] वह (आयतनवतः) आयतन वाले (लोकान्) लोकोंको (जयति) जीतता है ॥ ४ ॥

भावार्थ-जो ब्रह्मके इस पादको इस प्रकार जानता हुआ ब्रह्मके आयतनवान् चतुष्कल पादकी उपासना करता है वह इस लोकमें आश्रय वाला होता है और मर कर अवकाश वाले लोकोंमें जाता है ॥ ४ ॥

॥ चतुर्थाध्यायस्याष्टमः खण्डः समाप्तः ॥

प्राप हाचार्यकुलं तमाचार्योऽभ्युवाद सत्यकाम ३ इति भगव इति ह प्रतिशुश्राव ॥ १ ॥

अन्वय और पदार्थ-(आचार्यकुलम्) आचार्यके घरको (प्राप) पहुँच गया (तम्) उसको (आचर्यः) आचार्य (सत्यकाम) हे सत्यकाम (इति) ऐसा (अभ्युवाद) पुकार कर कहता हुआ (भगवः इति) हे भगवन् ऐसा (प्रतिशुश्राव) प्रत्युत्तर देता हुआ ॥ १ ॥

भावार्थ—सत्यकाम इस प्रकार ब्रह्मका उपदेश पाता २ आचार्यके घर आपहुँचा, आचार्यने सत्यकामको देख कर कहा, कि—हे सत्यकाम ! सुन, सत्यकामने कहा, कि—हे भगवन् ! कहिये, सुनता हूँ ॥ १ ॥

ब्रह्मविदिव वै सोम्य भासि को नु त्वाऽनुशशासेत्यन्ये मनुष्येभ्य इति ह प्रतिजज्ञे भगवाꣳस्त्वेव मे कामे ब्रूयात् ॥ २ ॥

अन्वय और पदार्थ (सोम्य) हे प्रियदर्शन (वै) निश्चय (ब्रह्मवित्, इव) ब्रह्मवेत्तासा (भासि) प्रतीत होता है (त्वा) तुझको (कः, नु) किसने (अनुशशास) उपदेश दिया है (इति) ऐसा कहा (मनुष्येभ्यः) मनुष्योंसे (अन्ये)

दूसरोंने (इति) ऐसा (प्रतिजज्ञे) प्रत्युत्तर दिया (तु) परन्तु (भगवान्, एवं) आप ही (मे) मेरे (कामे) इच्छा के विषयमें (ब्रूयात्) कहें ॥ २ ॥

भावार्थ—ब्रह्मज्ञानी प्रसन्न इन्द्रियों वाला हँसते हुए मुख वाला चिन्ता रहित और कृतार्थ होता है, सत्यकामकी मुख-मुद्रा ऐसी ही देखकर आचार्यने कहा कि-हे बेटा ! तू ब्रह्मज्ञानीसा दीखता है, तुझे किसने उपदेश दिया है ? ऐसा आचार्यने बूझा तब सत्यकामने कहा कि-मुझे मनुष्योंने नहीं देवताओंने उपदेश दिया है परन्तु इससे मुझे सन्तोष नहीं है इस लिये आप ही मेरी इच्छाके अनुसार उपदेश दीजिये

श्रुतꣳ ह्येव मे भगवद्दृशेभ्य आचार्याद्धैव विद्या विदिता साधिष्ठं प्रापयतीति तस्मै हैतदेवोवाचात्र ह न किञ्चन वीयायेति वीयायेति ।३।

अन्वय और पदार्थ-(भगवद्दृशेभ्यः, एव) आप सरीखोंसे ही (मे) मैंने (हि) निश्चयके साथ (श्रुतम्) सुना है (आचार्यात् एव) आचार्यसे ही (विदिता) जानी हुई (विद्या) विद्या (साधिष्ठम्) परम-श्रेष्ठपनेको (प्रापति) पाती है (इति) ऐसा (तस्मै) तिसको (एतदेव) यह ही (उवाच) कहता हुआ (अत्र) उसमें (किञ्चन) कुछ भी (न) नहीं (वीयाय) हानि हुई ॥ ३ ॥

भावार्थ—क्योंकि-मैंने आप सरीखे ऋषियोंसे सुना है, कि-आचार्यसे सुनी हुई विद्या ही परमोत्तम होती है, सत्यकामके ऐसा कहने पर आचार्यने वह देवताओंकी कही हुई

विद्या ही चारों पाद तथा फलोंके साथ कही, उस सोलह कला वाली ब्रह्मविद्यामेंसे कुछ गया नहीं अर्थात् आचार्यने और देवताओंने इस प्रकार उपदेश दिया, कि—उसका जरासा अंश भी शेष नहीं रहा ॥ ३ ॥

॥ चतुर्थाध्यायस्य नवमः खण्ड समाप्तः ॥

उपकोसलो ह वै कामलायनः सत्यकामे जाबाले ब्रह्मचर्यमुवास तस्य ह द्वादशवर्षाण्यग्नीन् परिचचार स ह स्मान्यानन्तेवासिनः समावर्त्तयꣳस्तꣳ ह स्मैव न समावर्त्तयति ॥ १ ॥

अन्वय और पदार्थ—(ह) प्रसिद्ध (कामलायनः) कमल का पुत्र (उपकोसलः) उपकोसल (जाबाले) जबालाके पुत्र (सत्यकामे) सत्यकामके समीप (ब्रह्मचर्यम् उवास) ब्रह्मचर्य धारण पूर्वक निवास करता हुआ (सः) वह (द्वादशवर्षाणि) बारह वर्ष पर्यन्त (तस्य) उसकी (अग्नीन् परिचचार) अग्नियोंकी सेवा करता हुआ [सः] वह (अन्यान्) दूसरे(अन्तेवासिनः) विद्यार्थियोंको (समावर्त्तन्) घरको लौट जानेकी आज्ञा देता हुआ (तत्) उसको (नैव) नहीं (समावर्त्तयति स्म) समावर्त्तन करता हुआ ॥ १ ॥

भावार्थ—कमलका पुत्र उपकोसल ब्रह्मचारी बन कर जबालाके पुत्र सत्यकामके समीप रहने लगा। उपकोसलने बारह वर्ष पर्यन्त आचार्यकी अग्निकी सेवाकी। इतने समयमें आचार्यने अन्यान्य ब्रह्मचारियोंको वेद पढ़ाकर समावर्त्तन

कर घर भेज दिया, परन्तु उपकोसलका समावर्त्तन नहीं कराया ॥ १ ॥

तं जायोवाच तप्तो ब्रह्मचारी कुशलमग्नीन् परिचचारीन्मा त्वाग्नयः परिप्रवोचन् प्रब्रूह्यस्मा इति तस्मै हाप्रोच्यैव प्रवासाञ्चक्रे ॥ २ ॥

अन्वय और पदार्थ—(तम्) उसको (जाया) स्त्री (उवाच) बोली (तप्तः) तप करने वाला (ब्रह्मचारी) ब्रह्मचारी (कुशलम्) भले प्रकारसे (अग्नीन्) अग्नियोंकी (परिचचारीत्) सेवा करता हुआ (अग्नयः) अग्नियें (त्वा) तुम्हारी (मा परिप्रवोचन्) निन्दा न करें (इति) इस कारण (अस्मै) इसको (प्रब्रूहि) उपदेश दो (तस्मै) उसको (अप्रोच्य, एव) विना उपदेश दिये ही (प्रवासाञ्चक्रे) परदेशको चले गये

भावार्थ—सत्यकामकी स्त्रीने सत्यकामसे कहा, कि उपकोसलने बड़ा कष्ट सह कर बड़ी उत्तमताके साथ तुम्हारी अग्नियोंकी सेवा की है। इसके सेवा करनेसे प्रसन्न हुए अग्नि, यह मेरे भक्तका समावर्त्तन नहीं करता ऐसा जान कर कहीं आपकी निन्दा न करे, इस लिये अब आप उपकोसल को विद्याका उपदेश दीजिये। स्त्रीके ऐसा कहने पर भी सत्यकामने उपकोसलको विद्याका उपदेश नहीं दिया और कहीं परदेशको चले गये ॥ २ ॥

स ह व्याधिनाऽनशितुं दध्रे तमाचार्यजायोवाच ब्रह्मचारिन्नशान किं नु नाश्नासीति स

होवाच बहव इमेऽस्मिन्पुरुषे कामा नानात्यया व्याधिभिः प्रतिपूर्णोऽस्मि नाशिष्यामीति ।३।

अन्वय और पदार्थ–(सः) वह (व्याधिना) व्याधिके कारण (अनशितुम्) अनशन करनेको (दध्रे) धारण करता हुआ (तम्) उसको (आचार्यजाया) आचार्यकी स्त्री (इति) ऐसा (उवाच) बोली (ब्रह्मचारिन्) हे ब्रह्मचारी ! (अशान) भोजन कर (किम् नु) किस कारणसे (न) नहीं (अश्नासि) भोजन करता है (सः) वह (उवाच) बोला (अस्मिन्) इस (पुरुषे) पुरुषमें (इमे) यह (कामाः) इच्छारूप (नानात्ययाः) नाना प्रकारके दुःख (बहवः) बहुत हैं (व्याधिभिः) व्याधियोंसे (प्रतिपूर्णः) भरा हुआ (अस्मि) हूँ (इति) इस कारणसे (न) नहीं (अशिष्यामि) भोजन करूँगा ३

भावार्थ—इस उपकोसलने मानसिक दुःखके कारणसे अन्न जलके त्यागका व्रत धारण किया, यह देखकर आचार्य की स्त्री उससे कहने लगी, कि--अरे ब्रह्मचारी ! भोजन कर तू भोजन क्यों नहीं करता है ? यह सुन कर उपकोसलने कहा, कि--इस सकल मनोरथोंकी सिद्धि न पानेवाले पुरुषमें नाना प्रकारकी कामनारूप चित्तके अनेकों दुःख होते हैं, वह चित्तको दुःख देने वाली कामनायें मुझमें बहुत भर रही हैं, इस कारण ही मैंने भोजन न करनेका व्रत धारण किया है

अथ हाग्नयः समूदिरे तप्तो ब्रह्मचारी कुशलं नः पर्यचारीद्धन्तास्मै प्रब्रवामेति तस्मै होचुः ४

अन्वय और पदार्थ—(अथ) इसके अनन्तर (अग्नयः)

अग्नियें (समूदिरे) परस्परमें कहने लगे (श्रान्तः) तप करने वाला (ब्रह्मचारी) ब्रह्मचारी (नः) हमारी (कुशलम्) उत्तमतासे (पर्यचारीत्) सेवा करता हुआ (हन्त) दया-भावसे (अस्मै) इसके अर्थ (प्रब्रवाम) उपदेश दें (इति) ऐसा निश्चय करके (तस्मै) तिसके अर्थ (ऊचुः) कहने लगे।

भावार्थ—तदनन्तर गार्हपत्य आदि अग्नि आपसमें कहने लगे, कि--इस तपस्वी ब्रह्मचारीने बड़ा क्लेश उठाकर हमारी उत्तमतासे सेवा की है इस लिये इसके ऊपर दया लाकर हमें इसको ब्रह्मविद्याका उपदेश देना चाहिये, ऐसा निश्चय करके वह उपकोसलसे कहने लगे कि—॥ ४ ॥

प्राणो ब्रह्म कं ब्रह्म खं ब्रह्मेति स होवाच विजानाम्यहं यत्प्राणो ब्रह्म कं च तु खं च न विजानामीति ते होचुर्यद्वाव कं तदेव खं यदेव खं तदेव कमिति प्राणं च हास्मै तदाकाशं चोचुः॥ ५ ॥

अन्वय और पदार्थ—(प्राणः) प्राण (ब्रह्म) ब्रह्म है (कम्) सुख (ब्रह्म) ब्रह्म है (खम्) आकाश (ब्रह्म) ब्रह्म है (इति) ऐसा अग्नियोंने कहा (सः) वह (उवाच) बोला (अहम्) मैं (विजानामि) जानता हूँ (यत्) जो (प्राणः) प्राण (ब्रह्म) ब्रह्म है (तु) परन्तु (कम्) सुख को (च) और (खम्, च) आकाशको भी (इति) ब्रह्म है ऐसा (न) नहीं (विजानामि) जानता हूँ (ते) वह (वाव) निश्चय (यत्) जो (कम्) सुख है (तत्-एव) वह ही (खम्) आकाश है (यदेव) जो ही (खम्) आकाश है

(तत्-एव) वह ही (कम्) सुख है (इति) ऐसा (ऊचुः) बोले (तत्) उस (प्राणम्) प्राणको (च) और (आकाशम्, च) आकाशको भी (अस्मै) इसके अर्थ (ऊचुः) कहते हुए ॥ ५ ॥

भावार्थ—अग्नियोंने उपकोसलको उपदेश दिया कि प्राण (बल) ब्रह्म है, सुख ब्रह्म है, आकाश (ज्ञान) ब्रह्म है। इस पर उपकोसलने कहा, कि प्राण ब्रह्म है, इस बातको मैं जानता हूँ, परन्तु सुख और आकाश क्रमसे क्षणभंगुर तथा जड़ होनेके कारण कैसे ब्रह्म होसकते हैं, यह मैं नहीं जानता। इस पर अग्नि कहने लगे, कि—जो सुख है वही आकाश है और जो आकाश है वही सुख है। सुखको आकाशका विशेषण कहनेसे सुख-युक्त हृदयाकाशरूप ब्रह्मकी अचेतन भूताकाशसे भिन्नता हुई और आकाशको सुखका विशेषण करनेसे उस ब्रह्म-रूप सुखकी क्षणभंगुर लौकिक सुखसे भिन्नता हुई। इस प्रकार इस ब्रह्मचारीसे प्राण और उसके संबन्धवाला सुखयुक्त हृदयाकाश इन दोनोंको एकत्र करके ब्रह्मके संसर्गसे यह ब्रह्म ही है, ऐसा अग्नियोंने कहा ॥ ५ ॥

॥ चतुर्थाध्यायस्य दशमः खण्डः समाप्तः ॥

अथ हैनं गार्हपत्योऽनुशशास पृथिव्यग्निरन्नमादित्य इति य एष आदित्ये पुरुषो दृश्यते सोऽहमस्मि स एवाहमस्मीति ॥ १० ॥

अन्वय और पदार्थ-(अथ) इसके अनन्तर (एनम्) इसको (गार्हपत्यः) गार्हपत्य अग्नि (अनुशशास) उपदेश

करता हुआ (पृथिवी) पृथिवी (अग्निः) अग्नि (अन्नम्) अन्न (आदित्यः) आदित्य (इति) ये चारों मेरा शरीर हैं (आदित्ये) सूर्यमें (यः) जो (एषः) यह (पुरुषः) पुरुष (दृश्यते) दीखता है (सः) वह (अहम्) मैं (अस्मि) हूं (सः, एव) वह ही (अहम्) मैं (अस्मि) हूँ (इति) इस प्रकार ॥ १ ॥

भावार्थ—तदनन्तर वह सब अग्नि अलग २ उपदेश देने लगे उनमें पहिले गार्हपत्य कहने लगा, कि—पृथिवी अग्नि, अन्न और आदित्य ये चार मेरा शरीर हैं अर्थात् मैं चार प्रकारसे स्थित हूँ, इन चारों शरीरोंमेंसे इस सूर्यमें जो यह पुरुष एकाग्र चित्तवालेको दीखता है वह मैं गार्हपत्य अग्नि हूँ और जो गार्हपत्य अग्नि है वही मैं आदित्यमेंका पुरुष हूँ पृथिवी और अन्न का अग्नि और आदित्यके साथ भोज्यभावसे सम्बन्ध है और भक्षकपन आदि समान धर्मसे अग्नि और सूर्यका अत्यन्त अभेद है, इस लिये पहिले दो अन्न और पिछले दो अन्नाद हैं ?

स य एतमेवं विद्वानुपास्तेऽपहते पापकृत्यां लोकी भवति सर्वमायुरेति ज्योग्जीवति नास्यावरपुरुषाः क्षीयन्त उप वयं तं भुञ्जामोऽस्मिंश्च लोकेऽमुष्मिंश्च य एतमेवं विद्वानुपास्ते ॥ २ ॥

अन्वय और पदार्थ—(यः) जो (एतम्) इसको (एवम्) इस प्रकार (विद्वान्) जानता हुआ (उपास्ते) उपासना करता है (सः) वह (पापकृत्याम्) पापकर्मको (अपहते) विनाश करता है (लोकी) अग्निके लोकवाला (भवति)

होता है (सर्वमायुः) संपूर्ण आयुको (एति) प्राप्त होता है (ज्योग्जीवति) प्रसिद्धिके साथ जीवित रहता है (अस्य) इसके (अवरपुरुषाः) वशीभूतजन (न) नहीं (क्षीयन्ते) क्षयको प्राप्त होते हैं । (यः) जो (एतम्) इसको (एवम्) इस प्रकार (विद्वान्) जानता हुआ (उपास्ते) उपासना करता है (तम्) उसको (वयम्) हम (अस्मिन्) इस (च) और (अमुष्मिन्, च) उस भी (लोके) लोकमें (उपभुञ्जामः) पालन करते हैं ॥ २ ॥

भावार्थ—जो इस गार्हपत्य अग्निको इस प्रकार अन्न और अन्नादरूपसे चार भागमें विभक्त जानता हुआ उपासना करता है वह पापकर्मका नाश करता है, अग्निके लोकों वाला होता है, सौ वर्षकी संपूर्ण आयुको पाता है, प्रसिद्ध होकर जीवित रहता है और इसका सन्तानमें उत्पन्न हुए पुरुषोंका तथा सेवकोंका नाश नहीं होता है । जो इसको इस प्रकार जानता हुआ उपासना करता है, उसकी हम अग्नि इस लोक में और परलोकमें रक्षा करते हैं ॥ २ ॥

॥ चतुर्थाध्यायस्यैकादशः खण्डः समाप्तः ॥

अथ हैनमन्वाहार्यपचनोऽनुशशासापो दिशो नक्षत्राणि चन्द्रमा इति य एष चन्द्रमसि पुरुषो दृश्यते सोऽहमस्मि स एवाऽहमस्मि ॥ १ ॥

अन्वय और पदार्थ–(अथ) इसके अनन्तर (एनम्) इसको (अन्वाहार्यपचनः) दक्षिणाग्नि (अनुशशास) उपदेश देता हुआ (आपः) जल (दिशः) दिशायें (नक्षत्राणि)

नक्षत्र (चन्द्रमाः) चन्द्रमा (इति) यह मेरे शरीर हैं (चन्द्रमसि) चन्द्रमामें (यः) जो (एषः) यह (पुरुषः) पुरुष (दृश्यते) दीखता है (सः) वह (अहम्) मैं (अस्मि) हूँ (सः, एव) वह ही (अहम्) मैं (अस्मि) हूँ (इति) इस प्रकार १

भावार्थ-फिर इसको दक्षिणाग्नि उपदेश देने लगा कि-जल, दिशायें, नक्षत्र और चन्द्रमा ये चारों मेरे देह हैं उनमें से चन्द्रमामें जो यह पुरुष दीखता है वह मैं ही हूँ और जो दक्षिणाग्नि है वही मैं चन्द्रमामें स्थित पुरुष हूँ । यहाँ जल और नक्षत्र अन्न हैं तथा दिशा रूप दक्षिणाग्नि और चन्द्रमा क्रमसे उनके भोक्ता हैं ॥

स य एतमेवं विद्वानुपास्तेऽपहते पापकृत्यां लोकी भवति सर्वमायुरेति ज्योग्जीवति नास्यावरपुरुषाः क्षीयन्त उप वयं भुञ्जामोऽस्मिंश्च लोकेऽमुष्मिंश्च य एतमेवं विद्वानुपास्ते ॥ २ ॥

इसका अन्वय पदार्थ और भावार्थ एकादश खण्डके दूसरे मन्त्रको समान जानो क्योंकि-दोनों मन्त्रोंका एक पाठ है २

॥ चतुर्थाध्यायस्य द्वादशः खण्डः समाप्तः ॥

अथ हैनमाहवनीयोऽनुशशास प्राण आकाशो द्यौर्विद्युदिति य एष विद्युति पुरुषो दृश्यते सोऽहमस्मि स एवाहमस्मीति ॥ १ ॥

अन्वय और पदार्थ—(अथ) इसके अनन्तर (एनम्) इसको (आहवनीयः) आहवनीय (अनुशशास) उपदेश

देखा हुआ (प्राणः) प्राण (आकाशः) आकाश (द्यौः) स्वर्ग (विद्युत्) बिजली (इति) ये मेरे शरीर हैं (विद्युति) बिजलीमें (यः) जो (एषः) यह (पुरुषः) पुरुष (दृश्यते) दीखता है (सः) वह (अहम्) मैं (अस्मि) हूँ (सः, एव) वह ही (अहम्) मैं (अस्मि) हूँ ॥ १ ॥

भावार्थ-तदनन्तर इस उपकोसलको आहवनीय अग्नि उपदेश देने लगा, कि प्राण, आकाश, स्वर्ग और बिजली ये चारों मेरे शरीर हैं। बिजलीमें जो यह पुरुष दीखता है वही मैं आहवनीय अग्नि हूँ और जो आहवनीय अग्नि है वही मैं बिजली में का पुरुष हूँ। आकाश और स्वर्ग क्रमसे बिजली तथा प्राण रूप आहवनीय अग्निके आश्रय होनेसे पहिले दो भोग्य और पिछले दो भोक्ता हैं। आकाश बिजलीका आश्रय प्रकट रूप से दीखता है और आहवनीय अग्निमें होम करनेसे स्वर्गकी प्राप्ति होती है इस कारण स्वर्गको उसका आश्रय कहा है १

स य एतमेवं विद्वानुपास्तेऽपहते पापकृत्यां लोकी भवति सर्वमायुरेति ज्योग्जीवति नास्यावरपुरुषाः क्षीयन्त उप वयं तं भुञ्जामोऽस्मिंश्च लोकेऽमुष्मिंश्च य एतमेवं विद्वानुपास्ते ॥ २ ॥

इसका अन्वय पदार्थ और भावार्थ एकादश खण्डके दूसरे मन्त्रकी समान जानो क्योंकि-दोनों मन्त्रोंका पाठ एक है २

॥ चतुर्थाध्यायस्य त्रयोदशः खण्डः समाप्तः ॥

ते होचुरुपकोसलैषा सोम्य तेऽस्मद्विद्याऽऽत्मविद्या

चाचार्यस्तु ते गतिं वक्तेत्याजगाम हास्याचार्य-स्तमाचार्योऽभ्युवादोपकोसल इति ॥ १ ॥

अन्वय और पदार्थ–(ते) वह (ऊचुः) बोले (उपकोसल) हे उपकोसल (सोम्य) हे प्रियदर्शन (एषा) यह (अस्मद्विद्या) हमारी विद्या (च) और (आत्मविद्या) आत्मविद्या (ते) तेरे लिये है (आचार्यः, तु) आचार्य तो (ते) तेरे अर्थ (गतिम्) गतिको (वक्ता) कहेगा (इति) ऐसा उपदेश देनेके अनन्तर (अस्य) इसका (आचार्यः) आचार्य (आजगाम) आगया (आचार्यः) आचार्य (तम्) उसको (उपकोसल) हे उपकोसल (इति) इस प्रकार (अभ्युवाद) पुकारता हुआ ॥ १ ॥

भावार्थ–तदनन्तर वह सब अग्नि इकट्ठे होकर कहने लगे, कि–हे सोम्य उपकोसल ! यह हमारी अग्नि विद्या तथा प्राण ब्रह्म है, सुख ब्रह्म है, आकाश ब्रह्म है इस प्रकार पहिले कही हुई आत्मविद्या तेरे लिये है और आचार्य तो तुझे विद्याके फलकी प्राप्तिके लिये गतिका उपदेश देंगे, ऐसा कहकर अग्नि, चुप होगये । कुछ समय पीछे इसके आचार्य आये और वह कहने लगे, कि–हे उपकोसल ! सुन ॥ १ ॥

भगव इति ह प्रतिशुश्राव ब्रह्मविद इव सोम्य ते मुखं भाति को नु त्वाऽनुशशासेति को नु मानुशिष्याद् भो इतीहापेव निन्हुत इमे नूनमीदृशा अन्यादृशा इतीहाग्नीनभ्यूदे किं नु सोम्य किल तेऽवोचन्निति ॥ २ ॥

अन्वय और पदार्थ-(भगवः) हे भगवन् (इति) ऐसा (प्रतिशुश्राव) प्रत्युत्तर देता हुआ (सोम्य) हे प्रियदर्शन (ते) तेरा (मुखम्) मुख (ब्रह्मविदः, इव) ब्रह्मज्ञानीकेसा (भाति) प्रतीत होता है (कः, नु) कौन (त्वा) तुझको (अनुशशास) उपदेश देता हुआ (इति) ऐसा गुरुके कहने पर (भोः) हे भगवन् (माम्) मुझको (कः नु) कौन (अनुशिष्यात्) उपदेश देता (इति) ऐसा कह कर (अपनिह्नुते, इव) मानो उसको अग्नियोंके उपदेशकी बात कहते हुए संकोच हुआ (नूनम्) निश्चय (ईदृशाः) ऐसे (इमे) ये (इह) यहाँ (अन्यादृशाः) और प्रकारके थे (इति) ऐसा (अग्नीन्) अग्नियोंको (अभ्यूदे) कहता हुआ (सोम्य) हे प्रियदर्शन (किल) निश्चय (ते) वह (किम्, नु) क्या (अवोचन्) कहते हुए (इति) इस प्रकार ॥ २ ॥

भावार्थ—उपकोसलने कहा—हे भगवन् ! कहिये मैं सुनता हूँ । आचार्यने कहा, कि—हे सोम्य ! तेरा मुख ब्रह्मज्ञानीकेसा प्रसन्न दीख रहा है, तुझे विद्याका उपदेश किसने किया है ? उपकोसलने कहा, कि—हे भगवन् ! जब आप चले गये तो मुझे और कौन उपदेश देता ? इस प्रकार पहिले तो वह अग्नियोंकी उपदेशकी हुई विद्याका परिचय देनेमें लज्जितसा हुआ, परन्तु फिर यह समझ कर कि—गुरुसे दुराव करना पापकर्म है, इस लिये कहने लगा, कि—निःसन्देह इन अग्नियों ने मुझे उपदेश दिया है, यह पहिले तो और प्रकारके थे, अब आपके आने पर ये कम्पायमानसे होरहे हैं, यह बात उसने

गद्गद् कण्ठसे कही तब आचार्यने कहा, कि--हे सोम्य ! इन अग्नियोंने तुझे क्या उपदेश दिया है ? ॥ २ ॥

इदमिति ह प्रतिजज्ञे लोकान् वाव किल सोम्य तेऽवोचन्नहन्तु तद्वक्ष्यामि यथा पुष्करपलाश आपो न श्लिष्यन्त एवमेवं विदि पापं कर्म न श्लिष्यत इति ब्रवीतु मे भगवानिति तस्मै होवाच ३

अन्वय और पदार्थ—(इदम्) यह (इति) ऐसा है इस प्रकार (प्रतिजज्ञे) प्रत्युत्तर देता हुआ (सोम्य) हे प्रियदर्शन (किल) निश्चय (लोकान्, वाव) लोकोंको ही (ते) तेरे अर्थ (अवोचन्) कहते हुए (अहम्, तु) मैं तो (ते) तेरे अर्थ (तत्) वह (वक्ष्यामि) कहूँगा (यथा) जैसे (पुष्कर-पलाशे) कमलके पत्तेमें (आपः) जल (न) नहीं (श्लिष्यन्ते) चिपटते हैं (एवम्) इसी प्रकार (एवंविदि) ऐसा जानने वालेमें (पापम्, कर्म) पाप कर्म (न) नहीं (श्लिष्यते) चिपटता है (इति) ऐसा कहने पर (भगवान्) आप (मे) मेरे अर्थ (ब्रवीतु) कहिये (इति) ऐसा कहने पर (तस्मै) तिसके अर्थ (उवाच) कहते हुए ॥ ३ ॥

भावार्थ—ऐसा पूछने पर उपकोसलने, जो कुछ अग्नियोंने उपदेश दिया था वह सब क्रमसे सुना दिया, आचार्यने कहा, कि—हे सोम्य ! अग्नियोंने तुझे सब ही लोकोंका उपदेश दिया है उन्होंने पूर्णरूपसे ब्रह्मका उपदेश नहीं दिया है, मैं तुझे पूर्णतया ब्रह्मका उपदेश दूँगा जैसे कमलके पत्तेमें जल नहीं चिपटता है तैसे ही ब्रह्मज्ञानी पुरुषमें पाप लिप्त नहीं होता ।

उपकोसलने कहा, कि--हे भगवन् ! उपदेश दीजिये, इस पर आचार्य उसको उपदेश देने लगे ॥ २ ॥

॥ चतुर्थाध्यायस्य चतुर्दशः खण्डः समाप्तः ॥

य एषोऽक्षिणि पुरुषो दृश्यते एष आत्मेति होवाचैतदमृतमभयमेतद् ब्रह्मेति तद्यद्यप्यस्मिन् सर्पिर्वोदकं वा सिञ्चति वर्त्मनी एव गच्छति १

अन्वय और पदार्थ—(एषः) यह (यः) जो (अक्षिणि) चक्षुमें (पुरुषः) पुरुष (दृश्यते) दीखता है (एषः) यह (आत्मा) आत्मा है (इति) ऐसा (उवाच) कहते हुए (एतत्) यह (अमृतम्) अमृत (अभयम्) निर्भय है (एतत्) यह (ब्रह्म) ब्रह्म है (यद्यपि) यद्यपि (सर्पिः) घृत (वा) या (उदकम्) जल (सिञ्चति) सींचता है (तत्) वह (वर्त्मनी) मार्गोंमेंको (गच्छति) जाता है ॥ १ ॥

भावार्थ—इन्द्रियोंको तथा अन्तःकरणको नियममें रखनेवाले विवेकी पुरुष चक्षुमें जिस द्रष्टा पुरुषको देखते हैं वह प्राणियों का आत्मा है यह बात आचार्यने कही, यह आत्मतत्त्व अविनाशी, अभय और अनन्त ब्रह्म है, यह भी कहा, कि–तिस पुरुषके स्थानरूप नेत्रमें जो घी वा जल डालते हैं वह इधर उधर कोयोंमेंको चला जाता है नेत्रमें चिपटता नहीं, जब स्थान का ही यह प्रभाव है तो फिर उस चक्षुमें रहने वाले पुरुषके निरञ्जन और निर्लेप होनेमें तो कहना ही क्या है ? ॥ १ ॥

एतᳬं संयद्वाम इत्याचक्षत एतᳬं हि सर्वाणि

वामानि नयति सर्वाण्येनं वामान्यभिसंयन्ति य एवं वेद ॥ २ ॥

अन्वय और पदार्थ—(एतम्) इसको (संयद्वाम इति) संयद्वाम इस नामसे (आचक्षते) कहते हैं (हि) क्योंकि—(सर्वाणि) सब (वामानि) मङ्गल (एतम्) इसको (अभिसंयन्ति) चारों ओरसे प्राप्त होते हैं (यः) जो (एवम्) ऐसा (वेद) जानता है (एनम्) इसको (सर्वाणि) सब (वामानि) शुभ (अभिसंयन्ति) चारों ओरसे प्राप्त होते हैं २

भावार्थ—इस चक्षुमें स्थित पुरुषको ब्रह्मवेत्ता संयद्वाम कहते हैं, क्योंकि-इस पुरुषको चारों ओरसे सब प्रकारके मङ्गल प्राप्त होते हैं, जो ऐसा जान कर उपासना करता है उसको भी चारों ओरसे सकल मङ्गल प्राप्त होते हैं ॥ २ ॥

एष उ एव वामनीरेष हि सर्वाणि वामानि नयति सर्वाणि वामानि नयति, य एवं वेद ॥ ३ ॥

अन्वय और पदार्थ—(उ) और (एषः, एव) यह पुरुष ही (वामनीः) वामनी है (एषः, हि) यह ही (सर्वाणि) सब (वामानि) वामोंको (नयति) प्राप्त कराता है (यः) जो (एवम्) ऐसा (वेद) जानता है (सर्वाणि) सब (वामानि) वामोंको (नयति) पाता है ॥ ३ ॥

भावार्थ—यह पुरुष ही निःसन्देह वामनी कहिये पुण्यकर्मों के फल प्राप्त कराने वाला है, क्योंकि—यह पुरुष प्राणियों के सकल पुण्यकर्मोंके अनुसार प्राप्त कराता है, ऐसा जान

कर जो उपासना करता है वह सकल पुण्यकर्मोंके फलोंको पाता है ॥ ३ ॥

एष उ एव भामनीरेष हि सर्वेषु लोकेषु भाति सर्वेषु लोकेषु भाति य एवं वेद ॥ ४ ॥

अन्वय और पदार्थ—(उ) और (एषः, एव) यह ही (भामनीः) भामनी है (हि) क्योंकि (सर्वेषु) सब (लोकेषु) लोकोंमें (भाति) प्रकाशता है (यः) जो (एवम्) ऐसा (वेद) जानता है (सर्वेषु) सब (लोकेषु) लोकोंमें (भाति) प्रकाशता है ॥ ४ ॥

भावार्थ—यह पुरुष ही निःसन्देह भामनी कहिये प्रकाश-रूप है क्योंकि—यह पुरुष सब लोकोंमें आदित्यरूपसे प्रकाशता है, ऐसा जो जान कर ,उपासना करता है वह सब लोकोंमें प्रकाशवान् होता है ॥ ४ ॥

अथ यदु चैवास्मिञ्छव्यं कुर्वन्ति, यदि च नार्चिषमेवाभिसंभवन्त्यर्चिषोऽहरह्न आपूर्यमाण-पक्षमापूर्यमाणपक्षाद्यान्षडुदङ्ङेति मासाᳬंस्तान् मासेभ्यः सम्वत्सरᳬं सम्वत्सरादादित्यमादित्या-च्चन्द्रमसं चन्द्रमसो विद्युतं तत्पुरुषोऽमानवः स एनान् ब्रह्म गमयत्येष देवपथो ब्रह्मपथ एतेन प्रति-पद्यमाना इमं मानवमावर्त्तं नावर्त्तन्ते नावर्त्तन्ते ५

अन्वय और पदार्थ—(अथ) और (यदु, चैव) जो (अस्मिन्) इस पुरुषमें (शव्यम्) अन्त्येष्टि क्रियाको (कुर्वंति)

करते हैं (यदि च) अथवा (न) नहीं करते हैं (अर्चिषम् एव) अर्चिको ही (अभिसंयन्ति) प्राप्त होते हैं (अर्चिषः) अर्चिसे (अहः) दिनको (अह्नः) दिनसे (आपूर्यमाणपक्षम्) आपूर्यमाणपक्षको (आपूर्यमाणपक्षात्) आपूर्यमाणपक्षसे (यान् षट्) जिन छः मास [सूर्यः] सूर्य (उदङ्) उत्तर दिशाको (एति) प्राप्त होता है (तान्) तिन (मासान्) महीनोंको (मासेभ्यः) मासोंसे (संवत्सरम्) सम्वत्सरको (संवत्सरात्) संवत्सरसे (आदित्यम्) आदित्यको (आदित्यात्) आदित्यसे (चन्द्रमसम्) चन्द्रमाको (चन्द्रमसः) चन्द्रमासे (विद्युतम्) विद्युत्को [एति] प्राप्त होता है (तत्) वहाँ (अमानवः) मानवी सृष्टिसे भिन्न (पुरुषः) पुरुष [आगच्छति] आता है (सः) वह (एनान्) इनको (ब्रह्म, गमयति) ब्रह्मलोकमें लेजाता है (एषः) यह (देवपथः) देवमार्ग (ब्रह्मपथः) ब्रह्ममार्ग है (एतेन) इस मार्गके द्वारा (प्रतिपद्यमानाः) प्राप्त होते हुए पुरुष (इमम्) इस (मानवम्) मनुकी सृष्टिरूप (आवर्त्तम्) संसारचक्रको (न, आवर्त्तन्ते) नहीं प्राप्त होते हैं (न, आवर्त्तन्ते) नहीं प्राप्त होते हैं ५

भावार्थ—अब यदि इस पुरुषमें सुख गुणवाले चक्षुमें स्थित पुरुषको संयद्वाम, वामनी और भामनी गुणोंसे युक्त मानकर इसकी उपासना करनेवाले तथा प्राणसहित अग्निविद्याकी उपासना करनेवाले मनुष्यकी मरणके पीछेकी अन्त्येष्टि क्रिया कीजाय चाहे न कीजाय वह सूर्यकी किरणोंके अभिमानी अर्चिदेवताको ही प्राप्त होता है, अर्चिसे दिनके अभिमानी

देवताको, दिनके अभिमानी देवतासे शुक्लपक्षके अभिमानी आपूर्यमाणपक्षको, आपूर्यमाणपक्षसे जिन छः महीनेमें सूर्य उत्तरकी ओरको जाता है उन मासोंको कहिये उत्तरायणके देवताको, प्राप्त होता है, उन मासोंसे वर्षके अभिमानी देवता को, उससे आदित्यको, आदित्यसे चन्द्रमाको और चन्द्रमासे बिजलीको प्राप्त होता है, वहाँ ब्रह्मलोकसे कोई मानवी सृष्टि से बाहरका दिव्य पुरुष आता है और वह इन उपासकोंको सत्यलोकमें स्थित ब्रह्मके समीप पहुँचाता है, यह देवमार्ग है अर्थात् किरण आदिके अभिमानी देवता जिस मार्गमें उपासकोंको लेजानेका काम करते हैं ऐसा मार्ग है, यही ब्रह्ममार्ग कहिये ब्रह्मके पास पहुँचानेवाला मार्ग है, इस मार्गसे ब्रह्मके समीप पहुँचनेवाले पुरुष, इस वर्त्तमान मनुकी सृष्टिरूप मानव संसार चक्रमें नहीं आते हैं, [परन्तु दूसरे कल्पमें फिर लौट कर आते हैं अहंग्रह उपासना न होनेके कारण उनको विदेह कैवल्यकी प्राप्ति नहीं होती] ॥ ५ ॥

॥ चतुर्थाध्यायस्य पञ्चदशः खण्डः समाप्तः ॥

एष ह वै यज्ञो योऽयं पवत एष ह यन्निदꣳ सर्वं पुनाति तस्मादेष एव यज्ञस्तस्य मनश्च वाक् च वर्त्तनी ॥ १ ॥

अन्वय और पदार्थ—(यः) जो (अयम्) यह (पवते) चलता है (वै) निश्चय (एषः, ह) यह ही (यज्ञः) यज्ञ है (एषः, ह) यह ही (यन्) चलता हुआ (इदम्) इस (सर्वम्) सबको (पुनाति) पवित्र करता है (यत्) जो

(एषः) यह (यन्) चलता हुआ (इदम्) इस (सर्वम्) सबको (पुनाति) पवित्र करता है (तस्मात्) तिससे (एषः, एव) यह ही (यज्ञः) यज्ञ है (मनः) मन (च) और (वाक् च) वाणी भी (तस्य) उसके (वर्त्तनी) मार्ग हैं ॥ १ ॥

भावार्थ—जो यह चलता है यह प्रसिद्ध वायु ही यज्ञ है, यह वायु ही चला हुआ इस सब जगत्को पवित्र करता है, इस पवित्र करनेके कारणसे ही यह यज्ञ है, मन्त्रोच्चारणमें प्रवृत्त हुई वाणी और यथार्थ अर्थके ज्ञानमें प्रवृत्त हुआ मन ये दो इस यज्ञके मार्ग हैं ? ॥ १ ॥

तयोरन्यतरां मनसा संस्करोति ब्रह्मा वाचा होताध्वर्युरुद्गाताऽन्यतराᳪँ स यत्रोपाकृते प्रातरनुवाके पुरा परिधानीया ब्रह्मा व्यववदति ॥ २ ॥

अन्वय और पदार्थ-(तयोः) उन दोनोंमें (अन्यतराम्) एकको (ब्रह्मा) ब्रह्मा (मनसा) मनसे (संस्करोति) संस्कार युक्त करता है (अन्यतराम्) दूसरे एकको (होता) होता (अध्वर्युः) अध्वर्यु (उद्गाता) उद्गाता (वाचा) वाणी से (संस्करोति) संस्कारयुक्त करता है (प्रातरनुवाके) प्रातः-कालके अनुवाकके (उपाकृते) आरम्भ करने पर (परिधानीयायाः) परिधानीयाके (पुरा) पहिले (यत्र) जहाँ (सः) वह (ब्रह्मा) ब्रह्मा (व्यववदति) बोलता है ॥२॥

भावार्थ—उन दोनोंमेंके एक मन रूप मार्गका, विवेक विज्ञानवाले मनसे मौन धारण किये हुए ब्रह्मा संस्कार करता है और होता, अध्वर्यु तथा उद्गाता ये तीनों वाणीरूप मार्ग

का मन्त्रोच्चारणसे संस्कार करते हैं। प्रातःकालके अनुवाक का आरम्भ करनेके अनन्तर समाप्तिकी परिधानीया ऋचाके जपसे पहिले २ वह ब्रह्मा मौनको त्यागकर मन्त्रोच्चारण करने लगता है ॥ २ ॥

अन्यतरामेव वर्त्तनीᳬसᳬसंस्करोति हीयतेऽन्यतरा स यथैकपाद् व्रजन् रथो वैकेन चक्रेण वर्त्तमानो रिष्यत्येवमस्य यज्ञो रिष्यति यज्ञᳬ रिष्यन्तं यजमानोऽनुरिष्यति स इष्ट्वा पापीयान् भवति ॥ ३ ॥

अन्वय और पदार्थ—(अन्यतराम् वर्तनीम् एव) एकको ही (संस्करोति) संस्कार युक्त करता है (अन्यतरा) दूसरा मार्ग (हीयते) नष्ट होजाता है (यथा) जैसे (एकपाद्) एक पैरवाला (व्रजन्) चलता हुआ (वा) या (एकेन) एक (चक्रेण) पहियेके साथ (वर्त्तमानः) वर्त्तमान (रथः) रथ (रिष्यति) नष्ट होजाता है (एवम्) ऐसे ही (अस्य) इसका (सः) वह (यज्ञः) यज्ञ (रिष्यति) नाशको प्राप्त होता है (रिष्यन्तम्) नष्ट होते हुए के (अनु) पीछे २ (यजमानः) यजमान (रिष्यति) नष्ट होता है (सः) वह (इष्ट्वा) यजन करके (पापीयान्) बड़ा भारी पापी (भवति) होता है ॥ ३ ॥

भावार्थ—तब होता अध्वर्यु और उद्गाता एक वाणीरूप मार्गका ही संस्कार करते हैं और ब्रह्माने जिसको संस्कार

युक्त नहीं किया है ऐसा मनरूप मार्ग नष्ट होजाता है (छिद्र-युक्त होजाता है) जैसे एक चरण वाला मनुष्य चलता हुआ अथवा एक पहियेसे चलता हुआ रथ नष्ट होजाता है इसी प्रकार इस यजमानका यज्ञ अयोग्य ब्रह्माके द्वारा मनरूप एक मार्गसे हीन होनेके कारण नष्ट होजाता है । उस यज्ञका नाश होनेके अनन्तर ही यज्ञ ही जिसके प्राण हैं ऐसा यजमान नष्ट होता है, वह यजमान ऐसे यज्ञका अनुष्ठान करके पापका भागी होता है ॥ ३ ॥

अथ यत्रोपाकृते प्रातरनुवाके न पुरा परिधानीयाया ब्रह्मा व्यववदत्युभे एव वर्त्तनी संस्कुर्वन्ति न हीयतेऽन्तरा ॥ ४ ॥

अन्वय और पदार्थ—(अथ) अब (यत्र) जहाँ (प्रातरनुवाके) प्रातःकालके अनुवाकका (उपाकृते) आरम्भ करने पर (परिधानीयायाः) परिधानीयाके (पुरा) पहले (ब्रह्मा) ब्रह्मा (न) नहीं (व्यववदति) बोलता है (उभे, एव) दोनों ही (वर्त्तनी) मार्गोंको (संस्कुर्वन्ति) संस्कारयुक्त करते हैं (अन्यतरा) दोनोंमेंसे कोई एक भी (न) नहीं (हीयते) हीन होता है ॥ ४ ॥

भावार्थ—और जहाँ प्रातःकालके अनुवाकरूप स्तोत्रका आरम्भ होजाने पर, परिधानीया नाम वाली समाप्तिकी ऋचा से पहिले ब्रह्मा बोलता नहीं है, किन्तु मौन रहता है वहाँ सब ऋत्विज् वाम और दक्षिण दोनों ही मार्गोंका संस्कार करते हैं, ऐसा होनेसे दोनोंमेंसे एक मार्ग भी नष्ट नहीं होता है ४

स यथोभयपाद् व्रजन् रथो वोभाभ्यां चक्राभ्यां वर्त्तमानः प्रतितिष्ठति, एवमस्य यज्ञः प्रतितिष्ठति, यज्ञं प्रतितिष्ठन्तं यजमानोऽनु प्रतितिष्ठति स इष्ट्वा श्रेयान् भवति ॥ ५ ॥

अन्वय और पदार्थ—(उभयपाद्) दोनों पादवाला (व्रजन्) चलता हुआ (सः) वह (वा) या (उभाभ्याम्) दोनों (चक्राभ्याम्) पहियोंसे (वर्त्तमानः) सम्पन्न (रथः) रथ (यथा) जैसे (प्रतितिष्ठति) प्रतिष्ठित होता है (एवम्) ऐसे ही (अस्य) इसका (यज्ञः) यज्ञ (प्रतितिष्ठति) प्रतिष्ठित होता है (प्रतितिष्ठन्तम्) प्रतिष्ठित होते हुए (यज्ञम्, अनु) यज्ञके पीछे (यजमानः) यजमान (प्रतितिष्ठति) प्रतिष्ठा पाता है (सः) वह (इष्ट्वा) यज्ञ करके (श्रेयान्) श्रेष्ठ (भवति) होता है ॥ ५ ॥

भावार्थ—जैसे दो पैरसे चलने वाला खड़ा होसकता है और प्रतिष्ठा पाता है अथवा जैसे दोनों पहियोंसे सम्पन्न रथ खड़ा होसकता है और प्रतिष्ठा पाता है इसी प्रकार यजमान का वह यज्ञ प्रतिष्ठित होता है और यज्ञके प्रतिष्ठित होने पर यजमानकी भी प्रतिष्ठा होती है, वह यजमान ऐसे मौनके विज्ञान वाले ब्रह्मासे युक्त यज्ञको करके श्रेष्ठ होता है वह कल्याण पाता है ॥ ५ ॥

॥ चतुर्थोऽध्यायस्य षोडशः खण्डः समाप्तः ।

प्रजापतिर्लोकानभ्यतपत्तेषां तप्यमानानां रसान् प्राबृहदग्निं पृथिव्या वायुमन्तरिक्षादादित्यं दिवः

अन्वय और पदार्थ–(प्रजापतिः) प्रजापति (लोकान्, अभ्यतपत्) लोकोंको उद्देश्य करके तप करता हुआ (तप्यमानानाम्) तपे हुए (तेषाम्) उनके (रसान्) रसोंको (प्राबृहत्) ग्रहण करता हुआ (पृथिव्याः) पृथिवीसे (अग्निम्) अग्निको (अन्तरिक्षात्) अन्तरिक्षसे (वायुम्) वायुको (दिवः) द्युलोकसे (आदित्यम्) आदित्यको ॥ १ ॥

भावार्थ—नित्यकर्मके अनुष्ठानको कहकर अब नैमित्तिक कर्मके प्रायश्चित्तविधानका आरम्भ करते हुए पहिले तीन लोकों मेंसे तीन देवताओंकी उत्पत्तिको कहते हैं–प्रजापतिने लोकों को उद्देश करके सार ग्रहण करनेकी इच्छासे ध्यानरूप तप किया, उन तपेहुए लोकोंके रस अर्थात् साररूप देवताओंको ग्रहण किया पृथिवीसे अग्निको, अन्तरिक्षसे वायुको और स्वर्गसे आदित्यको ॥ २ ॥

स एतास्तिस्रो देवता अभ्यतपत्तासां तप्यमानानाँ रसान् प्राबृहदग्नेर्ऋचो वायोर्यजूंषि सामान्यादित्यात् ॥ २ ॥

अन्वय और पदार्थ -(सः) वह (एताः) इन (तिस्रः) तीन (देवताः) देवताओंको (अभ्यतपत्) तपता हुआ, (तप्यमानानाम्) तपेजाते हुए (तासाम्) उनके (रसान्) रसोंको (प्राबृहत्) ग्रहण करता हुआ (अग्नेः) अग्निसे (ऋचः) ऋचाओंको (वायोः) वायुसे (यजूंषि) यजुओं को (आदित्यात्) आदित्यसे (सामानि) सामोंको ॥ २॥

भावार्थ—उस प्रजापतिने तीनों देवताओंका सार ग्रहण

करनेके लिये ध्यानरूप तप किया, ध्यान किये हुए उन देव-ताओंके रसोंको (साररूप वेदोंको) ग्रहण किया। अग्निसे ऋचाओंको, वायुसे यजुओंको और आदित्यसे सामोंको ग्रहण किया ॥ २ ॥

स एतां त्रयीं विद्यामभ्यतपत्तस्यास्तप्यमानाया रसान् प्राबृहद् भूरित्यृग्भ्यो भुवरिति यजुर्भ्यः स्वरिति सामभ्यः ॥ ३ ॥

अन्वय और पदार्थ–(सः) वह (एताम्) इस (त्रयीम्, विद्याम्) त्रयी विद्याको (अभ्यतपत्) तपता हुआ (तप्यमानायाः) तपी जाती हुई (तस्याः) तिसके (रसान्) रसों का (प्राबृहत्) ग्रहण करता हुआ (ऋग्भ्यः) ऋचाओंसे (भूः इति) भू इसको (यजुर्भ्यः) यजुओंसे (भुवः, इति) भुवर् इसको (सामभ्यः) सामोंसे (स्वः, इति) स्वः इसको ३

भावार्थ–उसने ऋक् आदि त्रयी विद्याके उद्देश्यसे ध्यान-रूप तप किया, उस ध्यान की हुई विद्याके रसोंको (साररूप व्याहृतियोंको) ग्रहण किया। ऋचाओंसे भूः को, यजुओं से भुवः को और सामोंसे स्वः को ग्रहण किया ॥ ३ ॥

तद्यदृक्तो रिष्येद् भूः स्वाहेति गार्हपत्ये जुहुयादृचामेव तद्रसेनर्चां वीर्येणर्चां यज्ञस्य विरिष्टँ संदधाति

अन्वय और पदार्थ–(तत्) उसमें (यदि) जो (ऋक्तः) ऋचासे (रिष्येत्) छिद्र होय [तर्हि] तो (भूः स्वाहा, इति) भूः स्वाहा इससे (गार्हपत्ये) गार्हपत्यमें (जुहुयात्) होम करै (ऋचाम् एव) ऋचाओंके ही (यज्ञस्य) यज्ञके (विरिष्टम्)

छिद्रको (सन्दधाति) पूर्ण करता है (ऋचाम्) ऋचाओंके (रसेन) सारसे (ऋचाम्) ऋचाओंके (वीर्येण) बलसे (तत्) उसको [सन्दधाति] पूर्ण करता है ॥ ४ ॥

भावार्थ—उस यज्ञमें यदि ऋचाओंके कारणसे कुछ त्रुटि होजाय तो 'भूः स्वाहा' कह कर गार्हपत्य अग्निमें होम करे, ऋग्वेदके सारभूत भूः स्वाहा इस व्याहृतिके द्वारा प्रायश्चित्त-होम कर लेने पर ऋचाओंके कारणसे जो त्रुटि हुई है वह ऋचाओंके ही सार और बलसे पूर्ण होजाती है ॥ ४ ॥

अथ यदि यजुष्टो रिष्येद् भुवः स्वाहेति दक्षिणाग्नौ जुहुयाद्यजुषामेव तद्रसेन यजुषां वीर्येण यजुषां यज्ञस्य विरिष्टं सन्दधाति ॥ ५ ॥

अन्वय और पदार्थ-(अथ) और (यदि) जो (यजुष्टः) यजुसे (रिष्येत्) छिद्र होय [तर्हि] तो (भुवः, स्वाहा, इति) भुवः स्वाहा इस व्याहृतिसे (दक्षिणाग्नौ) दक्षिणाग्नि में (जुहुयात्) होम करे (यजुषाम् एव) यजुओंके ही (रसेन) सारसे (यजुषाम्) यजुओंके (वीर्येण) बलसे (यजुषाम्) यजुओंके (यज्ञस्य) यज्ञके (तत्) उस (विरिष्टम्) छिद्र को (सन्दधाति) पूर्ण करता है ॥ ५ ॥

भावार्थ—अब जो यजुके कारणसे त्रुटि होजाय तो भुवः स्वाहा ऐसा कह कर दक्षिणाग्निमें होम करे यह प्रायश्चित्त है यजुओंके सम्बन्ध वाले यज्ञकी त्रुटिको पूर्ण करनेके लिये अध्वर्यु जो पूर्ण करता है वह यजुओंके ही सारसे वा यजुओं के ही बलसे पूर्ण करता है ॥ ५ ॥

अथ यदि सामतो रिष्येत्स्वः स्वाहेत्याहवनीये जुहुयात्साम्नामेव तद्रसेन साम्नां वीर्येण साम्नां यज्ञस्य विरिष्टं सन्दधाति ॥ ६ ॥

अन्वय और पदार्थ-(अथ) और (यदि) जो (सामतः) सामसे (रिष्येत्) छिद्र होय [तर्हि] तो (स्वः स्वाहा इति) स्वः स्वाहा ऐसा उच्चारण करके (आहवनीये) आहवनीय अग्निमें [जुहुयात्] होम करे (साम्नाम् एव) सामोंके ही (रसेन) सारसे (साम्नाम्) सामोंके (वीर्येण) बलसे (साम्नाम्) सामोंके (यज्ञस्य) यज्ञके (तत्) उस (विरिष्टम्) छिद्रको (सन्दधाति) पूर्ण करता है ॥ ६ ॥

भावार्थ—और यदि सामके कारणसे यज्ञमें क्षति हुई हो तो स्वः स्वाहा ऐसा कह कर आहवनीय अग्निमें होम करे, यह व्याहृति प्रायश्चित्त रूप है, सामसम्बन्धी यज्ञके छिद्रको उद्गाता जो पूर्ण करता है वह सामोंके ही सारसे और सामोंके ही बलसे पूर्ण करता है ॥ ६ ॥

तद्यथा लवणेन सुवर्णं सन्दध्यात्सुवर्णेन रजतꣳ रजतेन त्रपु, त्रपुणा सीसꣳ सीसेन लोहं, लोहेन दारु, दारु चर्मणा ॥ ७ ॥

अन्वय और पदार्थ—(तत्) सो (यथा) जैसे (लवणेन) लवणसे (सुवर्णम्) सुवर्णको (सुवर्णेन) सोनेसे (रजतम्) चाँदीको (रजतेन) चाँदीसे (त्रपु) त्रपुको (त्रपुणा) त्रपुसे (सीसम्) सीसेको (सीसेन) सीसेसे (लोहम्)

लोहेको (लोहेन) लोहेसे (दारु) लकड़ीको (चर्मणा) चमड़े से (दारु) लकड़ी को (सन्दध्यात्) जोड़े ॥ ७ ॥

भावार्थ–जैसे सुहागा आदि क्षार पदार्थसे सुवर्णको, सुवर्ण से चाँदीको, चाँदीसे त्रपुको, त्रपुसे सीसेको, सीसेसे लोहेको लोहेसे और चमड़ेसे काठको जोड़ते हैं अर्थात् इनके अवयवों को परस्पर अच्छे प्रकारसे संबद्ध कर देते हैं ॥ ७ ॥

एवमेषां लोकानामासां देवतानामस्यास्त्रय्या विद्याया वीर्येण यज्ञस्य विरिष्टं सन्दधाति भेषजकृतो ह वा एष यज्ञो यत्रैवंविद् ब्रह्मा भवति ।८।

अन्वय और पदार्थ–(एवम्) इस प्रकार (एषाम्) इन (लोकानाम्) लोकोंके (आसाम्) इन (देवतानाम्) देवताओंके (अस्याः) इस (त्रय्याः) त्रयी (विद्यायाः) विद्या के (वीर्येण) बलसे (यज्ञस्य) यज्ञकी (विरिष्टम्) त्रुटिको (सन्दधाति) पूर्ण करता है (यत्र) जिस यज्ञमें (एवंविद्) ऐसा जानने वाला (ब्रह्मा) ब्रह्मा (भवति) होता है (एषः) यह (यज्ञः) यज्ञ (ह वा) निश्चय (भेषजकृतः) वैद्यके सुधारे हुए रोगीकी समान सुधरता है ॥ ८ ॥

भावार्थ—इसी प्रकार सकल लोकोंको सकल देवताओंके त्रयी विद्याके और रसरूप व्याहृतियोंके बलसे यज्ञकी त्रुटिको ब्रह्मा पूर्ण करता है । जिस यज्ञमें इस प्रकार व्याहृतियोंके द्वारा होमरूप प्रायश्चितको जानने वाला ब्रह्मा होता है वह यज्ञ निःसन्देह सुधरता है, जैसे कि–कुशल वैद्यकी औषधसे रोगीका शरीर सुधरता है ॥ ८ ॥

एष ह वा उदक्प्रवणो यज्ञो यत्रैवंविद् ब्रह्मा भवत्येवंविद्थ्ँ ह वा एषा ब्रह्माणमनु गाथा यतो-यत आवर्त्तते तत्तद् गच्छति ॥ ६ ॥

अन्वय और पदार्थ–(यत्र) जहाँ (एवंविद्) इसप्रकार जानने वाला (ब्रह्मा) ब्रह्मा (भवति) होता है (एषः) यह (ह वै) प्रसिद्ध (यज्ञः) यज्ञ (उदक्प्रवणः) उत्तर मार्ग की प्राप्तिका हेतु [भवति] होता है (एवंविदम्) ऐसा जानने वाले (ब्रह्माणं, अनु) ब्रह्माके प्रति (वै) निश्चय (एषा) यह (ह) प्रसिद्ध (गाथा) गाथा है (यतः, यतः) जहाँ जहाँ (आवर्त्तते) छिद्र होता है (तत् तत्) तहाँ २ (गच्छति) प्राप्त होता है ॥ ९ ॥

भावार्थ–जहाँ इस प्रकार जानने वाला ब्रह्मा होता है वह प्रसिद्ध यज्ञ उत्तरमार्गकी प्राप्ति कराता है, ऐसा जानने वाले प्रसिद्ध ब्रह्माके विषयमें ब्रह्माकी स्तुतिसे पूर्ण यह गाथा है। जहाँ २ यज्ञमें त्रुटि होती है तहाँ उस त्रुटिको प्रायश्चित्तसे पूर्ण करके ब्रह्मा कर्त्ताओंकी रक्षा करता है ॥ ९ ॥

मानवो ब्रह्मैवैक ऋत्विक् कुरूनश्वाऽभिरक्षत्ये-वंविद्ध वै ब्रह्मा यज्ञं यजमानथ्ँ सर्वाथ्ँश्चर्त्वि-जोऽभिरक्षति तस्मादेवंविदमेव ब्रह्माणं कुर्वीत नानेवंविदं नानेवंविदम् ॥ १० ॥

अन्वय और पदार्थ–(मानवः) मनन करने वाला (ब्रह्मा) ब्रह्मा नामका (एकः) एक (ऋत्विक्, एव) ऋत्विक् ही

(कुरून्) यज्ञकर्त्ताओंको (अश्वा,अभिरक्षति) घोड़ेकी समान रक्षा करता है (वै) निश्चय (एवंविद्) ऐसा जानने वाला (ह) प्रसिद्ध (ब्रह्मा) ब्रह्मा (यज्ञम्) यज्ञको (यजमानम्) यजमानको (च) और (सर्वान्) सब (ऋत्विजः) ऋत्विजों को (अभिरक्षति) रक्षा करता है (तस्मात्) तिससे (एवंविदम् एव) ऐसा जाननेवालेको ही (ब्रह्माणम्, कुर्वीत) ब्रह्मा करे (अनेवंविदम्) ऐसा न जानने वालेको (न) नहीं (अनेवंविदम्) ऐसा न जानने वालेको (न) नहीं ॥१०॥

भावार्थ—मौन होकर श्रीभगवान्का ध्यानरूप मनन करने वाला एक ब्रह्मा नामका ऋत्विक् ही कर्त्ताओंकी रक्षा करता है, जिस प्रकार अपने ऊपर बैठने वाले योधाओंकी घोड़ा रक्षा करता है । ऐसा जानने वाला प्रसिद्ध ब्रह्मा यज्ञकी यजमानकी और सब ऋत्विजोंकी,उनके कहे हुए दोषोंको दूर करके रक्षा करता है, इस लिये इन कही हुई व्याहृति आदि को जानने वालेको ही यजमान ब्रह्मा बनाये, इन बातोंको न जानने वालेको ब्रह्मा कभी न बनाये, कभी न बनाये ॥१०॥

इति श्रीछान्दोग्य उपनिषद्में अन्वय पदार्थ और भावार्थ सहित चतुर्थ अध्याय समाप्त.

अथ पञ्चमोऽध्यायः

सगुणब्रह्मकी उपासनाकी देवयानमार्गरूप गति कही जा चुकी अब इस पाँचवें अध्यायमें पञ्चाग्निविद्या वाले गृहस्थकी और श्रद्धावान् तथा पञ्चाग्नि–विद्यासे अन्य सगुणविद्यामें

निष्ठावाले ब्रह्मचारी आदिकोंको उस ही गतिका अनुवाद करके, दक्षिण दिशासे सम्बन्ध रखने वाले केवल कर्मकर्त्ताओं की धूम आदि लक्षण वाली पुनरावृत्तिरूप दूसरी गति, तथा इन दोनों गतियोंसे भिन्न तीसरी अत्यन्त कष्टरूप संसारकी गति वैराग्यके निमित्त कही जायगी। वाक् आदिके साथ मिलकर काम करने वाला होनेके कारण समान होकर भी प्राण वाक् आदिमें क्यों श्रेष्ठ है ? और उसकी किस प्रकार उपासना होती है ? यह शङ्का होती है, इस लिये पहले प्राण के श्रेष्ठता आदि गुणोंको दिखानेका आरम्भ करते हैं—

ॐ यो ह वै ज्येष्ठञ्च श्रेष्ठञ्च वेद, ज्येष्ठश्च ह वै श्रेष्ठश्च भवति प्राणो वाव ज्येष्ठश्च श्रेष्ठश्च ।।१।।

अन्वय और पदार्थ—(यः) जो (ह) प्रसिद्ध (ज्येष्ठम्) ज्येष्ठको (च) और (श्रेष्ठम्, च) श्रेष्ठको भी (वै) निश्चय (वेद) जानता है [सः] वह (वै) निश्चय (ह) प्रसिद्ध (ज्येष्ठः) ज्येष्ठ (च) और (श्रेष्ठः च) श्रेष्ठ भी (भवति) होता है (प्राणः वाव) प्राण ही (ज्येष्ठः) ज्येष्ठ (च) और (श्रेष्ठः, च) श्रेष्ठ भी [अस्ति] है ।। १ ।।

भावार्थ—जो ज्येष्ठ अवस्थासे (प्रथम) को तथा श्रेष्ठ (गुणोंसे अधिक) को जानता है, वह निश्चय ही ज्येष्ठ और श्रेष्ठ होता है, वाक् आदि इन्द्रियोंमें प्राण ही ज्येष्ठ और श्रेष्ठ है ।। १ ।।

यो ह वै वसिष्ठं वेद वसिष्ठो ह स्वानां भवति वाग्वाव वसिष्ठः ।। २ ।।

अन्वय और पदार्थ—(यः) जो (वै) निश्चय (ह) प्रसिद्ध (वसिष्ठम्) अत्यन्त धनवान्को (वेद) जानता है [सः] वह (स्वानाम्) अपनोंमें (ह) प्रसिद्ध (वसिष्ठः) अतिधनवान् (भवति) होता है (वाग्, वाव) वाक् ही (वसिष्ठः) अत्यन्त धनवान् है ॥ २ ॥

भावार्थ—जो अतिधनवान्को जानता है वह अपनी ज्ञातिवालोंमें अत्यन्त धनवान् होता है । उत्तम वाणी वाला अधिक धन प्राप्त करता है, इस कारण वाणी ही अत्यन्त धनवान् है

यो ह वै प्रतिष्ठां वेद प्रति ह तिष्ठत्यस्मिꣳश्च लोकेऽमुष्मिꣳश्च चक्षुर्वाव प्रतिष्ठा ॥ ३ ॥

अन्वय और पदार्थ—(यः) जो (वै) निश्चय (ह) प्रसिद्ध (प्रतिष्ठाम्) स्थितिको (वेद) जानता है [सः] वह (अस्मिन) इस (लोके) लोकमें (च) और (अमुष्मिन्) उस (लोके) लोकमें (ह) प्रसिद्धरूपसे (प्रतितिष्ठति) स्थित होता है (चक्षुः, वाव) चक्षु ही (प्रतिष्ठा) स्थिति है ॥ ३ ॥

भावार्थ—जो प्रतिष्ठा (स्थिति) को जानता है, वह इस लोकमें और परलोकमें स्थित होता है। पुरुष चक्षुसे सम और विषम स्थानमें स्थित होता है, इस कारण चक्षु ही प्रतिष्ठा है

यो ह वै सम्पदं वेद सꣳहाऽस्मै कामाः पद्यन्ते दैवाश्च मानुषाश्च श्रोत्रं वाव सम्पत् ॥ ४ ॥

अन्वय और पदार्थ—(यः) जो (वै) निश्चय (ह) प्रसिद्ध (सम्पदम्) सम्पदाको (वेद) जानता है (अस्मै) इसके लिये (ह) प्रसिद्ध (दैवाः) देवसम्बन्धी (च) और (मानुषः

च) मनुष्यसम्बन्धी भी (कामाः) काम (सम्पद्यन्ते) सम्पन्न होते हैं (श्रोत्रम्, वाव) श्रोत्र ही (सम्पत्) सम्पत् है ४

भावार्थ—जो सम्पत्को जानता है, उसको स्वर्ग आदिके देवसम्बन्धी विषय और पशु आदि मनुष्यसम्बन्धी विषय प्राप्त होते हैं। श्रोत्र (कान) से वेद तथा उसके अर्थके विज्ञान को ग्रहण किया जाता है, उसको ग्रहण करने पर प्राणी कर्म करता है और उस कर्मसे विषय प्राप्त होते हैं, इस कारण श्रोत्र ही सम्पत् है ॥ ४ ॥

योह वा आयतनं वेदाऽऽयतनꣳ स्वानां भवति, मनो ह वा आयतनम् ॥ ५ ॥

अन्वय और पदार्थ—(यः) जो (वै) निश्चय (ह) प्रसिद्ध (आयतनम्) आश्रयको (वेद) जानता है [सः] वह (स्वानाम्) अपनोंका (आयतनम्) आश्रय (भवति) होता है (वै) निश्चय (मनः) मन (ह) प्रसिद्ध (आयतनम्) आश्रय है ॥ ५ ॥

भावार्थ-जो आश्रयको जानता है वह अपनी जातिवालों का आश्रय होता है। भोक्ताको जिनका प्रयोजन होता है और इन्द्रियें जिनको लाती हैं ऐसे ज्ञानरूप विषयोंका आश्रय मन ही है, इस कारण मन ही प्रसिद्ध आश्रय है ॥ ५ ॥

अथ ह प्राणा अहꣳ श्रेयसि व्यूदिरेऽहं श्रेयानस्म्यहꣳ श्रेयानस्मि ॥ ६ ॥

अन्वय और पदार्थ-(अथ) अथ (ह) प्रसिद्ध (प्राणाः) प्राण (अहंश्रेयसि) अपने श्रेष्ठपनेके विषयमें (अहम्) मैं

(श्रेयान्) श्रेष्ठ (अस्मि) हूं (अहम्) मैं (श्रेयान्) श्रेष्ठ (अस्मि) हूं (इति) इस प्रकार (व्यूदिरे) विवाद करने लगे ६

भावार्थ-ऊपर जो गुण कहे हैं वे मुख्य प्राणमें रहते हैं वाणी आदि एक२ में नहीं रहते हैं,इस तत्त्वको एक उपाख्यान के द्वारा दिखाते हैं, कि-वाक् आदि प्राण, मैं श्रेष्ठ हूं २, इस प्रकार कहकर अपनी २ श्रेष्ठताके विषयमें विवाद करने लगे ६

ते ह प्राणाः प्रजापतिं पितरमेत्योचुर्भगवन् को नः श्रेष्ठ इति तान् होवाच यस्मिन् व उत्क्रान्ते शरीरं पापिष्ठतरमिव दृश्येत स वः श्रेष्ठ इति ७

अन्वय और पदार्थ-(ते) वे (ह) प्रसिद्ध (प्राणाः) प्राण (पितरम्) पिता (प्रजापतिम्) प्रजापतिको (एत्य) प्राप्त होकर (इति) इस प्रकार (ऊचुः) कहने लगे (भगवन्) हे भगवन् (नः) हममें (कः) कौन (श्रेष्ठः) श्रेष्ठ है (तान्) उनको (ह) वह प्रसिद्ध प्रजापति (वः) तुममेंसे (यस्मिन् उत्क्रान्ते) जिसके निकलने पर (शरीरम्) शरीर (पापिष्ठम् इव) पापिष्ठकी समान (दृश्येत) दीखे (सः) वह (वः) तुममें (श्रेष्ठः) श्रेष्ठ है (इति) ऐसा (उवाच) बोला ॥७॥

भावार्थ—वे प्रसिद्ध प्राण इस प्रकार विवाद करते हुए अपनी श्रेष्ठताको जाननेके लिये प्रजापतिरूप पिताके पास आकर कहने लगे, कि-भगवन् ! हममें श्रेष्ठ कहिये गुणोंमें बड़ा कौन है ? प्रजापतिने उत्तर दिया, कि-तुममेंसे जिसके शरीरमेंसे निकल जाने पर शरीर अधिक पापिष्ठ (मुरदासा) दीखने लगे, वही तुममें श्रेष्ठ है ॥ ७ ॥

सा ह वागुच्चक्राम सा सम्वत्सरं प्रोष्य पर्येत्योवाच कथमशकतर्ते मज्जीवितुमिति यथा कला अवदन्तः प्राणन्तः प्राणेन पश्यन्तश्चक्षुषा शृण्वन्तः श्रोत्रेण ध्यायन्तो मनसैवमिति प्रविवेश ह वाक् ॥ ८ ॥

अन्वय और पदार्थ–(सा) वह (ह) प्रसिद्ध (वाक्) वाणी (उच्चक्राम) निकल गयी (सा) वह (सम्वत्सरम्) वर्षभर (प्रोष्य) प्रवास करके (पर्येत्य) फिर लौट आकर (मत्, ऋते) मेरे बिना (जीवितुम्) जीनेको (कथम्) कैसे (अशकत) समर्थ हुए (इति) ऐसा (उवाच) बोली (यथा) जैसे (कलाः) गूंगे (अवदन्तः) वाणीसे न बोलते हुए (प्राणेन) प्राणके द्वारा (प्राणन्तः) श्वासोच्छ्वास लेते हुए (चक्षुषा) नेत्रसे (पश्यन्तः) देखते हुए (श्रोत्रेण) कानसे (शृण्वन्तः) सुनते हुए (मनसा) मनसे (ध्यायन्तः) ध्यान करते हुए [जीवन्ति] जीते हैं (एवम्) इसी प्रकार [वयम्, अजीविष्म] हम जीवित रहे (इति) इस उत्तरको सुनकर (ह) वह प्रसिद्ध (वाक्) वाणी (प्रविवेश) प्रवेश कर गयी ॥ ८ ॥

भावार्थ—प्रजापतिके इस उत्तरको सुननेके अनन्तर पहिले वाणी शरीरमेंसे निकली अर्थात् वाणीने अपना व्यापार करना बन्द कर दिया और वह एक वर्ष पर्यन्त बाहर रही अर्थात् अपने व्यापारको बन्द किये रही और फिर लौटकर कहने लगी, कि–हे इन्द्रियो ! तुमने मेरे बिना किस प्रकार जीवन

धारण किया था ? अन्य इन्द्रियोंने उत्तर दिया, कि-जैसे गूँगे प्राणी एक वाणीका उच्चारण न करसकने पर भी प्राण के द्वारा श्वास प्रश्वास लेकर, चक्षुके द्वारा देखकर, कानोंके द्वारा श्रवण करके और मनके द्वारा मनन करके जीवित रहते हैं, हमने भी इसी प्रकार जीवन धारण किया था, यह सुनकर वाणीको निश्चय होगया कि-मैं इनमें मुख्य नहीं हूँ और वह फिर शरीरमें प्रवेश करके अपना व्यापार करने लगी ॥८॥

चक्षुर्होच्चक्राम तत्सम्वत्सरं प्रोष्य पर्येत्योवाच कथमशकतर्ते मज्जीवितुमिति यथान्धा अपश्यंतः प्राणन्तः प्राणेन वदन्तो वाचा शृण्वंतः श्रोत्रेण ध्यायन्तो मनसैवमिति प्रविवेश ह चक्षुः ॥ ९ ॥

अन्वय और पदार्थ-(ह) प्रसिद्ध (चक्षुः) चक्षु (उच्चक्राम) बाहर निकल गया (तत्) वह (सम्वत्सरम्) एक वर्षतक (प्रोष्य) प्रवास करके (पर्येत्य) लौटके आकर (मत्, ऋते) मेरे बिना (जीवितुम्) जीनेको (कथम्) कैसे (अशकत) समर्थ हुए (इति) ऐसा (उवाच) बोला (यथा) जैसे (अन्धाः) अन्धे (अपश्यन्तः) न देखते हुए (प्राणेन) प्राणसे (प्राणन्तः) श्वास प्रश्वास लेते हुए (वाचा) वाणी से (वदन्तः) बोलते हुए (श्रोत्रेण) कानसे (शृण्वन्तः) सुनते हुए (मनसा) मनसे (ध्यायन्तः) ध्यान करते हुए [जीवन्ति] जीते हैं (एवम्) ऐसे ही [वयम् अजीविष्म] हम जिये थे (इति) इस उत्तरको सुनकर (ह) वह प्रसिद्ध (चक्षुः) चक्षु (प्रविवेश) प्रवेश कर गया ॥ ९ ॥

भावार्थ—तदनन्तर प्रसिद्ध चक्षु शरीरमेंसे निकल गया एक वर्ष पर्यन्त वह बाहर रहकर फिर लौटकर आया और कहने लगा, कि—हे इन्द्रियों ! तुमने मेरे विना कैसे जीवन धारण किया ? अन्य इन्द्रियोंने उत्तर दिया, कि—जैसे अन्धोंको दीखता तो नहीं परन्तु वे प्राणके द्वारा श्वास प्रश्वास लेते हुए वाणीके द्वारा बोलते हुए, कानोंसे सुनते हुए और मन से मनन करते हुए जीवन धारण करते हैं, इसी प्रकार हमने भी जीवन धारण किया, यह बात सुनकर चक्षुको निश्चय होगया, कि-मैं ही सबमें मुख्य नहीं हूँ और वह फिर शरीर में घुसकर अपना व्यापार करने लगा ॥ ९ ॥

श्रोत्रꣳ होच्चक्राम तत्सम्वत्सरं प्रोष्य पर्येत्योवाच कथमशकतर्त्ते मज्जीवितुमिति यथा वधिरा अशृण्वन्तः प्राणन्तः प्राणेन वदन्तो वाचा पश्यन्तश्चक्षुषा ध्यायन्तो मनसैवमिति प्रविवेश ह श्रोत्रम् ॥ १० ॥

अन्वय और पदार्थ—(ह) प्रसिद्ध (श्रोत्रम्) श्रोत्र (उच्चक्राम) शरीरमेंसे निकल गया (तत्) वह (सम्वत्सरम्) एक वर्षतक (प्रोष्य) प्रवास करके (पर्येत्य) फिर लौट आकर (मत्, ऋते) मेरे बिना (जीवितुम्) जीनेको (कथम्) कैसे (अशकत) समर्थ हुए (इति) ऐसा (उवाच) बोला (यथा) जैसे (वधिराः) बहरे (अशृण्वन्तः) न सुनते हुए (प्राणेन) प्राणके द्वारा (प्राणन्तः) श्वास प्रश्वास

लेते हुए (वाचा) वाणीसे (वदन्तः) बोलते हुए (चक्षुषा) चक्षुसे (पश्यन्तः) देखते हुए (मनसा) मनसे (ध्यायन्तः) ध्यान करते हुए [जीवन्ति] जीते हैं (एवम्) इसी प्रकार [वयम्, अजीविष्म] हम जीवित रहे (इति) इस उत्तरको सुनकर (ह) वह प्रसिद्ध (श्रोत्रम्) श्रोत्र (प्रविवेश) प्रवेश कर गया ॥ १० ॥

भावार्थ–इसके अनन्तर श्रोत्र शरीरमेंसे निकल गया अर्थात् अपना व्यापार करना छोड़ दिया और साल भर तक बाहर रहकर लौट आया तथा अन्य इन्द्रियोंसे कहने लगा, कि–मेरे विना तुमने जीवन धारण कैसे किया ? अन्य इन्द्रियोंने उत्तर दिया, कि–हे श्रोत्र ! जैसे बहिरे प्राणी कानोंसे नहीं सुनसकते, परन्तु प्राणके द्वारा श्वास प्रश्वास लेते हुए, वाणीसे बोलते हुए, चक्षुसे देखते हुए और मनसे मनन करते हुए अपने जीवनको धारण करते हैं इसी प्रकार हमने भी अपने जीवनको धारण किया, यह सुनकर श्रोत्रको निश्चय होगया कि मैं मुख्य नहीं हूँ और वह फिर शरीरमें प्रवेश करके अपना व्यापार करने लगा ॥ १० ॥

मनो होच्चक्राम तत्सम्वत्सरं प्रोष्य पर्येत्योवाच कथमशकतर्त्ते मज्जीवितुमिति यथा बाला अमनसः प्राणन्तः प्राणेन वदन्तो वाचा पश्यन्तश्चक्षुषा शृण्वन्तः श्रोत्रेणैवमिति प्रविवेश ह मनः ॥ ११ ॥

अन्वय और पदार्थ–(ह) प्रसिद्ध (मनः) मन (उच्च-

क्राम) शरीरमेंसे निकल गया (तत्) वह (सम्वत्सरम्) वर्षभर पर्यन्त (प्रोष्य) प्रवास करके (पर्येत्य) फिर लौट आकर (उवाच) बोला (मद्, ऋते) मेरे विना (जीवितुम्) जीनेको (कथम्) कैसे (अशकत) समर्थ हुए (इति) ऐसा (उवाच) बोला (यथा) जैसे (बालाः) बालक (अमनसः) मनोवृत्तिसे शून्य होकर (प्राणेन) प्राणके द्वारा (प्राणन्तः) श्वास प्रश्वास लेते हुए (वाचा) वाणीसे (वदन्तः) बोलते हुए (चक्षुषा) चक्षुसे (पश्यन्तः) देखते हुए (श्रोत्रेण) श्रोत्रसे (शृण्वन्तः) सुनते हुए [जीवन्ति] जीते हैं (एवम्) इसी प्रकार [वयम्, अजीविष्म] हम जीवित रहे (इति) इस उत्तरको सुनकर (ह) वह प्रसिद्ध (मनः) मन (प्रविवेश) शरीरमें प्रवेश कर गया ॥ ११ ॥

भावार्थ—इसके अनन्तर प्रसिद्ध मन शरीरमेंसे निकल गया, वह एक वर्ष तक बाहर रहकर लौट आया और इन्द्रियोंसे कहने लगा, कि—तुमने मेरे विना किस प्रकार जीवन धारण किया ? अन्य इन्द्रियोंने उत्तर दिया, कि—हे मन ! जैसे बालकों में मनकी वृत्तिका अभाव होता है अर्थात् अज्ञ बालक केवल मन के द्वारा मनन करनेमें असमर्थ होकर भी प्राणके द्वारा श्वास प्रश्वास लेते हुए, वाणीसे बोलते हुए, नेत्रसे देखते हुए और कानसे सुनते हुए जीवित रहते हैं, इसी प्रकार हमने भी जीवनको धारण किया था, यह सुन कर मनको निश्चय हो गया कि—मैं मुख्य नहीं हूँ और वह फिर शरीरमें प्रवेश कर के अपने कामको करने लगा ॥ ११ ॥

अथ ह प्राण उच्चिक्रमिषन् स यथा सुहयः पड्-

वीशशंकून् संखिदेदेवमितरान् प्राणान् समखिद-
त्तॅं हाभिसमेत्योचुर्भगवन्नेधि त्वं नः श्रेष्ठोऽसि
मोत्क्रमीरिति ॥ १३ ॥

अन्वय और पदार्थ—(अथ) इसके अनन्तर (ह) प्रसिद्ध (सः) वह (प्राणः) प्राण (उच्चक्रमिषन्) निकलना चाहता हुआ (यथा) जैसे (सुहयः) श्रेष्ठ घोड़ा (पड्वीशशंकून्) पैर बाँधनेकी कीलोंको (संखिदेत्) अच्छे प्रकारसे उखाड़ डालता है (एवम्) इसी प्रकार (इतरान्) अन्य (प्राणान्) प्राणोंको (समखिदत्) उखाड़ता हुआ (अभिसमेत्य) इकट्ठे होकर (ह) प्रसिद्ध (तम्) उस प्राणको (ऊचुः) कहते हुए (भगवन्) हे भगवन् (एधि) प्राण हूजिये (त्वम्) तुम (न) हममें (श्रेष्ठः, असि) श्रेष्ठ हो (इति) इस कारण (मा, उत्क्रमीः) शरीरमेंसे मत निकलो ॥ १२ ॥

भावार्थ—इस प्रकार वाक् आदि इन्द्रियें मुख्य नहीं हैं, इस बातका निश्चय होजानेके अनन्तर प्रसिद्ध मुख्य प्राणने शरीर मेंसे निकलना चाहा, उस समय, जैसे एक बलवान् घोड़ा परीक्षा करनेके लिये चाबुक मारने पर पैर बाँधनेके खूँटोंको उखाड़ डालता है, इसी प्रकार निकलते हुए प्राणने वाक्-आदि अन्य प्राणोंको उखाड़ डाला, तब उन सबोंने इकट्ठे होकर उस प्रसिद्ध प्राणसे कहा, कि—हे भगवन्! आप अपने स्थान पर जाकर स्थित हूजिये, तुम हम सबोंमें श्रेष्ठ हो, इस कारण तुम इस शरीरमेंसे उत्क्रमण न करो ॥ १२ ॥

अथ हैनं वागुवाच यदहं वसिष्ठोऽस्मि त्वं तद्

वसिष्ठोऽसीत्यथ हैनं चक्षुरुवाच यदहं प्रतिष्ठास्मि त्वं तत्प्रतिष्ठाऽसीति ॥ १३ ॥

अन्वय और पदार्थ–(अथ) इसके अनन्तर (ह) प्रसिद्ध (एवम्) इसके प्रति (वाक्) वाणी (उवाच) बोली (यत्) जो (अहम्) मैं (वसिष्ठः) धनवान् (अस्मि) हूँ (तत्) सो (वसिष्ठः) धनवान् (त्वम् असि) तुम हो (इति) इस प्रकार (अथ) इसके अनन्तर (एनम्) इसके प्रति (ह) प्रसिद्ध (चक्षुः) चक्षु (उवाच) बोला (यत्) जो (अहम्) मैं (प्रतिष्ठा, अस्मि) स्थित हूँ (तत्) वह (प्रतिष्ठा) स्थिति (त्वम्, असि) तुम हो (इति) इस प्रकार ॥ १३ ॥

भावार्थ–इसके अनन्तर मुख्य और प्रसिद्ध प्राणसे वाणी कहने लगी, कि–मैं जो धनवान् हूँ वह धनवान्पना आपका ही है, तदनन्तर इस मुख्य प्राणसे चक्षुने कहा, कि–मैं जो स्थिति हूँ वह स्थितिरूप भी तुम ही हो ॥ १३ ॥

अथ हैनं श्रोत्रमुवाच यदहᳬँ सम्पदस्मि त्वं तत्सम्पदसीत्यथ हैनं मन उवाच यदहमायतनमस्मि त्वं तदायतनमसीति ॥ १४ ॥

अन्वय और पदार्थ–(अथ) अनन्तर (ह) प्रसिद्ध (एनम्) इसके प्रति (श्रोत्रम्) श्रोत्र (उवाच) बोला (यत्) जो (अहम्) मैं (सम्पत्, अस्मि) संपदा हूँ (तत्) वह (संपत्) सम्पदा (त्वम्, असि) तुम हो (इति) इस प्रकार (अथ) अनन्तर (एनम्) इसको (ह) प्रसिद्ध (मनः) मन (उवाच)

बोला (यत्) जो (अहम्) मैं (आयतनम्) आश्रय (अस्मि) हूँ (तत्) सो (आयतनम्) आश्रय (त्वम्, असि) तुम हो (इति) इस प्रकार ॥ १४ ॥

भावार्थ–फिर इसके प्रति श्रोत्रने कहा, कि–मैं जो सम्पत् कहलाता हूँ वह सम्पत् तू हो है अर्थात् तेरे ही आश्रयसे मैं सम्पत् कहलाता हूँ, फिर इससे मनने कहा, कि–मैं जो आश्रय हूँ वह आश्रय तू ही है। इस प्रकार वाणी, नेत्र, श्रोत्र और मनने अपनेमें प्रतीत होने वाले गुणोंको अपने न कह कर प्राणके ही बताया ॥ १४ ॥

न वै वाचो न चक्षूंषि न श्रोत्राणि न मनाँसीत्याचक्षते प्राणा इत्येवाचक्षते प्राणो ह्येवैतानि सर्वाणि भवति ॥ १५ ॥

अन्वय और पदार्थ—(वै) निश्चय (वाचः) वाणियें (इति) ऐसा (न) नहीं (चक्षूंषि) चक्षु [इति] ऐसा (न) नहीं (श्रोत्राणि) कान [इति] ऐसा (न) नहीं (मनांसि) मन [इति] ऐसा (न) नहीं (आचक्षते) कहते हैं (प्राणाः, इति, एव) प्राण इस नामसे ही (आचक्षते) कहते हैं (हि) निश्चय (एतानि) ये (सर्वाणि) सब (प्राणः, एव) प्राण ही (भवति) होता है ॥ १५ ॥

भावार्थ—लौकिक पुरुष वा शास्त्रके ज्ञाता पुरुष वाक् आदि इन्द्रियोंको, ये वाणी हैं वा ये चक्षु हैं, वा ये श्रोत्र हैं, अथवा ये मन हैं ऐसा नहीं कहते हैं, क्योंकि–ये स्वाधीनभाव

से अपना २ व्यापार नहीं कर सकते हैं, किन्तु इनको प्राण नामसे कहते हैं, क्योंकि-इन सबकी मूलशक्ति प्राण ही है१५

॥ पञ्चमाध्यायस्य प्रथमः खण्डः समाप्तः ॥

स होवाच किं मेऽन्नं भविष्यतीति यत्किञ्चिदिदमाश्वभ्य आशकुनिभ्य इति होचुस्तद्वा एतदनस्यान्नमनो ह वै नाम प्रत्यक्षं न ह वा एवम्विदि किञ्चनानन्नं भवतीति ॥ १ ॥

अन्वय और पदार्थ—(ह) प्रसिद्ध (सः) वह प्राण (मे) मेरा (अन्नम्) अन्न (किम्) क्या (भविष्यति) होगा (इति) ऐसा (उवाच) बोला (इदम्) यह (यत्किञ्चित्) जो कुछ (आश्वभ्यः) कुत्तोंसे लेकर (आशकुनिभ्यः) पक्षियों पर्यन्त [अस्ति] है (इति) ऐसा (ह) प्रसिद्धरूपसे (ऊचुः) बोले (तत्) तिससे (वै) निश्चय (एतत्) यह (अनस्य) प्राणका (अन्नम्) अन्न है (अनः) अन (वै) निश्चय (ह) प्रसिद्ध (प्रत्यक्षम्) प्रत्यक्ष (नाम) नाम [अस्ति] है (एवम्विदि) ऐसा जानने वालेके विषयमें (वै) निश्चय (किञ्चन, ह) कुछ भी (अनन्नम्, इति) अन्न है ऐसा (न) नहीं (भवति) होता है ॥ १ ॥

भावार्थ—उस प्रसिद्ध मुख्य प्राणने कहा, कि-मेरा अन्न क्या होगा ? इसके उत्तरमें वाक् आदि इन्द्रियोंने कहा, कि-यह जो श्वानों पर्यन्त और पक्षियों पर्यन्त प्राणियोंका अन्न है वही तेरा अन्न है, अन (चेष्टा करने वाला) यह प्राणका प्रत्यक्ष और प्रसिद्ध नाम है। सकल भूतोंमें स्थित और सकल

अन्नका भक्षक प्राण मैं हूँ, ऐसा जानने वालेके लिये जो सकल प्राणियोंका भक्ष्य होता है वह जो कुछ भी हो उसका अभक्ष्य नहीं होता है (यह स्तुति मात्र है) ॥ १ ॥

स होवाच किं मे वासो भविष्यतीत्याप इति होचतुस्तस्माद्वा एतदशिष्यन्तः पुरस्ताच्चोपरिष्टाच्चाद्भिः परिदधति लम्भुको ह वासो भवत्यनग्नो ह भवति ॥ २ ॥

अन्वय और पदार्थ—(सः) वह (ह) प्रसिद्ध प्राण (मे) मेरा (वासः) वस्त्र (किम्) क्या (भविष्यति) होगा (इति) ऐसा (उवाच) बोला (आपः) जल (इति) ऐसा (ह) स्पष्ट (ऊचतुः) कहते हुए (तस्मात्) तिससे (एतत्) इस अन्नको (अशिष्यन्तः) भोजन करते हुए पुरुष (पुरस्तात्) पहिले (च) और (उपरिष्टात्, च) पीछे भी (अद्भिः) जलों करके (परिदधति) परिधान करते हैं (लुम्भकः, ह) प्रसिद्ध वस्त्रको प्राप्त करने वाला (भवति) होता है (ह) प्रसिद्ध (अनग्नः) ओढ़नेके वस्त्र वाला (भवति) होता है २

भावार्थ—इसके अनन्तर उस प्राणने कहा, कि—मेरा वस्त्र क्या होगा ? इसके उत्तरमें वाक् आदि इन्द्रियोंने कहा, कि-जल तेरा वस्त्र है, क्योंकि—जल प्राणका वस्त्र है, इस लिए ही भोजन करने वाले और भोजन करते हुए विद्वान् द्विज, भोजनसे पहले और पीछे जलसे मुख्य प्राणको आचमन रूप वस्त्र पहराते हैं, जो ऐसा जानता है वह पहरनेके वस्त्रोंका

पाता है और ओढ़नेके वस्त्रोंको भी पाता है, कभी नग्न नहीं रहता ॥ २ ॥

तद्धैतत्सत्यकामो जाबालो गोश्रुतये वैयाघ्रपद्यायोक्त्वोवाच यद्यप्येनच्छुष्काय स्थाणवे ब्रूयाज्जायेरन्नेवास्मिञ्छाखाः प्ररोहेयुः पलाशानीति

अन्वय और पदार्थ— (तत्) उस (एतत्) इस विद्याको (ह) प्रसिद्ध (सत्यकामः) सत्यकाम नाम वाला (जाबालः) जबालाका पुत्र (वैयाघ्रपद्याय) व्याघ्रपद्के पुत्र (गोश्रुतये) गोश्रुतिके अर्थ (उक्त्वा) कह कर (यदि) जो (एतत्) इसको (शुष्काय) सूखे हुए (स्थाणवे, अपि) स्थाणुके अर्थ भी (ब्रूयात्) कहे [तर्हि] तो (अस्मिन्, एव) इसमें ही (शाखाः) शाखायें (जायेरन्) उत्पन्न होजायँ (पलाशानि) पत्ते (प्ररोहेयुः) उत्पन्न होजायँ (इति) ऐसा (उवाच) बोला

भावार्थ—जबालाके पुत्र सत्यकामने इस प्राणोपासनाका उपदेश व्याघ्रपद्के पुत्र गोश्रुतिको दिया और फिर कहा, कि यदि कोई प्राणोपासनाको जानने वाला सूखे हुएठको भी इसका उपदेश करे तो उसमें निःसन्देह शाखायें निकल आवें और पत्ते आजायें फिर यदि जीवधारी प्राणीको इसका उपदेश किया जाय तो उसको महाफलकी प्राप्ति होगी, इसमें तो सन्देह ही क्या करना ? ॥ ३ ॥

अथ यदि महज्जिगमिषेदमावास्यायां दीक्षित्वा पौर्णमास्याᳪं रात्रौ सर्वौषधस्य मन्थं दधिमधु-

नोरुपमथ्य ज्येष्ठाय, श्रेष्ठाय, स्वाहेत्यग्नावाज्यस्य हुत्वा मन्थे सम्पातमवनयेत् ॥ ४ ॥ वसिष्ठाय स्वाहेत्यग्नावाज्यस्य हुत्वा मंथे सम्पातमवनयेत्प्र-तिष्ठायै स्वाहेत्यग्नावाज्यस्य हुत्वा मन्थे संपा-तमवनयेत्संपदे स्वाहेत्यग्नावाज्यस्य हुत्वा मन्थे संपातमवनयेदायतनाय स्वाहेत्यग्नावाज्यस्य हुत्वा मन्थे संपातमवनयेत् ॥ ५ ॥

अन्वय और पदार्थ–(अथ) अनन्तर (यदि) जो (महत्) महत् पदको (जिगमिषेत्) पहुँचनेकी इच्छा करे [तर्हि] तो (अमावास्यायाम्) अमावास्याके दिन (दीक्षित्वा) दीक्षा लेकर (पौर्णिमायाम्) पूनोके दिन (रात्रौ) रातमें (सर्वौ-षधस्य) सकल औषधोंकी (मन्थम्) पीठीको (दधिमधुनोः) दही और शहदके साथ (उपमथ्य) मथकर (ज्येष्ठाय, श्रेष्ठाय, स्वाहा, इति) ज्येष्ठाय स्वाहा श्रेष्ठाय स्वाहा ऐसा बोल कर (अग्नौ) अग्निमें (आज्यस्य) घीका (हुत्वा) होम करके (सम्पातम्) शेष टपकते हुए घीको (मन्थे) उस पीठीमें (अवनयेत्) टपका देय (वसिष्ठाय, स्वाहा, इति) वसिष्ठाय स्वाहा ऐसा बोलकर (अग्नौ) अग्निमें (आज्यस्य) घीका (हुत्वा) होम करके (सम्पातम्) स्रुवेमें लगे टपकते हुए घीको (मन्थे) पीठीमें (अवनयेत्) टपका देय (प्रतिष्ठायै, स्वाहा, इति) प्रतिष्ठायै स्वाहा ऐसा बोलकर (अग्नौ) अग्नि में (आज्यस्य) घीका (हुत्वा) होम करके (सम्पातम्)

स्रुवेमें लगे टपकते हुए घीको (मन्थे) पीठीमें (अवनयेत्) टपका देय (सम्पदे, स्वाहा, इति) सम्पदे स्वाहा ऐसा कहकर (अग्नौ) अग्निमें (आज्यस्य) घीका (हुत्वा) होम करके (सम्पातम्) स्रुवेमें लगे टपकते हुए घीको (मन्थे) पीठीमें (अवनयेत्) टपका देय (आयतनाय, स्वाहा, इति) आयतनाय स्वाहा ऐसा कह कर (अग्नौ) अग्निमें (आज्यस्य) घीका (हुत्वा) होम करके (सम्पातम्) स्रुवेमें लगे टपकते हुए घीको (मन्थे) पीठीमें (अवनयेत्) टपका देय ।४।५।

भावार्थ—प्राणविद्याकी सिद्धि होजाने पर यदि महत्त्व (प्रतिष्ठा) पानेकी इच्छा हो तो अमावस्याके दिन दीक्षा लेकर अर्थात् भूमिमें सोना, दूध पीना, सत्य बोलना और ब्रह्मचर्यसे रहना इत्यादि नियमोंका पालन करके पूर्णिमाकी रात्रिमें सकल ग्राम और उसकी औषधियोंकी लुगदी बनाकर उसको दही और शहदमें मथलेय तथा उसको आगे रखकर १ ज्येष्ठाय स्वाहा, २ श्रेष्ठाय स्वाहा, ३ वशिष्ठाय स्वाहा, ४ प्रतिष्ठायै स्वाहा, ५ सम्पदे स्वाहा, ६ आयतनाय स्वाहा, इन छहों मन्त्रोंमेंसे एक २ को पढ़कर अग्निमें घीकी आहुति देय और स्रुवेमें लगा हुआ जो घी टपकता आवे उसको लुगदीमें टपका देय ॥ ४ ॥ ५ ॥

अथ प्रतिसृप्याञ्जलौ मन्थमाधाय जपत्यमो नामास्यमा हि ते सर्वमिदथ्ँ स हि ज्येष्ठः श्रेष्ठो राजाधिपतिः स मा ज्यैष्ठ्यथ्ँ श्रैष्ठ्यथ्ँ राज्यमाधिपत्यं गमयत्वहमेवेदथ्ँ सर्वमसानीति ।६।

अन्वय और पदार्थ—(अथ) अनन्तर (प्रतिसृप्य) समीप में जाकर (अञ्जलौ) अञ्जलिमें (मन्थम्) उस पीठीको (आधाय) रखकर (जपति) जपता है (अमः, नामा, असि) प्राण नामवाला है (हि) क्योंकि (इदम्) यह (सर्वम्) सब (ते) तेरा (अमा) प्राण है (सः, हि) वह ही (ज्येष्ठः) ज्येष्ठ (श्रेष्ठः) श्रेष्ठ (राजा) प्रकाशवान् (अधिपतिः) पालनकर्त्ता [अस्ति] है (सः) वह मा) मुझे (ज्यैष्ठ्यम्) ज्येष्ठता (श्रैष्ठ्यम्) श्रेष्ठता (राज्यम्) प्रकाशवान्पना (आधिपत्यम्) पालकपना (गमयतु) प्राप्त कराओ (अहम्, एव) मैं ही (इदम्) यह (सर्वम्) सब (असानि) होजाऊँ (इति) इस प्रकार ॥ ६ ॥

भावार्थ—तदनन्तर अग्निके कुछ एक समीप जाकर अंजलि में वह पहिला पीठी लेकर इस मन्त्रको जपता है वह पीठी कहिये मन्थ प्राणका अन्न है इस कारण उसकी प्राणरूपसे स्तुति कीजाती है तू प्राण नाम वाला है क्योंकि—प्राणरूप तेरा यह सब जगत् है, तू ही ज्येष्ठ, श्रेष्ठ प्रकाशवान् और पालक है, ऐसा तू मुझे ज्येष्ठपना, श्रेष्ठपना, प्रकाशपना और पालकपना प्राप्त करा, मैं ही प्राणकी समान सब जगत्रूप होजाऊं ६

अथ खल्वेतयर्चा पच्छ आचामति तत्सवितुर्वृणीमह इत्याचामति, वयं देवस्य भोजनमित्याचामति, श्रेष्ठꣳ सर्वधातममित्याचामति, तुरं भगस्य धीमहीति, सर्वं पिबति, निर्णिज्य कꣳसं वा चमसं वा पश्चादग्नेः संविशति चर्मणि वा स्थ-

ण्डिले वा वाचंयमोऽप्रसाहः स यदि स्त्रियं पश्ये-त्समृद्धं कर्मेति विद्यात् ॥ ७ ॥

अन्वय और पदार्थ–(अथ) अनन्तर (खलु) प्रसिद्ध (एतया) इस (ऋचा) मन्त्रके द्वारा (पच्छः) एक २ पदसे (आचामति) भक्षण करता है (तत्सवितुर्वृणीमहे इति आचामति) तत्सवितुः वृणीमहे इस पादको बोल कर भक्षण करता है (वयम् देवस्य भोजनम्, इति, आचामति) वय देवस्य भोजनम् इस पादको बोलकर भक्षण करता है (श्रेष्ठं सर्वधातमम्, इति, आचामति) श्रेष्ठं सर्वधातमम् इस पादको बोलकर भक्षण करता है (तुरं भगस्य धीमहि, इति) तुरं भगस्य धीमहि इस पदको बोलकर (कंसम्, वा) या कंस-पात्रको (चमसम्, वा) अथवा चमसको (निर्णिज्य) धोकर (सर्वम्) सबको (पिबति) पीता है (अग्नेः) अग्निके (पश्चात्) पश्चिमकी ओर (चर्मणि, वा) या मृगचर्म पर (स्थण्डिले, वा) अथवा खुली भूमि पर (वाचम्यमः) वाणी को रोके हुए (अप्रसाहः) काम क्रोध आदिके वशमें न होता हुआ (सः) वह (यदि) जो (स्त्रियम्) स्त्रीको (पश्येत्) देखे (कर्म) कर्म (समृद्धम्) सफल हुआ (इति) ऐसा (विद्यात्) जाने ॥ ७ ॥

भावार्थ—इसके अनन्तर "तत्सवितुर्वृणीमहे वयं देवस्य भोजनम् । श्रेष्ठं सर्वधातमम्, तुरं भगस्य धीमहि ॥" (ऋ० ५ । ८२ । १ ।) इस मन्त्रके एक २ पादसे मन्थके एक २ ग्रासका भक्षण करता है । "तत्सवितुर्वृणीमहे" (आदित्यके

उस मन्थरूप भोजनको हम प्रार्थना करते हैं) इस पादको बोलकर एक ग्रास खाय । "वयं देवस्य भोजनम्" (हम देव के भोजनको माँगते हैं) इस पादको बोलकर दूसरा ग्रास खाय । "श्रेष्ठं सर्वधातमम्" (उस प्रशंसा करने योग्य और सबको अत्यन्त धारण करने वाले भोजनको माँगते हैं) इस पादको बोलकर तीसरा ग्रास खाय । "तुरं भगस्य धीमहि" (सूर्यके स्वरूपका शीघ्र ध्यान करते हैं) इस पादको बोलकर कंस वा चमस नामक यज्ञपात्रको धोकर उस मन्थके सब लेपको पीजाय फिर आचमन करके अग्निके पश्चिम भागमें (पूर्वको मुख करके) मृगचर्म पर वा खुली भूमि पर वाणीको रोके हुए (चुपचाप) और चित्तको वशमें किये हुए (काम क्रोध आदिके वशमें न न होकर) शयन करे, वह यदि स्वप्नमें किसी स्त्रीको देखे तो समझ लेय कि-मेरा यह अनुष्ठान सफल होगया ॥ ७ ॥

तदेषः श्लोको-यदा कर्मसु काम्येषु स्त्रियꣳ स्वप्नेषु पश्यति । समृद्धिं तत्र जानीयात्तस्मिन् स्वप्ननिदर्शने तस्मिन् स्वप्ननिदर्शने ॥ ८ ॥

अन्वय और पदार्थ-(तत्) उसके विषयमें (एषः) यह (श्लोकः) पद्य है (यदा) जब (काम्येषु कर्मसु) काम्य कर्मोंमें (स्वप्नेषु) स्वप्नोंमें (स्त्रियम्) स्त्रीको (पश्यति) देखता है (तत्र) तब (तस्मिन्) तिस (स्वप्ननिदर्शने) स्वप्नके दर्शनमें (समृद्धिम्) सफलताको (जानीयात्) जाने

भावार्थ—इस विषयमें एक मन्त्र भी है, कि-काम्यकर्मों के समय जब स्वप्नोंमें शक्तिरूपिणी स्त्रीका दर्शन होय तो

उस स्वप्नका दर्शन होने पर कर्मको सफल हुआ समझे। "तस्मिम् स्वप्ननिदर्शने" का दो वार कथन खण्डकी समाप्ति का सूचक है ॥ ८ ॥

॥ पञ्चमाध्यायस्य द्वितीयः खण्डः समाप्तः ॥

श्वेतकेतुर्हारुणेयः पञ्चालानाꣳ समितिमेयाय तꣳ प्रवाहणो जैवलिरुवाच कुमारानु त्वाऽशिषत् पितेत्यनु हि भगव इति ॥ १ ॥

अन्वय और पदार्थ-(ह) प्रसिद्ध (आरुणेयः) अरुणि का पुत्र (श्वेतकेतुः) श्वेतकेतु (पञ्चालानाम्) पञ्चालोंकी (समितिम्) सभाको (एयाय) प्राप्त हुआ (तम्) उसके प्रति (ह) प्रसिद्ध (जैवलिः) जीवलका पुत्र (प्रवाहणः) प्रवाहण (उवाच) बोला (कुमार) हे कुमार (त्वा) तुझको (पिता) पिता (अन्वशिषत्) शिक्षा देता हुआ (इति) इस प्रकार (भगवः) हे भगवन् (हि) निश्चय (अनु) शिक्षा दी है (इति) इस प्रकार ॥ १ ॥

भावार्थ—अरुणिका पुत्र प्रसिद्ध श्वेतकेतु पञ्चाल देशकी सभामें जापहुँचा, उससे जीवलके पुत्र प्रवाहणने कहा, कि-हे कुमार! क्या तुझे तेरे पिताने शिक्षा दी है श्वेतकेतु ने कहा, कि-हाँ भगवन्! मेरे पिताने ही मुझे शिक्षा दी है ॥ १ ॥

वेत्थ यदितोऽधि प्रजाः प्रयन्तीति, न भगव इति वेत्थ यथा पुनरावर्त्तन्त ३ इति, न भगव इति वेत्थ पथोर्देवयानस्य पितृयाणस्य च व्यावर्त्तनां इति, न भगव इति ॥ २ ॥

अन्वय और पदार्थ—(प्रजाः) प्रजायें (इतः) यहाँसे (अधि) ऊपर (यत्) जिसके प्रति (प्रयन्ति) प्राप्त होती हैं (इति) इसको (वेत्थ) जानता है (भगवः) हे भगवन् (न) नहीं जानता (इति) ऐसा कहा (यथा) जैसे (पुनः) फिर (आवर्त्तन्ते) लौटती हैं (इति) इसको (वेत्थ) जानता है (भगवः) हे भगवन् (न) नहीं जानता (इति) ऐसा कहा (पथोः) दोनों मार्गोंमेंसे (देवयानस्य) देवयान मार्ग के (च) और (पितृयाणस्य) पितृयान मार्गके (व्यावर्त्तनाम्) वियुक्तताको (वेत्थ) जानता है (इति) ऐसा बूझा (भगवः) हे भगवन् (न) नहीं जानता (इति) ऐसा उत्तर दिया २

भावार्थ—इसके अनन्तर प्रवाहणने बूझा, कि–हे श्वेत-केतु ! यदि तुमने अपने पितासे शिक्षा पायी है तो मेरे प्रश्नों का उत्तर दो। बताओ प्रजायें मरण होने पर इस लोकसे ऊपर कहाँ जाती हैं ? श्वेतकेतुने कहा, कि-हे भगवन् ! इस तत्त्वको मैं नहीं जानता। प्रवाहणने फिर बूझा, कि--जिस प्रकार फिर लौटकर आती हैं उस तत्त्वको जानता है ? श्वेत-केतुने कहा, कि--हे भगवन् ! इसको भी नहीं जानता। प्रवा-हणने फिर बूझा कि–उपासक और कर्म करने वालोंको दो मार्ग हैं देवयान और दूसरा पितृयाण मरण होनेके अनन्तर एक ही दशामें जाने वाले प्राणी अपने २ कर्म फल भोगके अनुसार इन दोनों मार्गोंमें जानेके लिये जुदे कहांसे होते हैं, इस तत्त्वको जानता है ? श्वेतकेतुने उत्तर दिया कि-हे भग-वन् ! मैं इसको भी नहीं जानता ॥ २ ॥

वेत्थ यथाऽसौ लोको न संपूर्यता३ इति, न भगव इति, वेत्थ यथा पञ्चम्यामाहुतावापः पुरुषवचसो भवन्तीति, नैव भगव इति ॥ ३ ॥

अन्वय और पदार्थ—(यथा) जैसे (असौ) यह (लोकः) लोक (न) नहीं (सम्पूर्यते) भरता है (इति) इसके तत्त्व को (वेत्थ) जानता है (भगवः) हे भगवन् (न) नहीं ऐसा उत्तर दिया (यथा) जैसे (पञ्चम्याम्) पाँचवीं (आहुतौ) आहुतिमें (आपः) जल (पुरुषवचसः) पुरुष नाम वाले (भवन्ति) होते हैं (इति) इस तत्त्वको (वेत्थ) जानता है (भगवः) हे भगवन् (नैव) नहीं (इति) ऐसा कहा ।३।

भावार्थ—जिस कारणसे यह पितृलोक बहुतसे मरनेवालोंसे भर नहीं जाता है उस कारणको हे श्वेतकेतु ! तू जानता है ? उसने उत्तर दिया, कि--हे भगवन् ! मैं नहीं जानता । प्रवाहण ने फिर बूझा, कि--जिस क्रमसे पाँचवीं आहुतिमें जलका पुरुष नाम होजाता है, उस क्रमको तू जानता है ? श्वेतकेतुने कहा, कि- हे भगवन् ! मैं नहीं जानता ॥ ३ ॥

अथानु किमनुशिष्टोऽवोचथा यो हीमानि न विद्यात्कथँसोऽनुशिष्टो ब्रुवीतेति स हाऽऽयस्तः पितुरर्द्धमेयाय तँहोवाचाननुशिष्य वाव किल मा भगवानब्रवीदनु त्वाऽशिषमिति ॥ ४ ॥

अन्वय और पदार्थ—(अथ ऐसा होते हुए (किम्) क्यों (अनुशिष्टः) शिक्षा पाया हुआ हूँ ऐसा (अवोचथाः) कहता

था (हि) क्योंकि—(यः) जो (इमानि) इन बातोंको (न) नहीं (विद्यात्) जाने (सः) वह (अनुशिष्टः) शिक्षा पाया हुआ हूँ (इति) ऐसा (कथम्) कैसे (ब्रुवीत) कहै (सः) वह (ह) स्पष्टरूपसे (आयस्तः) आयासको प्राप्त हुआ (पितुः) पिताके (अर्धम्) स्थानको (एयाय) चला आया (तम्) उन पिताको (ह) स्पष्टरूपसे (उवाच) बोला (भगवान्) आपने (किल) अवश्य (अननुशिष्य, वाव) उपदेश विना दिये ही (मा, अब्रवीत्) मुझसे कह दिया था (त्वा) तुझको (अनुशिषम्) उपदेश देदिया (इति) इस प्रकार ॥ ४ ॥

भावार्थ—राजा प्रवाहणने कहा, कि—जब तू इतना भी नहीं जानता तो तूने कैसे कहा था, कि—मैंने अपने पितासे शिक्षा पायी है ? जो इन बातोंको नहीं जानता वह कैसे कह सकता है, कि—मैंने कुछ शिक्षा पायी है ? राजाके ऐसा कहने पर श्वेतकेतुको बड़ा खेद हुआ और वह उसी समय लौट कर अपने पिताके स्थान पर आया और उनसे कहने लगा, कि—हे भगवन् ! आपने समावर्त्तनके समय यथोचित्त उपदेश विना दिये ही मुझसे कैसे कह दिया, कि—मैंने तुझे शिक्षा देदी ?

पञ्च मा राजन्यबन्धुः प्रश्नानप्राक्षीत्तेषां नैकञ्च नाशकं विवक्तुमिति स होवाच यथा मां त्वं तदै- तानवदो यथाऽहमेषां नैकञ्चन वेद यद्यहमिमा- नवेदिष्यं कथं ते नावक्ष्यमिति ॥ ५ ॥

अन्वय और पदार्थ—(राजन्यबन्धुः) क्षत्रियोंका भाई

(माम्) मेरे प्रति (पञ्च) पाँच (प्रश्नान्) प्रश्नोंको (अप्राक्षीत्) पूछता हुआ (तेषाम्) उनमेंसे (एकञ्चन) एकको भी (विवक्तुम्) विवेचन करनेको (न) नहीं (अशकम्) समर्थ हुआ (इति) इस प्रकार (सः) वह (ह) स्पष्टरूपसे (उवाच) बोला (यथा) जिस प्रकार (तद्) आते ही (त्वम्) तू (माम्) मेरे प्रति (एतान्) इन प्रश्नोंको (अवदः) कहता हुआ (अहम्) मैं (एषाम्) इनमेंसे (एकञ्चन) एकको भी (न) नहीं (वेद) जानता हूँ (यदि) जो (अहम्) मैं (इमान्) इनको (अवेदिष्यम्) जानता (ते) तेरे अर्थ (कथम्) कैसे (न) नहीं (अवक्ष्यम्) कहता (इति) इस प्रकार ।५।

भावार्थ—देखो, जो क्षत्रियोंका भाई है अर्थात् क्षत्रियकुलमें उत्पन्न होकर भी क्षत्रियोंकेसे काम नहीं करता है उस प्रवाहणने मुझसे पाँच प्रश्न किये थे, मैं उनमेंसे एकके ऊपर भी विचार करके उत्तर न देसका, यह सुन कर श्वेतकेतुके पिताने कहा, कि–हे पुत्र ! तूने आते ही मुझसे जो प्रश्न किये उनमेंसे एकको भी तेरी समान मैं भी नहीं जानता यदि मैं जानता होता तो समावर्त्तनके समय तुझे क्यों नहीं बताता अवश्य ही बताता ॥ ५ ॥

स ह गोतमो राज्ञोऽर्धमेयाय तस्मै ह प्राप्तायार्हाञ्चकार स ह प्रातः सभाग उदेयाय तꣳहोवाच मानुषस्य भगवन् गौतम वित्तस्य वरं वृणीथा इति स होवाच तवैव मानुषं वित्तं यामेव राजन्

कुमारस्यान्ते वाचमभाषथास्तामेव मे ब्रूहीति स कृच्छ्री बभूव ॥ ६ ॥

अन्वय और पदार्थ–(सः) वह (ह) प्रसिद्ध (गौतमः) गौतम गोत्रवाला (राज्ञः) राजाके (अर्धम्) स्थानको (एयाय) पहुँचता हुआ (तस्मै) तिस (प्राप्ताय) आये हुएके अर्थ (ह) प्रसिद्धरूपसे (अर्हांञ्चकार) पूजा करता हुआ (सः) वह (ह) प्रसिद्ध (प्रातः) प्रातःकालके समय (सभागे) सभामें पहुँचे हुए उसके समीप (उदेयाय) गया (भगवन् गौतम) हे भगवन् गौतम ! (मानुषस्य) मनुष्य संबन्धी (वित्तस्य) धनके (वरम्) वरको (वृणीथा) माँग (इति) ऐसा (तम्) उसके प्रति (ह) स्पष्टरूपसे (उवाच) बोला (सः) वह (ह) स्पष्टरूपसे (उवाच) बोला (राजन्) हे राजन् (मानुषम्) मनुष्य-सम्बन्धी (वित्तम्) धन (तव, एव) तेरा ही [अस्तु] हो (याम् एव) जिस (वाचम्) वाणीको (कुमारस्य) कुमारके (अन्ते) समीपमें (अभाषथाः) कहा था (ताम् एव) उसको ही (मे) मेरे अर्थ (ब्रूहि) कहो (इति) ऐसा कहने पर (सः) वह (ह) स्पष्टरूपसे (कृच्छ्री) दुःखी (बभूव) हुआ ।

भावार्थ—तदनन्तर वह प्रसिद्ध गोतम गोत्र वाला उद्दालक राजाके स्थानको गया, उसको अपने घर आया देख कर राजा ने उसकी पूजा की, दूसरोंसे पूजाको पाने वाला वह प्रसिद्ध उद्दालक दूसरे दिन प्रातःकालके समय सभामें बैठे हुए उस राजाके पास गया, तब राजाने कहा कि—हे भगवन् ! गोतम गोत्र वाले उद्दालक आपको मनुष्योंके कार्यसाधक ग्राम आदि

जिस किसी पदार्थकी भी इच्छा हो वही मुझसे माँग लीजिये यह सुनकर उद्दालकने कहा, कि--हे राजन् ! मनुष्योंके उपयोगी अपनी सम्पदाको आप अपने पास ही रहने दीजिये, आपने मेरे पुत्रसे जो पाँच प्रश्न किये थे, वही आप मुझसे कहिये, जब उद्दालकने ऐसा कहा तब तो राजा बड़े ऊहापोह में पड़गया, कि--यह विद्या ब्राह्मणोंको कैसे सिखाऊँ यह विचार कर यह बड़ा दुःखी होने लगा ॥ ६ ॥

तँ‌ह चिरं वसेत्याज्ञापयाञ्चकार तँ‌होवाच यथा मा त्वं गौतमावदो यथेयं न प्राक् त्वत्तः पुरा विद्या ब्राह्मणान् गच्छति तस्मादु सर्वेषु लोकेषु क्षत्रस्यैव प्रशासनमभूदिति तस्मै होवाच

अन्वय और पदार्थ—(चिरम्) चिरकाल तक (वस) वास करो (इति) ऐसा (तम्) उसको (ह) स्पष्ट (आज्ञापयाञ्चकार) आज्ञा देता हुआ (गौतम) हे गौतम (त्वम्) तू (माम्) मुझको (यथा) जैसा (आवदः) कहता हुआ (यथा) जैसे (इयम्) यह (विद्या) विद्या (त्वत्तः) तुझसे (प्राक्) पहले (ब्राह्मणान्) ब्राह्मणोंको (न) नहीं (गच्छति) गई (तस्मात्) तिस कारण (पुरा) पहले (सर्वेषु) सब (लोकेषु) लोकोंमें (उ) निश्चय (क्षत्रस्य, एव) क्षत्रिय का ही (प्रशासनम्) उपदेष्टापन (अभूत्) था (इति) ऐसा (तम् ह) उसको (उवाच) कहता हुआ [अथ] इसके अनन्तर (तस्मै, ह) तिसके अर्थ (उवाच) कहता हुआ ॥७॥

भावार्थ—परन्तु ब्राह्मणोंसे निषेध करना उचित नहीं है,

यह विचार कर राजाने उससे कहा, कि—तुम एक वर्ष पर्यन्त मेरे यहाँ ठहरो, हे गौतम ! तुमने जो मुझसे विद्याके लिये कहा है, इस विषयमें कुछ कहना है उसको सुनो, देखो—तुम से पहिले यह विद्या ब्राह्मणोंके पास नहीं गई, इस कारण पहिले सब लोगोंमें निश्चय इस विद्याके उपदेशका काम क्षत्रिय ही करते थे, यह बात राजा प्रवाहणने उद्दालकसे कही तब राजाने उसको विद्याका उपदेश दिया ॥ ७ ॥

॥ पञ्चमाध्यायस्य तृतीयः खण्डः समाप्तः ॥

असौ वाव लोको गौतमाग्निस्तस्यादित्य एव समिद्रश्मयो धूमोऽहरर्चिश्चन्द्रमा अङ्गारा नक्षत्राणि विस्फुलिंगाः ॥ १ ॥

अन्वय और पदार्थ—(गौतम) हे गौतम (असौ, वाव) यह प्रसिद्ध (लोकः) स्वर्गलोक (अग्निः) अग्नि है (आदित्यः, एव) आदित्य ही (तस्य) उसका (समित्) काष्ठ है (रश्मयः) किरणें (धूमः) धूम हैं (अहः) दिन (अर्चिः) लपट हैं (चन्द्रमाः) चन्द्रमा (अङ्गाराः) अंगार हैं (नक्षत्राणि) नक्षत्र (विस्फुलिंगाः) चिनगारियें हैं ॥ १ ॥

भावार्थ—हे गौतम ! यह प्रसिद्ध द्युलोक वा स्वर्ग लोक एक अग्नि है, आदित्य इस अग्निको दीप्त करने वाला काष्ठ है, किरणें इसका चारों ओर फैलनेवाला धुआँ है, दिन ही इसकी उदय होकर अस्त होजाने वाली लपट है, चन्द्रमा इस का दहकता हुआ अंगार है और नक्षत्र इसकी चिनगारियें हैं।

तस्मिन्नेतस्मिन्नग्नौ देवाः श्रद्धां जुह्वति तस्या आहुतेः सोमो राजा सम्भवति ॥ २ ॥

अन्वय और पदार्थ—(तस्मिन्) तिस (एतस्मिन्) इस (अग्नौ) अग्निमें (देवाः) देवता (श्रद्धाम्) जलको (जुह्वति) होमते हैं (तस्याः) उस (आहुतेः) आहुतिसे (सोमः, राजा) सोम राजा (सम्भवति) उत्पन्न होता है ॥ २ ॥

भावार्थ—इस अग्निमें देवता कहिये यजमानकी इन्द्रियें और उनके देवता श्रद्धा कहिये अग्निहोत्रकी आहुतियोंके परिणामकी अवस्था रूप सूक्ष्म जलका होम करते हैं, उस आहुति से स्वर्गलोकरूप अग्निमें होमे हुए जलोंके परिणामरूपसे राजा सोम (चन्द्रमा) होता है अर्थात् यजमान सूक्ष्म जलके साथ सम्बन्धवाला होकर स्वर्गलोकमें प्रवेश करता हुआ चन्द्रमाकी समान जलसे रचे हुए शरीरवाला होता है, यही चन्द्रमाका उत्पन्न होना है ॥ २ ॥

॥ पञ्चमाध्यायस्य चतुर्थः खण्डः समाप्तः ॥

पर्जन्यो वाव गौतमाग्निस्तस्य वायुरेव समिदभ्रं धूमो विद्युदर्चिरशनिरङ्गारा ह्रादुनयो विस्फुलिंगाः ॥ १ ॥

अन्वय और पदार्थ—(गौतम) हे गौतम ! (पर्जन्यः, वाव) प्रसिद्ध पर्जन्य ही (अग्निः) अग्नि है (वायुः, एव) वायु ही (तस्य) उसका (समित्) काष्ठ है (अभ्रम्) मेघ (धूमः) धूम है (विद्युत्) बिजली (अर्चिः) लपट है (अशनिः) वज्र (अंगाराः) अंगारे हैं (ह्रादुनयः) गर्जनायें (विस्फुलिंगाः) कण हैं ॥ १ ॥

भावार्थ-हे गौतम ! प्रसिद्ध पर्जन्य अर्थात् वर्षाकी सामग्री का अभिमानी देवता अग्नि है, वायु उसकी समिधा है, बादल धूम है, बिजली ज्वाला है, वज्र अंगार है और गर्जनायें अग्निकण हैं ॥ १ ॥

तस्मिन्नेतस्मिन् देवाः सोमꣳ राजानं जुह्वति तस्या आहुतेर्वर्षꣳ सम्भवति ॥ २ ॥

अन्वय और पदार्थ—(तस्मिन्) तिस (एतस्मिन्) इस (अग्नौ) अग्निमें (देवाः) देवता (सोमं राजानम्) सोम राजाको (जुह्वति) होमते हैं (तस्याः) उस (आहुतेः) आहुतिसे (वर्षम्) वर्षा (संभवति) होती है ॥ २ ॥

भावार्थ—ऐसे इस अग्निमें देवता सोम राजा कहिये चन्द्ररूपसे परिणामको प्राप्त हुए सूक्ष्मजलको होमते हैं, उस आहुति से वर्षा होती है ॥ २ ॥

॥ पञ्चमाध्यायस्य पञ्चमः खंडः समाप्तः ॥

पृथिवी वाव गौतमाग्निस्तस्याः सम्वत्सर एव समिदाकाशो धूमो रात्रिरर्चिर्दिशोऽङ्गारा अवान्तरदिशो विस्फुलिङ्गाः ॥ १ ॥

अन्वय और पदार्थ-(गौतम) हे गौतम (पृथिवी, वाव) पृथिवी ही (अग्निः) अग्नि है (सम्वत्सर, एव) सम्वत्सर ही (तस्याः) उसका (समित्) काठ है (आकाशः) आकाश (धूमः) धूम है (रात्रिः) रात्रि (अर्चिः) लपट है (दिशः) दिशायें (अंगाराः) अंगारे हैं (अवान्तरदिशः) अवान्तर दिशाओंके कोने (विस्फुलिङ्गाः) अग्निकण हैं ॥ १ ॥

भावार्थ—हे गौतम ! पृथिवी ही प्रसिद्ध अग्नि है, सम्वत्सर ही उसकी समिधा है आकाश धूम है, रात्रि लपट है, दिशायें अंगारे हैं और दिशाओंके ऐशान्य आदि कोने अग्निकण हैं ॥ १ ॥

तस्मिन्नेतस्मिन्नग्नौ देवा वर्षं जुह्वति तस्या आहुतेरन्नꣳ संभवति ॥ २ ॥

अन्वय और पदार्थ—(तस्मिन्) तिस (एतस्मिन्) इस (अग्नौ) अग्निमें (देवाः) देवता (वर्षम्) वर्षाको (जुह्वति) होमते हैं (तस्याः) उस (आहुतेः) आहुतिसे (अन्नम्) अन्न (सम्भवति) होता है ॥ २ ॥

भावार्थ—उस पृथिवी रूप अग्निमें देवता वर्षाकी आहुति छोड़ते हैं, इस आहुतिसे अन्न उत्पन्न होता है ॥ २ ॥

॥ पञ्चमाध्यायस्य षष्ठः खंडः समाप्तः ॥

पुरुषो वाव गौतमाग्निस्तस्य वागेव समित् प्राणो धूमो जिह्वार्चिश्चक्षुरङ्गाराः श्रोत्रं विस्फुलिंगाः १॥

अन्वय और पदार्थ—(गौतम) हे गौतम (पुरुषः, वाव) पुरुष ही (अग्निः) अग्नि है (वाक्, एव) वाणी ही (तस्य) उसका (समित्) काष्ठ है (प्राणः) प्राण (धूमः) धूम है (जिह्वा) जीभ (अर्चिः) ज्वाला है (चक्षुः) चक्षु (अंगाराः) अंगारे हैं (श्रोत्रम्) कान (विस्फुलिंगाः) अग्निकण हैं ।१।

भावार्थ—हे गौतम ! प्रसिद्ध पुरुष ही अग्नि है, वाणी ही उसकी समिधा है, प्राण धूम है, जीभ ज्वाला है, नेत्र अंगारे हैं और कान अग्निकण हैं ॥ १ ॥

तस्मिन्नेतस्मिन्नग्नौ देवा अन्नं जुह्वति, तस्या आहुते रेतः सम्भवति ॥ २ ॥

अन्वय और पदार्थ—(तस्मिन्) इस (अग्नौ) अग्निमें (देवाः) देवता (अन्नम्) अन्नको (जुह्वति) होमते हैं (तस्याः) तिसमें (आहुते) आहुतिसे (रेतः) वीर्य (संभवति) होता है ॥ २ ॥

भावार्थ—ऐसे इस अग्निमें देवता अन्नकी आहुति छोड़ते हैं इस आहुतिसे वीर्य उत्पन्न होता है ॥ २ ॥

॥ पञ्चमाध्यायस्य सप्तमः खंडः समाप्तः ॥

योषा वाव गौतमाग्निस्तस्या उपस्थ एव समिद्यदुपमन्त्रयते स धूमो योनिरर्चिर्यदन्तः करोति तेऽङ्गारा अभिनन्दा विस्फुलिंगाः ॥ १ ॥

अन्वय और पदार्थ—(गौतम) हे गौतम (योषा, वाव) स्त्रीजाति ही (अग्निः) अग्नि है (तस्याः) उसका (उपस्थ, एव) उपस्थ ही (समित्) काष्ठ है (यत्) जो (उपमन्त्रयते) रतिके उपयोगी भाषण करता है (सः) वह (धूमः) धूम है (योनिः) योनि (अर्चिः) ज्वाला है (यत्) जो (अन्तः) भीतर (करोति) करता है (ते) वे (अङ्गाराः) अङ्गारे हैं (अभिनन्दाः) आनन्द (विस्फुलिङ्गाः) अग्निकण हैं

भावार्थ—हे गौतम ! स्त्री अग्नि, उपस्थ समिधा, रतिसम्भाषण धूम, योनि शिखा, सङ्गम अंगार और आनन्द अग्निकण हैं ॥ १ ॥

तस्मिन्नेतस्मिन्नग्नौ देवा रेतो जुह्वति तस्या आहुतेर्गर्भः सम्भवति ॥ २ ॥

अन्वय और पदार्थ-(तस्मिन्) तिस (एतस्मिन्) इस (अग्नौ) अग्निमें (देवाः) देवता (रेतः) वीर्यको (जुह्वति) होमते हैं (तस्याः) उस (आहुतेः) आहुतिसे (गर्भः) गर्भ (संभवति) होता है ॥ २ ॥

भावार्थ—उस अग्निमें देवता वीर्यका होम करते हैं, और उस आहुतिके छोड़नेसे गर्भ होता है ॥ २ ॥

॥ पञ्चमाध्यायस्याष्टमः खंडः समाप्तः ॥

इति तु पञ्चम्यामाहुतावापः पुरुषवचसो भवन्तीति स उल्वावृतो गर्भो दश वा नव वा मासानन्तः शयित्वा यावद्वाऽथ जायते ॥ १ ॥

अन्वय और पदार्थ—(इति) इस प्रकार (पञ्चम्याम्) पाँचवीं (आहुतौ, तु) आहुतिमें तो (आपः) जल (पुरुष वचसः) पुरुष नामवाले (भवति) होजाते हैं (इति) इस प्रकार (सः) वह (गर्भः) गर्भ (उल्वावृतः) झिल्लीमें लिपटा हुआ (वा नव) या नौ (वा दश) या दश (मासान् यावत्) महीने पर्यन्त (अन्तः) भीतर (शयित्वा) सोकर (अथ) अनन्तर (जायते) उत्पन्न होता है ॥ १ ॥

भावार्थ—अब आवागमन वाले जीवकी अग्निमेंसे ही उत्पत्ति होती है और अन्तको वह अग्निमें ही लीन होजाता है, इस बातको दिखाते हुए कहते हैं, कि—इस प्रकार पाँचवीं आहुतिमें जलका पुरुष नाम होजाता है । इस प्रकार पाँचवें

प्रश्नका उत्तर कहकर अब पहले प्रश्नका उत्तर कहते हैं, कि-वह गर्भ झिल्लीसे लिपटा हुआ नौ या दश मास तक माता के पेटके भीतर शयन करता है और तहाँ सब अवयव पुष्ट होजाने पर जन्म लेता है ॥ १ ॥

स जातो यावदायुषं जीवति तं प्रेतं दिष्टमितोऽग्नय एव हरन्ति यत एवेतो यतः संभूतो भवति

अन्वय और पदार्थ—(सः) वह (जातः) उत्पन्न हुआ (यावत्-आयुषम्) आयुके परिमाण पर्यन्त (जीवति) जीता है (प्रेतम्) मरणको प्राप्त हुए (तम्) उसको (दिष्टम्) कर्मभोगके अनुसार (इतः) यहाँसे (अग्नये, एव) अग्निके लिये ही (हरन्ति) लेजाते हैं (यतः, एव) जिस अग्निसे ही (इतः) आया (यतः) जिस अग्निसे (संभूतः) उत्पन्न (भवति) होता है ॥ २ ॥

भावार्थ—वह जन्म लेकर कर्म भोगके अनुकूल जितना आयु प्राप्त हुआ होता है, उतने काल पर्यन्त जीवित रहता है और उस जीवनकालमें वह यदि वैदिक कर्म वा उपासनाका अधिकारी हुआ होता है तो मरनेके अनन्तर उस मृत जीवको कर्मसे निश्चय किये हुए परलोकमें भेजनेके लिये अपने निवास-स्थानसे ऋत्विज वा पुत्र अग्निमें और्ध्वदैहिक कर्म करनेके लिये ही लेजाते हैं। जल आदि आहुतियोंके क्रमसे अग्निमें से ही आया है और जिन पाँच अग्नियोंमेंसे उत्पन्न हुआ है उस ही अपनी कारणरूप अग्निको प्राप्त होता है ॥ २ ॥

॥ पञ्चमाध्यायस्य नवमः खण्डः समाप्तः ॥

तद्य इत्थं विदुर्ये चेमेऽरण्ये श्रद्धा तप इत्युपासते तेऽर्चिषमभिसंभवन्त्यर्चिषोऽहरह्न आपूर्यमाणपक्षमापूर्यमाणपक्षाद्यान्षडुदङ्ङेतिमासांस्तान्

अन्वय और पदार्थ-(तत्) उसमें (ये) जो (इत्थम्) इस प्रकार (विदुः) जानते हैं (च) और (ये) जो (इमे) ये (अरण्ये) वनमें (श्रद्धा) श्रद्धा (तपः) तप (इति) ऐसा (अभिसंभवन्ति) प्राप्त होते हैं (अर्चिषः) अर्चिसे (अहः) दिनको (अह्नः) दिनसे (आपूर्यमाणपक्षम्) शुक्लपक्षको (उपासते) उपासना करते हैं (ते) वे (अर्चिषम्) अर्चिको (आपूर्यमाणपक्षात्) शुक्लपक्षसे (यान्) जिन (षट्) छः (मासान्) महीनोंको (सूर्यः) सूर्य (उदङ्) उत्तर दिशाको (एति) प्राप्त होते हैं (तान्) उनको [एति] प्राप्त होता है

भावार्थ-उसमें जो गृहस्थ इस प्रकार पञ्चाग्निकी उपासनाको जानते हैं और जो ये नैष्ठिक ब्रह्मचारी वानप्रस्थ तथा त्रिदण्डी संन्यासी वनमें रहकर श्रद्धापूर्वक तपस्या करते हैं और जो सत्यभाषण करते हैं तथा हिरण्यगर्भकी उपासना करते हैं वे सूर्यकी किरणके अभिमानी अर्चिदेवताको प्राप्त होते हैं, अर्चिसे दिनको, दिनसे शुक्लपक्षको और शुक्लपक्षसे जिन छः महीनोंमें सूर्य उत्तरकी ओरको जाता है उन छः महीनोंको प्राप्त होते हैं ॥ १ ॥

मासेभ्यः सम्वत्सरꣳ सम्वत्सरादादित्यमादित्याच्चन्द्रमसं चन्द्रमसो विद्युतं तत्पुरुषोऽमानवः स

एनान् ब्रह्म गमयत्येष देवयानः पन्था इति ॥ २ ॥

अन्वय और पदार्थ—(मासेभ्यः) मासोंसे (सम्वत्सरम्) सम्वत्सरको (सम्वत्सरात्) सम्वत्सरसे (आदित्यम्) आदित्य को (आदित्यात्) आदित्यसे (चन्द्रमसम्) चन्द्रमाको (चन्द्रमसः) चन्द्रमासे (विद्युतम्) बिजलीको [एति] प्राप्त होता है (तत्) तहाँ (अमानवः) दिव्य (पुरुषः) पुरुष [आगच्छति] आता है (सः) वह (एनान्) इन उपासकोंको (ब्रह्म, गमयति) ब्रह्मके समीप लेजाता है (इति) इस प्रकार (एषः) यह (देवयानः) देवयान नामका (पन्थाः) मार्ग [अस्ति] है २

भावार्थ—उन मासोंसे सम्वत्सरको सम्वत्सरसे आदित्यको आदित्यसे चन्द्रमाको और चन्द्रमासे बिजलीको प्राप्त होता है वहाँ अमानव दिव्य पुरुष आता है और वह इन उपासकोंको ब्रह्मके समीप लेजाता है, इस प्रकार यह देवयान मार्ग है २

अथ य इमे ग्राम इष्टापूर्त्ते दत्तमित्युपासते ते धूममभिसंभवन्ति धूमाद्रात्रिꣳ रात्रेरपरपक्षमपरपक्षाद्यान् षड् दक्षिणैति मासाꣳस्तान्नैते सम्वत्सरमभिप्राप्नुवन्ति ॥ ३ ॥ मासेभ्यः पितृलोकं पितृलोकादाकाशमाकाशाच्चन्द्रमसमेष सोमो राजा तद्देवानामन्नं तं देवा भक्षयन्ति ॥ ४ ॥

अन्वय और पदार्थ—(अथ) और (ये) जो (इमे) ये (ग्रामे) ग्राम में (इष्टापूर्त्ते) इष्ट और पूर्त्त (दत्तम्) दान (इति) इनको (उपासते) उपासना करते हैं (ते) वे

(धूमम्) धूमको (अभिसम्भवन्ति) प्राप्त होते हैं (धूमात्) धूमसे (रात्रिम्) रात्रिको (रात्रेः) रात्रिसे (अपरपक्षम्) कृष्णपक्षको (अपरपक्षात्) कृष्णपक्षसे (यान्) जिन (षट्) छः महीने (सूर्यः) सूर्य (दक्षिणा) दक्षिण दिशाको (एति) प्राप्त होता है (तान्) उन (मासान्) महीनोंको [एति] प्राप्त होता है (एते) ये (सम्वत्सरम्) सम्वत्सरको (न) नहीं (अभिप्राप्नुवन्ति) प्राप्त होते हैं (मासेभ्यः) मासोंसे (पितृलोकम्) पितृलोकको (पितृलोकात्) पितृलोकसे (आकाशम्) आकाशको (आकाशात्) आकाशसे (चन्द्रमसम्) चन्द्रमाको [एति] प्राप्त होता है (एषः) यह (सोमः) सोम (राजा) राजा है (तत्) वह (देवानाम्) देवताओंका (अन्नम्) अन्न है (तम्) उसको (देवाः) देवता (भक्षयन्ति) खाते हैं ॥ ३ ॥ ४ ॥

भावार्थ—अब जो यह गृहस्थ ग्राममें रहकर इष्ट कहिये अग्निहोत्र आदि वैदिककर्म, पूर्त्त कहिये कूप, बावड़ी, तालाब और बाग आदि लगाना तथा दत्त कहिये वेदीसे बाहर दान देना इत्यादिका अनुष्ठान करते हैं, वे धूमके अभिमानी देवता को प्राप्त होते हैं, धूमसे रात्रिके अभिमानी देवताको रात्रिसे कृष्णपक्षके अभिमानी देवताको और कृष्णपक्षसे जिन छः महीनोंमें सूर्य दक्षिणकी ओर जाता है, उन महीनोंको प्राप्त होते हैं, ये कर्म करनेवाले संवत्सरको नहीं प्राप्त होते हैं किन्तु वे दक्षिणायन रूप छः महीनोंसे पितृलोकको पितृलोकसे आकाश आकाशको और आकाशसे चन्द्रमाको प्राप्त होते हैं, अन्तरिक्ष में जो सोम नामक ब्राह्मणोंका राजा दीखता है वही चन्द्रमा

है, वह देवताओंका अन्न कहिये भोगका साधन है, उसको देवता भक्षण करते हैं अर्थात् उसको अपनी सेवा कराना रूप उपभोगमें लाते हैं ॥ ३ ॥ ४ ॥

तस्मिन् यावत्संपातमुषित्वाऽथैतमेवाध्वानं पुनर्निवर्त्तन्ते यथैतमाकाशमाकाशाद्वायुं वायुर्भूत्वा धूमो भवति धूमो भूत्वाऽभ्रं भवति ॥ ५ ॥ अभ्रं भूत्वा मेघो भवति मेघो भूत्वा प्रवर्षति त इह ब्रीहियवा ओषधिवनस्पतयस्तिलमाषा इति जायन्तेऽतो वै खलु दुर्निष्प्रपतरं यो यो ह्यन्नमत्ति यो रेतः सिञ्चति तद् भूय एव भवति ।६।

अन्वय और पदार्थ-(तस्मिन्) उसमें (यावत्सम्पातम्) पतनकाल पर्यन्त (उषित्वा) रहकर (अथ) अनन्तर (यथेतम्) जैसे आये थे तैसे तैसे (एतम्, एव) इस ही (अध्वानम्) मार्गको (पुनः) फिर (निवर्त्तन्ते) लौटजाते हैं (आकाशम्) आकाशको (आकाशात्) आकाशसे (वायुम्) वायुको [यान्ति] प्राप्त होते हैं (वायुः, भूत्वा) वायु होकर (धूमः, भवति) धूम होता है (धूमः, भूत्वा) धूम होकर (अभ्रम्, भवति) बादल होता है (अभ्रम्) बादल (भूत्वा) होकर (मेघः भवति) मेघ होता है (मेघः, भूत्वा) मेघ होकर (प्रवर्षति) बरसता है (ते) वे (इह) यहाँ (ब्रीहियवाः) धान और जौ (ओषधिवनस्पतयः) औषध वनस्पति (तिलमाषाः) तिल और उड़द (जायन्ते) होते हैं (अतः) यहाँ

से (वै खलु) निश्चय दुर्निष्प्रपतरम्) निकलना बड़ा कठिन है (हि) क्योंकि (यः, यः) जो जो (अन्नम्) अन्नको (अत्ति) खाता है (यः) जो (रेतः) वीर्यको (सिञ्चति) सींचता है (तद्भूयः, एव) उसकी अधिकता वाला ही (भवति) होता है ॥ ५ ॥ ६ ॥

भावार्थ—उस चन्द्रमण्डलमें वहाँ फल देने वाले कर्मोंकी समाप्ति पर्यन्त निवास करके तदनन्तर जैसे आये थे उसी प्रकार वा दूसरी रीतिसे आगे कहे जाने वाले मार्गमेंको लौट आते हैं, चन्द्रलोकसे भौतिक आकाशको और आकाशसे वायु को प्राप्त होता है, वायु होकर धूम बन जाता है, धूम होकर बादल बनजाता है, बादलसे मेघ बनजाता है और मेघ होकर समुद्र आदिसे भिन्न देशोंमें बरसता है, तब वह जीव इस पृथिवीमें धान, जौ औषध, वनस्पति, तिल और उड़द आदि रूपसे उत्पन्न होते हैं अर्थात् धान आदिके साथ सम्बन्ध होता है, यहांसे निकलना निःसन्देह बड़ा ही कठिन होता है। जो वीर्यसिंचन करनेवाला पुरुष प्रसिद्ध जीवसंयुक्त अन्नको खाता है और जो ऋतुकालमें स्त्रीमें वीर्यसिञ्चन करता है, उसके ही शरीरकीसी आकृति वाला उत्पन्न होता है ॥ ५ ॥ ६ ॥

तद्य इह रमणीयचरणा अभ्याशो ह यत्ते रमणीयां योनिमापद्येरन् ब्राह्मणयोनिम्वा क्षत्रिययोनिम्वा वैश्ययोनिं वाऽथ य इह कपूयचरणा अभ्याशो ह यत्ते कपूयां योनिमापद्येरन् श्वयोनिं वा शूकरयोनिं वा चण्डालयोनिं वा ॥ ७ ॥

अन्वय और पदार्थ—(तत्) उनमें (ये) जो (इह) यहाँ (रमणीयचरणाः) सत्कर्मवाले हैं (ते) वे (अभ्याशः ह) शीघ्र ही (यत्) जो (रमणीयाम्, योनिम्) रमणीय योनिको (आपद्येरन्) प्राप्त होते हैं (ब्राह्मणयोनिम्, वा) या ब्राह्मणयोनिको (क्षत्रिययोनिम्, वा) या क्षत्रिययोनिको (वैश्ययोनिम्, वा) या वैश्ययोनिको [आपद्यन्ते] प्राप्त होते हैं (अथ) और (इह) यहाँ (ये) जो (कपूयचरणाः) अशुभकर्मवाले हैं (ते) वे (अभ्याशः, ह) शीघ्रही (कपूयाम्) अशुभ (योनिम्) योनिको (यत्) जो (आपद्येरन्) प्राप्त होते हैं (श्वयोनिम्, वा) या कूकरकी योनिको (शूकरयोनिम्, वा) या शूकरकी योनिको (चण्डालयोनिम्, वा या चाण्डालकी योनिको [आपद्यन्ते] प्राप्त होते हैं

भावार्थ—उन धान्य आदिके साथ संबन्धको प्राप्त होने वालोंमें जो शेष कर्मवाले जीव इस जगत्में शुभ आचरण करते हैं वे क्रूरता आदिसे रहित रमणीय योनिको पाते हैं, ब्राह्मणयोनिको या क्षत्रिययोनिको अथवा वैश्ययोनिको अपने कर्मके अनुसार पाते हैं यह फल उनको शीघ्र ही मिलजाता है और उनमें जो अशुभ कर्मवाले होते हैं वे धर्मसंबन्धसे रहित अशुभ योनिको पाते हैं, श्वानकी योनिको या शूकरकी योनिको अथवा चण्डालकी योनिको पाजाते हैं और यह फल उनको अपने कर्मके अनुसार शीघ्र प्राप्त होता है ॥ ७ ॥

अथैतयोः पथोर्न कतरेण च न तानीमानि क्षुद्राण्यसकृदावर्तीनि भूतानि भवन्ति जायस्व

म्रियस्वेत्येतत्तृतीयꣳ स्थानं तेनासौ लोको न सम्पूर्यते तस्माज्जुगुप्सेत, तदेष श्लोकः ॥ ८ ॥

अन्वय और पदार्थ-(अथ) और [ये] जो (एतयोः) इन दोनों (पथोः) मार्गोंमेंके (कतरेणाचन) किसी एकके द्वारा भी (न) नहीं [गच्छन्ति] जाते हैं ।(तानि) वे (इमानि) ये (असकृत्) वार २ (आवर्त्तीनि) आवागमन वाले (क्षुद्राणि) तुच्छ (भूतानि) जन्तु (भवन्ति) होते हैं (जायस्व) उत्पन्न हो (म्रियस्व) मर (एतत्) यह (तृतीयम्) तीसरा (स्थानम्) स्थान है (तेन) तिससे (असौ) यह (लोकः) लोक (न) नहीं (सम्पूर्यते) भरता है (तस्मात्) तिससे (जुगुप्सेत) दोषदृष्टि करे (तत्) उसमें (एषः) यह (श्लोकः) मन्त्र है ॥ ८ ॥

भावार्थ-अब जो इन दोनों मार्गोंमेंके किसी एक मार्गसे भी नहीं जाते हैं वे वार २ जन्म मरण पानेवाले तुच्छ जन्तु होते हैं, 'जन्म ले' और 'मृत्युको प्राप्त हो' इस प्रकार सर्वेश्वर उन जन्तुओंको प्रेरणा करता है, यह उन दोनों मार्गों से विलक्षण तीसरा मार्ग है, इन जीवोंसे यह चन्द्रलोक भरता नहीं है, संसारकी ऐसी कष्टमयी गतिको देखकर इससे बचने का विचार करे, यह मन्त्र पञ्चाग्नि विद्याकी स्तुतिमें है ॥८॥

स्तेनो हिरण्यस्य सुरां पिबꣳश्च गुरोस्तल्पमावसन् ब्रह्महा चैते पतन्ति चत्वारः पञ्चमश्चाऽऽचरꣳस्तैरिति ॥ ९ ॥

अन्वय और पदार्थ-(हिरण्यस्य) सोनेका (स्तेनः) चोर (सुराम्) मद्यको (पिबन्) पीनेवाला (च) और (गुरोः) गुरुकी (तल्पम्) शय्याको (आवसन्) भोगनेवाला (च) और (ब्रह्महा) ब्रह्महत्यारा (एते) ये (चत्वारः) चार (पतन्ति) पतित होते हैं (तैः) तिनके साथ (आचरन्) व्यवहार करता हुआ (पञ्चमः च) पाँचवाँ भी (इति) ऐसा ही होता है ॥ ९ ॥

भावार्थ—सोना चुराने वाला, मद्य पीनेवाला, गुरुकी स्त्री को भोगनेवाला और ब्राह्मणकी हत्या करने वाला, ये चार पतित होजाते हैं और पाँचवाँ इन चारोंके साथ व्यवहार करने वाला भी पतित होजाता है ॥ ९ ॥

अथ ह एतावानेवं पञ्चाग्नीन् वेद न सह तैरप्याचरन् पाप्मना लिप्यते शुद्धः पूतः पुण्यलोको भवति य एवं वेद य एवं वेद ॥ १० ॥

अन्वय और पदार्थ-(अथ) और (यः) जो (एतान्) इन (पञ्च, अग्नीन्) पाँच अग्नियोंको (एवम् ह) इस प्रकार ही (वेद) जानता (तैः, सह) उनके साथ (आचरन्, अपि) व्यवहार रखता हुआ भी (पाप्मनः) पापसे (न) नहीं (लिप्यते) लिप्त होता है (यः) जो (एवम्) ऐसा (वेद) जानता है (यः) जो (एवम्) ऐसा (वेद) जानता है (शुद्धः) शुद्ध (पूतः) पवित्र (पुण्यलोकः) पवित्र लोक वाला (भवति) होता है ॥ १० ॥

भावार्थ-और जो इन पाँच अग्नियोंको इस प्रकार जानता

है वह उन महापापियोंके साथ व्यवहार करता हुआ भी पाप से लिप्त नहीं होता है। जो पाँच प्रश्नोंसे पूछे हुए विषयको इस प्रकार जानता है वह शुद्ध पवित्र और प्राजापत्य आदि पवित्र लोकों वाला होता है ॥ १० ॥

पञ्चमाध्यायस्य दशमः खण्डः समाप्तः ॥

प्राचीनशाल औपमन्यवः सत्ययज्ञः पौलुषिरिन्द्रद्युम्नो भाल्लवेयो जनः शार्कराक्ष्यो बुडिल आश्वतराश्विस्ते हैते महाशाला महाश्रोत्रियाः समेत्य मीमाᳬंसां चक्रुः को न आत्मा किं ब्रह्मेति

अन्वय और पदार्थ—(औपमन्यवः) उपमन्युका पुत्र (प्राचीनशालः) प्राचीनशाल (पौलुषिः) पुलुषका पुत्र (सत्ययज्ञः) सत्ययज्ञ (भाल्लवेयः) भल्लविका पौत्र (इन्द्रद्युम्नः) इन्द्रद्युम्न (शार्कराक्ष्यः) शर्कराक्षका पुत्र (जनः) जन (आश्वतराश्विः) अश्वतराश्वका पुत्र (बुडिलः) बुडिल (ते) वे (एते, ह) ये ही (महाशालाः) बड़े गृहस्थ (महाश्रोत्रियाः) बड़े श्रोत्रिय (समेत्य) इकट्ठे होकर (नः) हमारा (आत्मा) आत्मा (कः) कौन है (ब्रह्म) ब्रह्म (किम्) क्या है (इति) ऐसा (मीमांसाञ्चक्रुः) विचार करते हुए १

भावार्थ—उपमन्युका पुत्र प्राचीनशाल, पुलुषका पुत्र सत्ययज्ञ, भल्लविका पौत्र इन्द्रद्युम्न शर्कराक्षका पुत्र जन और अश्वतराश्वका पुत्र बुडिल इन महागृहस्थ और श्रवण अध्ययन तथा सदाचारवाले महाश्रोत्रियोंने इकट्ठे होकर विचार किया, कि—हमारा आत्मा कौन है ? ॥ १ ॥

ते ह सम्पादयाञ्चक्रुरुद्दालको वै भगवन्तोऽयमारुणिः संप्रतीममात्मानं वैश्वानरमध्येति तथ्ँ हन्ताभ्यागच्छामेति तथ्ँ हाभ्याजग्मुः ॥ २ ॥

अन्वय और पदार्थ—(ते) वे (भगवन्तः) पूज्य (ह) स्पष्ट (सम्पादयाञ्चक्रुः) सम्पादन करते हुए (अयम्) यह (आरुणिः) अरुणका पुत्र (उद्दालकः, वै) प्रसिद्ध उद्दालक (सम्प्रति) इस समय (इमम्) इस (आत्मानम्) आत्मारूप (वैश्वानरम्) वैश्वानरको (अध्येति) जानता है (हन्त) अनुमति होय तो (तम्, अभ्यागच्छाम) उसके समीप जायँ (इति) ऐसा (निश्चित्य) निश्चय करके (तम् ह, अभ्याजग्मुः) उसके ही समीप गये ॥ २ ॥

भावार्थ—वे पूज्य ऋषि विचार करने लगे, परन्तु कुछ निश्चय न कर सके तब उन्होंने एक दूसरे उपदेष्टाका निश्चय किया और परस्पर कहने लगे, कि—यह अरुणका पुत्र उद्दालक इस समय आत्मारूप वैश्वानरको सम्यक् प्रकारसे जानता है, यदि सम्मति होय तो हम उनके पास जायँ, इस प्रकार निश्चय करके वे उद्दालकके पास गये ॥ २ ॥

स ह सम्पादयाञ्चकार प्रक्ष्यन्ति मामिमे महाशाला महाश्रोत्रियास्तेभ्यो न सर्वमिव प्रतिपत्स्ये हन्ताहमन्यमभ्यनुशासानीति ॥ ३ ॥

अन्वय और पदार्थ—(सः, ह) वह (सम्पादयाञ्चकार) निश्चय करता हुआ (इमे) ये (महाशालाः) महागृहस्थ (महाश्रोत्रियाः) बड़े वेदपाठी (माम्, प्रक्ष्यन्ति) मुझसे प्रश्न करेंगे

(तेभ्यः) तिनको (सर्वमिव) पूर्णरूपसे (न) नहीं (प्रतिपत्स्ये) उपदेश देसकूँगा (हन्त) इससे (अहम्) मैं (अन्यम्) दूसरेको (अभ्यनुशासानि) बतादूँ (इति) इस प्रकार ।३।

भावार्थ—उद्दालक उनको देखते ही उनके आनेका प्रयोजन जान कर विचारने लगा, कि—ये महागृहस्थ महाश्रोत्रिय मुझसे पूछेंगे और मैं इनको पूरा २ उत्तर न देसकूँगा, इस लिये मैं दूसरेको बतादूँ ॥ ३ ॥

तान् होवाचाश्वपतिर्वै भगवन्तोऽयं कैकेयः सम्प्रतीममात्मानं वैश्वानरमध्येति तꣳहन्ताभ्यागच्छामेति तꣳ हाभ्याजग्मुः ॥ ४ ॥

अन्वय और पदार्थ-(तान्) उनको (ह) स्पष्ट (उवाच) बोला (भगवन्तः) हे भगवन् (अयम्) यह (कैकेयः) केकय का पुत्र (वै) प्रसिद्ध (अश्वपतिः) अश्वपति (सम्प्रति) इस समय (इमम्) इस (आत्मानम्) आत्मरूप (वैश्वानरम्) वैश्वानरको (अध्येति) स्मरण करता है (हन्त) अब (तम्, अभ्यागच्छाम) उनके पास चलें (इति) ऐसा विचार कर (तम्, ह, अभ्याजग्मुः) उनके ही पास गये ॥ ४ ॥

भावार्थ—ऐसा विचार कर उद्दालक उनसे कहने लगा, कि—हे पूज्य मुनियों ! आप अवश्य ही मेरे पास कोई प्रश्न करनेको आये होंगे, परन्तु आज कल केकयका पुत्र प्रसिद्ध अश्वपति आत्मरूप वैश्वानरको भली प्रकार जानता है, यदि सम्मति हो तो हम सब उसके पास चलें, ऐसा विचार करके वे सब इकट्ठे होकर उस अश्वपतिके पास गये ॥ ४ ॥

तेभ्यो ह प्राप्तेभ्यः पृथगर्हाणि कारयाञ्चकार स ह प्रातः सञ्जिहान उवाच, न मे स्तेनो जनपदे न कदर्यो न मद्यपो नानाहिताग्निर्नाविद्वान्न स्वैरी न स्वैरिणी कुतो यक्ष्यमाणो वै भवन्तोऽहमस्मि यावदेकैकस्मा ऋत्विजे धनं दास्यामि तावद्भगवद्भ्यो दास्यामि वसन्तु ते भगवन्त इति ॥५॥

अन्वय और पदार्थ—(सः, ह) वह प्रसिद्ध राजा (प्राप्तेभ्यः) आये हुए (तेभ्यः, ह) उन प्रसिद्ध पुरुषोंके अर्थ (पृथक्) अलग २ (अर्हाणि) पूजा (कारयाञ्चकार) करवाता हुआ (प्रातः) प्रातःकालके समय (सञ्जिहानः) सन्देहमें हुआ (उवाच) बोला (मे) मेरे (जनपदे) देशमें (स्तेनः) चोर (न) नहीं है (कदर्यः) कृपण (न) नहीं है (मद्यपः) शराबी (न) नहीं है (अनाहिताग्निः) अग्निहोत्र न करने वाला (न) नहीं है (अविद्वान्) अपढ़ (न) नहीं है (स्वैरी) व्यभिचारी पुरुष (न) नहीं है (स्वैरिणी) व्यभिचारिणी (कुतः) कहाँसे होगी (भगवन्तः) हे भगवन् (वै) निश्चय (अहम्) मैं (यक्ष्यमाणः) यज्ञका अनुष्ठान करनेमें लगा हुआ (अस्मि) हूँ (एकैकस्मै) एक एक (ऋत्विजे) ऋत्विजके अर्थ (यावत्) जितना (धनम्) धन (दास्यामि) दूँगा (तावत्) उतना ही (भगवद्भ्यः) आपको (दास्यामि) दूँगा (इति) इस प्रकार (भगवन्तः) आप (मे) मेरे यहाँ (वसन्तु)

भावार्थ—राजा अश्वपतिने उन आये हुए अतिथियोंकी पुरोहित और दासोंसे अलग २ पूजा करवायी और वह राजा जब दूसरे दिन प्रातःकालके समय सोकर उठा तब उनके पास जाकर कहा, कि—मुझसे कुछ धन लीजिये, उन्होंने राजाके धनको नहीं लिया तब राजाने समझा, कि—वह मुझे दुराचारी समझ कर मेरा धन नहीं लेते हैं और ऐसा विचार कर कहने लगा, कि—मेरे देशमें चोर नहीं है जो दान न करता हो ऐसा कोई धनी नहीं है, ब्राह्मणोंमें कोई शराबी नहीं है, गौओं वाला होकर अग्निहोत्र न करने वाला कोई द्विज नहीं है, अपने अपने अधिकारके अनुसार विद्या न पढ़ा हो ऐसा भी कोई नहीं है तथा कोई व्यभिचारी पुरुष नहीं है, फिर व्यभिचारिणी स्त्री तो होगी ही कहाँसे ?। कहीं ऐसा न हो, कि—ये थोड़ा होनेके कारण धन न लेते हों, ऐसा विचार कर कहने लगा, कि—हे भगवन्! उसमें आज कल मैं यज्ञका अनुष्ठान करनेमें लग रहा हूँ, उसमें एक २ ऋत्विजको जितना २ धन दूँगा, उतना ही आपमेंसे भी हर एकको दूँगा, हे भगवन्! ठहरिये और मेरे यज्ञको देखिये ॥ ५ ॥

ते होचुर्येन हैवार्थेन पुरुषश्चरेत्तꣳ ह वै वदेदात्मानमेवेमं वैश्वानरꣳ सम्प्रत्यध्येषि तमेव नो ब्रूहीति

अन्वय और पदार्थ—(ते) वे (ह) स्पष्ट (ऊचुः) बोले (येन) जिस (ह) प्रसिद्ध (अर्थेन) प्रयोजनसे (पुरुषः) पुरुष (चरेत्) जाय (इमम् ह) उसको ही (वै) निश्चय (वदेत्) कहे (इमम्) इस (आत्मानम्) आत्म-

स्वरूप (वैश्वानरम्, एव) वैश्वानरको ही (सम्प्रति) इस समय (अध्येषि) सम्यक् प्रकारसे जानते हो (तम्, एव) उसको ही (नः) हमारे अर्थ (ब्रूहि) कहिये (इति) यह प्रार्थना है ॥ ६ ॥

भावार्थ—उन्होंने कहा, कि—हे राजन्! पुरुष जिस प्रयोजनके लिये किसीके समीप जाय उस प्रयोजनको ही कहे, यह शिष्ट पुरुषोंका नियम है, हमारी इच्छा वैश्वानरका ज्ञान प्राप्त करनेकी है और आप उस वैश्वानरको भले प्रकार जानते हैं, इस लिये आप हमें उस वैश्वानरका ही स्वरूप सुनाइये ॥ ६ ॥

तान् होवाच प्रातर्वः प्रतिवक्ताऽस्मीति ते ह समित्पाणयः पूर्वाह्णे प्रतिचक्रमिरे तान् हानुपनीयैवैतदुवाच ॥ ७ ॥

अन्वय और पदार्थ—(तान) उनको (ह) स्पष्ट (उवाच) बोला (वः) तुम्हारे अर्थ (प्रातः) प्रातःकाल (प्रतिवक्तास्मि) प्रत्युत्तर दूँगा (इति) यह सुन कर (ते) वे (ह) प्रसिद्ध पुरुष (पूर्वाह्णे) दुपहरसे पहले (समित्पाणयः) हाथमें समिधा लिये हुए (प्रतिचक्रमिरे) तहाँ गये (तान्) उनके प्रति (अनुपनीय—एव) चरणोंमें प्रणाम न कराकर ही (एतत्) यह (उवाच) कहा ॥ ७ ॥

भावार्थ—मैं तुम्हें कल प्रातःकालके समय इसका उत्तर दूँगा ऐसा राजाके कहने पर वे अपने अभिमानको त्याग कर हाथमें समिधा लिये हुए दूसरे दिन दो पहरसे पहले विनयके साथ

राजाके पास गये, राजाने उनसे अपने चरणोंमें प्रणाम नहीं करवाया और उनसे वैश्वानरका तत्त्व कहने लगा ॥ ७ ॥

॥ पञ्चमाध्यायस्यैकादशः खण्डः समाप्तः ॥

औपमन्यव कन्त्वमात्मानमुपास्स इति दिवमेव भगवो राजन्निति होवाचैष वै सुतेजा आत्मा वैश्वानरो यं त्वमात्मानमुपास्से तस्मात्तव सुतं प्रसुतमासुतं कुले दृश्यते ॥ १ ॥

अन्वय और पदार्थ-(औपमन्यव) हे उपमन्युकुमार (त्वम्) तू (कम्) किस (आत्मानम्) आत्माको (उपास्से) उपासना करता है (इति) ऐसा राजाने पूछा (भगवः, राजन्) हे मान्य राजन् (दिवम्, एव) स्वर्गलोकको ही (इति) ऐसा कहा (उवाच) बोला (वै) निश्चय (त्वम्) तू (यम्) जिस (आत्मानम्) आत्माको (उपास्से) उपासना करता है (एषः) यह (ह) प्रसिद्ध (सुतेजाः) उत्तम तेजवाला (वैश्वानरः) वैश्वानररूप (आत्मा) आत्मा है (तस्मात्) तिससे (तव) तेरे (कुले) कुलमें (सुतम्) सुत (प्रसुतम्) प्रसुत (आसुतम्) आसुत (दृश्यते) दीखता है ॥ १ ॥

भावार्थ-राजाने कहा, कि-हे उपमन्युकुमार ! आप किस आत्माकी उपासना करते हैं ?, इस पर प्राचीनशालने कहा, कि-पूजनीय राजन् ! मैं स्वर्गलोकरूप वैश्वानरकी उपासना करता हूँ । राजाने कहा, कि-आप जिस द्युलोक नामक वैश्वानरकी उपासना करते हैं यह तो उस प्रसिद्ध परमतेजस्वी आत्माका एक अंश है, इसकी उपासनाके कारणसे ही आपके

कुलमें सुत कहिये एक दिनके यज्ञमें निकाला हुआ सोमलता का रस, प्रसुत कहिये दोसे बारह दिन पर्यन्तके यज्ञमें निकाला हुआ सोमलताका रस और आसुत कहिये तेरहसे सौ वर्ष पर्यन्तके यज्ञमें निकाला हुआ सोमलताका रस देखनेमें आता है, तात्पर्य यह है, कि—तुम्हारे कुलमें बड़े कर्मनिष्ठ देखनेमें आते हैं अथवा इस उपासनाके कारणसे तुम्हारे कुलमें सुत कहिये पुत्र, प्रसुत कहिये पौत्र और आसुत कहिये प्रपौत्र देखनेमें आते हैं

अत्स्यन्नं पश्यसि प्रियमत्त्यन्नं पश्यति प्रियं भवत्यस्य ब्रह्मवर्चसं कुले य एतमेवमात्मानं वैश्वानरमुपास्ते मूर्धा त्वेष आत्मन इति होवाच मूर्धा ते व्यपतिष्यद्यन्मां नाऽऽगमिष्य इति ॥ २ ॥

अन्वय और पदार्थ—(अन्नम्) अन्नको (अत्सि) खाता है (प्रियम्) प्यारेको (पश्यसि) देखता है (यः) जो (एवम्) इस प्रकार (एतम्) इस (आत्मानम्) आत्मरूप (वैश्वानरम्) वैश्वानरको (उपास्ते) उपासना करता है (अन्नम्) अन्नको (अत्ति) खाता है (प्रियम्) प्रियको (पश्यति) देखता है (अस्य) इसके (कुले) कुलमें (ब्रह्म-वर्चसम्) ब्रह्मतेज (भवति) होता है (तु) परन्तु (आत्मनः) आत्माका (एषः) यह (मूर्धा) मस्तक है (इति) ऐसा (ह) स्पष्ट (उवाच) बोला (यत्) जो (माम्) मेरे प्रति (न) नहीं (आगमिष्यः) आता (इति) इस कारणसे (ते) तेरा (मूर्धा) मस्तक (व्यपतिष्यत्) गिर पड़ता ॥ २ ॥

भावार्थ—इस कारण ही तुम प्रदीप्त अग्निवाले होकर अन्न

का भोजन करते हो और पुत्र पौत्र आदिरूप प्रियजनोंको देखते हो। जो इस प्रकार इस आत्मारूप वैश्वानरकी उपासना करता है वह प्रदीप्त अग्निवाला होकर अन्नका भोजन करता है और पुत्र पौत्रादि प्रियजनोंका मुख देखता है तथा इसके कुलमें कर्मेद्दीपन रूप ब्रह्मतेजकी प्राप्ति होती है, परन्तु यह स्वर्गलोक नामक वैश्वानर आत्माका शिर अर्थात् एक देश है, यदि आप मेरे पास न आकर समस्त बुद्धिसे इस एक देशकी उपासना में ही तत्पर रहते तो इस उपासनासे तुम्हारा मस्तक गिर पड़ता २

॥ पञ्चमाध्यायस्य द्वादशः खंडः समाप्तः ॥

अथ होवाच सत्ययज्ञं पौलुषिं प्राचीनयोग्य कं त्वमात्मानमुपास्स इत्यादित्यमेव भगवो राजन्निति होवाचैष वै विश्वरूप आत्मा वैश्वानरो यं त्वमात्मानमुपास्से तस्मात्तव बहु विश्वरूपं कुले दृश्यते ॥ १ ॥

अन्वय और पदार्थ-(अथ) अनन्तर (पौलुषिम्) पुलुष के पुत्र (सत्ययज्ञम्) सत्ययज्ञको (प्राचीनयोग्य) हे प्राचीनयोग्य ! (त्वम्) तू (कम्) किस (आत्मानम्) आत्माको (उपास्से) उपासना करता है (इति) ऐसा (ह) स्पष्ट (उवाच) बोला (भगवः, राजन्) हे मान्य राजन् (आदित्यम्, एव) आदित्यका ही (इति) ऐसा (ह) स्पष्ट (उवाच) बोला (यम्) जिस (आत्मानम्) आत्माको (त्वम्) तू (उपास्से) उपासना करता है (एषः) यह (वै) निश्चय (विश्वरूपः) विश्वरूप (आत्मा) आत्मा (वैश्वानरः) वैश्वा-

नर है (तस्मात्) तिससे (तव) तेरे (कुले) कुलमें (बहु) बहुतसा (विश्वरूपम्) सर्वरूप (दृश्यते) दीखता है ॥१॥

भावार्थ—तदनन्तर राजाने पुलुषके पुत्र सत्ययज्ञसे कहा, कि-हे प्राचीनयोग्य ! तुम किस आत्माकी उपासना करते हो। उन्होंने उत्तर दिया, कि-हे माननीय राजन् ! मैं आदित्य नामक आत्माकी उपासना करता हूँ। इस पर राजाने कहा, कि-आप जिस आत्माकी उपासना करते हैं वह प्रसिद्ध विश्वरूप आत्मा वैश्वानर है। इस सर्वरूप आदित्यकी उपासनासे ही तुम्हारे कुलमें बहुतसे लोक परलोकके साधनरूप पदार्थ दीख रहे हैं ॥ १ ॥

प्रवृत्तोऽश्वतरीरथो दासीनिष्कोऽत्स्यन्नं पश्यसि प्रियमत्त्यन्नं पश्यति प्रियं भवत्यस्य ब्रह्मवर्चसं कुले य एतमेवमात्मानं वैश्वानरमुपास्ते चक्षुष्ट्वेतदात्मन इति होवाचान्धोऽभविष्यो यन्मां नाऽऽगमिष्य इति ॥ २ ॥

अन्वय और पदार्थ—(अश्वतरीरथः) खच्चरियोंसे जुता रथ (दासीनिष्कः) दासी तथा मालाओंका समूह (प्रवृत्तः) प्राप्त है (अन्नम्) अन्नको (अत्सि) खाते हो (प्रियम्) प्यारे परिवारको (पश्यसि) देखते हो (यः) जो (एवम्) इस (आत्मानम्) आत्मारूप (वैश्वानरम्) वैश्वानरको (एवम्) इस प्रकार (उपास्ते) उपासना करता है (अन्नम्) अन्नको (अत्ति) खाता है (प्रियम्) प्रियको (पश्यति)

देखता है (अस्य) इसके (कुले) कुलमें (ब्रह्मवर्चसम्) ब्रह्मतेज (भवति) होता है (तु) परन्तु (आत्मनः) आत्मा का (एतत्) यह (चक्षुः) चक्षु है (इति) ऐसा (ह) स्पष्ट (उवाच) बोला (यत्) जो (माम्) मेरे समीप (न) नहीं (आगमिष्यः) आता (इति) इससे (अंधः) अन्धा (अभविष्यः) होजाता ॥ २ ॥

भावार्थ—इस कारणसे ही आपके पास खच्चरियोंसे जुता हुआ रथ और दासियों सहित हार तुम्हें प्राप्त है तुम प्रदीप्ताग्नि होकर अन्न खाते हो और प्रिय परिवारको देख रहे हो। जो इस आत्मरूप वैश्वानरकी इस प्रकार उपासना करता है वह प्रदीप्ताग्नि होकर अन्नका भक्षण करता है, प्रिय परिवारका मुख देखा करता है, इसके कुलमें ब्रह्मतेज होता है, परन्तु यह आत्मरूप वैश्वानरका चक्षु है, पूर्ण वैश्वानर नहीं है। यदि तुम मेरे पास नहीं आये होते तो इस उपासनासे तुम अंधे होजाते २

॥ पञ्चमाध्यायस्य त्रयोदशः खण्डः समाप्तः ॥

अथ होवाचेन्द्रद्युम्नं भाल्लवेयं वैयाघ्रपद्य कं त्वमात्मानमुपास्स इति वायुमेव भगवो राजन्निति होवाचैष वै पृथग्वर्त्माऽऽत्मा वैश्वानरो यं त्वमात्मानमुपास्से तस्मात्त्वां पृथग्बलय आयन्ति पृथग्रथश्रेणयोऽनुयन्ति ॥ १ ॥

अन्वय और पदार्थ—(अथ) अनन्तर (भाल्लवेयम्) भल्लविके पौत्र (इन्द्रद्युम्नम्) इन्द्रद्युम्नके प्रति (वैयाघ्रपद्य) हे वैयाघ्रपद्य (त्वम्) तू (कम्) किस (आत्मानम्) आत्मा

को (उपास्से) उपासना करता है (इति) ऐसा (ह) स्पष्ट (उवाच) बोला (भगवः, राजन्) हे मान्य राजन् (वायुम्, एव) वायुको ही (इति) ऐसा (ह) स्पष्ट (उवाच) बोला (त्वम्) तू (यम्) जिस (आत्मानम्) आत्माको (उपास्से) उपासना करता है (एषः) यह (वै) निश्चय (पृथग्वर्त्मा) भिन्न २ मार्गों वाला (आत्मा) आत्मा (वैश्वानरः) वैश्वानर है (तस्मात्) तिससे (त्वाम्) तुम्हारे प्रति (पृथग्बलयः) भिन्न २ बलि (आयन्ति) आते हैं (पृथग्रथश्रेणयः) भिन्न २ रथोंकी पंक्तियें (अनुयन्ति) पीछे २ चलती हैं १

भावार्थ—फिर राजाने भल्लविके पौत्र इन्द्रद्युम्नसे कहा, कि--हे वैयाघ्रपद्य ! तुम किस आत्माकी उपासना करते हो। उसने कहा, हे मान्य राजन् ! मैं वायुकी उपासना करता हूँ। राजाने कहा तुम जिस आत्माकी उपासना करते हो वह अनेकों मार्ग वाला आत्मा वैश्वानर है, इस उपासनाके करनेसे ही तुम्हें सब दिशाओंसे वस्त्र अन्न आदिकी भेटें मिलती हैं और अनेकों रथोंकी पंक्तियें तुम्हारे पीछे चलती हैं ॥ १ ॥

अत्स्यन्नं पश्यसि प्रियमत्त्यन्नं पश्यति प्रियं भवत्यस्य ब्रह्मवर्चसं कुले य एतमेवमात्मानं वैश्वानरमुपास्ते प्राणस्त्वेष आत्मन इति होवाच प्राणस्त उदक्रमिष्यद्यन्मां नाऽऽगमिष्य इति ॥ २ ॥

अन्वय और पदार्थ--(अन्नम्) अन्नको (अत्सि) खाता है (प्रियम्) प्रियको (पश्यसि) देखता है (यः) जो (एवम्) इस (आत्मानम्) आत्मारूप (वैश्वानरम्) वैश्वा-

नरको (एवम्) इस प्रकार (उपास्ते) उपासना करता है (अन्नम्) अन्नको (अत्ति) खाता है (प्रियम्) प्रियको (पश्यति) देखता है (अस्य) इसके (कुले) कुलमें (ब्रह्मवर्चसम्) ब्रह्मतेज (भवति) होता है (तु) परन्तु (एषः) वह (आत्मनः) आत्माका (प्राणः) प्राण है (इति) ऐसा (ह) स्पष्ट (उवाच) बोला (यत्) जो (माम्) मेरे पास (न) नहीं (आगमिष्यः) आता (ते) तेरा (प्राणः) प्राण (उदक्रमिष्यत्) निकल जाता (इति) ऐसे ॥ २ ॥

भावार्थ--इस कारण ही आप भोग भोगते हैं और पुत्र पौत्र आदि प्रियवर्गको देखते हैं । जो कोई इस आत्मरूप वैश्वानर की इस प्रकार उपासना करता है वह भोगोंको भोगता है और प्रियवर्गको देखता है तथा इसके कुलमें ब्रह्मतेज होता है परन्तु यह आत्मरूप वैश्वानरका प्राण है, समस्त वैश्वानर नहीं है उसने ऐसा कहा यदि तुम मेरे पास नहीं आये होते तो तुम्हारा प्राण निकल जाता ॥ २ ॥

॥ पञ्चमाध्यायस्य चतुर्दशः खण्डः समाप्तः ॥

अथ होवाच जनꣳ शार्कराक्ष्यं कन्त्वमात्मानमुपास्स इत्याकाशमेव भगवो राजन्निति होवाचैष वै बहुल आत्मा वैश्वानरो यं त्वमात्मानमुपास्से तस्मात्त्वं बहुलोऽसि प्रजया च धनेन च १

अन्वय और पदार्थ -(अथ) अनन्तर (शार्कराक्ष्यम्) शर्कराक्षके पुत्र (जनम्) जनको (त्वम्) तू (कम्) किस (आत्मानम्) आत्माको (उपास्से) उपासना करता है (इति)

ऐसा (ह) स्पष्ट (उवाच) बोला (भगवः, राजन्) हे माननीय राजन् (आकाशम्, एव) आकाशको ही (इति) ऐसा (ह) स्पष्ट (उवाच) बोला (यम्) जिस (आत्मानम्) आत्माको (त्वम्) तू (उपास्से) उपासना करता है (एषः) यह (वै) प्रसिद्ध (बहुलः) भरपूर (आत्मा) आत्मा (वैश्वानरः) वैश्वानर है (तस्मात्) तिससे (त्वम्) तू (प्रजया) सन्तानके द्वारा (च) और (धनेन च) धनके द्वारा भी (बहुलः, असि) भरपूर है ॥ १ ॥

भावार्थ—तदनन्तर उस राजाने शर्कराक्षके पुत्र जनसे कहा, कि—तुम किस आत्माकी उपासना करते हो उसने उत्तर दिया, कि— हे मान्य राजन् ! मैं तो आकाशकी ही उपासना करता हूँ । राजाने कहा, कि—तुम जिस आत्माकी उपासना करते हो यह बहुल नामका वैश्वानरका अंश है, अतएव इसकी उपासनासे तुम पुत्र पौत्र आदि प्रजा और सुवर्ण आदि धनसे भरपूर रहते हो ॥ १ ॥

अत्स्यन्नं पश्यसि प्रियमत्त्यन्नं पश्यति प्रियं भवत्यस्य ब्रह्मवर्चसं कुले य एतमेवमात्मानं वैश्वानरमुपास्ते सन्देहस्त्वेष आत्मन इति होवाच सन्देहस्ते व्यशीर्यद्यन्मां नागमिष्य इति ॥ २ ॥

अन्वय और पदार्थ—(अन्नम्) अन्नको (अत्सि) खाता है (प्रियम्) प्रियको (पश्यसि) देखता है (यः) जो (एतम्) इस (आत्मानम्) आत्मरूप (वैश्वानरम्) वैश्वानरको

(उपास्ते) उपासना करता है (अन्नम्) अन्नको (अत्ति) खाता है (प्रियम्) प्रियको (पश्यति) देखता है (अस्य) इसके (कुले) कुलमें (ब्रह्मवर्चसम्) ब्रह्मतेज (भवति) होता है (तु) परन्तु (एषः) यह (आत्मनः) आत्माका (सन्देहः) उदर है (इति) ऐसा (ह) स्पष्ट (उवाच) बोला (यत्) जो (माम्) मेरे पास (न) नहीं (आगमिष्यः) आता (ते) तेरा (सन्देहः) उदर (व्यशीर्यत्) टूटजाता ॥ २ ॥

भावार्थ–इस कारण ही तुम भोग्य पदार्थोंको भोगते हो और प्रियवर्गको देखते हो, जो इस आत्मरूप वैश्वानरकी इस शक्तिकी उपासना करता है वह सब प्रकारके भोगोंको भोगता है और पुत्र पौत्र आदि प्रिय परिवारको देखता है तथा उसके कुलमें ब्रह्मतेज रहता है । परन्तु यह आत्मरूप वैश्वानरका उदर है, पूर्ण वैश्वानर नहीं है, यदि तुम मेरे पास न आये होते तो तुम्हारा उदर टूटजाता ॥ २ ॥

॥ पञ्चमाध्यायस्य पञ्चदशः खंडः समाप्तः ॥

अथ होवाच बुडिलमाश्वतराश्विं वैयाघ्रपद्य कं त्वमात्मानमुपास्स इत्यप एव भगवो राजन्निति होवाचैष वै रयिरात्मा वैश्वानरो यं त्वमात्मानमुपास्से तस्मात्त्वꣳ रयिमान् पुष्टिमानासि ॥ १ ॥

अन्वय और पदार्थ--(अथ) अनन्तर (आश्वतराश्विम्) अश्वतराश्व पुत्र (बुडिलम्) बुडिलके प्रति (ह) स्पष्ट (उवाच) कहा (वैयाघ्रपद्य) हे वैयाघ्रपद्य (त्वम्) तु (कम्) किस (आत्मानम्) आत्माको (उपास्से) उपासना

करता है (भगवः, राजन्) हे मान्य राजन् (अपः, एव) जलको ही (इति) ऐसा (ह) स्पष्ट (उवाच) बोला (यम्) जिस (आत्मानम्) आत्माको (त्वम्) तू (उपास्से) उपासना करता है (एषः) यह (वै) प्रसिद्ध (रयिः) धनरूप (वैश्वानरः) वैश्वानर (आत्मा) आत्मा है (तस्मात्) तिससे (त्वम्) तू (रयिमान्) धनवान् (पुष्टिमान्) पुष्टि वाला (असि) है ॥ १)

भावार्थ—तदनन्तर उस प्रसिद्ध राजाने अश्वतराश्वके पुत्र बुडिलसे कहा, कि—हे वैयाघ्रपद्य ! तू किस आत्माकी उपासना करता है, उसने स्पष्ट उत्तर दिया, कि हे मान्य राजन् ! मैं तो जलकी ही उपासना करता हूँ, राजाने कहा, कि—तू जिस आत्माकी उपासना करता है वह तो धनरूप वैश्वानर आत्मा है, इस कारण ही तू धनवान् और पुष्टियुक्त है, क्योंकि जलसे अन्न उत्पन्न होता है और उस अन्नसे धनकी प्राप्ति तथा शरीरकी पुष्टि होती है ॥ १ ॥

अत्स्यन्नं पश्यसि प्रियमत्त्यन्नं पश्यति प्रियं भवत्यस्य ब्रह्मवर्चसं कुले य एतमेवमात्मानं वैश्वानरमुपास्ते वस्तिस्त्वेष आत्मन इति होवाच वस्तिस्ते व्यभेत्स्यद्यन्मां नागमिष्य इति ॥ २ ॥

अन्वय और पदार्थ—(अन्नम्) अन्नको (अत्सि) खाता है (प्रियम्) प्रियको (पश्यसि) देखता है (यः) जो (एतम्) इस (आत्मानम्) आत्मरूप (वैश्वानरम्) वैश्वानरको (एवम्) इस प्रकार (उपास्ते) उपासना करता है (अन्नम्)

अन्नको (अत्ति) खाता है (प्रियम्) प्रियको (पश्यति) देखता है (अस्य) इसके (कुले) कुलमें (ब्रह्मवर्चसम्) ब्रह्मतेज (भवति) होता है (तु) परन्तु (एषः) यह (आत्मनः) आत्माका (बस्तिः) मूत्राशय है (इति) ऐसा (ह) स्पष्ट (उवाच) बोला (यत्) जो (माम्) मेरे पास (न) नहीं (आगमिष्यः) आता (ते) तेरा (बस्तिः) मूत्राशय (व्यभेत्स्यत्) फटजाता (इति) ऐसा कहा ॥२॥

भावार्थ—राजाने कहा, कि--तुम इस कारण ही भोग भोगते हो और प्यारे परिवारको देख रहे हो जो इस आत्मरूप वैश्वानरको इस प्रकार उपासना करता है वह भोगोंको भोगता है और पुत्र पौत्र आदि प्रिय परिवारको देखता है और उसके कुलमें ब्रह्मतेज रहता है परन्तु यह आत्मरूप वैश्वानरका मूत्राशय है, समस्त वैश्वानर नहीं है, यदि तुम मेरे पास न आये होते तो तुम्हारा मूत्राशय फटजाता ॥ २ ॥

॥ पञ्चमाध्यायस्य षोडशः खंडः समाप्तः ॥

अथ होवाचोद्दालकमारुणिं गौतम कं त्वमात्मानमुपास्स इति पृथिवीमेव भगवो राजन्निति होवाचैष वै प्रतिष्ठात्मा वैश्वानरो यन्त्वमात्मानमुपास्से तस्मात्त्वं प्रतिष्ठितोऽसि प्रजया च पशुभिश्च

अन्वय और पदार्थ—(अथ) अनन्तर (आरुणिम्) अरुण पुत्र (उद्दालकम्) उद्दालकसे (गौतम) हे गौतम (त्वम्) तू (कम्) किस (आत्मानम्) आत्माको (उपास्से)

उपासना करता है (इति) ऐसा (ह) स्पष्ट (उवाच) कहा (भगवः, राजन्) हे मान्य राजन् (पृथिवीम्, एव) पृथिवी को ही उपासना करता हूँ (इति) ऐसा (ह) स्पष्ट (उवाच) बोला (यम्) जिस (आत्मानम्) आत्माको (त्वम्) तु (उपास्से) उपासना करता है (एषः) यह (वै) प्रसिद्ध (प्रतिष्ठा) चरणरूप (वैश्वानरः) वैश्वानर (आत्मा) आत्मा है (तस्मात्) तिससे (त्वम्) तू (प्रजया) सन्तान करके (च) और (पशुभिः, च) पशुओं करके भी (प्रतिष्ठितः, असि) प्रतिष्ठित है ॥ १ ॥

भावार्थ—तदनन्तर राजाने अरुणके पुत्र उद्दालकसे कहा, कि–हे गौतम ! तुम कौनसे आत्माकी उपासना करते हो। उसने कहा, कि हे मान्य राजन ! मैं पृथिवीकी उपासना करता हूँ, इस पर राजाने कहा कि-तुम जिस आत्माकी उपासना करते हो वह चरणरूप वैश्वानर आत्मा है, इस कारण ही तुम उसकी उपासनासे पुत्र पौत्रादि प्रजा और गौ घोड़े आदि पशुओंके साथ संसारमें स्थित हो ॥ १ ॥

अत्स्यन्नं पश्यसि प्रियमत्त्यन्नं पश्यति प्रियं भवत्यस्य ब्रह्मवर्चसं कुले य एतमेवमात्मानं वैश्वानरमुपास्ते पादौ त्वेतावात्मन इति होवाच पादौ ते व्यम्लास्येतां यन्मां नाऽऽगमिष्य इति ॥ २ ॥

अन्वय और पदार्थ–(अन्नम्) अन्नको (अत्सि) खाता है (प्रियम्) प्रियको (पश्यसि) देखता है (यः) जो (एतम्) इस (आत्मानम्) आत्माको (एवम्) इस प्रकार (उपास्ते)

उपासना करता है (अन्नम्) अन्नको (अत्ति) खाता है (प्रियम्) प्रियको (पश्यति) देखता है (अस्य) इसके (कुले) कुलमें (ब्रह्मवर्चसम्) ब्रह्मतेज (भवति) होता है (तु) परन्तु (एतौ) ये (आत्मनः) आत्माके (पादौ) चरण हैं (इति) ऐसा (ह) स्पष्ट (उवाच) बोला (यम्) जो (माम्) मेरे पास (न) नहीं (आगमिष्यः) आता तो (ते) तेरे (पादौ) चरण (व्यम्लास्येताम्) अति शिथिल होजाते

भावार्थ—इस कारण आप भोग भोगते हैं और प्रिय परिवारको नेत्रोंके सामने देखते हैं । जो इस आत्मरूप वैश्वानर की इस प्रकार उपासना करता है वह सब प्रकारके भोग भोगता है, प्यारे परिवारको नेत्रोंसे देखता है और उसके कुल में ब्रह्मतेज होता है । परन्तु यह आत्मरूप वैश्वानरके चरण हैं, समस्त वैश्वानर नहीं है, यदि तुम मेरे पास न आते तो तुम्हारे चरण अत्यन्त शिथिल होजाते ॥ २ ॥

॥ पञ्चमाध्यायस्य सप्तदशः खण्डः समाप्तः ॥

तान् होवाचैते वै खलु यूयं पृथगिवेममात्मानं वैश्वानरं विद्वाᳬसोऽन्नमत्थ । यस्त्वेतमेवं प्रादेशमात्रमभिविमानमात्मानं वैश्वानरमुपास्ते स सर्वेषु लोकेषु सर्वेषु भूतेषु सर्वेष्वात्मस्वन्नमत्ति १

अन्वय और पदार्थ—(तान्) उनके प्रति (ह) स्पष्ट (उवाच) बोला (खलु) निश्चय (एते) ये (वै) प्रसिद्ध (यूयम्) तुम (इमम्) इस (वैश्वानरम्) वैश्वानर (आत्मानम्) आत्माको (पृथक् इव) पृथक्की समान (विद्वांसः)

जानते हुए (अन्नम्) अन्नको (अत्थ) खाते हो (तु) परन्तु (यः) जो (एतम्) इस (प्रादेशमात्रम्) प्रादेशमात्र (अभिविमानम्) अपने व्यापकभावको जानने वाले (आत्मानम्) आत्मारूप (वैश्वानरम्) वैश्वानरको (एवम्) इस प्रकार (उपास्ते) उपासना करता है (सः) वह (सर्वेषु) (सब) लोकेषु) लोकोंमें (सर्वेषु) सब (भूतेषु) भूतोंमें (सर्वेषु) सब (आत्मसु) आत्माओंमें (अन्नम्) अन्नको (अत्ति) खाता है ॥ १ ॥

भावार्थ--राजा अश्वपतिने कहा, कि--जैसे बहुतसे अन्धोंने हाथीके शरीरके भिन्न २ अंगोंको स्पर्श कर जिसने जिस अङ्गको छुआ उसने उसी आकार वाला हाथीको जाना तिसी प्रकार तुम सब, जो वैश्वानर आत्मा विविधरूपधारी नहीं है उसको भिन्न २ रूपवाला जानते हुए संसारके भोगोंको भोगते हो । परन्तु जो इस प्रादेशमात्र कहिये स्वर्गलोकसे लेकर पृथिवी पर्यन्तके प्रदेशोंके परिमाण वाले तथा अभिविमान कहिये मैं प्रत्येक भूतमें व्यापक हूँ ऐसा जानने वाले इस आत्मरूप वैश्वानर कहिये सर्वात्मा ईश्वरको इस प्रकारसे जानता है अर्थात् स्वर्गलोकरूप मस्तकसे लेकर पृथिवीरूप चरणों पर्यन्त पीछे कहे अवयवों वाला है ऐसा जान कर उपासना करता है वह सब लोकोंमें, सकल भूतोंमें, शरीर, इन्द्रिय मन और बुद्धि आदि सब आत्माओंमें स्थित होकर संसारके भोगोंको भोगता है १

तस्य ह वा एतस्यात्मनो वैश्वानरस्य मूर्धैव सुतेजाश्चक्षुर्विश्वरूपः प्राणः पृथग्वर्त्मात्मा सन्देहो

बहुलो वस्तिरेव रयिः पृथिव्येव पादावुर एव वेदि-र्लोमानि बर्हिर्हृदयं गार्हपत्यो मनोऽन्वाहार्यपचन आस्यमाहवनीयः ॥ २ ॥

अन्वय और पदार्थ-(तस्य) तिस (ह) प्रसिद्ध (एतस्य) इस (आत्मनः) आत्मरूप (वैश्वानरस्य) वैश्वानरका (वै) निश्चय (मूर्धा, एव) मस्तक ही (सुतेजाः) सुन्दर तेजस्वी स्वर्ग है (चक्षुः) चक्षु (विश्वरूपः) सूर्य है (प्राणः) प्राण (पृथग्वर्त्मात्मा) वायु है (सन्देहः) उदर (बहुलः) आकाश है (वस्तिः) मूत्राशय (रयिः, एव) जल ही है (पृथिवी एव) पृथिवी ही (पादौ) चरण हैं (उरः,एव) वक्षःस्थल ही (वेदिः) वेदि है (लोमानि) लोम (बर्हिः) दर्भ है (हृदयम्) हृदय (गार्हपत्यः) गार्हपत्य है (मनः) मन (अन्वाहार्य-पचनः) दक्षिणाग्नि है (आस्यम्) मुख (आहवनीयः) आहवनीय अग्नि है ॥ २ ॥

भावार्थ—इस आत्मरूप वैश्वानरका मस्तक स्वर्ग है, चक्षु सूर्य है, प्राण वायु है, उदर आकाश है, मूत्राशय जल है और पृथिवी दोनों चरण हैं, ऐसा जान कर उपासना करे । अब वैश्वानरवेत्ताके भोजनमें अग्निहोत्रका भाव दिखाते हैं, कि—इस वैश्वानररूप भोक्ताका हृदय ही वेदी है, रोम ही कुशा हैं, हृदय ही गार्हपत्य अग्नि है, मन दक्षिणाग्नि है और मुख आह-वनीय अग्नि है ॥ २ ॥

॥ पञ्चमाध्यायस्याष्टादशः खण्डः समाप्तः ॥

———०———

तद्यद्भक्तं प्रथममागच्छेत्तद्धोमीयꣳ स यां प्रथमामाहुतिं जुहुयात्तां जुहुयात्प्राणाय स्वाहेति प्राणस्तृप्यति ॥ १ ॥

अन्वय और पदार्थ–(तत्) तहाँ (यत्) जो (भक्तम्) राँधा हुआ अन्न (प्रथमम्) पहिले (आगच्छेत्) आवे (तत्) वह (होमीयम्) होमके योग्य है (सः) वह (याम्) जिस (प्रथमाम्) पहली (आहुतिम्) आहुतिको (जुहुयात्) होमे (ताम्) उसको (प्राणाय, स्वाहा इति) प्राणाय स्वाहा ऐसा बोल कर (जुहुयात्) होमे (प्राणः) प्राण (तृप्यति) तृप्त होता है ॥ १ ॥

भावार्थ—तहाँ जो राँधा हुआ अन्न भोजनके लिये प्रथम आये उसका होम अवश्य करे, वह भोजन करने वाला प्रथम आहुति मुखमें छोड़ते समय 'प्राणाय स्वाहा' इस मन्त्रको बोले, इस मन्त्रके साथ मुखमें अन्नकी आहुति छोड़नेसे प्राण तृप्त होता है ॥ ३ ॥

प्राणे तृप्यति चक्षुस्तृप्यति चक्षुषि तृप्यत्यादित्यस्तृप्यत्यादित्ये तृप्यति द्यौस्तृप्यति दिवि तृप्यन्त्यां यत्किञ्च द्यौश्चादित्यश्चाधितिष्ठतस्तत्तृप्यति तस्यानु तृप्तिं तृप्यति प्रजया पशुभिरन्नाद्येन तेजसा ब्रह्मवर्चसेनेति ॥ २ ॥

अन्वय और पदार्थ–(प्राणे, तृप्यति) प्राणके तृप्त होने पर (चक्षुः) चक्षु (तृप्यति) तृप्त होता है (चक्षुषि, तृप्यति)

चक्षुके तृप्त होने पर (आदित्यः, तृप्यति) आदित्य तृप्त होता है (आदित्ये, तृप्यति) आदित्यके तृप्त होने पर (द्यौः, तृप्यति) स्वर्ग तृप्त होता है (दिवि, तृप्यन्त्याम्) स्वर्गके तृप्त होने पर (यत्किञ्च) जिस किसीके प्रति (द्यौः, च, आदित्यः, च) स्वर्ग और सूर्य (अधितिष्ठतः) स्वामिभावसे स्थित होते हैं (तत्) वह (तृप्यति) तृप्त होता है (तस्य, तृप्तिम्, अनु) उसकी तृप्तिके पीछे (प्रजया) प्रजा करके (पशुभिः) पशुओं करके (अन्नाद्येन) भक्षण करने योग्य अन्न करके (तेजसा) प्रकाश करके (ब्रह्मवर्चसेन) ब्रह्मतेज करके (तृप्यति) तृप्त होता है (इति) ऐसा जान ॥ २ ॥

भावार्थ—प्राणके तृप्त होने पर नेत्र तृप्त होते हैं, नेत्रोंके तृप्त होने पर सूर्य तृप्त होता है, सूर्यके तृप्त होने पर स्वर्ग तृप्त होता है, स्वर्गके तृप्त होने पर स्वर्ग और सूर्य जिस २ के स्वामी बनकर स्थित रहते हैं वह सब तृप्त होजाता है और उसकी तृप्ति होजाने पर यजमान प्रजा, पशु, भक्षण करने योग्य अन्न, शरीर और बुद्धिका प्रकाश तथा सदाचरण और स्वाध्यायसे उत्पन्न होने वाले ब्रह्मतेजके द्वारा तृप्त होता है ।२।

पञ्चमाध्यायस्यैकोनविंशः खण्डः समाप्तः ॥

अथ यां द्वितीयां जुहुयात्तां जुहुयाद् व्यानाय स्वाहेति व्यानस्तृप्यति ॥ १ ॥

अन्वय और पदार्थ—(अथ) अनन्तर (याम्) जिस (द्वितीयाम्) दूसरी आहुतिको (जुहुयात्) होमै (ताम्) उस

को (व्यानाय, स्वाहा, इति) व्यानाय स्वाहा ऐसा कह कर (जुहुयात्) होमै (व्यानः) व्यान (तृप्यति) तृप्त होता है १

भावार्थ—तदनन्तर दूसरी आहुतिको 'व्यानाय स्वाहा' ऐसा मन्त्र पढ़ कर होमै तो व्यान तृप्त होता है ॥ १ ॥

व्याने तृप्यति श्रोत्रं तृप्यति श्रोत्रे तृप्यति चंद्रमास्तृप्यति चन्द्रमसि तृप्यति दिशस्तृप्यन्ति दिक्षु तृप्यन्तीषु यत्किञ्च दिशश्च चन्द्रमाश्चाधितिष्ठन्ति तत्तृप्यति तस्यानुतृप्तिं तृप्यति प्रजया पशुभिरन्नाद्येन तेजसा ब्रह्मवर्चसेनेति ॥ २ ॥

अन्वय और पदार्थ—(व्याने, तृप्यति) व्यानके तृप्त होने पर (श्रोत्रम्, तृप्यति) श्रोत्र तृप्त होता है (श्रोत्रे, तृप्यति) श्रोत्रके तृप्त होने पर (चन्द्रमाः, तृप्यति) चन्द्रमा तृप्त होता है (चन्द्रमसि, तृप्यति) चन्द्रमाके तृप्त होने पर (दिशः, तृप्यन्ति) दिशायें तृप्त होती हैं (दिक्षु, तृप्यन्तीषु) दिशाओं के तृप्त होने पर (यत्किञ्च) जिस किसीके ऊपर (दिशः च, चन्द्रमाः च) दिशायें और चन्द्रमा भी (अधितिष्ठन्ति) प्रभु बन कर स्थित होते हैं (तत्, तृप्यति) वह तृप्त होता है (तस्य) उसकी (तृप्तिम्, अनु) तृप्तिके अनन्तर (प्रजया) सन्तति करके (पशुभिः) पशुओं करके (अन्नाद्येन) भक्षण योग्य अन्न करके (तेजसा) तेज करके (ब्रह्मवर्चसेन) ब्रह्मतेज करके (तृप्यति) तृप्त होता है (इति) ऐसा जानो ॥ २ ॥

भावार्थ—व्यानके तृप्त होने पर श्रोत्र इन्द्रिय तृप्त होती है,

श्रोत्रके तृप्त होने पर चन्द्रमा तृप्त होता है, चन्द्रमाके तृप्त होने पर दिशायें तृप्त होती हैं दिशाओंके तृप्त होने पर जिस किसी वस्तुके ऊपर दिशाओंकी और चन्द्रमाकी प्रभुता होती है वह सब तृप्त होजाती हैं और उन सबके तृप्त होजाने पर भोजन करने वाला सन्ततिसे, पशुओंसे, उत्तम अन्नसे, शरीर तथा बुद्धिके प्रकाशसे और ब्रह्मतेजसे तृप्त होता है ॥ २ ॥

॥ पञ्चमाध्यायस्य विंशः खण्डः समाप्तः ॥

अथ यां तृतीयां जुहुयात्तां जुहुयादपानाय स्वाहेत्यपानस्तृप्यति ॥ १ ॥

अन्वय और पदार्थ—(अथ) अनन्तर (याम्) जिस (तृतीयाम्) तीसरेको (जुहुयात्) होमे (ताम्) उसको (अपानाय, स्वाहा, इति) अपानाय स्वाहा ऐसा उच्चारण करके (जुहुयात्) होमे (अपानः) अपान (तृप्यति) तृप्त होता है ॥ १ ॥

भावार्थ—तदनन्तर तीसरी आहुतिको होमते समय "अपानाय स्वाहा" इस मन्त्रका उच्चारण करे तो अपान तृप्त होता है १

अपाने तृप्यति वाक् तृप्यति वाचि तृप्यन्त्यामग्निस्तृप्यत्यग्नौ तृप्यति पृथिवी तृप्यति पृथिव्यां तृप्यन्त्यां यत्किञ्च पृथिवी चाग्निश्चाधितिष्ठतस्तत्तृप्यति तस्यानु तृप्तिं तृप्यति प्रजया पशुभिरन्नाद्येन तेजसा ब्रह्मवर्चसेनेति ॥ २ ॥

अन्वय और पदार्थ—(अपाने, तृप्यति) अपानके तृप्त होने पर (वाक्, तृप्यति) वाणी तृप्त होती है (वाचि तृप्यंस्याम्) वाणीके तृप्त होने पर (अग्निः, तृप्यति) अग्नि तृप्त होता है (अग्नौ, तृप्यति) अग्निके तृप्त होने पर (पृथिवी, तृप्यति) पृथिवी तृप्त होती है ।(पृथिव्याम्, तृप्यन्त्याम्) पृथिवीके तृप्त होने पर (यत्किञ्च) जिस किसीके ऊपर (पृथिवी, च, अग्निः च) पृथिवी और अग्नि भी (अधितिष्ठतः) प्रभुता के साथ स्थित होते हैं (तत् तृप्यति) वह तृप्त होता है (तस्य, तृप्तिम्-अनु) उसकी तृप्तिके अनन्तर (प्रजया) प्रजा करके (पशुभिः) पशुओं करके (अन्नाद्येन) भक्षण करने योग्य अन्न करके (तेजसा) तेज करके (ब्रह्मवर्चसेन) ब्रह्मतेज करके (तृप्यति) तृप्त होता है (इति) ऐसा जानो ।। २ ।।

भावार्थ—अपानके तृप्त होने पर वाणी तृप्त होती है वाणीके तृप्त होने पर अग्नि तृप्त होता है अग्निके तृप्त होने पर पृथिवी तृप्त होती है, पृथिवीके तृप्त होने पर जिस किसी वस्तु पर भी पृथिवी और अग्निकी प्रभुता है वह सब तृप्त होजाती है और उसकी तृप्तिके अनन्तर भोक्ता प्रजा, पशु, भक्षणयोग्य अन्न शरीर तथा बुद्धिके प्रकाश और ब्रह्मतेजसे तृप्त होता है ।२।

।। पञ्चमाध्यायस्यैकविंशः खण्डः समाप्तः ।।

अथ यां चतुर्थीं जुहुयात्तां जुहुयात्समानाय स्वाहेति समानस्तृप्यति ।। १ ।।

अन्वय और पदार्थ—(अथ) अनन्तर (याम्) जिस (चतुर्थीम्) चौथीको (जुहुयात्) होमे (समानाय, स्वाहा,

इति) समानाय स्वाहा ऐसा बोल कर (जुहुयात्) होमे (समानः) समान (तृप्यति) तृप्त होता है ॥ १ ॥

भावार्थ—चौथी आहुति होमते समय "समानाय स्वाहा" इस मन्त्रका उच्चारण करे तो समान तृप्त होता है ॥ १ ॥

समाने तृप्यति मनस्तृप्यति मनसि तृप्यति पर्जन्यस्तृप्यति पर्जन्ये तृप्यति विद्युत्तृप्यति विद्युति तृप्यन्त्यां यत्किञ्च विद्युच्च पर्जन्यश्चाधितिष्ठतस्त-त्तृप्यति तस्यानु तृप्तिं तृप्यति प्रजया पशुभिरन्ना-द्येन तेजसा ब्रह्मवर्चसेनेति ॥ २ ॥

अन्वय और पदार्थ–(समाने, तृप्यति) समानेके तृप्त होने पर (मनः, तृप्यति) मन तृप्त होता है (मनसि, तृप्यति) मनके तृप्त होने पर (पर्जन्यः, तृप्यति) मेघ तृप्त होता है (पर्जन्ये, तृप्यति) मेघके तृप्त होने पर (विद्युत्, तृप्यति) बिजली तृप्त होती है (विद्युति, तृप्यन्त्याम्) बिजलीके तृप्त होने पर (यत्किञ्च) जिस किसीके ऊपर (विद्युत्, च, पर्जन्यः च) बिजली और मेघ (अधितिष्ठतः) प्रभुतापूर्वक स्थित होते हैं (तत्, तृप्यति) वह तृप्त होता है (तस्य, तृप्तिम्, अनु) उसकी तृप्तिके पीछे (प्रजया, पशुभिः, अन्नाद्येन, तेजसा, ब्रह्मवर्चसेन, तृप्यति) प्रजा, पशु, खानेयोग्य अन्न, तेज और ब्रह्मतेजसे तृप्त होता है (इति) ऐसा जानो ॥ २ ॥

भावार्थ–समानके तृप्त होने पर मन तृप्त होता है मनके तृप्त होने पर मेघ तृप्त होता है, मेघके तृप्त होने पर बिजली तृप्त

होती है, बिजलीके तृप्त होने पर जिस किसी वस्तुके ऊपर मेघ और बिजलीकी प्रभुता होती है वह सब तृप्त होजाती है, इसके पीछे भोक्ता सन्तान, पशु, खानेयोग्य अन्न, शरीर तथा बुद्धिके प्रकाश और ब्रह्मतेजसे तृप्त होता है ॥ २ ॥

॥ पञ्चमाध्यायस्य द्वाविंशः खण्डः समाप्तः ॥

अथ यां पञ्चमीं जुहुयात्तां जुहुयादुदानाय स्वाहेत्युदानस्तृप्यति ॥ १ ॥

अन्वय और पदार्थ—(अथ) अनन्तर (याम्) जिस (पञ्चमीम) पाँचवींको (जुहुयात्) होमै (ताम्) उसको (उदानाय, स्वाहा, इति) उदानाय स्वाहा ऐसा बोल कर (जुहुयात्) होमै (उदानः) उदान (तृप्यति) तृप्त होता है

भावार्थ—भोक्ता पञ्चमी आहुतिको होमते समय "उदानाय स्वाहा" इस मन्त्रका उच्चारण करे तो उदान तृप्त होता है १

उदाने तृप्यति त्वक् तृप्यति, त्वचि तृप्यन्त्यां वायुस्तृप्यति वायौ तृप्यत्याकाशस्तृप्यत्याकाशे तृप्यति यत्किञ्च वायुश्चाकाशश्चाधितिष्ठतस्तत्तृप्यति तस्यानु तृप्तिं तृप्यति प्रजया पशुभिरन्नाद्येन तेजसा ब्रह्मवर्चसेनेति ॥ २ ॥

अन्वय और पदार्थ—(उदाने, तृप्यति) उदानके तृप्त होने पर (त्वक्, तृप्यति) त्वचा तृप्त होती है (त्वचि, तृप्यन्त्याम्) त्वचाके तृप्त होने पर (वायुः, तृप्यति) वायु तृप्त होता है (वायौ, तृप्यति) वायुके तृप्त होने पर (आकाशः, तृप्यति)

आकाश तृप्त होता है (आकाशे, तृप्यति) आकाशके तृप्त होने पर (यत्किञ्च) जिस किसीके ऊपर (वायुः,च,आकाशः, च) वायु और आकाश (अधितिष्ठतः) प्रभुतापूर्वक स्थित होते हैं (तत्, तृप्यति) वह तृप्त होता है, (तस्य, तृप्तिम् अनु) उसकी तृप्तिके पीछे (प्रजया, पशुभिः, अन्नाद्येन, तेजसा ब्रह्मवर्चसेन, तृप्यति) प्रजा, पशु, खानेयोग्य अन्न, तेज और ब्रह्मवर्चससे तृप्त होता है (इति) ऐसा जानो २

भावार्थ—उदानके तृप्त होने पर त्वचा तृप्त होती है, त्वचा के तृप्त होने पर वायु तृप्त होता है, वायुके तृप्त होने पर जिस किसी वस्तुके ऊपर वायु और आकाशकी प्रभुता है वह सब तृप्त होजाती है और उसकी तृप्तिके अनन्तर भोक्ता सन्तान, पशु, खाने योग्य अन्न, शरीर तथा बुद्धिका प्रकाश और ब्रह्मतेजसे तृप्त होता है ॥ २ ॥

॥ पञ्चमाध्यायस्य त्रयोविंशः खंडः समाप्तः ॥

स य इदमविद्वानग्निहोत्रं जुहोति यथाङ्गारान-पोह्य भस्मनि जुहुयात्तादृक् तत् स्यात् ॥ १ ॥

अन्वय और पदार्थ-(यः) जो (इदम्) इसको (अविद्वान्) न जानता हुआ (अग्निहोत्रम्) अग्निहोत्रको (जुहोति) होमता है (सः) वह (यथा) जैसे (अङ्गारान्) अङ्गारोंको (अपोह्य) त्यागकर (भस्मनि) भस्ममें (जुहुयात्) होम करे (तादृक्) तैसा (तत्) वह (स्यात्) होगा ॥ १ ॥

भावार्थ-जो कोई इस कही हुई वैश्वानरविद्याको न जानता हुआ अग्निहोत्रकी आहुतियें होमता है अङ्गारोंको अलग करके

राखमें होम करनेसे जैसा फल होता है तैसा ही वैश्वानरवेत्ता के अग्निहोत्रकी अपेक्षा उसका होम निरर्थक होता है ॥ १ ॥

अथ य एतदेवं विद्वानाग्निहोत्रं जुहोति तस्य सर्वेषु लोकेषु सर्वेषु भूतेषु सर्वेष्वात्मसु हुतं भवति

अन्वय और पदार्थ-(अथ) और (यः) जो (एतम्) इसको (एवम्) इस प्रकार (विद्वान्) जानता हुआ (अग्नि-होत्रम्) अग्निहोत्रको (जुहोति) होमता है (तस्य) उसका (सर्वेषु, लोकेषु) सब लोकोंमें (सर्वेषु, भूतेषु) सब भूतोंमें (सर्वेषु, आत्मसु) सब आत्माओंमें (हुतम्) होमा हुआ (भवति) होता है ॥ २ ॥

भावार्थ—जो इस प्रकार जानता हुआ अग्निहोत्रमें होम करता है अर्थात् पीछे कही विधिसे भोजन करता है उसका सब लोकोंमें सब भूतोंमें और देह इन्द्रियादि रूप सब आत्माओं में होमा हुआ अर्थात् भोजन किया हुआ होता है ॥ २ ॥

तद्यथेषीकातूलमग्नौ प्रोतं प्रदूयेतैवꣳ हास्य सर्वे पाप्मनः प्रदूयन्ते य एतदेवं विद्वानाग्निहोत्रं जुहोति ॥ ३ ॥

अन्वय और पदार्थ-(तत्) सो (यथा) जैसे (इषी-कातूलम्) मूँजकी तुली (अग्नौ) अग्निमें (प्रोतम्) डाली हुई (प्रदूयेत) जलजाय (एवम्, ह) इस प्रकार ही (यः) जो (एतत्) इसको (विद्वान्) जानता हुआ (अग्नि-होत्रम्) अग्निहोत्रको (जुहोति) होमता है (अस्य) इसके (सर्वे) सब (पाप्मनः) पाप (प्रदूयन्ते) भस्म होजाते हैं ॥ ३ ॥

भावार्थ—जिस प्रकार मूँजके भीतरकी तुलीको निकाल कर अग्निमें डाल दिया जाय तो वह तत्काल भस्म होजाती है, इसी प्रकार जो इस अग्निहोत्रकी विधिको जानता हुआ भोजन-रूप होम करता ,है उसके प्रारब्धरूप पापको छोड़कर अन्य सब पाप भस्म होजाते हैं ॥ ३ ॥

तस्मादु हैवंविद्यद्यपि चण्डालायोच्छिष्टं प्रय-च्छेदात्मनि हैवास्य तद्वैश्वानरे हुतꣳ स्यादिति तदेष श्लोकः ॥ ४ ॥

अन्वय और पदार्थ—(तस्मात्, उ) तिस कारणसे ही (एवम्वित्, ह) ऐसा जानने वाला (यद्यपि) कदाचित् (चण्डालाय) चण्डालके लिये (उच्छिष्टम्) जूठा (प्रयच्छेत्) देय (अस्य) इसका (तत्, एव, ह) वह भी (आत्मनि, वैश्वानरे) आत्मरूप वैश्वानरमें (हुतम्) होमा हुआ (स्यात्) होगा (इति) यह सिद्धान्त है (तत्) उसमें (एषः) यह (श्लोकः) मन्त्र है ॥ ४ ॥

भावार्थ—इस लिये इस तत्त्वको जानने वाला यदि कदाचित् चण्डालको अपनी जूठन देदेय तो भी उसका यह चंडालके शरीरमें स्थित आत्मरूप वैश्वानरमें होम ही होता है,इससे उसको अधर्म नहीं होता है, इस अग्निहोत्रकी प्रशंसामें यह मन्त्र है ४

यथेह क्षुधिता बाला मातरं पर्युपासते । एवꣳ सर्वाणि भूतान्यग्निहोत्रमुपासत इति, अग्नि-होत्रमुपासत इति २ ५ ॥

अन्वय और पदार्थ-(यथा) जैसे (इह) इस लोकमें (क्षुधिताः) भूखे (बालाः) बालक (मातरम्, पर्युपासते) माताकी उपासना करते हैं (एवम्) ऐसे ही (सर्वाणि) सब (भूतानि) भूत (अग्निहोत्रम्) अग्निहोत्रकी (उपासते) उपासना करते हैं ॥ ५ ॥

भावार्थ-जिस प्रकार इस लोकमें भूखे बालक माताकी "हमें कब अन्न देगी" ऐसी बाट देखते हुए उपासना करते हैं, इसी प्रकार सकल प्राणी इस विद्याको जानने वालेके भोजन-रूप अग्निहोत्रकी "यह कब भोजन करेगा" ऐसी बाट देखते हुए उपासना करते हैं ॥ ५ ॥

॥ पञ्चमाध्यायस्य चतुर्विंशः खण्डः समाप्तः ॥

॥ पञ्चमाध्यायः समाप्तः ॥

षष्ठ अध्याय

एक विद्वान्के भोजन कर लेने पर सब जगत् तृप्त होजाता है, यह बात पीछे कही थी, परन्तु ऐसा तब ही होसकता है, कि-जब सकल भूतोंमें एक ही आत्मा होय, अतः सब भूतोंमें एक ही आत्मा किस प्रकार है, इस बातको दिखानेके लिये इस छठे अध्यायका आरम्भ है, जिसमें पिता पुत्रकी आख्यायिकाके द्वारा आत्मतत्त्व दिखाया है---

ॐ श्वेतकेतुर्हारुणेय आस तꣳ ह पितोवाच श्वेतकेतो वस ब्रह्मचर्यं न वै सोम्यास्मत्कुलीनोऽननूच्य ब्रह्मबन्धुरिव भवतीति ॥ १ ॥

अन्वय और पदार्थ—(आरुणेयः) अरुणका पौत्र (श्वेतकेतुः) श्वेतकेतु (आस) था (तम्, ह) उसके प्रति (पिता) पिता (उवाच) बोला (श्वेतकेतो) हे श्वेतकेतु (ब्रह्मचर्यम्) ब्रह्मचर्यपूर्वक (वस) गुरुके यहाँ निवास कर (सोम्य) हे प्रियदर्शन (वै) निःसन्देह (अस्मत्कुलीनः) हमारे कुलमें उत्पन्न हुआ (अननूच्य) अध्ययन न करके (ब्रह्मबन्धुः, इव) ब्राह्मणके आचारसे हीनकी समान (न) नहीं (भवति) होता है (इति) यह नियम है ॥ १ ॥

भावार्थ—अरुण ऋषिका पौत्र एक श्वेतकेतु नामका ब्राह्मण-कुमार था, उससे उसके पिताने कहा, कि—हे श्वेतकेतु ! योग्य गुरुके पास जाकर ब्रह्मचर्यपूर्वक निवास कर, हे प्रियदर्शन ! हमारे कुलमें उत्पन्न हुआ कोई पुरुष भी वेदादि शास्त्रोंको न पढ़कर ब्राह्मणके आचारसे हीनसा होकर रहे, यह उचित नहीं है

स ह द्वादशवर्ष उपेत्य चतुर्विꣳशतिवर्षः सर्वान् वेदानधीत्य महामना अनूचानमानी स्तब्ध एयाय तꣳह पितोवाच श्वेतकेतो यन्नु सोम्येदं महामना अनूचानमानी स्तब्धोऽस्युत तमादेशमप्राक्ष्यः

अन्वय और पदार्थ—(सः) वह (द्वादशवर्षः) बारह वर्ष की अवस्थाका (उपेत्य) गुरुके समीप जाकर (चतुर्विंशतिवर्षः) चौबीस वर्षकी अवस्थाका होने पर्यन्त (सर्वान्) सब सब (वेदान्) वेदोंको (अधीत्य) पढ़ कर (महामनाः) अपनेको बड़ा माननेवाला (अनूचानमानी) वेद पढ़ लेनेका

अभिमानी (स्तब्धः) विनयहीन (एयाय) घरको लौटकर आया (तम्) उसके प्रति (पिता) पिता (उवाच) बोला (श्वेतकेतो) हे श्वेतकेतु (सोम्य) हे प्रियदर्शन ! (यत् इदम्) यह जो (महामनाः) अपनेको बड़ा मानने वाला (अनूचानमानी) अध्ययनका अभिमानी (उत) और (स्तब्धः) विनयहीन (असि) हुआ है (तम्) तिस (आदेशम्) उपदेशको (अप्राक्ष्यः, नु) बूझ चुका है क्या ? ॥ २ ॥

भावार्थ—वह श्वेतकेतु बारह वर्षकी अवस्थामें गुरुके घर गया और चौबीस वर्षकी अवस्था होने तक चारों वेदोंको पढ़ कर और उनके अर्थको जान कर अपनेको दूसरोंसे बड़ा मानने लगा और मैंने चारों वेदोंको साङ्गोपाङ्ग पढ़ा है, इस बातका अभिमानी होकर बड़े गर्वमें भरा हुआ अपने घरको लौट कर आया । अपने पुत्रकी ऐसी दशामें देख कर पिताने कहा, कि–हे प्रियदर्शन श्वेतकेतु ! तू जो अपनेको औरोंसे बड़ा मानता है तथा मैंने साङ्गोपाङ्ग चारों वेद पढ़ लिये हैं, ऐसा मान कर घमण्डमें भर गया है, क्या तूने अपने गुरुसे उस विषयमें भी बूझ देखा है ? ॥ २ ॥

येनाश्रुतꣳ श्रुतं भवत्यमतं मतमविज्ञातं विज्ञातमिति कथं नु भगवः स आदेशो भवतीति ॥३॥

अन्वय और पदार्थ–(येन) जिसके द्वारा (अश्रुतम्) न सुना हुआ (श्रुतम्) सुना हुआ (अमतम्) मनन न किया हुआ (मतम्) मनन किया हुआ (अविज्ञातम्) न जाना हुआ (विज्ञातम्) जाना हुआ (भवति) होता है (इति)

ऐसा पिताने कहा (भगवः) हे भगवन् (सः) वह (आदेशः) उपदेश (कथम्, नु) कैसे (भवति) होता है (इति) इस को बताइये ॥ ३ ॥

भावार्थ—हे श्वेतकेतु ! तूने अपने गुरुसे कभी यह प्रश्न भी किया था ? कि–जिसको जान लेनेसे न सुने हुए जितने भी विषय हैं सब सुने हुए होजाते हैं न मनन किये हुए जितने भी विषय हैं वे सब मनन किये हुएसे होजाते हैं और न जाने हुए जितने विषय हैं वे सब जाने हुए होजाते हैं वह क्या है ? सब वेदोंको पढ़ कर और अन्य सब विद्याओंको जान कर भी मनुष्य जब तक आत्मतत्त्वको नहीं जानता है तब तक कृतार्थ नहीं होता, पिताकी इस बातको सुन कर पुत्रने कहा, कि–हे भगवन् ! ऐसा उपदेश कौनसा है और वह किस प्रकार सम्भव होसकता है ? ॥ ३ ॥

यथा सोम्यैकेन मृत्पिण्डेन सर्वं मृन्मयं विज्ञातꣳ स्याद्वाचाऽऽरम्भणं विकारो नामधेयं मृत्तिकेत्येव सत्यम् ॥ ४ ॥

अन्वय और पदार्थ–(सोम्य) हे प्रियदर्शन ! (यथा) जैसे (एकेन) एक (मृत्पिण्डेन) मृत्तिकाके ढलेसे (सर्वम्) सब (मृन्मयम्) मृत्तिकाकी वस्तुओंका समूह (विज्ञातम्) जाना हुआ (स्यात्) होजाता है (वाचारम्भणम्) वाणीका विषय (विकारः) कार्य (नामधेयम्) नाम है (मृत्तिका, इत्येव) मृत्तिका ही (सत्यम्) सत्य है ॥ ४ ॥

भावार्थ–उद्दालक मुनिने कहा, कि–हे प्रियदर्शन श्वेतकेतु ! जैसे एक मट्टीके ढलेका ज्ञान होजाने पर मट्टीके कार्यमात्र

सकल वस्तुओंका ज्ञान होजाता है, क्योंकि-जो कुछ वाणी का विषय विकाररूप कार्य है वह नाममात्र कहिये कहनेमात्र को ही है, सत्य नहीं है, सत्य तो केवल मृत्तिका ही है, तात्पर्य यह है, कि-कार्यका कारणसे अभेद होता है, इस कारण सब कार्य कारणरूप ही हैं, बाकीका विषय जो कार्य है वह तो नाममात्रको ही है सत्य नहीं है ॥ ४ ॥

यथा सोम्यैकेन लोहमणिना सर्वं लोहमयं विज्ञातꣳ स्याद्वाचाऽऽरम्भणं विकारो नामधेयं लोहमित्येव सत्यम् ॥ ५ ॥

अन्वय और पदार्थ -- (सोम्य) हे प्रियदर्शन (यथा) जैसे (एकेन) एक (लोहमणिना) सुवर्णके पिण्डसे (सर्वम्) सब (लोहमयम्) सुवर्णके बने पदार्थोंका समूह (विज्ञातम्) जाना हुआ (स्यात्) होजाता है (वाचारम्भणम्) वाणीका विषय (विकारः) कार्य (नामधेयम्) नाममात्र है (लोहम्, इति, एव) सोना ही (सत्यम्) सत्य है ॥ ५ ॥

भावार्थ-हे प्रियदर्शन ! जिस प्रकार एक सुवर्णके पिण्ड को जान लेने पर सुवर्णसे जितने भी पदार्थ बन सकते हैं सब जाने हुए होजाते हैं, वाणीके विषय जितने भी कार्य हैं सब नाममात्रको हैं, सत्य नहीं हैं, सत्य तो एक सुवर्ण ही है ।४।

यथा सोम्यैकेन नखनिकृन्तनेन सर्वं कार्ष्णायसं विज्ञातꣳ स्याद्वाचारम्भणं विकारो नामधेयं कृष्णायसमित्येव सत्यमेवꣳ सोम्य स आदेशो भवतीति ६

अन्वय और पदार्थ-(सोम्य) हे प्रियदर्शन (यथा) जैसे (एकेन) एक (नखनिकृन्तनेन) नख काटनेके निहन्ने जैसे लोहेके टुकड़ेसे (सर्वम्) सब (कार्ष्णायसम्) लोहेसे बने पदार्थोंका समूह (विज्ञातम्) जाना हुआ (स्यात्) होता है (वाचारम्भणम्) वाणीका विषय (विकारः) कार्य (नामधेयम्) कहनेमात्रको है (कृष्णायसम्, इति, एव) लोहा ही (सत्यम्) सत्य है (एवम्) इसी प्रकार (सोम्य) हे प्रियदर्शन (सः) वह (आदेशः) उपदेश (भवति) होता है (इति) ऐसा जानो ॥ ६ ॥

भावार्थ-हे प्रियदर्शन ! जिस प्रकार नख काटनेके निहन्ने जैसे एक लोहेके टुकड़ेको जान लेने पर लोहेसे बनने वाली सकल वस्तुओंका ज्ञान होजाता है, क्योंकि-रूप नाम वाला कार्यमात्र कहनेमात्रको वाणीका व्यवहार है, वास्तवमें तो लोहा ही सत्य है । तात्पर्य यह है, कि-संसारमें एक वस्तुकी अनेकों वस्तु बन जाती हैं और जितनी वस्तु बनती हैं उनके नाम भी अलग २ होते हैं, जैसे एक सोनेके अनेकों नामरूप वाले आभूषण बन जाते हैं, परन्तु वास्तवमें वे सब सोना ही हैं, क्योंकि-यदि उनको गला दिया जाय तो कोई नामरूप न रह कर सोना ही रह जाता है, इससे सिद्ध हुआ, कि-जितना विकार बढ़ेगा उतना ही वाणीका विस्तार होगा और वह नाममात्रको होगा, वास्तवमें जिस कारणरूप वस्तुसे वह विकार फैला है वह कारणरूप वस्तु ही सत्य है, हे सोम्य ! इसी प्रकार एक पदार्थका उपदेश है, कि-जिस एक पदार्थको जान लेने पर अन्य सब पदार्थोंका ज्ञान होजाता है ॥ ६ ॥

न वै नूनं भगवन्तस्त एतदवेदिषुर्यद्ध्येतदवेदिष्यन् कथं मे नावक्ष्यन्निति भगवांस्त्वेव मे तद्ब्रवीत्विति तथा सोम्येति होवाच ॥ ७ ॥

अन्वय और पदार्थ—(भगवन्तः) पूजनीय (ते) वे गुरु (नूनम्, वै) निश्चय (एतत्) इसको (न) नहीं (अवेदिषुः) जानते थे (हि) क्योंकि (यत्) जो (एतत्) इस को (अवेदिष्यत्) जानते होते (तत्) तो (मे) मेरे अर्थ (कथम्) कैसे (न) नहीं (अवक्ष्यन्) कहते (इति) इस कारण (भगवान्, एव) आप ही (मे) मेरे अर्थ (तत्) उसको (ब्रवीतु) कहिये (सोम्य) हे प्रियदर्शन (तथा) तैसे ही [अस्तु] हो (इति) ऐसा (ह) स्पष्ट (उवाच) बोले ७

भावार्थ—पिताकी इस बातको सुन कर पुत्रने कहा, कि—मेरे पूजनीय गुरुदेव निःसन्देह इस तत्त्वको नहीं जानते होंगे, कि—एक विज्ञानके द्वारा सर्व विज्ञान होसकता है, यदि वे इस तत्त्वको जानते होते तो ऐसा कैसे होसकता था, कि--वे मुझे इस तत्त्वका उपदेश नहीं देते ? इस कारण आप ही मुझे इस तत्त्वका उपदेश दीजिये । इस पर पिताने कहा, कि--अच्छा श्वेतकेतु ! मैं ही तुझे इस विज्ञानका उपदेश देता हूँ ॥ ७ ॥

॥ षष्ठाध्यायस्य प्रथमः खण्डः समाप्तः ॥

सदेव सोम्येदमग्र आसीदेकमेवाद्वितीयम् । तद्धैक आहुरसदेवेदमग्र आसीदेकमेवाद्वितीयं तस्मादसतः सज्जायत ॥ १ ॥

अन्वय और पदार्थ—(सोम्य) हे प्रियदर्शन (इदम्) यह (अग्रे) पहले (सत्, एव) सत् ही (आसीत्) था (एकम्, एव) एक ही (अद्वितीयम्) अद्वितीय [आसीत्] था (तत्, ह) उसमें ही (एके) एक (आहुः) कहते हैं (इदम्) यह (अग्रे) आगे (असत्, एव) असत् ही (एकम्, एव) एक ही (अद्वितीयम्) अद्वितीय (आसीत्) था (तस्मात्) तिस कारण (असतः) असत्से (सत्) सत् (जायत) हुआ है१

भावार्थ—हे प्रियदर्शन ! यह नामरूप और क्रिया वाला विकारी जगत्, अपनी उत्पत्तिसे पहिले सत् कहिये सूक्ष्म, निर्विशेष, सर्वव्यापक, निर्दोष, निष्क्रिय, शान्त, निरञ्जन, निरवयव और ज्ञानरूप ही था, एक कहिये सजातीय और स्वगतभेदशून्य था, अद्वितीय कहिये विजातीय भेदसे रहित था। इसमें ही उत्पत्तिसे पहले वस्तुका निरूपण करनेके विषय में एक शून्यवादी कहते हैं, कि—यह जगत् उत्पत्तिसे पहले अभावरूप (शून्य) ही था, एक और अद्वितीय था। इस सबके अभावरूप असत्से सत् (विद्यमान वस्तु) उत्पन्न हो गया है ॥ १ ॥

कुतस्तु खलु सोम्यैवं स्यादिति होवाच कथमसतः सज्जायेतेति सत्त्वेव सोम्येदमग्र आसीदेकमेवाद्वितीयम् ॥ २ ॥

अन्वय और पदार्थ—(सोम्य) हे सोम्य (कुतः) कैसे (एवम्) ऐसा (खलु) निश्चतरूपसे (स्यात्) होगा (इति)

(१) अजायतके स्थानमें 'जायत' छान्दस प्रयोग है।

ऐसा (उवाच, ह) बोला (असतः) असत्से (सत्) सत् (कथम्) कैसे (जायेत) होजायगा (इति) इस कारण (सोम्य) हे प्रियदर्शन (इदम्) यह (अग्रे) पहले (सत्. एव) सत् ही (एकम्, एव) एक ही (अद्वितीयम्) अद्वितीय (आसीत्) था ॥ २ ॥

भावार्थ—हे प्रियदर्शन ! ऐसा कैसे होसकता है ? किसी भी प्रमाणसे अभावमेंसे भावकी उत्पत्ति नहीं होसकती, यह बात उद्दालकने कही । किस प्रकार असत्मेंसे सत् उत्पन्न होजाय, इसका कोई दृष्टान्त नहीं है । इस कारण हे सौम्य ! यह जगत् उत्पत्तिसे पहले निःसन्देह सत् ही था, रज्जुमें सर्प की समान द्वैत प्रपञ्च कल्पित है, इस कारण इस ऐसे ज्ञानके समयमें भी वास्तवमें एक अद्वितीय ही है ॥ २ ॥

तदैक्षत बहु स्यां प्रजायेयेति तत्तेजोऽसृजत तत्तेज ऐक्षत बहु स्यां प्रजायेयेति तदपोऽसृजत तस्माद्यत्र क्व च शोचति स्वेदते वा पुरुषस्तेजस एव तदध्यापो जायन्ते ॥ ३ ॥

अन्वय और पदार्थ—(तत्) वह (बहु, स्याम्) बहुत होजाऊँ (प्रजायेय) उत्पन्न होऊँ (इति) ऐसा (ऐक्षत) संकल्प करता हुआ (तत्) वह (तेजः) तेजको (असृजत) रचता हुआ (तत्) वह (तेजः) तेज (बहु, स्याम्) बहुत होजाऊँ (प्रजायेय) उत्पन्न होऊँ (इति) ऐसा (ऐक्षत) संकल्प करता हुआ (तत्) वह (अपः) जलको (असृजत)

रचता हुआ (तस्मात्) तिससे (यत्र, क्व च) जहाँ कहीं भी (पुरुषः) पुरुष (शोचति) सन्तापयुक्त होता है (वा) या (स्वेदते) पसीनेसे युक्त होता है (तत्) तिससे (तेजसः एव) तेजसे ही (आपः) जल (अधिजायन्ते) उत्पन्न होते हैं

भावार्थ—उस सत्‌ने मैं बहुत होजाऊँ, कल्पित कार्यरूपसे उत्पन्न होजाऊँ, ऐसा संकल्प किया था और ऐसा सङ्कल्प करके उस सत्‌ने आकाश तथा वायुको रचनेके अनन्तर तेज को रचा था। सत्‌के प्रवेश वाले उस तेजने भी मैं बहुत हो-जाऊँ, कल्पित कार्यरूपसे उत्पन्न होजाऊँ, ऐसा सङ्कल्प किया और उस तेजने जलको रच दिया, उस कारण ही जिस किसी देश या कालमें पुरुष सन्तापयुक्त होता है तो उसको पसीना आजाता है, इससे सिद्ध हुआ कि--तेजसे जल उत्पन्न होता है

ता आप ऐक्षन्त बह्व्यः स्याम प्रजायेमहीति ता अन्नमसृजन्त तस्माद्यत्र क्व च वर्षति तदेव भूयिष्ठमन्नं भवत्यद्भ्य एव तदध्यन्नाद्यं जायते ४

अन्वय और पदार्थ–(ताः) वह (आपः) जल (बह्व्यः, स्याम्) बहुत होजायँ (प्रजायेमहि) उत्पन्न होजायँ (इति) ऐसा (ऐक्षन्त) सङ्कल्प करते हुए (ताः) वह (अन्नम्) अन्नको (असृजन्त) उत्पन्न करते हुए (तस्मात्) तिससे (यत्र, क्व, च) जहाँ कहीं भी (वर्षति) वर्षा होती है (तत्, एव) तहाँ ही (भूयिष्ठम्) बहुतसा (अन्नम्) अन्न (भवति) होता है (तत्) जो (अद्भ्यः, एव) जलसे ही (अन्नाद्यम्) खाने योग्य अन्न (अधिजायते) उत्पन्न होता है ४

भावार्थ—सत्के प्रवेश वाले उन जलोंने हम बहुत होजायँ और कल्पित कार्यरूपसे उत्पन्न होजायँ ऐसा सङ्कल्प किया और उन जलोंने पृथिवीरूप अन्नको उत्पन्न किया, इस कारण ही जहाँ कहीं भी वर्षा होती है तहाँ ही बहुतसा अन्न उत्पन्न होता है इस कारण जलसे ही भक्षण करने योग्य अन्न उत्पन्न होता है ॥ ५ ॥

॥ षष्ठाध्यायस्य द्वितीयः खण्डः समाप्तः ॥

तेषां खल्वेषां भूतानां त्रीण्येव बीजानि भवन्त्यण्डजं जीवजमुद्भिज्जमिति ॥ १ ॥

अन्वय और पदार्थ—(खलु) निश्चय (तेषाम्) तिन (एषाम्) इन (भूतानाम्) भूतोंके (त्रीणि, एव) तीन ही (बीजानि) बीज (भवन्ति) होते हैं (अण्डजम्) अंडज (जीवजम्) जीवज (उद्भिज्जम्) उद्भिज्ज (इति) इस प्रकार

भावार्थ—अचेतन भूत ब्रह्मके कार्य हैं इस बातको ऊपर कह दिया अब जीवके आवेशसे युक्त भौतिक भी परम्परासे ब्रह्मका ही कार्य है इस बातको दिखाते हुए कहते हैं, कि—इन जीवसे आविष्ट इन प्रसिद्ध पक्षी, पशु और स्थावर आदिकों के तीन ही बीज हैं अधिक नहीं हैं, एक अण्डज दूसरे जीवज कहिये जरायुज और तीसरे उद्भिज्ज पक्षी, पेटसे चलने वाले और मत्स्य आदि प्राणी अण्डज कहलाते हैं। मनुष्य पशु आदि जरायुज कहलाते हैं। और वृक्षादिक उद्भिज्ज कहलाते हैं। जूँ आदि स्वेदज अण्डजोंमें और मच्छर आदि संशोकज उष्णतासे उत्पन्न होने वाले उद्भिज्जोंमें माने गये हैं ॥ १ ॥

सेयं देवतैक्षत हन्ताहमिमास्तिस्रो देवता अनेन जीवेनात्मनाऽनुप्रविश्य नामरूपे व्याकरवाणीति

अन्वय और पदार्थ—(सा इयम्) वह यह (देवता) देवता (इति) इस प्रकार (ऐक्षत) संकल्प करने लगी (हन्त) अब (अहम्) मैं (अनेन) इस (जीवेन, आत्मना) जीवरूपसे (इमाः इन (तिस्रः) तीन (देवताः) देवताओंके प्रति (अनुप्रविश्य अनुप्रवेश करके (नामरूपे) नाम और रूपोंको (व्याकरवाणि) विशेष रूपसे स्पष्ट करूँ ॥ २ ॥

भावार्थ—वह सत् नाम वाला देवता सङ्कल्प करने लगा, कि—अब मैं इन तेज आदि तीन देवताओंमें इस जीवरूपसे प्रवेश करके तेज, जल और अन्नरूप भूतोंकी मात्रारूप बुद्धि आदिके संसर्गसे विशेष विज्ञान—युक्त होता हुआ नाम और रूपोंको विशेषरूपसे स्पष्ट करदूँ ॥ २ ॥

तासां त्रिवृतं त्रिवृतमेकैकां करवाणीति सेयं देवतेमास्तिस्रो देवता अनेनैव जीवेनात्मनाऽनुप्रविश्य नामरूपे व्याकरोत् ॥ ३ ॥

अन्वय और पदार्थ—(तासाम्) उनमेंके (एकैकाम्) एक एकको (त्रिवृतम् त्रिवृतम्) तीन तीन प्रकार वाला (करवाणि) करूँ (इति) ऐसा सङ्कल्प करके (सा, इयम्, देवता) वह यह देवता (अनेन, एव) इस ही (जीवेन, आत्मना) जीवरूपसे (इमाः, तिस्रः, देवताः) इन देवताओं के प्रति (अनुप्रविश्य) अनुप्रवेश करके (नामरूपे) नाम और रूपोंको (व्याकरोत्) विशेषरूपसे स्पष्ट करता हुआ ३

भावार्थ—उन तीनों देवताओंमेंके एक २ के गुणोंकी प्रधानताके अनुसार तीन २ प्रकारका करूँ ऐसा सङ्कल्प करके उस सत् नाम वाले देवताने तेज आदि तीनों देवताओंमें इस जीवरूपसे ही अर्थात् प्रथम विराट्के पिण्डमें फिर देवता आदिके पिंडमें सूर्यके बिम्बकी समान अनुप्रवेश करके सङ्कल्प के अनुसार नाम और रूपोंको विशेष रूपसे स्पष्ट कर दिया

तासां त्रिवृतं त्रिवृतमेकैकामकरोद्यथा नु खलु सोम्येमास्तिस्रो देवतास्त्रिवृत्त्रिवृदेकैका भवति तन्मे विजानीहीति ॥ ४ ॥

अन्वय और पदार्थ—(तासाम्) उनमेंके (एकैकाम्) एक एकको (त्रिवृतम् त्रिवृतम्) त्रिगुणित २ (अकरोत्) किया (नु) परन्तु (सोम्य) हे प्रियदर्शन (यथा) जिस प्रकार (खलु) प्रसिद्धरूपसे (इमाः) ये (तिस्रः, देवताः) तीन देवता (एकैका) एक २ (त्रिवृत् त्रिवृत्) त्रिगुणित २ (भवति) होता है (तत्) सो (मे) मुझसे (विजानीहि) जान (इति) ऐसा कहा ॥ ४ ॥

भावार्थ—यद्यपि उन तेज, जल और अन्न नामक उन तीन देवताओंमेंसे एक २ को मुख्य गौण भावसे त्रिगुणित २ किया अर्थात् तीनोंको आपसमें मिलाया, परन्तु हे सौम्य ! जिस प्रकार शरीरसे बाहर इन तीनोंमेंके त्रिगुणित हर एक को ज्ञानका विषय अर्थात् जाननेमें आने योग्य किया जाता है उसको मैं उदाहरण देकर स्पष्ट रूपसे कहता हूँ तू समझले ४

॥ षष्ठाध्यायस्य तृतीयः खण्डः समाप्तः ॥

यदग्ने रोहितꣳ रूपं तेजसस्तद्रूपं यच्छुक्लं तदपां यत्कृष्णं तदन्नस्यापागादग्नेरग्नित्वं वाचारम्भणं विकारो नामधेयं त्रीणि रूपाणीत्येव सत्यम् ॥ १ ॥

अन्वय और पदार्थ—(अग्नेः) अग्निका (यत्) जो (रोहितम्) लाल (रूपम्) रूप है (तत्) वह (तेजसः) तेजका (रूपम्) रूप है (यत्) जो (शुक्लम्) श्वेत है (तत्) वह (अपाम्) जलका है (यत्) जो (कृष्णम्) काला है (तत्) वह (अन्नस्य) अन्नका है (अग्नेः) अग्निका (अग्नित्वम्) अग्निपना (अपागात्) जाता रहा (वाचारम्भणम्) वाणीका विषय (विकारः) कार्य (नामधेयम्) नाममात्र है (त्रीणि, रूपाणि, इत्येव) तीन रूप ही (सत्यम्) सत्य है ॥ १ ॥

भावार्थ—अग्नि एक त्रिगुणित मिश्र भूत है, इस त्रिवृत्कृत अग्निका जो लाल रूप है वह अत्रिवृत्कृत तेजका रूप है, जो श्वेत रूप है वह अत्रिवृत्कृत जलका रूप है और जो काला रूप है वह अत्रिवृत्कृत पृथिवीका रूप है, इस प्रकार इन तीनों रूपोंके मिलने पर जो अग्निका रूप माना जाता है उसका अग्नित्व जाता रहा अर्थात् वह वास्तवमें अग्निका रूप नहीं है इस कारण तीनों रूपोंके ज्ञानसे पहले जो तुझे अग्नि बुद्धि थी वह अग्नि बुद्धि गयी और अग्नि शब्द भी गया । वाणीका विषय कार्य (अग्निनाम) कहने भरको है, केवल ये तीनों रूप ही सत्य हैं ॥ १ ॥

यदादित्यस्य रोहितꣳ रूपं तेजसस्तद्रूपं यच्छुक्लं तदपां यत्कृष्णं तदन्नस्यापागादादित्यादादित्यत्वं वाचारम्भणं विकारो नामधेयं त्रीणि रूपाणीत्येव सत्यम् ॥ २ ॥

अन्वय और पदार्थ-(आदित्यस्य) आदित्यका (यत्) जो (रोहितम्) लाल (रूपम्) रूप है (तत्) वह (तेजसः) तेजका रूप है (यत्) जो (शुक्लम्) श्वेत है (तत्) वह (अपाम्) जलका है (यत्) जो (कृष्णम्) काला है (तत्) वह (अन्नस्य) पृथिवीका है (आदित्यस्य) आदित्यका (आदित्यत्वम्) आदित्यपना (अपागात्) चलागया (वाचारम्भणम्) वाणीका विषय (विकारः) कार्य (नामधेयम्) कहने मात्रको है (त्रीणि, रूपाणि, इत्येव) तीन रूप ही (सत्यम्) सत्य हैं ॥ २ ॥

भावार्थ—आदित्यका जो लालरूप है वही अत्रिवृत्कृत तेजका रूप है, जो श्वेत रूप है वह अत्रिवृत्कृत जलका रूप है और जो काला रूप है वह अत्रिवृत्कृत पृथिवीका रूप है, इस कारण तीन रूपोंके मिलानसे उत्पन्न होने वाले आदित्य का आदित्यपना जाता रहा । वाणीका विषय जो (आदित्य यह नाम) कहने मात्रको है, इस कारण 'आदित्य' यह ज्ञान भी मिथ्या ही है, केवल तीनों रूप ही सत्य हैं ॥ २ ॥

यच्चन्द्रमसो रोहितꣳ रूपं तेजसस्तद्रूपं यच्छुक्लं तदपां यत्कृष्णं तदन्नस्यापागाच्चन्द्राच्चन्द्रत्वं

वाचारम्भणं विकारो नामधेयं त्रीणि रूपाणी-त्येव सत्यम् ॥ ३ ॥

अन्वय और पदार्थ–(चन्द्रमसः) चन्द्रमाका (यत्) जो (रोहितम्) लाल (रूपम्) रूप है (तत्) वह (तेजसः) तेजका (रूपम्) रूप है (यत्) जो (शुक्लम्) स्वेत है (तत्) वह (अपाम्) जलका है (यत्) जो (कृष्णम्) काला है (तत्) वह (अन्नस्य) अन्नका है (चन्द्रात्) चन्द्रमामेंसे (चन्द्रत्वम्) चन्द्रमापन (अपागात्) जाता रहा (वाचारम्भणम्) वाणीका विषय (विकारः) कार्य (नामधेयम्) कहने मात्रको है (त्रीणि, रूपाणि, इत्येव) तीनरूप ही (सत्यम्) सत्य हैं ॥ ३ ॥

भावार्थ—चन्द्रमामें जो लाल रूप है वह अत्रिवृत्कृत तेज का रूप है, जो स्वेत रूप है वह अत्रिवृत्कृत जलका रूप है और जो काला रूप है वह अत्रिवृत्कृत पृथिवीका रूप है। इस प्रकार चन्द्रमामेंसे चन्द्रमापन जाता रहा, वाणीका विषय जो कार्य (चन्द्रमा यह नाम) है वह कहने मात्रको है, इस कारण चन्द्रमा यह ज्ञान भी मिथ्या है, तीनों रूपमात्र ही सत्य हैं ॥ ३ ॥

य[illegible]नो रोहितᳬँ रूपं तेजसस्तद्रूपं यच्छुक्लं तदप[illegible]कृष्णं तदन्नस्यापागाद्विद्युतो विद्युत्त्वं वाच[illegible]ं विकारो नामधेयं त्रीणि रूपाणी[illegible]त्येव सत्य[illegible] ॥

अन्वय और पदार्थ—(विद्युतः) बिजलीका (यत्) जो (रोहितम्) लाल (रूपम्) रूप है (तत्) वह (तेजसः) तेजका (रूपम्) रूप है (यत्) जो (शुक्लम्) स्वेत है (तत्) वह (अपाम्) जलका है (यत्) जो (कृष्णम्) काला है (तत्) वह (अन्नस्य) अन्नका है (विद्युतः) बिजलीका (विद्युत्त्वम्) बिजलीपना (अपागात्) गया (वाचारम्भणम्) वाणीका विषय (विकारः) कार्य (नामधेयम्) नाममात्र है (त्रीणि,रूपाणि,इत्येव) तीन रूप ही (सत्यम्) सत्य हैं ।४।

भावार्थ—बिजलीका जो लालरूप है वह तेजका रूप है, जो स्वेत रूप है वह जलका रूप है और जो काला रूप है वह पृथिवीका रूप है, इस प्रकार बिजलीमेंसे बिजलीपना चला गया। वाणीका विषय जो कार्य (बिजली यह नाम) है वह तो कहने मात्रको है वास्तवमें तीनों रूप ही सत्य हैं। इसी प्रकार जल और जौ आदि अन्नमें भी तीन रूप मात्र ही सत्य हैं। सब जगत् त्रिवृत्कृत है इस कारण तीन रूप ही सत्य हैं, जगत्का जगद्भाव सत्य नहीं है। इसी प्रकार पृथिवी जलका कार्य है, इस कारण जल सत्य है, जल तेजका कार्य इस कारण तेज सत्य है, तेज वायुका कार्य है इस कारण वायु सत्य है, वायु आकाशका कार्य है इस कारण आकाश सत्य है और आकाश सत्का कल्पित कार्य है, इस कारण सत् ही सत्य है और वह एक तथा अद्वितीय है। इस प्रकार सब भूत और भौतिक सत्का ही कार्य हैं, इस कारण एक सत्का ज्ञान हो-जाने पर सब विश्वका ज्ञान होजाता है ॥ ४ ॥

एतद्धस्म वै तद्विद्वाꣳस आहुः पूर्वे महाशाला महाश्रोत्रिया न नोऽद्य कश्चनाश्रुतममतमविज्ञात-मुदाहरिष्यतीति ह्येभ्यो विदाञ्चक्रुः ॥ ५ ॥

अन्वय और पदार्थ—(तत्) तिस (एतत्) इसको (विद्वांसः) जानने वाले (पूर्वे) पूर्वके (वै) प्रसिद्ध (महा-शालाः) महागृहस्थ (महाश्रोत्रियाः) बड़े भारी श्रोत्रिय (आहुः) कहते हुए (न) हममें (अद्य) आज (कश्चन) कोई भी (अश्रुतम्) न सुने हुएको (अमतम्) न मनन किये हुएको (अविज्ञातम्) न निश्चय किये हुएको (न) नहीं (उदाहरिष्यति) कहेगा (हि) क्योंकि (एभ्यः) इनसे (विदाञ्चक्रुः) जान गये हैं ॥ ५ ॥

भावार्थ-इन अग्नि आदिके दृष्टान्तसे सकल जगत्के परम कारण सत्स्वरूप ब्रह्मको जान कर महागृहस्थ और वेदके ज्ञाता हमारे पूर्वपुरुष कह गये हैं, कि—इस समय हमारे कुलमें कोई भी किसीसे बिना सुने, बिना मनन किये हुए और बिना जाने हुए वस्तुको नहीं कहेंगे, क्योंकि-वह इन लोहित आदि तीनों रूपोंसे परमकारणको जान गये हैं ॥ ५ ॥

यदु रोहितमिवाभूदिति तेजसस्तद्रूपमिति तद्वि-दाञ्चक्रुर्यदु शुक्लमिवाभूदित्यपाꣳ रूपमिति तद्वि-दाञ्चक्रुर्यदु कृष्णमिवाभूदित्यन्नस्य रूपमिति तद्वि-दाञ्चक्रुः ॥ ६ ॥

अन्वय और पदार्थ-(यत्, उ) जो कुछ (रोहितम्, इव,

अभूत्) लालसा था (इति, तत्) ऐसा वह (तेजसः, रूपम् इति, तत्) तेजका रूप है इस प्रकार उसको (विदाञ्चक्रुः) जानते हुए (यत्, उ) जो कुछ (शुक्लम्, इव, अभूत्) स्वेतसा था (इति) यह (अपाम्, रूपम्) जलका रूप है (इति) ऐसा (तत्) उसको (विदाञ्चक्रुः) जानते हुए (यत्, उ) जो कुछ (कृष्णम्, इव) कालासा (अभूत्) था (इति) यह (अन्नस्य, रूपम्) अन्नका रूप है (इति) ऐसा (तत्) उसको (विदाञ्चक्रुः) जानते हुए ॥ ६ ॥

भावार्थ--ब्रह्मवेत्ताओंने सृष्टिमें विविधप्रकारके रूपों वाले जो कुछ भी पदार्थ देखे, उनमें जो लालसा था उस सबको तेजका रूप, जो स्वेतसा था उसको जलका रूप और जो कालासा था उसको पृथिवीका रूप जाना ॥ ६ ॥

यद्विज्ञातमिवाभूदित्येतासामेव देवतानाꣳसमास इति तद्विदाञ्चक्रुर्यथा नु खलु सोम्येमास्तिस्रो देवताः पुरुषं प्राप्य त्रिवृत्त्रिवृदेकैका भवति तन्मे विजानीहीति ॥ ७ ॥

अन्वय और पदार्थ-(यत्, उ) जो कुछ (अविज्ञातम् इव) न जाना हुआसा (अभूत्) था (इति) यह (एतासाम्, एव) इन ही (देवतानाम्) देवताओंका (समासः, इति) समुदाय है ऐसा (तत्) उसको (विदाञ्चक्रुः) जानते हुए (सोम्य) हे प्रियदर्शन (यथा, नु) जैसे (खलु) प्रसिद्ध (इमाः, तिस्रः, देवताः) ये तीन देवता (पुरुषम्) पुरुषको (प्राप्य) प्राप्त होकर (एकैकाः) प्रत्येक (त्रिवृत्, त्रिवृत्)

त्रिगुण त्रिगुण (भवति) होता है (तत्) उसको (मे) मुझसे (विजानीहि) जान (इति) ऐसा कहा ॥ ७ ॥

भावार्थ—द्वीपान्तरसे लाया हुआ विलक्षण पक्षी आदि जो कुछ अविज्ञातसा (मानो कभी देखा ही नहीं ऐसा) प्रतीत हुआ उसको भी तेज आदि इन तीन देवताओंका समुदाय-रूप ही जाना । अब हे सोम्य! जिस प्रकार ये प्रसिद्ध तीनों देवता मनुष्य शरीरको पाकर प्रत्येक त्रिगुण त्रिगुण होजाते हैं, इस विषयको मैं स्पष्टरूपसे कहता हूँ, तू समझले, ऐसा उद्दालकने कहा ॥ ७ ॥

॥ षष्ठाध्यायस्य चतुर्थः खण्डः समाप्तः ॥

अन्नमशितं त्रेधा विधीयते तस्य यः स्थविष्ठो धातुस्तत्पुरीषं भवति यो मध्यमस्तन्माꣳसं योऽणिष्ठस्तन्मनः ॥ १ ॥

अन्वय और पदार्थ--(अन्नम्) अन्न (अशितम्) खाया हुआ (त्रेधा) तीन प्रकार (विधीयते) किया जाता है (तस्य) उसका (यः, स्थविष्ठः, धातुः) जो अधिक स्थूल भाग है (तत्, पुरीषम्, भवति) वह विष्ठा होजाता है (यः, मध्यमः) जो मध्यम भाग है (तत्, मांसम्) वह मांस होजाता है (यः, अणिष्ठः) जो अतिसूक्ष्म भाग है (तत्, मनः, भवति) वह मन बन जाता है ॥ १ ॥

भावार्थ--जो अन्न खाया जाता है वह जठराग्निसे पच्य-मान होकर तीन भागोंमें बट जाता है । उसका जो अतिस्थूल भाग होता है वह विष्ठा बन जाता है, जो मध्यम (न अति

स्थूल न अति सूक्ष्म) भाग होता है वह रस आदि क्रमसे परिणामको प्राप्त होकर मांस बन जाता है और उसका जो अतिसूक्ष्म भाग होता है वह सूक्ष्म नाड़ियोंमें प्रवेश करके वाक् आदि कारणोंकी स्थितिको उत्पन्न करता हुआ ऊपरको जाते२ हृदयमें पहुँचकर मन बन जाता है अर्थात् मनको पुष्टि देता है १

आपः पीतास्त्रेधा विधीयन्ते तासां यः स्थविष्ठो धातुर्मूत्रं भवति यो मध्यमस्तल्लोहितं योऽणिष्ठः सः प्राणः ॥ २ ॥

अन्वय और पदार्थ-(आपः) जल (पीताः) पिए हुए (त्रेधा, विधीयन्ते) तीन भागमें विभक्त किये जाते हैं (तासाम्) उनका (यः, स्थविष्ठः, धातुः) जो अधिक स्थूल भाग होता है (तत्, मूत्रम्) वह मूत्र (यः, मध्यमः) जो मध्यम भाग होता है (तत्, लोहितम्) वह रुधिर (यः, अणिष्ठः) जो अति सूक्ष्म भाग होता है (सः, प्राणः, भवति) वह प्राण होजाता है२

भावार्थ-जो जल पिया जाता है वह जठराग्निसे पच्यमान होकर तीन भागमें बट जाता है। उसका जो अति स्थूल भाग होता है वह मूत्र होजाता है जो मध्यम भाग होता है वह रुधिर बन जाता है और जो अति सूक्ष्म भाग होता है वह प्राण बन जाता है ॥ २ ॥

तेजोऽशितं त्रेधा विधीयते तस्य यः स्थविष्ठो धातुस्तदस्थि भवति यो मध्यमः स मज्जा योऽणिष्ठः स वाक् ॥ ३ ॥

अन्वय और पदार्थ--(तेजः) तेज (अशितम्) भक्षण किया हुआ (त्रेधा, विधीयते) तीन भाग होजाता है (तस्य, यः, स्थविष्ठः, धातुः) उसका जो अतिस्थूल अंश होता है (तत् अस्थि) वह हड्डी (यः मध्यमः) जो मध्यम भाग होता है (सः मज्जा) वह मज्जा (यः अणिष्ठः) जो अतिसूक्ष्म भाग होता है (सः, वाक्) वह वाणी (भवति) होजाता है ३

भावार्थ–जो तेल घी आदि तैजस पदार्थ खाया जाता है वह जठराग्निसे पच्यमान होकर तीन भागमें बट जाता है। उसका जो अतिस्थूल भाग होता है वह हड्डी बन जाता है, जो मध्यम भाग होता है वह मज्जा कहिये हड्डीकी मींग वा हड्डीके भीतर रहने वाली चिकनी वस्तु बन जाता है और जो अति-सूक्ष्म भाग होता है वह वाणी बन जाता है ॥ ३ ॥

अन्नमयꣳहि सोम्य मन आपोमयः प्राणस्ते-जोमयी वागिति भूय एव मा भगवान् विज्ञापय-त्विति तथा सोम्येति होवाच ॥ ४ ॥

अन्वय और पदार्थ–(सोम्य) हे प्रियदर्शन (हि) निश्चय (मनः) मन (अन्नमयम्) अन्नका कार्य है (प्राणः) प्राण (आपोमयः) जलका कार्य है (वाक्) वाणी (तेजोमयी) तेजका कार्य है (इति) यह ठीक है (भूयः, एव) फिर भी (भगवान्) आप (माम्) मुझको (विज्ञापयतु) समझावें (इति) ऐसा कहा (सोम्य) हे प्रियदर्शन (तथा) ऐसा ही हो (इति, ह) ऐसा स्पष्ट (उवाच) बोला ॥ ४ ॥

भावार्थ–हे सोम्य ! अन्नका मन, जलका कार्य प्राण और

तेजका कार्य वाणी है । पुत्रने कहा, कि—हे पिताजी ! यह सब दृष्टान्त देकर मुझे फिर समझाइये । पिताने कहा, कि—हे पुत्र ! बहुत अच्छा ॥ ४ ॥

॥ षष्ठाध्यायस्य पञ्चमः खण्डः समाप्तः ॥

दध्नः सोम्य मथ्यमानस्य योऽणिमा स ऊर्ध्वः समुदीषति तत्सर्पिर्भवति ॥ १ ॥

अन्वय और पदार्थ—(सोम्य) हे प्रियदर्शन (मथ्यमानस्य) मथे जाते हुए (दध्नः) दहीका (यः) जो (अणिमा) सूक्ष्मभाग है (सः) वह (ऊर्ध्वः) ऊपर (समुदीषति) इकट्ठा होता है (तत्) वह (सर्पिः) घी (भवति) होता है

भावार्थ—हे सोम्य ! मथे जाते हुए दहीका जो सूक्ष्म भाग होता है वह ऊपरको आ इकट्ठा होकर माखनके रूपमें आकर घी होजाता है ॥ १ ॥

एवमेव खलु सोम्यान्नस्याश्यमानस्य योऽणिमा स ऊर्ध्वः समुदीषति तन्मनो भवति ॥ २ ॥

अन्वय और पदार्थ—(सोम्य) हे प्रियदर्शन (खलु) निःसन्देह (एवमेव) इसी प्रकार (अश्यमानस्य) खाये जाते हुए (अन्नस्य) अन्नका (यः) जो (अणिमा) सूक्ष्मभाग है (सः) वह (ऊर्ध्वः) ऊपर (समुदीषति) इकट्ठा होता है (तत्) वह (मनः) मन (भवति) होता है ॥२॥

भावार्थ—हे प्रियदर्शन ! इस प्रकार ही निःसन्देह खाये हुए अन्नका जो सूक्ष्मभाग है वह ऊपरको उठता हुआ इकट्ठा होकर मन होजाता है अर्थात् मनके अवयवोंके साथ मिलकर मनको पुष्टि देता है ॥ २ ॥

अपाᳬ सोम्य पीयमानानां योऽणिमा स ऊर्ध्वः समुदीषति स प्राणो भवति ॥ ३ ॥

अन्वय और पदार्थ—(सोम्य) हे प्रियदर्शन (पीयमानानाम्) पिये जाते हुए (अपाम्) जलोंका (यः) जो (अणिमा) सूक्ष्मभाव है (सः) वह (ऊर्ध्वः) ऊपर (समुदीषति) इकट्ठा होता है (सः) वह (प्राणः) प्राण (भवति) होता है

भावार्थ—हे सोम्य ! पिये हुए जलका जो सूक्ष्म भाग है वह ऊँचा होता हुआ इकट्ठा होकर ऊपर आ जाता है और प्राण कहलाने लगा है ॥ ३ ॥

तेजसः सोम्याश्यमानस्य योऽणिमा स ऊर्ध्वः समुदीषति सा वाग्भवति ॥ ४ ॥

अन्वय और पदार्थ—(सोम्य) हे प्रियदर्शन (अश्यमनस्य) खाये हुए (तेजसा) तेजका (यः) जो (अणिमा) सूक्ष्म-भाग है (सः) वह (ऊर्ध्वः) ऊपर (समुदीषति) इकट्ठा होता है (सा) वह (वाक्) वाणी (भवति) होती है ।४।

भावार्थ—हे प्रियदर्शन ! खाये हुए घी आदि तैजस पदार्थों का जो सूक्ष्मभाग है वह ऊँचा होता हुआ इकट्ठा होकर ऊपर आजाता है और वाणी कहलाता है ॥ ४ ॥

अन्नमयᳬ हि सोम्य मन आपोमयः प्राण-स्तेजोमयी वागिति भूय एव मा भगवान् विज्ञा-पयत्विति तथा सोम्येति होवाच ॥ ४ ॥

अन्वय और पदार्थ—(सोम्य) हे प्रियदर्शन (हि) निश्चय

(मनः) मन (अन्नमयम्) अन्नका कार्य है (प्राणः) प्राण (आपोमयः) जलका कार्य है (वाक्) वाणी (तेजोमयी) तेजका कार्य है (इति) ऐसा है (भूयः, एव) फिर भी (भगवान्) आप (माम्) मुझको (विज्ञापयतु) समझावें (इति) ऐसा कहा (सोम्य) हे प्रियदर्शन (तथा) ऐसा ही होगा (इति, ह) ऐसा स्पष्ट (उवाच) बोला ॥ ४ ॥

भावार्थ—हे प्रियदर्शन ! मन अन्नका कार्य है, प्राण जल का कार्य है और वाणी तेजका कार्य है । यह मेरा कथन ठीक ही है । अन्नके रससे मनका पोषण किस प्रकार होता है, यह सब श्वेतकेतुकी समझमें नहीं आया, इस कारण उसने कहा, कि—हे पिताजी ! कोई दृष्टान्त देकर मुझे मनका अन्नमय-पना समझाइये ! इस पर उद्दालकने कहा, कि—हे सोम्य ! कहता हूँ, सुन ॥ ४ ॥

॥ षष्ठाध्यायस्य षष्ठः खण्डः समाप्तः ॥

षोडशकलः सोम्य पुरुषः पञ्चदशाहानि माऽशीः काममयः पिबाऽऽपोमयः प्राणो न पिबतो विच्छे-त्स्यत इति ॥ १ ॥

अन्वय और पदार्थ—(सोम्य) हे प्रियदर्शन (पुरुषः) पुरुष (षोडशकलः) सोलह कलाओं वाला है, (पञ्चदश, अहानि) पन्द्रह दिन (मा, अशीः) अन्न न खा (अपः) जलको (कामम्) यथेष्ट (पिब) पी (प्राणः) प्राण (आपो-मयः) जलमय है, (न, पिबतः) न पीते हुए (विच्छेत्स्यते) निकल जायगा (इति) यह निश्चय है ॥ १ ॥

भावार्थ-खाये हुए अन्नका जो अत्यन्त सूक्ष्मभाग है उससे वृद्धिको प्राप्त हुई मनकी शक्ति सोलह भागोंमें बटजाती है और वह पुरुषकी कलायें कहलाती हैं । हे प्रियदर्शन ! पुरुष सोलह कलाओं वाला है, इस बातको प्रत्यक्ष करना चाहता हो तो पन्द्रह दिन तक भोजन न कर, परन्तु जल यथेच्छ पी, क्योंकि प्राण जलका कार्य है, अतः यदि तू जल नहीं पियेगा तो तेरा प्राण निकल जायगा ॥ १ ॥

स ह पञ्चदशाऽऽहानि नाशाऽथ हैनमुपससाद किं ब्रवीमि भो इत्यृचः सोम्य यजूꣳषि सामानीति स होवाच न वै मा प्रतिभान्ति भो इति २

अन्वय और पदार्थ—(सः, ह) वह (पञ्चदश, अहानि) पन्द्रह दिन तक (न, आश) न खाता हुआ (अथ, ह) इसके अनन्तर (एनम्, उपससाद) इनके पास आपहुँचा (भोः) हे भगवन् (किं, ब्रवीमि) क्या कहूँ (इति) ऐसा कहा (सोम्य) हे प्रियदर्शन (ऋचः) ऋचायें (यजूंषि) यजु (सामानि) साम (इति) ऐसा कहा (भोः) हे भगवन् (वै) निश्चय (माम्) मुझको (न) नहीं (प्रतिभान्ति) प्रतीत होती हैं (इति) ऐसा (सः ह) वह (उवाच) बोला ॥ २ ॥

भावार्थ-मनके अन्नमयपनेको प्रत्यक्ष करना करना चाहते हुए श्वेतकेतुने पन्द्रह दिनतक भोजन नहीं किया और सोलहवें दिन पिताके समीप आकर कहा, कि-हे भगवन् ! मैं क्या बोलूँ ? पिताने कहा, कि-हे सोम्य ! ऋक्, यजु और साम

को कहो इस पर पुत्रने कहा, कि-ऋक्, आदि तो मेरे मनमें प्रतीत ही नहीं होते ॥ २ ॥

तथँ होवाच यथा सोम्य महतोऽभ्याहितस्यै-कोऽङ्गारः खद्योतमात्रः परिशिष्टः स्यात्तेन ततोऽपि न बहु दहेदेवथँसोम्य ते षोडशानां कलानामेका कलाऽतिशिष्टा स्यात्तयैतर्हि वेदान्नानुभवस्यशानाथ मे विज्ञास्यसीति ॥ ३ ॥

अन्वय और पदार्थ—(तम्, ह) उसके प्रति (उवाच) बोला (सोम्य) हे प्रियदर्शन (यथा) जैसे (महतः) बड़े (अभ्याहितस्य) पढे हुएका (खद्योतमात्रः) पटबीजनेकी समान (एकः) एक (अङ्गारः) अङ्गारा (परिशिष्टः,स्यात्) शेष रहा हो (तेन) उसके द्वारा (ततः) उससे [ईषत्] थोड़ेको (अपि) भी (न) नहीं (दहेत्) जलावेगा (बहु) बहुतको [कुतः] कहाँसे (एवम्) उसी प्रकार (सोम्य) हे प्रियदर्शन (ते) तेरी (षोडशानाम्, कलानाम्) सोलह कलाओंमेंकी (एका, कला, अतिशिष्टा, स्यात्) एक कला शेष रही होगी (तया) उसके द्वारा (एतर्हि) इस समय (वेदान्) वेदोंको (न) नहीं (अनुभवसि) अनुभव करता है (अशान) भोजन कर (अथ) तदनन्तर (मे) मेरी बात को (विज्ञास्यसि) जानेगा (इति) ऐसा कहा ॥ ३ ॥

भावार्थ—उससे पिताने कहा, कि-हे सोम्य ! जिस प्रकार जिसमें बहुतसा काठ जल चुका है इस कारण जो बहुत ही

बढ़ गया है ऐसा अग्नि जब शान्त होने लगा और उसकी पटबीजनेकी समान एक चिनगारी शेष रह गयी, वह चिनगारी जब जरासे ईंधनको ही नहीं जला सकती तो बहुतसे को कैसे जला सकेगी ? इसी प्रकार हे सोम्य ! तेरी भी सोलह कलाओंमेंसे एक ही कला शेप रह गयी है, इस कारण ही उस क्षीण कलाके द्वारा इस समय तुझे पढ़े हुए वेद भी स्मरण नहीं आते "अब तू पहले जाकर भोजन कर, तदनन्तर मेरे पास आना तो तू मेरे उपदेशको सुन कर सब तत्त्व जान सकेगा ।"

स हाऽऽशाथ हैनमुपससाद तꣳ ह यत्किञ्च पप्रच्छ सर्वꣳ ह प्रतिपेदे ॥ ४ ॥

अन्वय और पदार्थ—(सः) वह (आश) भोजन करता हुआ (अथ) तदनन्तर (एनम्, उपससाद, ह) इनके समीप आया (तम्, ह) उसके प्रति (यत्, किञ्च) जो कुछ भी (पप्रच्छ) पूछता हुआ (सर्वम्, ह) सब ही (प्रतिपेदे) जानता हुआ ॥ ४ ॥

भावार्थ—पुत्रने पिताकी बात सुन कर भोजन किया और फिर पिताके पास आया, उस समय उसके पिताने जो कुछ भी पूछा, उस सबका उसने ठीक २ उत्तर देदिया ॥ ४ ॥

तꣳ होवाच यथा सोम्य महतोऽभ्याहितस्यैकमङ्गारं खद्योतमात्रं परिशिष्टं तं तृणैरुपसमाधाय प्रज्वालयेत्तेन ततोऽपि बहु दहेत् ॥ ५ ॥

अन्वय और पदार्थ—(तम्, ह) उसके प्रति (उवाच) बोला (सोम्य) हे प्रियदर्शन (यथा) जैसे (महतः) बड़े

(अभ्याहितस्य) वृद्धिको प्राप्त हुएको (परिशिष्टम्) बचे हुए (खद्योतमात्रम्) पटबीजनेकी समान (तम्, एकम्, अंगारम्) उस एक अंगारेको (तृणैः, उपसमाधाय) तिनुकोंसे युक्त करके (प्रज्वालयेत्) प्रज्वलित कर लेय (तेन) उसके द्वारा (ततः, अपि, बहु) उससे भी अधिकको (दहेत्) जला डाले ॥ ५ ॥

भावार्थ—पिताने कहा, हे सोम्य ! जिस प्रकार बड़े भारी ईंधनसे बढ़ कर शान्त होते हुए अग्निकी पटबीजनेकी समान बची हुई उस एक चिनगारीमें तृणोंका पूला लगा कर प्रज्वलित कर लिया जाय तो उसके द्वारा पहिलेसे भी अधिक ईंधन का ढेर जल जायगा ॥ ५ ॥

एवꣳ सोम्य ते षोडशानां कलानामेका कलाऽतिशिष्टाऽभूत्साऽन्नेनोपसमाहिता प्राज्वालीत्तयैतर्हि वेदाननुभवस्यन्नमयꣳ हि सोम्य मन आपोमयः प्राणस्तेजोमयी वागिति तद्धास्य विजज्ञाविति विजज्ञाविति ॥ ६ ॥

अन्वय और पदार्थ—(सोम्य) हे प्रियदर्शन (एवम्) इसी प्रकार (ते) तेरी (षोडशानाम्, कलानाम्) सोलह कलाओंमेंसे (एका, कला) एक कला (अतिशिष्टा, अभूत्) शेष रह गयी थी (सा, अन्नेन, उपसमाहिता) वह अन्नसे युक्त होती हुई (प्राज्वालीत्) प्रज्वलित होगयी (तया) उस के द्वारा (एतर्हि) इस समय (वेदान्, अनुभवसि) वेदोंका अनुभव कर रहा है (सोम्य) हे प्रियदर्शन (हि) निश्चय

(मनः) मन (अन्नमयम्) अन्नका कार्य है (प्राणः) प्राण (आपोमयः) जलका कार्य है (वाक्) वाणी (तेजोमयी) तेजका कार्य है (इति) इस प्रकार (अस्य) इन उद्दालकके (तत्) उस अन्नमयादिपनेको (विजज्ञौ) जान गया ॥६॥

भावार्थ—हे प्रियदर्शन ! इसी प्रकार पन्द्रह दिन पर्यन्त भोजन न करनेसे तेरी सोलह कलाओंमेंकी एक कला शेष रह गयी थी, वही अन्नसे वृद्धिको प्राप्त होती हुई प्रज्वलित होगयी, उसके द्वारा ही इस समय तू वेदोंको जान रहा है, हे सोम्य ! जिस प्रकार मन अन्नका कार्य सिद्ध होगया इस प्रकार ही प्राण जलका कार्य है और वाणी तेजका कार्य है, अपने पिताके इस उपदेशसे वह श्वेतकेतु मन आदिके अन्नमयादिपनेको समझ गया ॥ ६ ॥

॥ षष्ठाध्यायस्य सप्तमः खण्डः समाप्तः ॥

उद्दालको हाऽऽरुणिः श्वेतकेतुं पुत्रमुवाच स्वप्नान्तं मे सोम्य विजानीहीति यत्रैतत्पुरुषः स्वपिति नाम सता सोम्य तदा सम्पन्नो भवति स्वमपीतो भवति तस्मादेनꣳ स्वपितीत्याचक्षते स्वꣳ ह्यपीतो भवति ॥ १ ॥

अन्वय और पदार्थ—(आरुणिः) अरुणका पुत्र (ह) प्रसिद्ध (उद्दालकः) उद्दालक (श्वेतकेतुम् , पुत्रम्) श्वेतकेतु नाम वाले पुत्रके प्रति (इति) इस प्रकार (उवाच) बोला (सोम्य) हे प्रियदर्शन (मे) मुझसे (स्वप्नान्तम्) सुषुप्तिके स्वरूपको (विजानीहि) जान (यत्र) जब (एतत्

पुरुषः) यह पुरुष (स्वपिति) सोता है (नाम) इस नाम वाला होता है (सोम्य) हे प्रियदर्शन (तदा) उस समय (सता, सम्पन्नः, भवति) परमात्माके साथ एकताको प्राप्त हुआ होजाता है (स्वम्, अपीतः, भवति) अपनेको प्राप्त हुआ होता है (तस्मात्) तिससे (एनम्) इसको (स्वपिति) सोता है (इति) ऐसा (आचक्षते) कहते हैं (हि) क्योंकि (स्वम्, अपीतः, भवति) अपने स्वरूपको प्राप्त हुआ होता है ॥ १ ॥

भावार्थ—अब सुषुप्तिमें मनका लय होने पर जीवको जो सत् की प्राप्ति होती है उसका वर्णन करते हुए कहते हैं, कि—दर्पण में प्रतिबिम्बरूपसे पुरुषके अनुप्रवेशकी समान, मनमें जीवरूप से पुरुषका अनुप्रवेश होता है उस मनका लय होजाने पर वह जीव अपने ब्रह्म—रूपको ही प्राप्त होता है, इस बातका उपदेश करनेकी इच्छासे अरुणके पुत्र प्रसिद्ध उद्दालक मुनिने अपने पुत्र श्वेतकेतुसे कहा, कि—हे सोम्य ! मेरे कथनको सुन कर सुषुप्तिके स्वरूपको अच्छे प्रकारसे जानले, हे प्रियदर्शन ! जिस समय पुरुष सोता है और 'स्वपिति' ऐसा कहलाता है उस समय वह सत्स्वरूप परमात्माके साथ एकीभावको प्राप्त होजाता है । जीवभावको त्याग कर अपने सत्रूपको पाजाता है, इस कारण ही इसको 'स्वपिति' सोता है ऐसा लौकिक पुरुष कहते हैं, उस समय यह आत्मस्वरूपको ही प्राप्त होता है ।१।

स यथा शकुनिः सूत्रेण प्रबद्धो दिशं दिशं पतित्वाऽन्यथाऽऽयतनमलब्ध्वा बन्धनमेवोपश्रयत एवमेव खलु सोम्य तन्मनो दिशं दिशं पतित्वा-

न्यत्राऽऽयतनमलब्ध्वा प्राणमेवोपश्रयते प्राणबंधनं हि सोम्य मन इति ॥ २ ॥

अन्वय और पदार्थ—(यथा) जैसे (सः) वह (शकुनिः) पक्षी (सूत्रेण, प्रबद्धः) डोरेसे बँधा हुआ (दिशम्, दिशम्, पतित्वा) प्रत्येक दिशामेंको उड़ कर (अन्यत्र) और ठिकाने (आयतनम्) आश्रयको (अलब्ध्वा) न पाकर (बन्धनम्, एव, उपश्रयते) बन्धनका ही आश्रय लेता है (सोम्य) हे प्रियदर्शन (खलु) निःसन्देह (एवम्, एव) इस प्रकार ही (तत्) वह प्रसिद्ध (मनः) मन (दिशम्, दिशम्, पतित्वा) प्रत्येक दिशामेंको जाकर (अन्यत्र) और स्थानमें (आयतनम्, अलब्ध्वा) आश्रयको न पाकर (प्राणम्, एव) प्राण को ही (उपश्रयते) आश्रयरूपसे प्राप्त होता है (हि) क्योंकि (सोम्य) हे प्रियदर्शन (मनः) मन (प्राणबन्धनम्) प्राण-रूप बन्धन वाला है (इति) ऐसा जान ॥ २ ॥

भावार्थ—जिस प्रकार बाज पक्षी पक्षिघातक शिकारीके हाथ मेंके डोरेमें बँधा हुआ हो उससे छूटनेके लिये इधर उधर सब दिशाओंमेंको उड़ता है और उस बन्धनसे अन्य ठिकाने आश्रय न पाकर उस बन्धनके आश्रय पर ही फिर आ बैठता है, इसी प्रकार हे सोम्य ! प्रसिद्ध मनरूप उपाधि वाला जीव अविद्या, काम और कर्मके कारण जाग्रत्स्वप्नमें दुःखादिरूप प्रत्येक दशा का अनुभव करके ब्रह्मके सिवाय अन्य किसी स्थानमें विश्राम न पाकर फिर ब्रह्मका ही आश्रय लेता है । हे सोम्य ! ब्रह्म-रूप बन्धन वाला ही मन जीव है ॥ २ ॥

अशनापिपासे मे सोम्य विजानीहीति यत्रै-तत्पुरुषोऽशिशिषति नामाऽप एव तदशितं नयन्ते तद्यथा गोनायोऽश्वनायः पुरुषनाय इत्येवं तदप आचक्षतेऽशनायेति तत्रैतच्छुङ्गमुत्पतितꣳ सोम्य विजानीहि नेदममूलं भविष्यतीति ॥ ३ ॥

अन्वय और पदार्थ -(सोम्य) हे प्रियदर्शन (अशना-पिपासे) भूख प्यासको (मे) मुझसे (विजानीहि) भले प्रकार जान (इति) यह कहा (यत्र) जब (एतत्पुरुषः) यह पुरुष (अशिशिषति नाम) खाना चाहता है (तत् ,अशि-तम्) उस खाये हुएको (आपः, एव) जल ही (नयन्ते) लेजाते हैं (तत्) सो (यथा) जैसे (गोनायः) गौओंको लेजाने वाला ग्वाला (अश्वनायः) घोड़ोंको लेजाने वाला चाबुकसवार (पुरुषनायः) मनुष्योंको लेजाने वाला सेनापति (इति) ऐसा कहलाता है (एवम्) इसी प्रकार (तत्) उस (अपः) जलको (अशनायः) अन्नको लेजाने वाला है (इति) ऐसा (आचक्षते) कहते हैं (सोम्य) हे प्रियदर्शन (तत्र) तहाँ (एतत्) इस (उत्पतितम्) उत्पन्न हुए (शुङ्गम्) कार्यको (विजानीहि) जान (एतत्) यह (अमूलम्) विना कारणका (न) नहीं (भविष्यति) होगा (इति) इस कारणसे ।३।

भावार्थ—हे सोम्य ! मैं कहता हूँ उसके अनुसार भूख और प्यासके स्वरूपको जानले । खाने और पीनेकी इच्छा पुरुषके अधीन नहीं है । जब जीव भोजन करना चाहता है उस समय जलाभिमानिनी देवता ही उसकी भोजनकी इच्छाको उत्पन्न

करती हुई भोजन करा कर खाये हुए अन्नको तेजके संयोग रसादि रूपमें परिणत कर देती है। जिस प्रकार गोनाय शब्द से गौओंको लेजाने वाला ग्वाला, अश्वनाय शब्दसे घोड़ोंका नेता और पुरुषनाय शब्दसे मनुष्यका नेता समझा जाता है, इसी प्रकार अशनाय शब्दसे भोजनका परिचालक जल समझा जाता है। यह शरीर अङ्कुररूपसे उत्पन्न हुआ है, जब यह कार्यरूप है तो यह किसी कारणके विना नहीं होसकता ।३।

तस्य क्व मूलथ्ँ स्यादन्यत्रान्नादेवमेव खलु सोम्यान्नेन शुङ्गेनापो मूलमन्विच्छाद्भिः सोम्य शुङ्गेन तेजोमूलमन्विच्छ तेजसा सोम्य शुङ्गेन सन्मूलमन्विच्छ सन्मूलाः सोम्येमाः सर्वाः प्रजाः सदायतनाः सत्प्रतिष्ठाः ॥ ४ ॥

अन्वय और पदार्थ—(तस्य) उसकी (मूलम्) मूल (अन्नात् ,अन्यत्र) अन्नसे अन्य स्थानमें (क्व) कहाँ (स्यात्) हो (सोम्य) हे प्रियदर्शन (खलु) निश्चय (एवमेव) इसी प्रकार (अन्नेन, शुङ्गेन) अन्न रूप कार्यसे (अपोमूलम्) जलरूप मूलको (अन्विच्छ) जान (सोम्य) हे प्रियदर्शन (अद्भिः, शुङ्गेन) जलरूप कार्यके द्वारा (तेजोमूलम्) तेजरूप मूलको (अन्विच्छ) जान (सोम्य) हे प्रियदर्शन (तेजसा, शुङ्गेन) तेजरूप कार्यके द्वारा (सन्मूलम्) सत्-रूप मूलको (अन्विच्छ) जान (सोम्य) हे प्रियदर्शन ! (इमाः, सर्वाः, प्रजाः) ये सब प्रजायें (सन्मूलाः) सत्रूप

मूल वाली (सदायतनाः) सत्रूप आश्रयवाली (सत्प्रतिष्ठाः) सत्रूप परिशेष वाली [सन्ति] हैं ॥ ४ ॥

भावार्थ—इस शरीरका मूल अन्नके सिवाय और किस स्थानमें होसकता है ! अन्नमें ही होसकता है, क्योंकि–पुरुष के खाये हुए अन्नका वीर्य बनता है, और स्त्रीके खाये हुए अन्नका परिणाम रज होता है, उस वीर्य और रजसे ही शरीर की उत्पत्ति होती है, हे सोम्य ! इस प्रकार निःसन्देह अन्नरूप कार्यसे जलरूप मूलको जान, जलरूप कार्यसे तेजरूप मूलको जान और तेजरूप कार्यसे एक अद्वितीय सत्रूप मूलको जान। हे सोम्य ! यह सब प्रजा सत्रूप वाली है स्थितिकालमें सत्रूप आश्रय वाली है और अन्तमें सत्रूपमें लय होजाने वाली है ॥ ४ ॥

अथ यत्रैतत्पुरुषः पिपासति नाम तेज एव तत्पीतं नयते तद्यथा गोनयोऽश्वनायः पुरुषनाय इत्येवं तत्तेज आचष्ट उदन्येति तत्रैतदेव शुङ्गमुत्पतितꣳ सोम्य विजानीहि नेदममूलं भविष्यतीति ॥५॥

अन्वय और पदार्थ–(अथ) और (यत्र) जब (एत-त्पुरुषः) यह पुरुष (पिपासति, नाम) जल पीना चाहता है ऐसा कहलाता है (तत्) उस समय (तेजः, एव) तेज ही (पीतम्) पिये हुएको (नयते) लेजाता है (तत्) सो (यथा) जैसे (गोनायः) गौओंको लेजाने वाला गोनाय (अश्वनायः) घोड़ोंको लेजाने वाला अश्वनाय (पुरुषनायः) पुरुषोंको लेजाने वाला पुरुषनाय (इति, एवम्) इस प्रकार

ही (तत् तेजः) उस तेजको (उदन्य, इति) जलको लेजाने वाला उदन्य इस नामसे (आचष्टे) कहते हैं (सोम्य) हे प्रियदर्शन (तत्र) तहाँ (उत्पतितम्) उत्पन्न हुए (एतत्, एव) इसको ही (शुङ्गम्, विजानीहि) कार्य जान (इदम्) यह (अमूलम्) अमूल (न) नहीं (भविष्यति) होगा (इति) ऐसा जान ॥ ५ ॥

भावार्थ—तदनन्तर जलरूप कार्यके द्वारा सत्रूप मूलका निश्चय कर । जिस समय पुरुष जलको पीना चाहता है, उस समय तेज ही पिये हुए जल आदिको सुखाता हुआ रुधिर और प्राणरूपमें पहुँचा देता है इसमें यह दृष्टान्त है, कि—जैसे गौओं को लेजाने वाला गोनाय घोड़ोंको लेजाने वाला अश्वनाय और पुरुषोंको लेजाने वाला पुरुषनाय कहलाता है, ऐसे ही पिये हुए जल आदिको रुधिर प्राण आदिरूप में लेजानेके कारण लोग तेजको उदन्य (जलको लेजाने वाला) नामसे कहते हैं । हे सोम्य तहाँ जलसे उत्पन्न हुए इस शरीररूपको कार्य ही जान यह कार्य किसी कारणसे ही उत्पन्न हुआ होगा

तस्य क्व मूलꣳ स्यादन्यत्राद्भ्योऽद्भिः सोम्य शुंगेन तेजोमूलमन्विच्छ तेजसा सोम्य शुंगेन सन्मूलमन्विच्छ सन्मूलाः सोम्येमाः सर्वाः प्रजाः सदायतनाः सत्प्रतिष्ठाः । यथा नु खलु सोम्ये-मास्तिस्रो देवताः पुरुषं प्राप्य त्रिवृत्त्रिवृदेकैका भवति तदुक्तं पुरस्तादेव भवत्यस्य सोम्य पुरुष-

स्य प्रयतो वाङ्मनसि सम्पद्यते मनः प्राणे प्राण-स्तेजसि तेजः परस्यां देवतायाम् ॥ ६ ॥

अन्वय और पदार्थ--(तस्य) उसकी (मूलम्) मूल (अद्भ्यः, अन्यत्र) जलसे अन्य स्थानमें (क्व) कहाँ (स्यात्) होगी (सोम्य) हे प्रियदर्शन (अद्भिः, शुङ्गेन) जलरूप कार्य से (तेजोमूलम्) तेजरूप मूलको (अन्विच्छ) जान (सोम्य) हे प्रियदर्शन (तेजसा, शुङ्गेन) तेजरूप कार्यसे (सन्मूलम्, अन्विच्छ) सत्रूप मूलको जान (सोम्य) हे प्रियदर्शन (इमाः, सर्वाः, प्रजाः) ये सब प्रजायें (सन्मूलाः, सदायतनाः, सत्प्रतिष्ठाः) सत् है मूल जिनका, सत् है आश्रय जिनका और सत् है परिशेष जिनका ऐसी [सन्ति] हैं (सोम्य) हे प्रियदर्शन (खलु) निश्चय (यथा, नु) जैसे (इमाः, तिस्रः, देवताः) ये तीन देवता (पुरुषम्, प्राप्य) पुरुषको प्राप्त होकर (एकैकाः) एक २ (त्रिवृत्, त्रिवृत्) त्रिगुण २ (भवति) होती है (तत्) सो (पुरस्तात्, एव) पहिले ही (उक्तम्) कह दिया है (सोम्य) हे प्रियदर्शन (प्रयतः) मरने वाले (अस्य) इस (पुरुषस्य) पुरुषकी (वाक्) वाणी (मनसि, सम्पद्यते) मनमें लीन होजाती है (मनः) मन (प्राणे) प्राणमें (प्राणः) प्राण (तेजसि) तेजमें (तेजः) तेज (परस्याम्, देवतायाम्) पर-देवतामें [सम्पद्यते] लीन होजाता है ॥ ६ ॥

भावार्थ--इस शरीरकी मूल जलसे अन्य किस स्थानमें होगी ?, जल ही उसका मूल है, हे सोम्य ! जलरूप कार्यसे

तेजरूप मूलको जान, तेजरूप कार्यसे सत्‌रूप मूलको जान हे सोम्य! इन सब प्रजाओंकी मूल सत् है ये सब स्थितिकाल में सत्‌के आश्रयसे रहती हैं और अन्तमें सत्‌रूप ही शेष रह जाती हैं। हे सोम्य! ये प्रसिद्ध अन्न आदि तीन देवता पुरुष (शरीर) को पाकर एक २ त्रिगुण २ होजाते हैं यह खाया हुआ अन्न तीन भागोंमें बँटजाता है, इत्यादि प्रक्रिया पीछे कही जा चुकी है। हे सोम्य! यह पुरुष जब मरनेको होता है तो इसकी वाणी मनमें लीन होजाती है, इस कारण ही उस समय मनमें अनेकों विचार होने पर भी वह बोल नहीं सकता है, फिर मन सुषुप्तिकालकी समान प्राणमें लीन होजाता है तब पुरुष मूर्छित होजाता है और तदन्तर प्राण क्रम २ से संकुचित होकर तेजमें लीन होजाता है, उस समय प्राणका स्थूल व्यापार तो बन्द होजाता है, परन्तु शरीरमें उष्णता रहती है, और अन्तमें वह तेज परम-देवतामें लीन होजाता है, तहाँसे ज्ञानीका फिर उत्थान नहीं होता है और अज्ञानी सुषुप्तिमेंसे जागे हुएकी समान अन्य शरीरमें प्रवेश करता है ॥ ६ ॥

स य एषोऽणिमैतदात्म्यमिदꣳ सर्वं तत्सत्यꣳ स आत्मा तत्त्वमसि श्वेतकेतो इति भूय एव मा भगवान् विज्ञापयत्विति तथा सोम्येति होवाच ७

अन्वय और पदार्थ—(सः) वह (यः) जो (एषः) यह (अणिमा) सूक्ष्मभाव है (ऐतदात्म्यम्) ऐसे आत्मा-वाला है (इदम्) यह (सर्वम्) सब (तत्) वह (सत्यम्)

सत्य है (सः) वह (आत्मा) आत्मा है (श्वेतकेतो) हे श्वेतकेतु (तत्) वह (त्वम्) तू (असि) है (इति) यह सत्त्व (भूयः, एव) फिर भी (भगवान्) आप (माम्) मुझको (विज्ञापयतु) समझावें (इति) ऐसा कहने पर (सोम्य) हे प्रियदर्शन (तथा) ऐसा ही होगा (इति) ऐसा (उवाच, ह) कहा ॥ ७ ॥

भावार्थ—वह जो यह सूक्ष्मभाव जगत्‌का मूल है, वही इस सब जगत्‌का आत्मा है अर्थात् यह निखिल जगत् उस सूक्ष्मतम परम-कारणमय है, वही वास्तविक सत्य है, इस कारण वही जगत्‌का आत्मा है। हे श्वेतकेतु! वह सत् तू ही है, इस प्रकार पिताने कहा-सुषुप्तिमें प्राणी सत्‌रूपको प्राप्त होता है, यह बात आप कहते हैं, परन्तु 'हम सत्‌को प्राप्त हुए थे' इस बात को वे जागने पर नहीं जानते इस कारण उसमें मुझे सन्देह है, अतः आप फिर दृष्टान्त देकर समझाइये, ऐसा श्वेतकेतुने कहा, तब उसके पिताने कहा, कि—अच्छा कहता हूँ, सुन ७

॥ षष्ठाध्यायस्याष्टमः खण्डः समाप्तः ॥

यथा सोम्य मधु मधुकृतो निस्तिष्ठन्ति नानात्ययानां वृक्षाणाꣳ रसान् समवहारमेकताꣳ रसं गमयन्ति ॥ १ ॥

अन्वय और पदार्थ—(सोम्य) हे प्रियदर्शन (यथा) जैसे (मधुकृतः) मुहालकी मक्खियें (मधु) शहदको (निस्तिष्ठन्ति) उत्पन्न करती हैं (नानात्ययानाम्) अनेकों प्रकारके फलों वाले (वृक्षाणाम्) वृक्षोंके (रसान्) रसोंको (समः

व्हारम्) इकट्ठा करती हुई (एकताम्) एकीभाव रूप (रसम्) रसको (गमयन्ति) प्राप्त कर देती हैं ॥ १ ॥

भावार्थ—हे सोम्य ! जिस प्रकार मधुमक्षिकायें शहदको उत्पन्न करती हैं, अनेकों फलों वाले वृक्षोंके रसोंको इकट्ठा करके उन रसोंका एकीभाव रूप शहद नामका रस बना देती हैं ॥ १ ॥

ते यथा तत्र न विवेकं लभन्तेऽमुष्याऽहं वृक्षस्य रसोऽस्म्यमुष्याहं वृक्षस्य रसोऽस्मीत्येवमेव खलु सोम्येमाः सर्वाः प्रजाः सति सम्पद्य न विदुः सति सम्पद्यामह इति ॥ २ ॥

अन्वय और पदार्थ—(यथा) जैसे (ते) वे (तत्र) तहाँ (अहम्) मैं (अमुष्य) अमुक (वृक्षस्य) वृक्षका (रसः) रस (अस्मि) हूँ (अहम्) मैं (अमुष्य) अमुक (वृक्षस्य) वृक्षका (रसः) रस (अस्मि) हूँ (इति) ऐसे (विवेकम्) ज्ञानको (न) नहीं (लभन्ते) पाते हैं (एवमेव) इसी प्रकार (सोम्य) हे प्रियदर्शन (खलु) निःसन्देह (इमाः, सर्वाः, प्रजाः) ये सब प्रजायें (सति, सम्पद्य) सत्‌के विषैं प्राप्त होकर (सति, सम्पद्यामहे) सत्‌के विषैं प्राप्त होगये हैं (इति) ऐसा (न) नहीं (विदुः) जानते हैं ॥ २ ॥

भावार्थ—जिस प्रकार मधुरूपसे एकताको प्राप्त हुए वे रस तहाँ मैं अमुक वृक्षका रस हूँ, मैं अमुक वृक्षका रस हूँ । इस बातको नहीं जानते हैं इसी प्रकार हे सोम्य! प्रसिद्ध सब जीव सुषुप्तिकालमें मरणमें और प्रलयमें सत्‌को प्राप्त होकर

'मैं अमुक जीव हूँ, मैं अमुक जीव हूँ' इस भेदका अनुभव नहीं कर सकते हैं ॥ २ ॥

त इह व्याघ्रो वा सिंहो वा वृको वा वराहो वा कीटो वा पतंगो वा दंशो वा मशको वा यद्यद्भवन्ति तदाभवन्ति ॥ ३ ॥

अन्वय और पदार्थ—(ते) वे (इह) यहाँ (व्याघ्रः, वा, सिंहः, वा) व्याघ्र वा सिंह (वृकः, वा, वराहः, वा) भेड़िया वा शूकर (कीटः, वा, पतङ्गः, वा) कीड़ा वा पतङ्ग (दंशः, वा, मशकः, वा) डाँस वा मच्छर (यत्, यत्) जो जो (भवन्ति) होते हैं (तत्) वही (आ, भवन्ति) आकर होजाते हैं ॥ ३ ॥

भावार्थ—वे प्राणी इस लोकमें पहले व्याघ्र वा सिंह, भेड़िया वा शूकर, कीट वा पतङ्ग, डाँस वा मच्छर जो २ भी होते हैं, वही सत्से फिर आकर होते हैं, उन अज्ञानी जीवोंकी पूर्वभावित वासनाका नाश नहीं होता है ॥ ३ ॥

स य एषोऽणिमैतदात्म्यमिदꣳ सर्वं तत्सत्यं स आत्मा तत्त्वमसि श्वेतकेतो इति भूय एव मा भगवान् विज्ञापयत्विति तथा सोम्येति होवाच ४

अन्वय और पदार्थ—(सः) वह (यः) जो (एषः) यह (अणिमा) सूक्ष्मभाव है (ऐतदात्म्यम्) इस ही आत्मा वाला है (इदम्) यह (सर्वम्) सब जगत् (तत्) वह (सत्यम्) सत्य है (सः) वह (आत्मा) आत्मा है (श्वेतकेतो)

हे श्वेतकेतु (तत्) वह (त्वम्) तू (असि) (इति) इस को (भूयः एव) फिर (भगवान्) आप (माम्) मुझको (विज्ञापयतु) समझाइये (इति) ऐसा कहने पर (सोम्य) हे प्रियदर्शन (तथा) ऐसा ही होगा (इति) ऐसा (उवाच, ह) कहा ॥ ४ ॥

भावार्थ—जिसको पाकर अज्ञानी फिर लौट आते हैं और ज्ञानी लौट कर नहीं आते वह जो सूक्ष्मभाव है वही इस सब जगत्का आत्मा है,वह सत्य है, और व्यापक है, हे श्वेतकेतु ! वह सत् तू ही है, इस प्रकार पिताने कहा। अपने घरमें सोया हुआ पुरुष उठकर दूसरे नगरमें गया होय तो वह 'मैं अपने घरसे आया हूँ' ऐसा जानता है, इसी प्रकार मैं सत्मेंसे आया हूँ, ऐसा ज्ञान सुषुप्ति आदिसे उठे हुए प्राणियोंको नहीं होता यह बात मुझे आप दृष्टान्त देकर समझाइये, ऐसा श्वेतकेतुने कहा, तब उसके पिताने कहा, कि—बहुत अच्छा सुन ॥४॥

॥ षष्ठाध्यायस्य नवमः खण्डः समाप्तः ॥

इमाः सोम्य नद्यः पुरस्तात्प्राच्यः स्पन्दन्ते पश्चात्प्रतीच्यस्ताः समुद्रात्समुद्रमेवापियन्ति स समुद्र एव भवति ता यथा तत्र न विदुरियमहमस्मीयमहमस्मीति ॥ १ ॥

अन्वय और पदार्थ—(सोम्य) हे प्रियदर्शन (इमाः) ये (प्राच्यः) पूर्वदिशाकी (नद्यः) नदियें (पुरस्तात्) पूर्व की ओरको (स्पन्दन्ते) बहती हैं (प्रतीच्यः) पश्चिम दिशा की (पश्चात्) पश्चिमकी ओरको [स्पन्दन्ते] बहती हैं (ताः)

वह (समुद्रात्) समुद्रसे (समुद्रम्,एव) समुद्रको ही (अपियन्ति) प्राप्त होती है (सः) वह (समुद्रः, एव) समुद्र ही (भवति) होता है (ताः) वह (यथा) जैसे (तत्र) वहाँ (इयम्, अहम्, अस्मि) यह मैं हूँ (इयम्, अहम्, अस्मि) यह मैं हूँ (इति) ऐसा (न) नहीं (विदुः) जानती हैं ।१।

भावार्थ—हे सोम्य ! ये पूर्वदिशाकी गङ्गा आदि नदियें पूर्वकी ओरको वही चली जाती हैं और पश्चिम दिशाकी नदियें पश्चिमकी ओरको वही चली जाती हैं तथा वह सूर्यके द्वारा समुद्रमेंसे खिंच कर वर्षारूप होती हुई गङ्गा नर्मदा आदि नदियोंके नामसे कहलाने लगती हैं और फिर समुद्रमें जा मिलती हैं तथा समुद्ररूप ही होजाती हैं उस समय समुद्रमें मिलकर मैं अमुक नदी हूँ, मैं अमुक नदी हूँ, इस बातको नहीं जानती हैं ॥ १ ॥

एवमेव खलु सोम्येमाः सर्वाः प्रजाः सत आगम्य न विदुः सत आगच्छामह इति, त इह व्याघ्रो वा सिंहो वा वृको वा वराहो वा कीटो वा पतङ्गो वा दंशो वा मशको वा यद्यद्भवन्ति तदाभवन्ति ॥ २ ॥

अन्वय और पदार्थ—(सोम्य) हे प्रियदर्शन (एवमेव) इस ही प्रकार (खलु) प्रसिद्ध (इमाः) ये (सर्वाः, प्रजाः) सब प्रजायें (सतः) सत्‌से (आगम्य) आकर (सतः, आगच्छामहे) सत्‌से आती हैं (इति, न, विदुः) ऐसा नहीं जानती हैं (ते) वह (इह) यहाँ (व्याघ्रः वा, सिंहः, वा)

व्याघ्र वा सिंह (वृकः, वा, वराहः, वा) भेड़िया वा शूकर (कीटः, वा, पतङ्गः, वा) कीड़ा वा पतंगा (दंशः,वा,मशकः, वा) डाँस वा मच्छर (यत्, यत्) जो जो (भवन्ति) होते हैं (तत्) सो (आ, भवन्ति) आकर होजाते हैं ॥ २ ॥

भावार्थ–हे सोम्य ! इस प्रकार ही ये सब प्रसिद्ध प्रजायें सत्स्वरूप परमात्मासे आकर भी हम सत्स्वरूप परमात्मासे आयी हैं, ऐसा नहीं जानती हैं। लौटते समय व्याघ्र सिंह, भेड़िया, शूकर, कीट, पतंग, डाँस, मच्छर आदि जो २ भी पहले थे फिर आकर भी वही होजाते हैं ॥ २ ॥

स य एषोऽणिमैतदात्म्यमिदꣳ सर्वं तत्सत्यꣳ स आत्मा तत्त्वमसि श्वेतकेतो इति भूय एव मा भगवान् विज्ञापयत्विति तथा सोम्येति होवाच

अन्वय और पदार्थ–(सः) वह (यः) जो (एषः) यह (अणिमा) सूक्ष्मभाव है (ऐतदात्म्यम्) इस ही आत्मावाला है (इदम्) यह (सर्वम्) सब (तत्) सो (सत्यम्) सत्य है (सः) वह (आत्मा) आत्मा है (श्वेतकेतो) हे श्वेतकेतु (तत्) वह (त्वम्) तू (असि) है (इति) ऐसा पिताने कहा (भूयः एव) फिर भी (भगवान्) आप (माम्) मुझको (विज्ञापयतु) समझाइये (इति) ऐसा पुत्रने कहा (सोम्य) हे प्रियदर्शन (तथा) ऐसा ही होगा (इति) ऐसा (ह) स्पष्ट (उवाच) कहा ॥ ३ ॥

भावार्थ—यह सूक्ष्मभाव है, यही सब जगत्का आत्मा है, यही सत्य है, यही प्रसिद्ध आत्मपदार्थ है। हे श्वेतकेतु ! वह

सत् आत्मा तू ही है। यह बात पिताने कही, तब श्वेतकेतुने कहा, कि-जिस प्रकार जलमेंसे उठी हुई तरंगें जलभावको प्राप्त होते ही विनष्ट होजाती हैं, इसी प्रकार जीव सुषुप्ति आदि अवस्थाओंमें कारणभावको पाकर विनष्ट क्यों नहीं होते हैं ? यह बात आप दृष्टान्त देकर मुझे फिर समझाइये, इस पर पिताने कहा कि-हे सोम्य ! अच्छा कहता हूँ, सुन ॥ ३ ॥

॥ षष्ठाध्यायस्य दशमः खण्डः समाप्तः ॥

अस्य सोम्य महतो वृक्षस्य यो मूलेऽभ्याहन्याज्जीवन् स्रवेद्यो मध्येऽभ्याहन्याज्जीवन् स्रवेद्योऽग्रेऽभ्याहन्याज्जीवन् स्रवेत्स एष जीवेनात्मनाऽनुभूतः पेपीयमानो मोदमानस्तिष्ठति ॥ १ ॥

अन्वय और पदार्थ—(सोम्य) हे प्रियदर्शन (अस्य) इस (महतः, वृक्षस्य) बड़े वृक्षकी (मूले) जड़में (यः) जो (अभ्याहन्यात्) घाव करे (जीवन्) जीता हुआ (स्रवेत्) टपकेगा (यः) जो (मध्ये) बीचमें (अभ्याहन्यात्) घाव करे (जीवन्) जीता हुआ (स्रवेत्) टपकेगा (यः) जो (अग्रे) अग्रभागमें (अभ्याहन्यात्) घाव करे (जीवन्) जीता हुआ (स्रवेत्) टपकेगा (सः) वह (एषः) यह (आत्मना) आत्मारूप (जीवेन) जीवके द्वारा (अनुभूतः) व्याप्त हुआ (पेपीयमानः) पीता हुआ (मोदमानः) हर्ष मनाता हुआ (तिष्ठति) स्थित होता है ॥ १ ॥

भावार्थ—हे सोम्य ! इस बड़े भारी वृक्षकी जड़में जो कोई कुहाड़े आदिसे घाव करे तो यह एक वारके घावसे सूखता

नहीं है, किन्तु जीवित रहता है और इसका रस टपकता है, इसी प्रकार जो कोई इसके मध्यमें या इसके अग्रभागमें घाव करे तो यह सूखता नहीं, किन्तु इसका रस टपका करता है, क्योंकि-यह वृक्ष जीवरूप आत्मासे व्याप्त और मूलके द्वारा भले प्रकारसे जलको पीता हुआ तथा भूमिके रसोंको ग्रहण करता हुआ सुखके साथ स्थित रहता है ॥ १ ॥

अस्य यदेकां शाखां जीवो जहात्यथ सा शुष्यति द्वितीयां जहात्यथ सा शुष्यति तृतीयां जहात्यथ सा शुष्यति सर्वं जहाति सर्वः शुष्यत्येवमेव खलु सोम्य विद्धीति होवाच ॥ २ ॥

अन्वय और पदार्थ-(यत्) जब (अस्य) इसकी (एकाम्) एक (शाखाम्) शाखाको (जीवः) जीव (जहाति) त्यागता है (अथ) इसके अनन्तर (सा) वह (शुष्यति) सूखजाती है (द्वितीयाम्) दूसरीको (जहाति) त्यागता है (अथ) अनन्तर (सा) वह (शुष्यति) सूख जाती है (तृतीयाम्) तीसरीको (जहाति) त्यागता है (अथ) अनन्तर (सा) वह (शुष्यति) सूखजाती है (सर्वम्) सबको (जहाति) त्यागता है (सर्वः) सब (शुष्यति) सूखजाता है (सोम्य) हे प्रियदर्शन (एवमेव) इस प्रकार ही (खलु) निश्चित (विद्धि) जान (इति) ऐसा (ह) स्पष्ट (उवाच) बोला २

भावार्थ-कर्मवश जब इस वृक्षकी रोगग्रस्त एक शाखाको जीव त्याग देता है अर्थात् उसमें व्याप्त अपने अंशका संकोच करलेता है तब वह शाखा सूखजाती है दूसरीको त्याग देता

है तब वह सूखजाती है, तीसरीको त्यागदेता है तब वह सूख जाती है और जब यह जीव सब वृक्षको त्याग देता है तो सब ही वृक्ष सूखजाता है। हे सोम्य ! इसी प्रकार सर्वत्र जान २

जीवापेतं वाव किलेदं म्रियते न जीवो म्रियते इति स य एषोऽणिमैतदात्म्यमिदꣳ सर्वं तत्सत्यं स आत्मा तत्त्वमसि श्वेतकेतो इति भूय एव मा भगवान् विज्ञापयत्विति तथा सोम्येति होवाच ३

अन्वय और पदार्थ—(जीवापेतम्) जीवसे शून्य (वाव) प्रसिद्ध (इदम्) यह (किल) निश्चय (म्रियते) मर जाता है (जीवः) जीव (न) नहीं (म्रियते) मरता है (इति) इस प्रकार (सः) वह (यः) जो (एषः) यह (अणिमा) सूक्ष्म भाव है (ऐतदात्म्यम्) इस ही आत्मावाला है (इदम्) यह (सर्वम्) सब (तत्) सो (सत्यम्) सत्य है (सः) वह (आत्मा) आत्मा है (श्वेतकेतो) हे श्वेतकेतु (तत्) वह (त्वम्) तू (असि) है (इति) ऐसा कहा (भगवान्) आप (मा) मुझको (भूयः, एव) फिर भी (विज्ञापयतु) समझाइये (इति) यह पुत्रने कहा (सोम्य) हे प्रियदर्शन (तथा) ऐसा ही होगा (इति) यह बात (ह) स्पष्ट (उवाच) कही ॥ ३ ॥

भावार्थ—यह शरीर जीवरहित होने पर मर जाता है, जीव नहीं मरता है, यह बात कर्मके सफलपने आदिसे प्रतीत होती है, यह जो सूक्ष्मभाव है, सब जगत्का आत्मा यही है

यही सत्य है, यही आत्मपदार्थ है। हे श्वेतकेतु ! वह सत् तू ही है, ऐसा पिताने कहा। अत्यन्त सूक्ष्म सद्रूप और नाम-रूप रहित ब्रह्मसे यह अत्यन्त स्थूल और पृथिवी आदि नाम रूपवाला जगत् किस प्रकार उत्पन्न होता है ? इस बातको दृष्टान्त देकर समझाइये ऐसा पुत्रके प्रश्न करने पर पिताने कहा, कि—हे पुत्र सुन ॥ ३ ॥

॥ षष्ठाध्यायस्यैकादशः खण्डः समाप्तः ॥

न्यग्रोधफलमत आहरेतीदं भगव इति भिन्धीति भिन्नं भगव इति किमत्र पश्यसीत्यण्व्य इवेमा धाना भगव इत्यासामङ्गैकां भिन्धीति भिन्ना भगव इति किमत्र पश्यसीति न किञ्चन भगव इति

अन्वय और पदार्थ—(अतः) इसमेंसे (न्यग्रोधफलम्) वटके फलको (आहर) ला (इति) ऐसा पिताने कहा (भगवः) हे भगवन् (इदम्) यह है (इति) ऐसा कहने पर (भिन्धि) तोड़ (इति) ऐसा कहा (भगवः) हे भगवन् (भिन्नम्) तोड़ दिया (इति) ऐसा कहने पर (अत्र) इसमें (किम्) क्या (पश्यसि) देखता है (इति) ऐसा कहा (भगवः) हे भगवन् (अण्व्यः, इव) अतिसूक्ष्मसे (इमाः) ये (धानाः) बीज हैं (इति) ऐसा कहने पर (अङ्ग) हे पुत्र (आसाम्) इनमेंसे (एकाम्) एकको (भिन्धि) तोड़ (इति) ऐसा कहा (भगवः) हे भगवन् (भिन्ना) एकको तोड़ दिया (इति) ऐसा कहने पर (अत्र) इसमें (किम्) क्या (पश्यसि) देखता है (इति) ऐसा कहा (भगवः) हे

भगवन् (किश्चन) कुछ भी (न) नहीं (इति) ऐसा पुत्रने कहा १

भावार्थ—हे पुत्र ! यदि इसको प्रत्यक्ष करना चाहता हो तो इस बड़के वृक्षमेंसे एक फलको तोड़ला, पुत्रने कहा, कि-हे भगवन् ! लीजिये यह तोड़ लाया, पिताने कहा, कि बेटा ! इसको भी तोड़ डाल, पुत्रने कहा—लीजिये इसको भी तोड़ डाला, पिताने कहा—इसमें क्या देख रहा है ?, पुत्रने कहा, कि—इसमें बहुत छोटे २ बीज दीख रहे हैं, पिताने कहा, कि—अब इन बीजोंमेंके एक बीजको तोड़, पुत्रने कहा, कि—लीजिये भगवन् ! एक बीजको भी तोड़ डाला, पिताने कहा—इसमें क्या देख रहा है ?, पुत्रने कहा, कि—हे भगवन् ! इसमें तो कुछ नहीं दीखता ॥ १ ॥

तᳫँ होवाच यं वै सोम्यैतमणिमानं न निभालयस एतस्य वै सोम्यैषोऽणिम्न एवं महान्यग्रोधस्तिष्ठति श्रद्धस्व सोम्येति ॥ २ ॥

अन्वय और पदार्थ—(तम्) उसके प्रति (उवाच, ह) बोला (सोम्य) हे प्रियदर्शन (वै) निश्चय (यम्) जिस (एतम्) इस (अणिमानम्) सूक्ष्मभावको (न) नहीं (निभालयसे) देखता है (सोम्य) हे प्रियदर्शन (एतस्य) इसका (अणिम्नः, वै) सूक्ष्मभावका ही (एषः) यह (महान्यग्रोधः) बड़ा बटका वृक्ष (तिष्ठति) स्थित है (सोम्य) हे प्रियदर्शन (इति) ऐसा (श्रद्धत्स्व) श्रद्धा कर (इति) ऐसा कहा

भावार्थ-उससे पिताने कहा, कि—हे सोम्य ! तू वटके बीज के जिस सूक्ष्मभावको देख नहीं सकता है, हे सोम्य ! यह बड़ा

भारी बटका वृक्ष इस सूक्ष्मभावका ही कार्यरूप बाहर स्थित दीख रहा है, हे पुत्र ! इस बातका तू श्रद्धाके साथ निश्चय रख, क्योंकि—बाहरी विषयमें जिसका मन आसक्त होता है उस पुरुषको परमश्रद्धा विना किये अत्यन्त सूक्ष्म विषयका निश्चय नहीं होसकता ॥ २ ॥

स य एषोऽणिमैतदात्म्यमिदꣳ सर्वं तत्सत्यꣳ स आत्मा तत्त्वमसि श्वेतकेतो इति भूय एव मा भगवान् विज्ञापयत्विति तथा सोम्येति होवाच ३

अन्वय और पदार्थ--(सः) वह (यः) जो (एषः) यह (अणिमा) सूक्ष्मभाव है (ऐतदात्म्यम्) इस आत्मा वाला है (इदम्) यह (सर्वम्) सब (तत्) वह (सत्यम्) सत्य है (सः) वह (आत्मा) आत्मा है (श्वेतकेतो) हे श्वेतकेतु ! (तत्) वह (त्वम्) तू (असि) है (इति) ऐसा कहा (भगवान्) आप (भूयः,एव) फिर भी (मा) मुझको (विज्ञापयतु) समझाइये (इति) ऐसा कहने पर (सोम्य) हे प्रियदर्शन (तथा) ऐसा ही होगा (इति) ऐसा (उवाच, ह) स्पष्ट कहा ।३।

भावार्थ—वही सूक्ष्मभाव इस सब जगत्का आत्मा है, वह सत्य है और वही आत्मपदार्थ है, हे श्वेतकेतु ! वह सत् तू ही है, इस प्रकार पिताके कहने पर श्वेतकेतुने कहा, कि—हे भगवन् ! यदि वह सत् जगत्का मूल है तो दीखता क्यों नहीं ? यह बात मुझे दृष्टान्त देकर समझाइये । पिताने कहा, कि—हे सोम्य ! कहता हूँ, सुन ॥ ३ ॥

॥ षष्ठाध्यायस्य द्वादशः खण्डः समाप्तः ॥

लवणमेतदुदकेऽवधायाथ मा प्रातरुपसीदथा इति स तथा चकार तँ होवाच यद्दोषा लवणमुदकेऽवाधा अङ्ग तदाहरेति तद्धावमृश्य न विवेद १

अन्वय और पदार्थ—(एतत्) इस (लवणम्) लवणको (उदके) जलमें (अवधाय) डालकर (अथ) अनन्तर (प्रातः) प्रातःकालके समय (मा, उपसीदथाः) मेरे पास आना (इति) ऐसा कहने पर (सः) वह (तथा) तैसा ही (चकार, ह) करता हुआ (तम्) उसके प्रति (उवाच, ह) कहता हुआ (अंग) हे पुत्र (यत्, लवणम्) जिस लवणको (दोषा) रातमें (उदके) जलमें (अवाधाः) डाला था (तत्) उस को (आहर) ला (इति) ऐसा कहा (तत्) उसको (अवमृश्य) खोजकर (न) नहीं (विवेद, ह) पाता हुआ ।१।

भावार्थ—पिताने कहा, कि—हे श्वेतकेतु ! इस लवणकी डलीको घड़ेमेंके जलमें डालदे और कल प्रातःकालके समय मेरे पास आना । यह सुनकर उसने ऐसा ही किया, तब दूसरे दिन प्रातःकालके समय उससे पिताने कहा, कि—हे बेटा ! जिस लवणको तूने कल रात पानीमें डाला था उसको ला, यह सुनकर वह लवणके टुकड़ेको पानीमें खोजने लगा, परन्तु जलमें मिल जानेके कारण उसको कुछ पता न मिला ॥ १ ॥

यथा विलीनमेवांस्यान्तादाचामेति कथमिति लवणमिति मध्यादाचामेति कथमिति लवणमित्यन्तादाचामेति कथमिति लवणमित्यभिप्राश्यैनदथ

मोपसीदथा इति तद्ध तथा चकार तच्छश्वत्सं-वर्त्तते तᳬँ होवाचात्र वाव किल सत्सोम्य न निभालयसेऽत्रैव किलेति ॥ २ ॥

अन्वय और पदार्थ—(अङ्ग) हे पुत्र (यथा) जैसे (विलीनम्, एव) विलय पाये हुएको ही (अस्य, अन्तात्, आचाम) इसके ऊपरसे आचमन कर (इति) ऐसा कहने पर (कथम्) कैसा है (इति) ऐसा पिताने पूछा (लवणम्) नोनखरा है (इति) ऐसा पुत्रने कहा (मध्यात्, आचाम) मध्यमेंसे आचमन कर (इति) ऐसा कहने पर (कथम्) कैसा है (इति) ऐसा पिताने कहा (लवणम्) नोनखरा है (इति) ऐसा पुत्रने कहा (अन्तात्, आचाम) नीचेसे लेकर आचमन कर (इति) ऐसा कहने पर (कथम्) कैसा है (इति) ऐसा पिताने कहा (लवणम्) नोनखरा है (इति) ऐसा पुत्रने कहा (एतत्) इसको (अभिप्रास्य) त्याग कर (अथ) अनन्तर (मा, उपसीदथाः) मेरे समीप आ (इति) ऐसा कहने पर (तत्) उसको (तथा) तैसा ही (चकार ह) करता हुआ (तत्) वह (शश्वत्) नित्य (संवर्त्तते) विद्यमान है (तम्) उसके प्रति (उवाच, ह) कहा (सोम्य) हे प्रियदर्शन (अत्र, वाव) इस शरीरमें भी (किल) निश्चय (सत्) सत्को (न) नहीं (निभालयसे) जानता है (अत्र, एव) यहाँ ही (किल) निश्चय जानेगा (इति) ऐसा पिताने कहा

भावार्थ—पिताने कहा, कि—हे बेटा ! यद्यपि इस जलमें घुलकर विलीन हुए लवणको तू नेत्रसे और स्पर्शसे नहीं

जानता है तथापि दूसरे उपायसे उसको जान सकता है। तू इस जलमेंसे थोड़ासा ऊपरसे लेकर आचमन कर, यह सुन कर पुत्रने आचमन किया तब पिताने पूछा कि-इसका स्वाद कैसा है ? पुत्रने उत्तर दिया, कि--नोनखरा है। पिताने कहा, कि-अच्छा अब थोड़ासा जल मध्यमेंसे लेकर आचमन कर, यह सुन कर पुत्रने मध्यमेंसे आचमन कर लिया, पिताने कहा इसका स्वाद कैसा है ? पुत्रने उत्तर दिया, कि-नोनखरा है। तब पिताने कहा, कि थोड़ासा नीचेको तलीमें से लेकर आचमन कर, पुत्रने ऐसा ही किया, तब पिताने कहा, कि--इसमें कैसा स्वाद है ? पुत्रने उत्तर दिया, कि--नोनखरा तदनन्तर पिताने कहा, कि-अब तू इस जलको छोड़ कर मेरे पास आ, यह सुनकर उसने जलको त्याग दिया और कहने लगा, कि वह लवण जलमें नित्य विद्यमान है, उससे पिताने कहा, कि—हे बेटा ! इसी प्रकार इस शरीरमें भी आचार्यके उपदेश किये हुए प्रसिद्ध सत्को तू इन्द्रियोंके द्वारा नहीं जान पाता है। जैसे जलमें देखनेमें और स्पर्श करने पर प्रतीत न होनेवाले लवणको तूने जीभसे जाना है, इसी प्रकार शरीरमें ही विद्यमान जगत्के मूल सत्को तू अन्य उपायसे लवणके सूक्ष्मभावकी समान जान जायगा, यह बात श्वेतकेतु से उसके पिताने कही ॥ २ ॥

स य एषोऽणिमैतदात्म्यमिदꣳ सर्वं तत्सत्यं स आत्मा तत्त्वमसि श्वेतकेतो इति भूय एव मा भगवान् विज्ञापयत्विति तथा सोम्येति होवाच ३

अन्वय और पदार्थ—(सः) वह (यः) जो (एषः) यह (अणिमा) सूक्ष्मभाव है (ऐतदात्म्यम्) इस ही आत्मा वाला है (इदम्) यह (सर्वम्) सब (तत्) वह (सत्यम्) सत्य है (सः) वह (आत्मा) आत्मा है (श्वेतकेतो) हे श्वेतकेतु (तत्) वह (त्वम्) तू (असि) है (इति ऐसा पिताने कहा (भगवान्) आप (भूयः, एव) फिर भी (मा) मुझको (विज्ञापयतु) समझाइये (इति) ऐसा कहने पर (सोम्य) हे प्रियदर्शन (तथा) ऐसा ही होगा (इति) यह (उवाच, ह) कहा ॥ ३ ॥

भावार्थ—वह सूक्ष्मभाव ही इस सब जगत्का आत्मस्वरूप है, वह सत्य है, वह आत्मपदार्थ है, हे श्वेतकेतु ! वही तू है, ऐसा पिताके कहने पर श्वेतकेतुने कहा, कि--जगत्का मूल सत् जिस उपायसे प्रतीत होता हो वह उपाय आप मुझे दृष्टांत देकर समझाइये, पिताने कहा कि—हे सोम्य ! कहता हूँ, सुन ३

॥ षष्ठाध्यायस्य त्रयोदशः खण्डः समाप्तः ॥

यथा सोम्य पुरुषं गन्धारेभ्योऽभिनद्धाक्षमानीय तं ततोऽतिजने विसृजेत्स यथा तत्र प्राङ् वोदङ् वाऽधराङ् वा प्रत्यङ् वा प्रध्मायीताभिनद्धाक्ष आनीतोऽभिनद्धाक्षो विसृष्टः ॥ १ ॥

अन्वय और पदार्थ—(सोम्य) हे प्रियदर्शन (यथा) जैसे (गन्धारेभ्यः) गन्धारदेशसे (अभिनद्धाक्षम्) बँधे हुए नेत्रोंवाले (पुरुषम्) पुरुषको (आनीय) लाकर (ततः) तदनन्तर (तम्) उसको (अतिजने) निर्जन स्थानमें (विसृ-

जेत्) छोड़देय (तत्र) तहाँ (यथा) जैसे (सः) वह (प्राङ्, वा) पूर्वाभिमुख (उदङ् वा) वा उत्तराभिमुख (अधराङ्, वा) वा दक्षिणाभिमुख (प्रत्यङ्, वा) वा पश्चिमाभिमुख (प्रध्मायीत) चिल्लावे (अभिनद्धाक्षः) आँखें बँधा हुआ (आनीतः) लाया गया हूँ (अभिनद्धाक्षः) आँखें बँधाहुआ (विसृष्टः) छोड़ा गया हूँ ॥ १ ॥

भावार्थ—हे सोम्य ! जिस प्रकार चोर किसी पुरुषको आँखें बाँधकर गान्धारदेशसे ले आवें और तहाँ उसके हाथ पैर बाँध कर किसी घोर निर्जन वनमें छोड़जायँ तो जिस प्रकार उस को दिशाओंका भ्रम होता है और वह कभी पूर्वको ओरको, कभी उत्तरकी ओरको, कभी दक्षिणको ओरको तथा कभी पश्चिमको ओरको मुख करके इस प्रकार पुकारे, कि-चोर मेरी आँखें बाँधकर मुझे गान्धार देशसे ले आये हैं और हाथ पैर बाँधकर यहाँ डाल गये हैं ॥ १ ॥

तस्य यथाभिनहनं प्रमुच्य प्रब्रूयादेतां दिशं गन्धारा एतां दिशं व्रजेति स ग्रामाद् ग्रामं पृच्छन् पण्डितो मेधावी गन्धारानेवोपसम्पद्येतैवमेवेहाऽऽचार्यवान् पुरुषो वेद तस्य तावदेव चिरं यावन्न विमोक्ष्येऽथ सम्पत्स्य इति ॥ २ ॥

अन्वय और पदार्थ-(यथा) जैसे (तस्य) उसके (अभिनहनम्) बन्धनको (प्रमुच्य) खोल कर (प्रब्रूयात्) कहे (एताम् दिशम्) इस दिशामेंको (गन्धाराः) गन्धारदेश है

(एताम्, दिशम्) इस दिशामेंको (व्रज) जा (इति) ऐसा कहने पर (सः) वह (ग्रामाद्) ग्रामसे (ग्रामम्) ग्रामको (पृच्छन्) पूछता हुआ (पण्डितः) उपदेश पाया हुआ (मेधावी) निश्चय करनेमें समर्थ हुआ (गन्धारान्, एव) गन्धार देशको ही (उपसम्पद्येत) पहुँच जायगा (एवमेव) इसी प्रकार (इह) यहाँ (आचार्यवान्) आचार्य वाला (पुरुषः) पुरुष (वेद) जानता है (तस्य) उसको (तावदेव) तब तक ही (चिरम्) विलम्ब है (यावत्) जब तक (विमोक्ष्ये) छूट गया (इति) ऐसा (न) नहीं है (अथ) अनन्तर (सम्पत्स्ये) प्राप्त होजायगा (इति) ऐसा पिताने कहा ॥ २ ॥

भावार्थ-जिस प्रकार उसके नेत्रोंके और हाथ पैरोंके बंधन को खोल कर कोई दयालु पुरुष उससे कह देय कि-इधर उत्तरकी ओर गन्धार देश है, इधरको ही चला जा। तब वह बन्धनसे छुटा हुआ पुरुष, एक ग्रामसे दूसरे ग्रामको पूछता २ गान्धारदेशके मार्गका उपदेश पाकर तथा उस उपदेश किये हुए मार्गका निश्चय करनेमें समर्थ होकर गान्धार देशमें जा पहुँचता है, यदि कोई मूर्ख उस समय देश देशान्तरोंकी शैर करनेकी तृष्णामें पड़ जाय तो वह नहीं पहुँच सकता है। इसी प्रकार इस संसारमें किसी श्रेष्ठ गुरुका शिष्य बनने वाला पुरुष जगत्के कारण सत्को पाजाता है। जिसको उपदेश देनेवाला गुरु मिल गया है और अविद्यारूपी बन्धन दूर होगया है ऐसे पुरुषको तब तक ही आत्मस्वरूपकी प्राप्ति होनेमें विलम्ब हो-रहा है, कि-जब तक प्रारब्धका क्षय नहीं होता है, ज्यों ही

प्रारब्ध पूरा हुआ कि-शरीरपात होजायगा और उसी समय सत्की प्राप्ति होजायगी, ऐसा श्वेतकेतुके पिताने कहा ॥२॥

स य एषोऽणिमैतदात्म्यमिदꣳ सर्वं तत्सत्यꣳ स आत्मा तत्त्वमसि श्वेतकेतो इति भूय एव मा भगवान् विज्ञापयत्विति तथा सोम्येति होवाच ३

अन्वय और पदार्थ—(सः) वह (यः) जो (एषः) यह (अणिमा) सूक्ष्मभाव है (ऐतदात्म्यम्) इस ही आत्मावाला है (इदम्) यह (सर्वम्) सब (तत्) वह (सत्यम्) सत्य है (सः) वह (आत्मा) आत्मा है (श्वेतकेतो) हे श्वेतकेतु (तत्) वह (त्वम्) तू (असि) है (इति) पिता के ऐसा कहने पर (भगवान्) आप (भूयः, एव) फिर भी (मा) मुझको (विज्ञापयतु) समझाइये (इति) इस पर (सोम्य) हे प्रियदर्शन (तथा) ऐसा ही होगा (इति) ऐसा (उवाच, ह) कहा ॥ ३ ॥

भावार्थ--यह सूक्ष्मभाव ही सब जगत्का आत्मारूप है, वह सत्य है और वही आत्मपदार्थ है, हे श्वेतकेतु ! वह सत् तू ही है, ऐसा पिताके कहने पर श्वेतकेतुने कहा, कि—हे भगवन् ! गुरुकी शरण लेने वाला विद्वान् जिस क्रमसे सत्को पाजाता है उस क्रमको दृष्टान्त देकर समझाइये, पिताने उत्तर दिया, कि—हे सोम्य ! कहता हूँ, सुन ॥ ३ ॥

॥ षष्ठाध्यायस्य चतुर्दशः खण्डः समाप्तः ॥

पुरुषꣳ सोम्योतोपतापिनं ज्ञातयः पर्युपासते जानासि मां जानासि मामिति तस्य यावन्न

वाङ् मनसि सम्पद्यते मनः प्राणे प्राणस्तेजसि तेजः परस्यां देवतायां तावज्जानाति ॥ १ ॥

अन्वय और पदार्थ-(सोम्य) हे प्रियदर्शन (उत) और (उपतापिनम्) उपताप वाले (पुरुषम्) पुरुषको (ज्ञातयः) भाई बन्धु (माम्, जानासि) मुझे जानता है (माम्, जानासि) मुझे जानता है (इति) ऐसा कहते हुए (पर्युपासते) घेर कर चारों ओर बैठते हैं (यावत्) जब तक (तस्य) उसकी (वाक्) वाणी (मनसि) मनमें (मनः) मन (प्राणे) प्राणमें (प्राणः) प्राण (तेजसि) तेजमें (तेजः) तेज (परस्याम्, देवतायाम्) पर देवतामें (न) नहीं (सम्पद्यते) लीन होता है (तावत्) तब तक (जानाति) जानता है १

भावार्थ- हे सोम्य ! जिसको ज्वर आदिका कष्ट होरहा है, ऐसे मरने वाले पुरुषको उसके भाई बन्धु चारों ओरसे घेर कर बैठ जाते हैं और कहते हैं, कि--क्या तू मुझे पहचानता है, क्या तू मुझे जानता है। जब तक उसकी वाणी मनमें लीन नहीं होती है, मन प्राणमें, प्राण उष्णतारूप तेजमें और तेज परम देवतामें लीन नहीं होता है तब तक ही वह जानता है १

अथ यदाऽस्य वाङ् मनसि सम्पद्यते मनः प्राणे प्राणस्तेजसि तेजः परस्यां देवतायामथ न जानाति

अन्वय और पदार्थ—(अथ) अनन्तर (यदा) जब (अस्य) इसकी (वाक्) वाणी (मनसि) मनमें (मनः) मन (प्राणे) प्राणमें (प्राणः) प्राण (तेजसि) तेजमें

(तेजः) तेज (परस्याम्, देवतायाम्) पर देवतामें (सम्पद्यते) लीन होजाता है (अथ) अनन्तर (न) नहीं (जानाति) जानता है ॥ २ ॥

भावार्थ–इसके अनन्तर जब इसकी वाणी मनमें, मन प्राण में, प्राण तेजमें और तेज परम देवतामें लीन होजाता है तब वह कुछ भी नहीं जानता है। इस प्रकार अविद्वान् सत्से उठ कर पहिले भावना किये हुए देव मनुष्य वा व्याघ्र आदि भावोंमें प्रवेश करता है और विद्वान् तो शास्त्र तथा गुरुके उपदेशसे उत्पन्न हुए ज्ञानरूप दीपकके द्वारा प्रकाशित सत्-रूप ब्रह्ममें प्रवेश करके पुनर्जन्मको नहीं पाता है, यही इस ब्रह्मप्राप्तिका क्रम है, इसका सुषुम्ना नाड़ीसे उत्क्रमण नहीं होता है, किन्तु इसका प्राण यहाँ ही विलीन होजाता है ॥ २ ॥

स य एषोऽणिमैतदात्म्यमिदꣳ सर्वं तत्सत्यं स आत्मा तत्त्वमसि श्वेतकेतो इति भूय एव मा भगवान् विज्ञापयत्विति तथा सोम्येति होवाच ।३।

अन्वय और पदार्थ–(सः) वह (यः) जो (एषः) यह (अणिमा) सूक्ष्मभाव है (ऐतदात्म्यम्) इस ही आत्मावाला है (इदम्) यह (सर्वम्) सब (तत्) वह (सत्यम्) सत्य है (सः) वह (आत्मा) आत्मा है (श्वेतकेतो) हे श्वेतकेतु (तत्) वह (त्वम्) तू (असि) है (इति) ऐसा पिताके कहने पर (भगवान्) आप (भूयः, एव) फिर भी (मा) मुझको (विज्ञापयतु) समझाइये (इति) ऐसा कहा (सोम्य) हे प्रियदर्शन (तथा) ऐसा ही होगा (इति) ऐसा (उवाच ह) कहा ३

भावार्थ—यह सूक्ष्मभाव ही सब जगत्का आत्मा है, वह सत्य और आत्मपदार्थ है, हे श्वेतकेतु ! वह तू ही है । ऐसा पिताके कहने पर श्वेतकेतुने कहा, कि—हे भगवन ! यदि मरने वालेको और मोक्ष पाने वालेको ब्रह्मकी प्राप्ति समान है तो विद्वान् ब्रह्मको पाकर पुनर्जन्म नहीं पाता है और अविद्वान् पुनर्जन्म पाता है, ऐसा क्यों होता है ? इसका कारण दृष्टान्त देकर समझाइये, पुत्रके ऐसा पूछने पर पिताने कहा, कि—हे सोम्य ! कहता हूँ, सुन ॥ ३ ॥

॥ षष्ठाध्यायस्य पञ्चदशः खण्डः समाप्तः ॥

पुरुषꣳ सोम्योत हस्तगृहीतमानयन्त्यपहार्षी-रस्तेयमकार्षीत्परशुमस्मै तपतेति स यदि तस्य कर्त्ता भवति तत एवानृतमात्मानं कुरुते सोऽनृ-ताभिसन्धोऽनृतेनाऽऽत्मानमन्तर्धाय परशुं तप्तं प्रतिगृह्णाति स दह्यतेऽथ हन्यते ॥ १ ॥

अन्वय और पदार्थ—(सोम्य) हे प्रियदर्शन (उत) और (हस्तगृहीतम्) हाथ बाँधे हुए (पुरुषम्) पुरुषको (आनयन्ति) लाते हैं (अपहार्षीत्) छीन लिया था (स्तेयम्) चोरी (अकार्षीत्) की थी (इति) इस कारण (अस्मै) इसके लिये (परशुम्) कुहाड़ीको (तपत) तपाओ (सः) वह (यदि) जो (तस्य) उसका (कर्त्ता) करने वाला (भवति) होता है (ततः, एव) तिससे ही (आत्मानम्) अपनेको (अनृतम्) मिथ्यायुक्त (कुरुते) करता है (अनृताभिसंधः) मिथ्या प्रतिज्ञा वाला (सः) वह (अनृतेन) मिथ्यासे (आत्मा-

नम्) अपनेको (अन्तर्धाय) ढककर (तप्तम्) तपायी हुई (परशुम्) कुहाड़ीको (प्रतिगृह्णाति) ग्रहण करता है (सः) वह (दह्यते) जलता है (अथ) अनन्तर (हन्यते) मार खाता है

भावार्थ—हे सोम्य ! जिसके ऊपर चोरीका सन्देह होता है राजपुरुष उसको हाथ बाँधकर अधिकारी (हाकिम) के सामने लाते हैं और कहते हैं, कि—महाराज ! इसने अमुक पुरुषका धन छीना है, अमुककी चोरी की है । वह चोर यदि चोरी करना स्वीकार नहीं करता है तो हाकिम कहता है, कि—इसके लिये कुहाड़ी गरम करो, यदि वह चोर होता है तो बाहरसे छुपाता है और अपनेको कुछ दिखाता है अर्थात् चोर होकर भी कहता है कि—मैं चोर नहीं हूँ, वह मिथ्या प्रतिज्ञा करता हुआ उस मिथ्यासे अपनेको ढककर गरम की हुई कुहाड़ी को भ्रान्तिसे पकड़ लेता है तब जलजाता है और मिथ्या कहने के कारण मार खाता है ॥ १ ॥

अथ यदि तस्याकर्त्ता भवति तत एव सत्यमात्मानं कुरुते स सत्याभिसन्धः सत्येनात्मानमन्तर्धाय परशुं तप्तं प्रतिगृह्णाति स न दह्यतेऽथ मुच्यते

अन्वय और पदार्थ—(अथ) और (यदि) जो (तस्य) उसका (अकर्त्ता) न करने वाला (भवति) होता है (ततः, एव) उससे ही (आत्मानम्) अपनेको (सत्यम्) सच्चा (कुरुते) करता है (सत्याभिसन्धः) सत्य प्रतिज्ञावाला (सः) वह (सत्येन) सत्यसे (आत्मानम्) अपनेको (अन्तर्धाय) ढककर (तप्तम्) तपी हुई (परशुम्) कुहाड़ीको (प्रतिगृह्णाति)

ग्रहण करता है (सः) वह (न) नहीं (दह्यते) जलता है (अथ) और (मुच्यते) छूटजाता है ॥ २ ॥

भावार्थ—और यदि वह उस चोरीका करनेवाला नहीं होता है तो उससे ही वह अपनेको सच्चा सिद्ध कर देता है, वह सत्य प्रतिज्ञा करता हुआ, सत्यसे अपनेको ढक कर उस गरम कुहाड़ीको उठा लेता है, वह उससे जलता नहीं और राजद्वारसे छूटजाता है जिस प्रकार चोरी करनेवाला इन दोनों में तपी हुई कुहाड़ीसे हाथको लगाना समान होने पर भी मिथ्या प्रतिज्ञावाला जलता है और सत्य प्रतिज्ञावालेको आँच नहीं लगती। इसी प्रकार अविद्वान् और विद्वान् दोनों सत्को प्राप्त होते हैं, तो भी कार्यरूप मिथ्याकी प्रतिज्ञावाला अविद्वान् पुनर्जन्मको पाता है और ब्रह्मरूप सत्यकी प्रतिज्ञावाला पुनर्जन्म को नहीं पाता है ॥ २ ॥

स यथा तत्र ना दह्येतैतदात्म्यमिदꣳ सर्वं तत्सत्यꣳ स आत्मा तत्त्वमसि श्वेतकेतो इति तद्धास्य विजज्ञाविति विजज्ञाविति ॥ ३ ॥

अन्वय और पदार्थ—(सः) वह (यथा) जैसे (तत्र) तहाँ (न) नहीं (दह्येत) जलता है (ऐतदात्म्यम्) ऐसे ही आत्मावाला (इदम्) यह (सर्वम्) सब (तत्) वह (सत्यम्) सत्य है (सः) वह (आत्मा) आत्मा है (श्वेतकेतो) हे श्वेतकेतु (तत्) वह (त्वम्) तू (असि) है (इति) ऐसा पिताने कहा (अस्य) इसके (तत्) उसको (विजज्ञौ, ह) जानता हुआ (इति) यह सम्वाद समाप्त हुआ ॥ ३ ॥

भावार्थ—जिस प्रकार राजद्वारमें वह सत्य प्रतिज्ञा वाला नहीं जलता है, इसी प्रकार ब्रह्मकी प्रतिज्ञावाला विद्वान् सत् को पाकर पुनर्जन्म नहीं पाता है और कार्यरूप मिथ्याकी प्रतिज्ञावाला अविद्वान् सत्को पाकर कर्मानुसार पुनर्जन्मको पाता है, ऐसे ही आत्मासे यह सब जगत् व्याप्त होरहा है, वह सत्य है, वह आत्मपदार्थ है, हे श्वेतकेतु! वह सत् तू है, इस प्रकार पिताने उपदेश दिया, इस पिताके कहे हुए वचनसे श्वेतकेतु 'मैं सत् ही हूँ' ऐसा जान गया ॥ ३ ॥

॥ षष्ठाध्यायस्य षोडशः खण्डः समाप्तः ॥

षष्ठाध्यायः समाप्तः

* अथ सप्तम अध्याय *

नाम आदि उत्तरोत्तर श्रेष्ठ तत्त्व है और उसमें अत्यन्त श्रेष्ठ भूमा नामक तत्त्व है, अतः उसकी स्तुतिके लिये नाम आदिके क्रमको कहनेका आरम्भ करते हैं। आत्मज्ञानके सिवाय परमश्रेयका साधन और कोई नहीं है, इस बातको सिद्ध करने के लिये भगवान् सनत्कुमार और नारदजीका सम्वाद कहते हैं—

ॐ अधीहि भगव इति होपससाद सनत्कुमारं नारदस्तꣳ होवाच यद्वेत्थ तेन मोपसीद ततस्त ऊर्ध्वं वक्ष्यामीति स होवाच ॥ १ ॥

अन्वय और पदार्थ—(भगवः) हे भगवन् (अधीहि) उपदेश दीजिये (इति) इस प्रकार (नारदः) नारदजी

(सनत्कुमारम्, उपससाद, ह) सनत्कुमारके पास पहुँचे (तम्) उनसे (उवाच, ह) कहा (यत्) जो (वेत्थ) जानते हो (तेन) उसके द्वारा (मा) मुझे (उपसीद) प्राप्त हूजिये (ततः) तदनन्तर (ते) तेरे अर्थ (ऊर्ध्वम्) आगेको (वक्ष्यामि) कहूँगा (इति) ऐसा (उवाच, ह) कहता हुआ १

भावार्थ—हाथमें समिधा लिये नारदजीने ब्रह्मनिष्ठ योगीश्वर सनत्कुमारजीके पास जाकर कहा, कि–हे भगवन्! मुझे उपदेश दीजिये। विधिपूर्वक शरणमें आये हुए नारदजीसे भगवान् सनत्कुमारने कहा, कि–तुम आत्माके विषयमें जो कुछ जानते हो, वह मुझे सुनाओ तो मैं तुम्हें आगेको उपदेश दूँगा, यह सुनकर नारदजीने कहा ॥ १ ॥

ऋग्वेदं भगवोऽध्येमि यजुर्वेदꣳ सामवेदमाथर्वणं चतुर्थमितिहासपुराणं पञ्चमं वेदानां वेदं पित्र्यꣳ राशिं दैवं निधिं वाकोवाक्यमेकायनं देवविद्यां ब्रह्मविद्यां भूतविद्यां क्षत्रविद्यां नक्षत्रविद्याꣳ सर्पदेवजनविद्यामेतद्भगवोऽध्येमि ॥ २॥

अन्वय और पदार्थ—(भगवः) हे भगवन् (ऋग्वेदम्) ऋग्वेदको (अध्येमि) पढ़ा हूँ (यजुर्वेदम्) यजुर्वेदको (सामवेदम्) सामवेदको (चतुर्थम्) चौथे (आथर्वणम्) अथर्वणवेदको (इतिहासपुराणम्) इतिहास पुराणरूप (पञ्चमम् वेदम्) पाँचवें वेदको (वेदानाम्, वेदम्) वेदोंके वेद (पित्र्यम्) श्राद्ध कल्पको (राशिम्) गणितको (दैवम्) उत्पातज्ञानको

(निधिम्) निधिशास्त्रको (वाकोवाक्यम्) तर्कशास्त्रको (एकायनम्) नीतिशास्त्रको (देवविद्याम्) निरुक्तको (ब्रह्म-विद्याम्) वेदविद्याको (भूतविद्याम्) तन्त्रशास्त्रको (क्षत्र-विद्याम्) धनुर्वेदको (नक्षत्रविद्याम्) ज्योतिषको (सर्पदेव-जनविद्याम्) सर्पविद्या और देवजनविद्याको (एतत्) इस सबको (भगवः) हे भगवन् (अध्येमि) पढ़ा हूँ ॥ २ ॥

भावार्थ—हे भगवन् ! मैंने ऋग्वेद पढ़ा है, यजुर्वेद, साम-वेद, चौथा अथर्ववेद, इतिहास पुराणरूप पाँचवाँ वेद, वेदोंका वेद कहिये वेदोंके जाननेका साधन व्याकरण, श्राद्धकल्प, उत्पात विषयक शास्त्र, निधिविद्या, तर्कशास्त्र, नीतिशास्त्र, निरुक्त, वेदविद्या कहिये शिक्षा, कल्प, छन्द और अग्निहोत्र का विधान, भूततन्त्र, धनुर्वेद, ज्योतिष, गारुड़ी विद्या, और देवजनविद्या कहिये नृत्य, गीत, शिल्प आदि विज्ञानशास्त्र इस सबको हे भगवन् ! मैंने पढ़ा है ॥ २ ॥

सोऽहं भगवो मन्त्रविदेवाऽस्मि नात्मविच्छ्रुतꣳ ह्येव मे भगवद्दृशेभ्यस्तरति शोकमात्मविदिति सोऽहं भगवः शोचामि तं मा भगवाञ्छोकस्य पारं तारयत्विति तꣳ होवाच यद्वै किञ्चैतदध्य-गीष्ठा नामैवेतत् ॥ ३ ॥

अन्वय और पदार्थ—(भगवः) हे भगवन् (सः) वह (अहम्) मैं (मन्त्रवित्, एव) मन्त्रको जानने वाला ही (अस्मि) हूँ (आत्मवित्) आत्मज्ञानी (न) नहीं (हि)

क्योंकि (भवद्दृशेभ्यः) आप सरीखोंसे (मे) मैंने (श्रुतम् एव) सुना ही है (आत्मवित्) आत्मज्ञानी (शोकम्) शोक को (तरति) तर जाता है (इति) ऐसा है (भगवः) भगवन् (सः) वह (अहम्) मैं (शोचामि) शोक करता हूँ (तम्) उस (मा) मुझको (भगवान्) आप (शोकस्य) शोकसे (पारम्) पारको (तारयतु) तार दीजिये (इति) ऐसा कहने वाले (तम्) उसके प्रति (उवाच, ह) कहा (यत्किञ्च) जो कुछ (एतत्) यह (अध्यगीष्ठ) पढ़ा है (एतत्) यह (वै) निश्चय (नाम, एव) नाममात्र ही है ३

भावार्थ—हे भगवन् ! मैं कर्मकाण्डको जानता हूँ, आत्मज्ञानी नहीं हूँ । क्योंकि-मैंने आप सरीखे महात्माओंसे सुना है, कि-आत्मज्ञानी अकृतार्थ बुद्धिरूप मनके परितापरूप शोक के पार होजाता है, सो हे भगवन् ! मैं आत्मज्ञानी न होनेके कारण सर्वदा अकृतार्थ बुद्धिसे शोकमग्न रहा करता हूँ, आप आत्मज्ञानरूप नौकाके द्वारा मुझे शोकसागरके पार पहुँचा दीजिये । नारदजीकी इस बातको सुनकर भगवान् सनत्कुमार ने कहा, कि-यह जो कुछ तुमने पढ़ा है सो सब नाममात्र है ३

नाम वा ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेद आथर्वणश्चतुर्थ इतिहासपुराणः पञ्चमो वेदानां वेदः पित्र्यो राशिर्दैवो निधिर्वाकोवाक्यमेकायनं देवविद्या ब्रह्मविद्या भूतविद्या क्षत्रविद्या नक्षत्रविद्या सर्पदेवजनविद्या नामैवैतन्नामोपास्वेति ॥ ४ ॥

अन्वय और पदार्थ—(नाम, वै) नाम ही (ऋग्वेदः) ऋग्वेद है (यजुर्वेदः) यजुर्वेद (सामवेदः) सामवेद (चतुर्थः) चौथा (आथर्वणः) आथर्वणवेद (पञ्चमः) पाँचवाँ वेद (इतिहासपुराणः) इतिहास पुराण (वेदानाम्) वेदोंके (वेदः) जाननेका साधन व्याकरण (पित्र्यः) श्राद्धकल्प (राशिः) गणित (दैवः) उत्पातोंको जाननेकी विद्या (निधिः) खनिविद्या (वाकोवाक्यम्) तर्कशास्त्र (एकायनम्) नीतिशास्त्र (देवविद्या) निरुक्त (ब्रह्मविद्या) शिक्षाकल्प आदि (भूतविद्या) भूततन्त्र (क्षत्रविद्या) धनुर्वेद (नक्षत्रविद्या) ज्योतिष (सर्पदेवजनविद्या) सर्प देवता और मनुष्योंकी विद्या (एतत्) यह (नाम एव) नाम ही है (इति) इस कारण (नाम) नामको (उपास्व) उपासना करो ॥ ४ ॥

भावार्थ—नाम ही ऋग्वेद है, यजुर्वेद, सामवेद, चौथा अथर्ववेद (इतिहास तथा पुराणरूप) पाँचवाँ वेद, वेदोंके ज्ञानका साधन व्याकरण, श्राद्धकल्प, गणित, उत्पातविद्या, भविष्यमें होने वाले उत्पातोंको आगेसे जान लेनेकी विद्या, खनिशास्त्र तर्कशास्त्र, नीतिशास्त्र, निरुक्त, शिक्षाकल्प आदि वेदविद्या, भूततन्त्र, धनुर्वेद, ज्योतिष, सर्पोंकी देवताओंकी और मनुष्यों की विद्या यह सब नाम ही है, जिस प्रकार लोग विष्णु आदि की बुद्धिसे प्रतिमाकी उपासना करते हैं, इसी प्रकार तुम ब्रह्मबुद्धिसे नामकी उपासना करो ॥ ४ ॥

स यो नाम ब्रह्मेत्युपास्ते यावन्नाम्नो गतं तत्रास्य यथाकामचारो भवति यो नाम ब्रह्मेत्यु-

पास्तेऽस्ति भगवो नाम्नो भूय इति नाम्नो वाव भूयोऽस्तीति तन्मे भगवन् ब्रवीत्विति ॥ ५ ॥

अन्वय और पदार्थ—(सः) वह (यः) जो (नाम) नामको (ब्रह्म, इति) ब्रह्म है ऐसा मान कर (उपास्ते) उपासना करता है (अस्य) इसकी (यावत्) जहाँ तक (नाम्नः) नामका (गतम्) विषय है (तावत्) तहाँ तक (यथाकामचारः) इच्छानुसार प्रवृत्ति वाला (भवति) होता है (यः) जो (नाम) नामको (ब्रह्म, इति) ब्रह्म है ऐसा मान कर (उपास्ते) उपासना करता है (भगवः) हे भगवन् (नाम्नः) नामसे (भूयः) अधिकतर (अस्ति) है (इति) ऐसा नारदने बूझा (नाम्नः) नामसे (भूयः, वाव) अधिकतर निश्चय (अस्ति) है (इति) ऐसा सनत्कुमारने कहा (तत्) उसको (भगवान्) आप (मे) मेरे अर्थ (ब्रवीतु) कहिये (इति) ऐसा नारदजीने कहा ॥ ५ ॥

भावार्थ—जो नामको ब्रह्म मान कर उपासना करता है, उसकी जहाँ तक नामकी गति है तहाँ तक इच्छानुसार प्रवृत्ति होती है। नारदजीने कहा, कि—हे भगवन्! क्या ब्रह्मदृष्टि करनेके योग्य कोई नामसे भी बढ़ कर है सनत्कुमारने कहा, कि—हाँ है। तब नारदजीने कहा, कि—हे भगवन्! मुझे उस का उपदेश दीजिये ॥ ५ ॥

॥ सप्तमाध्यायस्य प्रथमः खण्डः समाप्तः ॥

वाग्वाव नाम्नो भूयसी वाग्वा ऋग्वेदं विज्ञापयति यजुर्वेदꣳ सामवेदमाथर्वणं चतुर्थमिति-

हासपुराणं पञ्चमं वेदानां वेदं पित्र्यं राशिं दैवं निधिं वाकोवाक्यमेकायनं देवविद्यां ब्रह्मविद्यां भूतविद्यां क्षत्रविद्यां नक्षत्रविद्याᳬं सर्पदेवजनविद्यां दिवञ्च पृथिवीञ्च वायुञ्चाकाशञ्चापश्च तेजश्च देवाᳬंश्च मनुष्याᳬंश्च पशूᳬंश्च वयाᳬंसि च तृणवनस्पतीन् श्वापदान्याकीटपतङ्गपिपीलकं धर्मञ्चाधर्मञ्च सत्यञ्चानृतञ्च साधु चासाधु च हृदयज्ञं चाहृदयज्ञं च यद्वै वाङ् नाभविष्यन्न सत्यं नानृतं न साधु नासाधु न हृदयज्ञो नाहृदयज्ञो वागेवैतत्सर्वं विज्ञापयति वाचमुपास्वेति ॥ १ ॥

अन्वय और पदार्थ—(वाक्, वाव) वाणी ही (नाम्नः) नामसे (भूयसी) अधिकतर है (वाक्, वै) वाणी ही (ऋग्वेदम्) ऋग्वेदको (यजुर्वेदम्) यजुर्वेदको (सामवेदम्) सामवेदको (चतुर्थम्) चौथे (आथर्वणम्) अथर्ववेदको (पंचमम्) पंचम वेदरूप (इतिहासपुराणम्) इतिहास पुराणको (वेदानाम्, वेदम्) वेदोंके ज्ञानसाधन व्याकरणको (पित्र्यम्) श्राद्धकल्पको (राशिम्) गणितको (दैवम्) उत्पातविद्याको (निधिम्) खनिविद्याको (वाकोवाक्यम्) तर्कशास्त्रको (एकायनम्) नीतिशास्त्रको (देवविद्याम्) निरुक्तको (ब्रह्मविद्याम्) वेदविद्याको (भूतविद्याम्) भूततन्त्रको (क्षत्रविद्याम्) धनुर्वेदको (नक्षत्रविद्याम्) ज्योतिषको (सर्पदेवजनविद्याम्) सर्पोंकी देवताओंकी और मनुष्योंकी विद्याको (दिवञ्च) स्वर्गको भी

(पृथिवींञ्च) पृथिवीको भी (वायुञ्च) वायुको भी (आकाशञ्च) आकाशको भी (अपश्च) जलको भी (तेजश्च) तेजको भी (देवान्, च) देवताओंको भी (मनुष्यान्, च) मनुष्योंको भी (पशून्, च) पशुओंको भी (वयांसि, च) पक्षियोंको भी (तृणवनस्पतीन्) तृण और वनस्पतियोंको (श्वापदानि) हिंसक पशुओंको (आकीटपतङ्गपिपीलकम्) कीड़े, पतङ्गे और चोंटी पर्यन्तको (धर्मम्, च) धर्मको भी (अधर्मञ्च) अधर्मको भी (सत्यञ्च) सत्यको भी (अनृतञ्च) असत्यको भी (साधु च) शुभको भी (असाधु, च) अशुभको भी (हृदयज्ञञ्च) हृदय के प्रियको भी (अहृदयज्ञम्, च) हृदयके अप्रियको भी (विज्ञापयति) जताती है (वाक्) वाणी (न) नहीं (अभविष्यत्) होती [तर्हि] तो (धर्मः) धर्म (न) नहीं (अधर्मः) अधर्म (न) नहीं (सत्यम्) सत्य (न) नहीं (अनृतम्) मिथ्या (न) नहीं (साधु) शुभ (न) नहीं (असाधु) अशुभ (न) नहीं (हृदयज्ञः) हृदयका प्रिय (न) नहीं (अहृदयज्ञः) हृदयका अप्रिय (न) नहीं (व्याज्ञापयिष्यत्) जाना जाता (वाक् एव) वाणी ही (एतत्) इस (सर्वम्) सबको (विज्ञापयति) जताती है (इति) इस कारण (वाचम्) वाणी की (उपास्स्व) उपासना करे ॥ १ ॥

भावार्थ—शब्दोंका उच्चारण करने वाली वाणी ही नामसे अधिकतप है। वाणी ही ऋग्वेदको जानती है। यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद, इतिहास, पुराण, व्याकरण, श्राद्धकल्प, गणित, उत्पातोंको जताने वाली विद्या, निधिशास्त्र, तर्क-

शास्त्र, नीतिशास्त्र, निरुक्त, वेदविद्या, भूततन्त्र, धनुर्वेद, ज्योतिष, सर्पोंकी, देवताओंकी और मनुष्योंकी विद्या, स्वर्ग, पृथिवी वायु, आकाश, जल, तेज, देवता, मनुष्य, पशु, पक्षी, तृण, वनस्पति, व्याघ्रादि हिंसक पशु, कीट, पतङ्ग, चींटियें, धर्म, अधर्म, सत्य, मिथ्या, शुभ, अशुभ, हृदयका प्रिय और हृदय का अप्रिय इन सबको वाणी ही जताती है यदि वाणी न होती तो अध्ययन श्रवण आदि न होनेसे धर्म अधर्म नहीं मालूम होते, सत्य मिथ्या नहीं मालूम होते, भला बुरा नहीं मालूम होता, हृदयका प्रिय अप्रिय नहीं मालूम होता। वाणी ही शब्दके उच्चारणसे इन सबको जताती है, इसप्रकार वाणी नामसे अधिकतर है, इस कारण वाणीकी ब्रह्मबुद्धिसे उपासना कर ॥ १ ॥

स यो वाचं ब्रह्मेत्युपास्ते यावद्वाचो गतं तत्रास्य यथाकामचारो भवति यो वाचं ब्रह्मेत्युपास्तेऽस्ति भगवो वाचो भूय इति वाचो वाव भूयोऽस्तीति तन्मे भगवान् ब्रवीत्विति ॥ २ ॥

अन्वय और पदार्थ—(सः) वह (यहः) जो (वाचम्) वाणीको (ब्रह्म, इति) ब्रह्म है ऐसा जान कर (उपास्ते) उपासना करता है (अस्य) इसको (यावत्) जहाँ तक (वाचः गतम्) वाणीका विषय है (तत्र) उसमें (यथाकामचारः) इच्छानुसार प्रवृत्ति (भवति) होती है (यः) जो (वाचम्) वाणीको (ब्रह्म, इति) ब्रह्म है ऐसा जान कर (उपास्ते) उपासना करता है (भगवः) हे भगवन् (वाचः)

वाणीसे (भूयः) अधिकतर (अस्ति) है (इति) ऐसा नारदजीने बूझा (वाचः) वाणीसे (भूयः) अधिकतर (अस्ति, वाव) है ही (इति) ऐसा सनत्कुमारने कहा (भगवान्) आप (तत्) वह (मे) मेरे अर्थ (ब्रवीतु) कहिये (इति) ऐसा नारदजीने कहा ॥ २ ॥

भावार्थ—जो वाणीको ब्रह्म मान कर उपासना करता है, उसकी जहाँ तक वाणीका विषय है तहाँ तक इच्छानुसार प्रवृत्ति होती है। नारदजीने बूझा, कि—हे भगवन्! क्या कोई वस्तु वाणीसे भी बढ़ कर है, सनत्कुमारने कहा—हाँ है, नारदजीने कहा, कि—तो आप मुझे उसका उपदेश दीजिये ॥ २ ॥

॥ सप्तमाध्यायस्य द्वितीयः खण्डः समाप्तः ॥

मनो वाव वाचो भूयो यथा वै द्वे वाऽऽमलके द्वे वा कोले द्वौ वाऽक्षौ मुष्टिरनुभवत्येवं वाचं च नाम च मनोऽनु भवति स यदा मनसा मनस्यति मन्त्रानधीयीयेत्यथाधीते कर्माणि कुर्वीयेत्यथ कुरुते पुत्राꣳश्च पशूꣳश्चेच्छेयेत्यथेच्छत इमञ्च लोकममुञ्चेच्छेयेत्यथेच्छते मनो ह्यात्मा मनो हि लोको मनो हि ब्रह्म मन उपास्स्वेति ॥ १ ॥

अन्वय और पदार्थ—(मनः, वाव) मन ही (वाचः) वाणीसे (भूयः) अधिक है (यथा वै) जैसे (द्वे, आमलके) दो आमलोंको (वा) या (द्वे, कोले) दो बेरोंको (वा) या (द्वौ, अक्षौ) दो बहेड़ोंको (मुष्टिः) मुट्ठी (अनुभवति)

अनुभव करती है (एवम्) इसी प्रकार (वाचम्, च) वाणी को भी (नाम, च) नामको भी (मनः) मन (अनुभवति) अनुभव करता है (सः) वह (यदा) जब (मनसा) मन से (मन्त्रान्) मन्त्रोंको (अधीयीय) पढ़ूँ (इति) ऐसा (मनस्यति) चाहता है (अथ) अनन्तर (अधीयते) पढ़ता है (कर्माणि) कर्मोंको (कुर्वीय) करूँ (इति) ऐसा चाहता है (अथ) अनन्तर (कुरुते) करता है (पुत्रान्) पुत्रोंको (च) और (पशून्, च) पशुओंको (इच्छेय) चाहूँ (इति) ऐसा विचारता है (अथ) अनन्तर (इच्छते) इच्छा करता है (इमम्) इस (च) और (अमुम्, च) उस भी (लोकम्) लोकको (इच्छेय) इच्छा करूँ (इति) ऐसा विचारता है (अथ) अनन्तर (इच्छते) चाहता है (मनः, हि) मन ही (आत्मा) आत्मा है (मनः, हि) मन ही (लोकः) लोक है (मनः, हि) मन ही (ब्रह्म) ब्रह्म है (इति) इसकारण मनः) मनको (उपास्स्व) उपासना कर ॥ १ ॥

भावार्थ—मन ही वाणीसे अधिकतर है, जिस प्रकार दो आमलोंका वा दो बेरोंका अथवा दो बहेड़ोंका मुट्ठी अनुभव करती है ऐसे ही वाणी और नामका मन अनुभव करता है, वह पुरुष जब मनसे 'मन्त्रोंका अध्ययन करूँ' ऐसा विचारता है और फिर उन मन्त्रोंका उच्चारण करता है कर्मोंको करूँ, ऐसी इच्छा करके कर्मोंको करता है, पुत्र और पशुओंको प्राप्त करूँ ऐसी इच्छा करके उनको प्राप्त करता है और इस लोक को तथा परलोकको प्राप्त करूँ ऐसी इच्छा करके उनको प्राप्त

करलेता है। मनके होनेसे ही आत्माका कर्त्तापन तथा भोक्ता-पना है, इस कारण मन ही आत्मा है। मनके होनेसे ही लोक की प्राप्ति होती है तथा उसकी प्राप्तिके उपायका अनुष्ठान होता है इस कारण मन ही लोक है, इस प्रकार मन ही ब्रह्म है, ऐसा जान कर मनकी उपासना कर ॥ १ ॥

स यो मनो ब्रह्मेत्युपास्ते यावन्मनसो गतं तत्रास्य यथाकामचारो भवति यो मनो ब्रह्मेत्युपास्तेऽस्ति भगवो मनसो भूय इति मनसो वाव भूयोऽस्तीति तन्मे भगवान् ब्रवीत्विति ॥ २ ॥

अन्वय और पदार्थ—(सः) वह (यः) जो (मनः) मन (ब्रह्म) ब्रह्म है (इति) ऐसा जानकर (उपास्ते) उपासना करता है (यावत्) जहाँ तक (मनसः गतम्) मनका विषय है (अस्य) इसकी (तत्र) उसमें (यथाकामचारः) इच्छानुसार प्रवृत्ति (भवति) होती है (यः) जो (मनः) मन (ब्रह्म) ब्रह्म है (इति) ऐसा जानकर (उपास्ते) उपासना करता है (भगवः) हे भगवन् (मनसः) मनसे (भूयः) अधिकतर (अस्ति) है (इति) ऐसा नारदने बूझा (मनसः) मनसे (भूयः) अधिक (अस्ति, वाव) है ही (इति) ऐसा सनत्कुमारने कहा (भगवान्) आप (तत्) उसको (मे) मेरे अर्थ (ब्रवीतु) कहिये (इति) ऐसा नारदने कहा ।२।

भावार्थ—जो मनको ब्रह्म मानकर उपासना करता है, इस की जहाँ तक मनका विषय है, उसमें इच्छानुसार प्रवृत्ति होती है नारदजीने बूझा कि—हे भगवन् ! क्या मनसे भी बढ़कर

कोई है ? सनत्कुमारने उत्तर दिया, कि—हाँ है, इस पर नारद जीने कहा, कि—तो आप मुझे उसका उपदेश दीजिये ॥२॥

॥ सप्तमाध्यायस्य तृतीयः खण्डः समाप्तः ॥

सङ्कल्पो वाव मनसो भूयान् यदा वै सङ्कल्पयतेऽथ मनस्यत्यथ वाचमीरयति तामु नाम्नीरयति नाम्नि मंत्रा एकं भवन्ति मन्त्रेषु कर्माणि १

अन्वय और पदार्थ—(सङ्कल्पः वाव) संकल्प ही (मनसः) मनसे (भूयान्) अधिकतर है (यदा) जब (वै) निश्चय (संकल्पयते) संकल्प करता है (अथ) अनन्तर (मनस्यति) इच्छा करता है (अथ) अनन्तर (वाचम्) वाणीको (ईरयति) प्रेरणा करता है (ताम्, उ) उसको ही (नाम्नि) नाममें (ईरयति) प्रेरणा करता है (नाम्नि) नाममें (मन्त्राः) मन्त्र (मन्त्रेषु) मन्त्रोंमें (कर्माणि) कर्म (एकम्) एक (भवन्ति) होते हैं ॥ १ ॥

भावार्थ—संकल्प कहिये कर्त्तव्य तथा अकर्त्तव्यरूप विषय का विभाग करनेवाली अन्तःकरणकी वृत्ति ही मनसे बढ़कर है, जब संकल्प करता है तब मन्त्रोच्चारणकी इच्छा करता है फिर मन्त्रादिके उच्चारणमें वाणीको प्रेरणा करता है, उस वाणीको ही नाममें प्रेरणा करता है, नाम सामान्यमें शब्दविशेष मन्त्रोंका और मन्त्रोंमें कर्मोंका अन्तर भाव है ॥ १ ॥

तानि ह वा एतानि सङ्कल्पैकायनानि सङ्कल्पे प्रतिष्ठितानि समक्लृपतां द्यावापृथिवी समकल्पेतां

वायुश्चाकाशश्च समकल्पन्तामापश्च तेजश्च तेषाᳩं संक्लृप्त्यै वर्षᳩं सङ्कल्पते वर्षस्य संक्लृप्त्या अन्नं सङ्कल्पतेऽन्नस्य संक्लृप्त्यै प्राणाः सङ्कल्पन्ते प्राणानाᳩं संक्लृप्त्यै मन्त्राः सङ्कल्पन्ते मन्त्राणाᳩं संक्लृप्त्यै कर्माणि सङ्कल्पन्ते कर्मणाᳩं संक्लृप्त्यै लोकः सङ्कल्पते लोकस्य संक्लृप्त्यै सर्वᳩं सङ्कल्पते स एष सङ्कल्पः सङ्कल्पमुपास्स्वेति ॥ २ ॥

अन्वय और पदार्थ—(तानि, ह) वह प्रसिद्ध (एतानि) ये (सङ्कल्पैकायनानि) एक सङ्कल्परूप आश्रय वाले, सङ्कल्पात्मकानि) सङ्कल्पसे उत्पन्न होने वाले (सङ्कल्पे) सङ्कल्प में (प्रतिष्ठितानि) स्थिति वाले [सन्ति] हैं (द्यावापृथिवी) स्वर्ग और पृथिवी (समकल्पताम्) सङ्कल्प वाले हैं (वायुः) वायु (च) और (आकाशश्च) आकाश भी (समकल्पेताम्) सङ्कल्प करने वाले हैं (आपः) जल (च) और (तेजः, च) तेज भी (समकल्पन्त) सङ्कल्प करते हैं (तेषाम्) उनके (संक्लृप्त्यै) सङ्कल्पसे (वर्षम्) वर्षा (संकल्पते) समर्थ होती है (वर्षस्य) वर्षाके (संक्लृप्त्यै) सङ्कल्पसे (अन्नम्) अन्न (सङ्कल्पते) समर्थ होता है (अन्नस्य) अन्नके (संक्लृप्त्यै) सङ्कल्पसे (प्राणाः) प्राण (सङ्कल्पन्ते) समर्थ होते हैं (प्राणानाम्) प्राणोंके (संक्लृप्त्यै) सङ्कल्पसे (मंत्राः) मन्त्र (संकल्पन्ते) समर्थ होते हैं (मन्त्राणाम्) मन्त्रोंके (संक्लृप्त्यै) संकल्पसे (कर्माणि) कर्म (संकल्पन्ते) समर्थ

होते हैं (कर्मणाम्) कर्मोंके (संक्लृप्त्यै) संकल्पसे (लोकः) लोक (संकल्पते) समर्थ होता है (लोकस्य) लोकके (संक्लृप्त्यै) संकल्पसे (सर्वम्) सब (संकल्पते) समर्थ होता है (सः) वह (एषः) यह (संकल्पः) संकल्प है (इति) इस कारण (संकल्पम्) संकल्पको (उपास्स्व) उपासना कर २

भावार्थ—इन मन आदिका एक संकल्पमें ही लय हुआ करता है, ये संकल्पसे ही उत्पन्न हुए हैं और संकल्पमें ही ठहरे हुए हैं, स्वर्ग और पृथिवी संकल्प करते हुएसे निश्चल दीखते हैं, वायु और आकाश संकल्प वालेसे प्रतीत होते हैं जल और तेज संकल्प करने वालेसे प्रतीत होते हैं । स्वर्ग पृथिवी आदिके संकल्प (सामर्थ्य) से वर्षा समर्थ होती है, वर्षाकी सामर्थ्यसे अन्न समर्थ होता है अन्नकी सामर्थ्यसे प्राण समर्थ होते हैं, प्राणबल वाला पुरुष मन्त्रोंको ठीक २ पढ़ सकता है इस कारण प्राणोंकी सामर्थ्यसे मन्त्र समर्थ होते हैं, मन्त्रोंकी सामर्थ्यसे अग्निहोत्र आदि कर्म फल देनेमें समर्थ होते हैं, कर्मोंकी सामर्थ्यसे सांसारिक सुखरूप फल समर्थ होता है, फलकी सामर्थ्यसे सब जगत् समर्थ होता है, क्योंकि—यह प्रसिद्ध सब जगत् जिस फलरूप अन्तवाला है उस फलका मूल संकल्प है, ऐसा यह संकल्प श्रेष्ठ है इस कारण संकल्पकी ब्रह्मबुद्धिसे उपासना करो ॥ २ ॥

स यः संकल्पं ब्रह्मेत्युपास्ते क्लृप्तान् वै स लोकान् ध्रुवान् ध्रुवः प्रतिष्ठितान् प्रतिष्ठितोऽव्यथमानानव्यथमानोऽभिसिध्यति यावत्संक-

ल्पस्य गतं तत्रास्य यथाकामचारो भवति यः संकल्पं ब्रह्मेत्युपास्तेऽस्ति भगवः संकल्पाद् भूय इति संकल्पाद्वाव भूयोऽस्तीति तन्मे भगवान् ब्रवीत्विति ॥ ३ ॥

अन्वय और पदार्थ--(सः) वह (यः) जो (संकल्पम्) संकल्पको (ब्रह्म, इति) ब्रह्म है ऐसा जान कर (उपास्ते) उपासना करता है (सः) वह (क्लृप्तान्) निर्णय कराये हुए (ध्रुवान्) नित्य (प्रतिष्ठितान्) भोग सामग्रीवाले (अव्यथमानान्) त्रासरहित (लोकान्) लोकोंको (ध्रुवः) नित्य (प्रतिष्ठितः) भोगसामग्री वाला (अव्यथमानः) त्रासरहित होता हुआ (अभिसिध्यति) पाता है (यावत्) जहाँ तक (संकल्पस्य) संकल्पका (गतम्) विषय है (तत्र) उसमें (अस्य) इसकी (यथाकामचारः) इच्छानुसार गति (भवति) होती है (यः) जो (संकल्पम्) संकल्पको (ब्रह्म इति) ब्रह्म है ऐसा जानकर (उपास्ते) उपासना करता है (भगवः) हे भगवन् (संकल्पात्) संकल्पसे (भूयः) अधिक (अस्ति) है (इति) ऐसा नारदके बूझने पर (संकल्पात्) संकल्पसे (भूयः) अधिक (वाव) अवश्य (अस्ति) है (इति) ऐसा सनत्कुमारने कहा (तत्) उसको (भगवान्) आप (मे) मेरे अर्थ (ब्रवीतु) कहिये (इति) ऐसा नारदने कहा ।३।

भावार्थ—जो संकल्पको ब्रह्म जानकर उपासना करता है वह ईश्वरके निर्णय कराये हुए, कुछ अधिक समय तक रहने वाले, जिनमें अनेकों भोगसामग्रियें हैं और जिनमें शत्रु आदि

से किसी प्रकारकी व्यथा नहीं होती है ऐसे लोकोंमें जाता है तहाँ कुछ अधिक समय तक रहकर भोगसामग्रियोंको भोगता है और शत्रु आदिसे किसी प्रकारका त्रास नहीं पाता है, जितने विषय संकल्पमें आसकते हैं उनमें इसकी अव्याहत गति होती है। यह सुनकर नारदजीने कहा, कि—हे भगवन्! क्या संकल्प से बढ़कर भी कोई पदार्थ है? सनत्कुमारजीने कहा, कि—हाँ है, नारदजीने कहा, कि—तो मुझे उसका उपदेश दीजिये। ३।

॥ सप्तमाध्यायस्य चतुर्थः खण्डः समाप्तः ॥

चित्तं वाव संकल्पाद् भूयो यदा वै चेतयतेऽथ मनस्यत्यथ वाचमीरयति तामु नाम्नीरयति नाम्नि मन्त्रा एकं भवन्ति मन्त्रेषु कर्माणि ॥ १ ॥

अन्वय और पदार्थ—(चित्तम्, वाव) चित्त ही (संकल्पात्) संकल्पसे (भूयः) अधिकतर है (यदा) जब (चेतयते) जानता है (अथ वै) अनन्तर ही (संकल्पयते) संकल्प करता है (अथ) अनन्तर (मनस्यति) चाहता है (अथ) अनन्तर (वाचम्) वाणीको (ईरयति) प्रेरणा करता है (ताम् उ) उसको ही (नाम्नि) नाममें (ईरयति) प्रेरणा करता है (नाम्नि) नाममें (मन्त्राः) मन्त्र (मन्त्रेषु) मन्त्रों में (कर्माणि) कर्म (एकम्, भवन्ति) एक होते हैं ॥ १ ॥

भावार्थ—चित्त ही संकल्पसे अधिकतर है, जब चित्त प्राप्त हुई वस्तुको जानता है, उसी समय उसका त्याग वा ग्रहण करनेके लिये संकल्प करता है, फिर तैसा ही करनेकी इच्छा करता है, तदनन्तर वाणीको प्रेरणा करता है, उस वाणीको

नाममें प्रेरणा करता है, नाममें मन्त्रोंका अन्तर्भाव और मन्त्रों में कर्मोंका अन्तर्भाव होता है ॥ ३ ॥

तानि ह वा एतानि चित्तैकायनानि चित्तात्मानि चित्ते प्रतिष्ठितानि तस्माद्यद्यपि बहुविदचित्तो भवति नायमस्तीत्येवैनमाहुर्यदयं वेद यद्वा अयं विद्वान्नेत्थमचित्तः स्यादित्यथ यद्यल्पविच्चित्तवान् भवति तस्मा एवोत शुश्रूषन्ते चित्तꣳ ह्येवैषामेकायनं चित्तमात्मा चित्तं प्रतिष्ठा चित्तमुपास्स्वेति

अन्वय और पदार्थ—(तानि, ह) वह प्रसिद्ध (एतानि, वै) ये ही (चित्तैकायनानि) एक चित्त ही है आश्रय जिन का ऐसे (चित्तात्मानि) चित्तसे उत्पन्न होने वाले (चित्ते) चित्तमें (प्रतिष्ठितानि) स्थित [सन्ति] हैं (तस्मात्) तिस से (यद्यपि) यद्यपि (बहुवित्) बहुत जानने वाला (अचित्तः) अचित्त (भवति) होता है (अयम्) यह (न) नहीं (अस्ति) है (इति, एव) ऐसा ही (एनम्) इसको (आहुः) कहते हैं (यत्) जो (अयम्) यह (वेद) जानता है (यद्वा) अथवा (अयम्) यह (विद्वान्) विद्वान् है (इत्थम्) इस प्रकार (अयम्) यह (अचित्तः) चित्तहीन (न) नहीं (स्यात्) होना चाहिये (इति) ऐसा कहते हैं (अथ) और (यदि) जो (अल्पवित्) अल्पज्ञ (चित्तवान्) चित्त वाला (भवति) होता है (तस्मै, एव) उसके लिये ही (शुश्रूषन्ते) श्रवण करना चाहते हैं (हि) क्योंकि (चित्तम्, एव) चित्त ही (एषाम्)

इनका (एकायनम्) एक आश्रय है (चित्तम्) चित्त (आत्मा) आत्मा है (चित्तम्) चित्त (प्रतिष्ठा) स्थिति स्थान है (इति) इस कारण (चित्तम्) चित्तको (उपास्स्व) उपासना कर ॥२॥

भावार्थ—ये संकल्पसे लेकर कर्मफल पर्यन्तकी वस्तुएँ चित्तमें ही लीन हुआ करती हैं, चित्तसे ही उत्पन्न होती हैं और चित्तमें ही इनकी स्थिति है, क्योंकि—चित्त संकल्प आदि का मूल है, इस कारण बहुतसे शास्त्रादिको जानने वाला होने पर भी जो अचित्त कहिये वस्तुओंको पहचाननेकी शक्ति से शून्य होता है तो उसको चतुर पुरुष 'यह तो होता हुआ भी मानो नहीं है' ऐसा कहते हैं, इसने जो कुछ शास्त्र आदि पढ़ा है इसका वह भी वृथा ही है; क्योंकि—यदि यह विद्वान् होता तो ऐसा अचित्त न होता, तथा जो थोड़ा ज्ञाता होकर भी चित्तवाला होता है, उसके पास लोग उसका उपदेश सुननेको जाते हैं क्योंकि—चित्त ही संकल्प आदिका मुख्य आश्रय है, चित्त ही उत्पत्तिस्थान है और चित्तमें ही ये सब स्थित रहते हैं, इस कारण चित्तकी ही ब्रह्मबुद्धिसे उपासना कर

स यश्चित्तं ब्रह्मेत्युपास्ते चित्तान् वै स लोकान् ध्रुवान् ध्रुवः प्रतिष्ठितान् प्रतिष्ठितोऽव्यथमानान-व्यथमानोऽभिसिध्यति यावच्चित्तस्य गतं तत्रास्य यथाकामचारो भवति यश्चित्तं ब्रह्मेत्युपास्तेऽस्ति भगवश्चित्ताद् भूय इति चित्ताद् वाव भूयोऽस्तीति तन्मे भगवान् ब्रवीत्विति ॥ ३ ॥

अन्वय और पदार्थ—(सः) वह (यः) जो (चित्तम्) चित्तको (ब्रह्म,इति) ब्रह्म है ऐसा जानकर (उपास्ते) उपासना करता है (सः) वह (वै) निश्चय (चित्तान्) वृद्धि पाये हुए (ध्रुवान्) आपेक्षिक नित्य (प्रतिष्ठितान्) भोग· सामग्रीयुक्त (अव्यथमानान्) व्यथारहित (लोकान्) लोकों को (ध्रुवः) नित्य (प्रतिष्ठितः) भोगसामग्री युक्त (अव्यथमानः) त्रासरहित होता हुआ (अभिसिध्यति) पाता है (यावत्) जहाँतक (चित्तस्य, गतम्) चित्तका विषय है (तत्र) उसमें (अस्य) इसकी (कामचारः) इच्छित गति (भवति) होती है (यः) जो (चित्तम्) चित्तको (ब्रह्म, इति) ब्रह्म है ऐसा मानकर (उपास्ते) उपासना करता है, (भगवः) हे भगवन् (चित्तात्) चित्तसे (भूयः) अधिकतर (अस्ति) है (इति) ऐसा नारदने बूझा (चित्तात्) चित्तसे (भूयः) अधिकतर (अस्ति, वाव) है ही (इति) ऐसा सनत्कुमारने कहा (तत्) उसको (भगवान्) आप (मे) मेरे अर्थ (ब्रवीतु) कहिये (इति) ऐसा नारदने कहा २

भावार्थ—जो चित्तको ब्रह्म जान कर उपासना करता है, वह बुद्धिमत्ताके गुणोंसे वृत्तिको प्राप्त हुए, और पदार्थोंकी अपेक्षा अधिक समय तक रहने वाले, भोगसामग्रियोंसे युक्त और व्यथारहित लोकोंको पाता है और तहाँ चिरकाल तक रहता है, अनेकों प्रकारके भोग भोगता है और किसी प्रकार का कष्ट नहीं पाता है, जितने चित्तके विषय हैं, उनमें इसको यथेच्छ प्रवृत्ति होती है। नारदजी बूझा, कि—हे भगवन् !

क्या चित्तसे भी अधिकतर कोई है ? सनत्कुमारने उत्तर दिया कि–हाँ है, नारदजीने कहा, कि–तो आप मुझे उसका उपदेश दीजिये ॥ ३ ॥

॥ सप्तमाध्यायस्य पञ्चमः खण्डः समाप्तः ॥

ध्यानं वाव चित्ताद् भूयो ध्यायतीव पृथिवी ध्यायतीवान्तरिक्षं ध्यायतीव द्यौर्ध्यायन्तीवापो ध्यायन्तीव पर्वता ध्यायन्तीव देवमनुष्यास्तस्माद्य इह मनुष्याणां महत्तां प्राप्नुवन्ति ध्यानापादांशा इवैव ते भवन्त्यथ येऽल्पाः कलहिनः पिशुना उपवादिनस्तेऽथ ये प्रभवो ध्यानापादाꣳशा इवैव ते भवंति ध्यानमुपास्स्वेति ॥ १ ॥

अन्वय और पदार्थ–(ध्यानम्, वाव) चित्तकी एकाग्रता ही (चित्तात्) चित्तसे (भूयः) अधिकतर है (पृथिवी) पृथिवी (ध्यायति इव) ध्यान करती हुई सी है (अन्तरिक्षम्) आकाश (ध्यायति इव) ध्यान करता हुआ सा है (द्यौः) स्वर्ग (ध्यायति, इव) ध्यान करता हुआ सा है (आपः) जल (ध्यायन्ति, इव) ध्यान करते हुए से हैं (पर्वताः) पहाड़ (ध्यायन्ति, इव (ध्यान करते हुएसे हैं (देवमनुष्याः) देवताओंकी समान मनुष्य (ध्यायन्ति, इव) ध्यान करते हुए से हैं (तस्मात्) तिससे (ये) जो (इह) इस लोकमें (मनुष्याणाम्) मनुष्योंमें (महत्ताम्) गौरवको (प्राप्नुवन्ति) पाते हैं (ते) वह (ध्यानापादांशाः, इव, एव) ध्यानलाभके अंश

वालेसे ही (भवन्ति) होते हैं (अथ) और (ये) जो (अल्पाः) क्षुद्र (कलहिनः) कलही (पिशुनाः) चुगलखोर (उपवादिनः) समीपमें कहने वाले (भवन्ति) होते हैं (अथ) और (ये) जो (प्रभवः) प्रभु होते हैं (ते) वह (ध्यानापादांशा, इव, एव) ध्यानप्राप्तिके अंशवाले ही (भवन्ति) होते हैं (इति) इस कारण (ध्यानम्) ध्यानको (उपास्स्व) उपासना कर ॥ १ ॥

भावार्थ—ध्यान कहिये अन्तःकरणकी एकाग्रता ही चित्त से अधिकतर है। पृथिवी मानो ध्यान करती हो ऐसी निश्चल दीखती है, आकाश ध्यान करता हुआ सा निश्चल दीखता है, स्वर्ग ध्यान करता हुआ सा निश्चल दीखता है, जल ध्यान करते हुएसे निश्चल दीखते हैं, पहाड़ ध्यान करते हुएसे निश्चल दीखते हैं, शम दम आदि गुणों वाले देवतुल्य मनुष्य ध्यान करते हुएसे निश्चल प्रतीत होते हैं, इस कारण जो इस लोकमें मनुष्योंमें धन विद्या और गुणोंके कारण गौरवके हेतुरूप उत्तम कर्मको पाते हैं, वह ध्यानके फलकी प्राप्तिके अंश वाले निश्चलसे होजाते हैं और जो क्षुद्र कहिये धनादिसे गौरव के एक अंशको भी प्राप्त नहीं हुए हैं वह कलही, चुगलखोर और दूसरोंके दोष उघाड़ने वाले होते हैं तथा जो प्रभु हैं वह ध्यान फलकी प्राप्तिके अंश वाले निश्चलसे ही होते हैं इस प्रकार ध्यानका निश्चलतारूप फलसे गौरव देखनेमें आता है इस कारण ध्यानकी ब्रह्मबुद्धिसे उपासना कर ॥ १ ॥

स यो ध्यानं ब्रह्मेत्युपास्ते यावद् ध्यानस्य गतं

तत्रास्य यथाकामचारो भवति यो ध्यानं ब्रह्मेत्यु-पास्तेऽस्ति भगवो ध्यानाद् भूय इति ध्यानाद्वाव भूयोऽस्तीति तन्मे भगवान् ब्रवीत्विति ॥ २ ॥

अन्वय और पदार्थ—(सः) वह (यः) जो (ध्यानम्) ध्यानको (ब्रह्म, इति) ब्रह्म है ऐसा मान कर (उपास्ते) उपासना करता है (यावत्) जहाँ तक (ध्यानस्य, गतम्) ध्यानका विषय है (तत्र) उसमें (अस्य) इसकी (कामचारः) यथेच्छ गति (भवति) होती है (यः) जो (ध्यानम्) ध्यान को (ब्रह्म, इति) ब्रह्म है ऐसा मान कर (उपास्ते) उपासना करता है (भगवः) हे भगवन् (ध्यानात्) ध्यानसे (भूयः) अधिकतर (अस्ति) है (इति) ऐसा नारदने बूझा (ध्यानात्) ध्यानसे (भूयः) अधिकतर (अस्ति, वाव) है ही (इति) ऐसा सनत्कुमारने कहा (तत्) उसको (भगवान्) आप (मे) मेरे अर्थ (ब्रवीतु) कहिये (इति) ऐसा नारदने कहा ॥ २ ॥

भावार्थ—जो इस ध्यानको ब्रह्म मानकर उपासना करता है, उसकी ध्यानके विषयमात्रमें इच्छानुसार गति होजाती है नारदजीने बूझा कि—क्या ध्यानसे बढ़कर भी कोई पदार्थ है सनत्कुमारने उत्तर दिया, कि—हाँ अवश्य है, तब नारदजीने कहा, कि—उसका भी मुझे उपदेश दीजिये ॥ २ ॥

॥ सप्तमाध्यायस्य षष्ठः खण्डः समाप्तः ॥

विज्ञानं वाव ध्यानाद् भूयो विज्ञानेन वा ऋग्वेदं विजानाति यजुर्वेदꣳ सामवेदमाथर्वणं चतुर्थमि-

तिहासपुराणं पञ्चमं वेदानां वेदं पित्र्यं राशिं दैवं निधिं वाकोवाक्यमेकायनं देवविद्यां ब्रह्मविद्यां भूतविद्यां क्षत्रविद्यां नक्षत्रविद्याᳬं सर्पदेवजनविद्यां दिवञ्च पृथिवीञ्च वायुञ्चाऽऽकाशञ्चापश्च तेजश्च देवाᳬंश्च मनुष्याᳬंश्च पशूᳬंश्च वयांसि च तृणवनस्पतीन् श्वापदान्याकीटपतङ्गपिपीलकं धर्मं चाधर्मं च सत्यं चानृतं च साधु चासाधु च हृदयज्ञं चाऽहृदयज्ञं चान्नं च रसं चेमं च लोकममुं च विज्ञानेनैव विजानाति विज्ञानमुपास्स्वेति

अन्वय और पदार्थ—(विज्ञानम्, वाव) विज्ञान ही (ध्यानात्) ध्यानसे (भूयः) अधिकतर है (विज्ञानेन) विज्ञानके द्वारा (वै) निश्चय (ऋग्वेदम्) ऋग्वेदको (विजानाति) जानता है (यजुर्वेदम्) यजुर्वेदको (सामवेदम्) सामवेदको (चतुर्थम्) चौथे (आथर्वणम्) अथर्वण वेदको (पञ्चमम्) पाँचवें (इतिहासपुराणम्) इतिहास पुराणको (वेदानाम्, वेदम्) वेदोंके वेद व्याकरणको (पित्र्यम्) श्राद्धकल्पको (राशिम्) गणितको (दैवम्) उत्पातविद्याको (निधिम्) निधिशास्त्रको (वाकोवाक्यम्) तर्कशास्त्रको (एकायनम्) नीतिशास्त्रको (देवविद्याम्) निरुक्तको (ब्रह्मविद्याम्) वेदविद्याको (भूतविद्याम्) भूततन्त्रको (क्षत्रविद्याम्) धनुर्वेदको (नक्षत्रविद्याम्) ज्योतिषको (सर्पदेवजनविद्याम्) सर्प, देवता और मनुष्योंकी विद्याको (दिवम्) स्वर्गको (च) और (पृथि-

वीश्च) पृथिवीको भी (वायुम्) वायुको (च) और (आकाशञ्च) आकाशको भी (आपः) जलको (च) और (तेजः च) तेजको भी (देवान्) देवताओंको (च) और (मनुष्यान्, च) मनुष्योंको भी (पशून्) पशुओंको (च) और (वयांसि, च) पक्षियोंको भी (तृणवनस्पतीन्) तृण और वनस्पतियोंको (श्वापदान्) हिंसक पशुओंको (आकीटपतङ्गपिपीलकम्) कीड़े, पतंगे और चींटियों तकको (धर्मम्) धर्मको (च) और (अधर्मञ्च) अधर्मको भी (सत्यम्) सत्यको (च) और (अनृतञ्च) असत्यको भी (साधु) शुभको (च) और (असाधु, च) अशुभको भी (हृदयज्ञम्) हृदयके प्रियको (च) और (अहृदयज्ञञ्च) अहृदयके अप्रियको भी (अन्नम्) अन्नको (च) और (रसञ्च) रसको भी (इमम्) इस (च) और (अमुञ्च) उस भी (लोकम्) लोकको (विज्ञानेन, एव) विज्ञानके द्वारा ही (विजानाति) जानता है (इति) इस कारण (विज्ञानम्) विज्ञानको (उपास्स्व) उपासना कर ॥ १ ॥

भावार्थ—विज्ञान कहिये शास्त्रके अर्थको विषय करनेवाला ज्ञान ही ध्यानसे बढ़कर है, विज्ञानसे ही ऋग्वेदको जानता है तथा यजुर्वेद, सामवेद, चौथा अथर्ववेद, पाँचवाँ इतिहास पुराण, वेदोंके ज्ञानका साधन व्याकरण, श्राद्धकल्प, गणित, उत्पातविद्या, निधिशास्त्र, तर्कशास्त्र, नीतिशास्त्र, निरुक्त, वेदविद्या, भूततंत्र, धनुर्वेद, ज्योतिष, सर्प देवता और मनुष्यों की विद्या, स्वर्ग, पृथिवी, वायु आकाश, जल, तेज, देवता, मनुष्य, पशु, पक्षी, तृण, वनस्पति, हिंसकपशु, कीट, पतङ्ग,

चोंटियें तक धर्म, अधर्म, सत्य, मिथ्या, शुभ, अशुभ, हृदयका प्रिय वा अप्रिय, अन्न, रस, यह लोक और परलोक इन सब को विज्ञानसे ही जाना जाता है, इस कारण विज्ञानकी ही ब्रह्मबुद्धिसे उपासना कर ॥ १ ॥

स यो विज्ञानं ब्रह्मेत्युपास्ते विज्ञानवतो वै स लोकान् ज्ञानवतोऽभिसिध्यति यावद्विज्ञानस्य गतं तत्रास्य यथाकामचारो भवति यो विज्ञानं ब्रह्मेत्युपास्तेऽस्ति भगवो विज्ञानाद् भूय इति विज्ञानाद्वाव भूयोऽस्तीति तन्मे भगवान् ब्रवीत्विति २

अन्वय और पदार्थ—(सः) वह (यः) जो (विज्ञानम्) विज्ञानको (ब्रह्म, इति) ब्रह्म है ऐसा मान कर (उपास्ते) उपासना करता है (सः) वह (वै) निश्चय (विज्ञानवतः) विज्ञान वालेके (ज्ञानवतः) ज्ञानवालेके (लोकान्) लोकोंको (अभिसिध्यति) पाता है (यावत्) जहाँ तक (विज्ञानस्य, गतम्) विज्ञानका विषय है (तत्र) उसमें (अस्य) इसकी (यथाकामचारः) यथेच्छ प्रवृत्ति (भवति) होती है (यः) जो (विज्ञानम्) विज्ञानको (ब्रह्म, इति) ब्रह्म है ऐसा मानकर (उपास्ते) उपासना करता है (भगवः) हे भगवन् (विज्ञानात्) विज्ञानसे (भूयः) अधिकतर (अस्ति) है (इति) ऐसा नारदने बूझा (विज्ञानात्) विज्ञानसे (भूयः) अधिकतर (अस्ति, वाव) है ही (इति) ऐसा सनत्कुमारने कहा (तत्) उसको (भगवान्) आप (मे) मेरे अर्थ (ब्रवीतु) कहिये (इति) ऐसा नारदने कहा ॥ २ ॥

भावार्थ—जो विज्ञानको ब्रह्म मानकर उपासना करता है वह शास्त्रविषयक ज्ञान रखने वालोंके और अन्य विषयोंमें चतुराई रखनेवालोंके प्रसिद्ध लोकोंको पाता है, जो कुछ भी विज्ञानका विषय है उसमें इसको यथेच्छ प्रवृत्ति होती है। नारदजीने कहा कि—क्या विज्ञानसे भी अधिकतर कोई पदार्थ है ? सनत्कुमारने कहा—हाँ अवश्य है, नारदजीने कहा तो उसको भी कहिये ॥ २ ॥

॥ सप्तमाध्यायस्य सप्तमः खण्डः समाप्तः ॥

बलं वाव विज्ञानाद् भूयोऽपि ह शतं विज्ञानवतामेको बलवानाकम्पयते स यदा बली भवत्यथोत्थाता भवत्युत्तिष्ठन् परिचरिता भवति परिचरन्नुपसत्ता भवत्युपसीदन्द्रष्टा भवति श्रोता भवति मन्ता भवति बोद्धा भवति कर्त्ता भवति विज्ञाता भवति बलेन वै पृथिवी तिष्ठति बलेनान्तरिक्षं बलेन द्यौर्बलेन पर्वता बलेन देवमनुष्या बलेन पशवश्च वयाꣳसि च तृणवनस्पतयः श्वापदान्याकीटपतंगपिपीलकं बलेन लोकस्तिष्ठति बलमुपास्स्वेति ॥ १ ॥

अन्वय और पदार्थ–(बलम्, वाव) बल ही (विज्ञानात्) विज्ञानसे (भूयः) अधिकतर है (एकः, अपि) एक भी (बलवान्) बली (विज्ञानवताम्) विज्ञानवालोंके (शतम्)

सैंकड़ेको (आकम्पयते) कम्पायमान कर देता है (सः) वह (यदा) जब (बली) बलवान् (भवति) होता है (अथ) तो (उत्थाता) उठने वाला (भवति) होता है (उत्तिष्ठन्) उठता हुआ (परिचरिता) सेवा करने वाला (भवति) होता है (परिचरन्) सेवा करता हुआ (उपसत्ता) पास पहुँचा हुआ (भवति) होता है (उपसीदन्) समीप पहुँचता हुआ (द्रष्टा) देखने वाला (भवति) होता है (श्रोता, भवति) सुनने वाला होता है (मन्ता, भवति) मनन करनेवाला होता है (बोद्धा,भवति) जानने वाला होता है (कर्त्ता,भवति) करने वाला होता है, (विज्ञाता, भवति) अनुभव करनेवाला होता है (बलेन, वै) बलसे (पृथिवी, तिष्ठति) पृथिवी ठहरी हुई है (बलेन) बलसे (द्यौः) स्वर्ग (बलेन) बलसे (पर्वताः) पहाड़ (बलेन) बलसे (देवमनुष्याः) देवमनुष्य (बलेन) बलसे (पशवः) पशु (च) और (वयांसि) पक्षी (च) और (तृणवनस्पतयः) तृणवनस्पति (श्वापदानि) हिंसक पशु (आकीटपतंगपिपीलकम्) कीट पतंग और चींटी तक (बलेन) बलसे (लोकः) लोक (तिष्ठति) ठहरा हुआ है (इति) इसकारण (बलम्) बलको (उपास्व) उपासना कर १

भावार्थ—बल कहिये शरीरका सामर्थ्य ही विज्ञानसे बढ़ कर है, क्योंकि—एक भी बलवान् पुरुष सौ विज्ञान वालोंको कम्पायमान कर देता है, पुरुष जब बलवान् होता है तब ही उठ सकता है, उठकर ही आचार्यकी सेवा कर सकता है, सेवा करने पर ही समीप पहुँचकर गुरुका प्यारा होसकता है, एकाग्रताके साथ उनका दर्शन पासकता है, उनके उपदेशको सुन

सकता है, उसकी सम्भवता असंभवताके विषयमें मनन कर सकता है, मनन करके उसके तत्त्वको जान सकता है, तदनन्तर उसका अनुष्ठान करने वाला और उसके फलका अनुभव करने वाला होता है यह सब बलके ही आधार पर होता है, बलसे ही पृथिवी ठहरी हुई है, बलसे ही आकाश, स्वर्ग, पहाड़, शम दम आदि सम्पन्न देवसमान मनुष्य पशु, पक्षी, तृण, वनस्पति, हिंसक, पशु, कीट, पतंग और चीटियें तक ठहरी हुईं हैं अधिक क्या कहें यह सब लोक बलसे ही ठहरा हुआ है, इस कारण बलको ब्रह्म मान कर उपासना कर ॥ १ ॥

स यो बलं ब्रह्मेत्युपास्ते यावद् बलस्य गतं तत्रास्य कामचारो भवति यो बलं ब्रह्मेत्युपास्तेऽस्ति भगवो बलाद् भूय इति बलाद्वाव भूयोऽस्तीति तन्मे भगवान् ब्रवीत्विति ॥ २ ॥

अन्वय और पदार्थ—(सः) वह (यः) जो (बलम्) बलको (ब्रह्म, इति) ब्रह्म है ऐसा मानकर (उपास्ते) उपासना करता है (यावत्) जहाँ तक (बलस्य, गतम्) बलका विषय है (तत्र) उसमें (अस्य) इसकी (कामचारः) यथेच्छगति (भवति) होती है (यः) जो (बलम्) बलको (ब्रह्म, इति) ब्रह्म है ऐसा मानकर (उपास्ते) उपासना करता है (भगवः) हे भगवन् (बलात्) बलसे (भूयः) अधिकतर (अस्ति) है (इति) ऐसा नारदने बूझा (बलात्) बलसे (भूयः) अधिकतर (अस्ति, वाव) है ही (इति)

ऐसा सनत्कुमारने उत्तर दिया (तत्) उसको (भगवान्) आप (मे) मेरे अर्थ (ब्रवीतु) कहिये (इति) यह नारदने कहा

भावार्थ—जो बलको ब्रह्म मानकर उपासना करता है उसकी बलके विषयमात्रमें गति होजाती है। नारदजीने कहा कि—क्या कोई पदार्थ बलसे भी अधिक है? सनत्कुमारने उत्तर दिया, कि—हाँ है, इस पर नारदजीने कहा, कि—तो मुझे उसका भी उपदेश दीजिये॥ २ ॥

॥ सप्तमाध्यायस्याष्टमः खण्डः समाप्तः ॥

अन्नं वाव बलाद् भूयस्तस्माद्यद्यपि दशरात्री-र्नाश्नीयाद्यद्यु ह जीवदेथवाऽद्रष्टाऽश्रोताऽमन्ता-ऽबोद्धाऽकर्त्ताऽविज्ञाता भवत्यथान्नस्याऽऽये द्रष्टा भवति श्रोता भवति मन्ता भवति भवत्यन्नमुपा-स्स्वेति ॥ १ ॥

अन्वय और पदार्थ—(अन्नम्, वाव) अन्न ही (बलात्) बलसे (भूयः) अधिकतर है (तस्मात्) तिससे (यद्यपि) जो (दश, रात्रीः) दश रात पर्यन्त (न) नहीं (अश्नीयात्) खाय (अथवा) या (यदि) जो (जीवेत्) जिये (उ, ह) तो अवश्य ही (अद्रष्टा) न देखने वाला (अश्रोता) न सुनने वाला (अमन्ता) मनन न करने वाला (अबोद्धा) न समझने वाला (अकर्त्ता) न करने वाला (अविज्ञाता) अनुभव न करने वाला (भवति) होता है (अथ) और (अन्नस्य) अन्नकी (आये) प्राप्ति होने पर (द्रष्टा) देखने वाला (भवति) होता है (श्रोता) सुनने वाला (भवति)

होता है (मन्ता) मनन करने वाला (भवति) होता है (बोद्धा) समझने वाला (भवति) होता है ।(विज्ञाता) फलके अनुभव वाला (भवति) होता है (इति) इसकारण (अन्नम्) अन्नको (उपास्स्व) उपासना कर ॥ १ ॥

भावार्थ—बलका कारण होनेसे अन्न ही बलसे अधिकतर है । क्योंकि—अन्न बलका कारण है, इससे यदि कोई दश रात तक भोजन न करे तो बलकी हानि होकर मरजाता है, और यदि जीता भी रहजाता है तो बलकी अत्यन्त न्यूनता होजानेके कारण देख नहीं सकता, सुन नहीं सकता, मनन नहीं कर सकता, समझ नहीं सकता, अनुष्ठान नहीं कर सकता, तथा फलका अनुभव भी नहीं कर सकता और यदि उसको फिर अन्न मिलजाय तो देखने लगता है, सुनने लगता है, मनन करने लगताहै, समझने लगता है, काम करने लगता है, यह देखने आदिकी क्रिया अन्नके अधीन है, इस कारण अन्नको ब्रह्मबुद्धिसे उपासना कर ॥ १ ॥

स योऽन्नं ब्रह्मेत्युपास्तेऽन्नवतो वै स लोकान् पानवतोऽभिसिद्धयति यावदन्नस्य गतं तत्रास्य यथाकामचारो भवति योऽन्नं ब्रह्मेत्युपास्तेऽस्ति भगवोऽन्नाद् भूय इत्यन्नाद्वाव भूयोऽस्तीति तन्मे भगवान् ब्रवीत्विति ॥ २ ॥

अन्वय और पदार्थ—(सः) वह (यः) जो (अन्नम्) अन्नको (ब्रह्म इति) ब्रह्म है ऐसा मानकर (उपास्ते) उपासना

करता है (सः) वह (वै) निश्चय (अन्नवतः) अन्नवाले (पानवतः) जल वाले (लोकान्) लोकोंको (अभिसिध्यति) पाता है (यावत्) जहाँ तक (अन्नस्य) अन्नका (गतम्) विषय है (तत्र) तहाँ (अस्य) इसकी (यथाकामचारः) इच्छानुसार गति (भवति) होती है (यः) जो (अन्नम्) अन्नको (ब्रह्म, इति) ब्रह्म है ऐसा मानकर (उपास्ते) उपासना करता है (भगवः) हे भगवन् (अन्नात्) अन्नसे (भूयः) अधिकतर (अस्ति) है (इति) ऐसा नारदजीने कहा (अन्नात्) अन्नसे (भूयः) अधिकतर (अस्ति, वाव) है ही (इति) ऐसा सनत्कुमारने उत्तर दिया (तत्) उसको (भगवान्) आप (मे) मेरे अर्थ (ब्रवीतु) कहिये (इति) ऐसा नारदजीने कहा ॥ २ ॥

भावार्थ—जो अन्नको ब्रह्म मान कर उपासना करता है, वह अधिक अन्न और जल वाले लोकोंको पाता है। जहाँ तक भी अन्नका विषय है उसमें उसकी प्रवृत्ति होती है। नारदजीने बूझा, कि–हे भगवन्! क्या अन्नसे बढ़ कर भी कोई पदार्थ है? सनत्कुमारजीने उत्तर दिया, कि–हाँ है, नारद जीने कहा, कि–तो मुझे उसका उपदेश दीजिये ॥ २ ॥

॥ सप्तमाध्यायस्य नवमः खण्डः समाप्तः ॥

आपो वावान्नाद्भूयस्यस्तस्माद्यदा सुवृष्टिर्न भवति व्याधीयन्ते प्राणा अन्नं कनीयो भविष्यतीत्यथ यदा सुवृष्टिर्भवत्यानन्दिनः प्राणा भवन्त्यन्नं बहुभविष्यतीत्याप एवेमा मूर्त्ता येयं पृथिवी

यदन्तरिक्षं यद् द्यौर्यत्पर्वता यद् देवमनुष्या यत्प-
शवश्च वयाꣳसि च तृणवनस्पतयः श्वापदान्या-
कीटपतङ्गपिपीलकं आप एवेमा मूर्त्ता अप उपा-
स्स्वेति ॥ १ ॥

अन्वय और पदार्थ—(आपः, वाव) जल ही (अन्नात्) अन्नसे (भूयस्यः) अधिकतर है (तस्मात्) तिससे (यदा) जब (सुवृष्टिः) सुवर्षा (न) नहीं (भवति) होती है (अन्नम्) अन्न (कनीयः) थोड़ा (भविष्यति) होगा (इति) ऐसा मानकर (प्राणाः) प्राण (व्याधीयन्ते) दुःखित होते हैं (अथ) अनन्तर (यदा) जब (सुवृष्टिः) सुवर्षा (भवति) होती है (अन्नम्) अन्न (बहु) बहुतसा (भविष्यति) होगा (इति) ऐसा मानकर (प्राणाः) प्राण (आनन्दिनः) आनन्दयुक्त (भवन्ति) होते हैं (आपः, एव) जल ही (इमाः) ये (मूर्त्ताः) मूर्त्तिमान् हैं (या) जो (इयम्) यह (पृथिवी) पृथिवी है (यत्) जो (अन्तिरिक्षम्) आकाश है (यत्) जो (द्यौः) स्वर्ग है (यत्) जो (पर्वताः) पहाड़ हैं (यत्) जो (देवमनुष्याः) देवमनुष्य हैं (यत्) जो (पशवः) पशु हैं (च) और (वयांसि) पक्षी हैं (च) और (तृणवनस्पतयः) तिनुके तथा वनस्पति (श्वापदानि) हिंसक पशु (आकीटपतङ्गपिपीलकम्) कीटपतङ्ग और चींटी पर्यन्त (इमाः) ये (मूर्त्ताः) मूर्त्तिमान (आपः एव) जल ही हैं (इति) इस कारणसे (अपः) जलको (उपास्व) उपासना कर १

भावार्थ—अन्नोत्पत्तिका कारण होनेसे जल ही अन्नसे अधिकतर है, इस कारण ही जब सुवर्षा नहीं होती है तब अन्न थोड़ा होगा ऐसा मानकर प्राणी दुःखी होते हैं और जब सुवर्षा होती है तब बहुतसा अन्न उत्पन्न होगा ऐसा मानकर प्राणी सुखी होते हैं। आकारवाले अन्नकी जलसे उत्पत्ति होती है, इस कारण जल ही इन भिन्न मूर्त्तियोंके आकारमें दीख रहा है। पृथिवी, अन्तरिक्ष, स्वर्ग, पहाड़, देव-मनुष्य, पशु, पक्षी, तृण, वनस्पति, हिंसक पशु और कीट, पतंग, तथा चींटी पर्यन्त जो कुछ हैं ये सब जलकी ही मूर्त्तियें हैं, इस कारण जलको ही ब्रह्म मानकर उसकी उपासना कर १

स योऽपो ब्रह्मेत्युपास्त आप्नोति सर्वान् कामाꣳस्तृप्तिमान् भवति, यावदपां गतं तत्रास्य यथाकामचारो भवति योऽपो ब्रह्मेत्युपास्तेऽस्ति भगवोऽद्भ्यो भूय इत्यद्भ्यो वाव भूयोऽस्तीति तन्मे भगवान् ब्रवीत्विति ॥ २ ॥

अन्वय और पदार्थ—(सः) वह (यः) जो (अपः) जलको (ब्रह्म, इति) ब्रह्म है ऐसा मानकर (उपास्ते) उपासना करता है (सर्वान्) सब (कामान्) मनोरथोंको (आप्नोति) पाता है (तृप्तिमान्) तृप्त (भवति) होता है (यावत्) जहाँ तक (अपाम्) जलोंका (गतम्) विषय है (तत्र) उसमें (अस्य) इसकी (यथाकामचारः) यथेच्छ गति (भवति) होती है (यः) जो (अपः) जलको (ब्रह्म, इति) ब्रह्म है

ऐसा मानकर (उपास्ते) उपासना करता है (भगवः) हे भगवन् ! (अद्भ्यः) जलसे (भूयः) अधिकतर (अस्ति) है (इति) ऐसा नारदने बूझा (अद्भ्यः) जलसे (भूयः) अधिकतर (अस्ति वाव) है ही (इति) ऐसा सनत्कुमारने उत्तर दिया (तत्) उसको (भगवान्) आप (मे) मेरे अर्थ (ब्रवीतु) कहिये (इति) ऐसा नारदने कहा ॥ २ ॥

भावार्थ—जो जलको ब्रह्म मानकर उपासना करता है वह सकल मूर्त्तिमान् विषयोंको पाता है, तृप्त रहता है, जहाँ तक जलका विषय है उसमें इसकी यथेच्छगति होती है, नारदजी ने कहा कि—हे भगवन् ! क्या जलसे भी बढ़कर कोई पदार्थ है सनत्कुमारने उत्तर दिया, कि—हाँ है, नारदजीने कहा, कि-तो मुझे उसका उपदेश दीजिये ॥ २ ॥

॥ सप्तमाध्यायस्य दशमः खण्डः समाप्तः ॥

तेजो वावाद्भ्यो भूयस्तद्वा एतद्वायुमागृह्याऽऽकाशमभितपति तदाहुर्निशोचति नितपति वर्षिष्यति वा इति तेज एव तत्पूर्वं दर्शयित्वाऽथापः सृजते तदेतदूर्ध्वाभिश्च तिरश्चीभिश्च विद्युद्भिराह्रादाश्चरन्ति तस्मादाहुर्विद्योतते स्तनयति वर्षिष्यति वा इति तेज एव तत्पूर्वं दर्शयित्वाऽऽथापः सृजते तेज उपास्स्वेति ॥ १ ॥

अन्वय और पदार्थ--(तेजः, वाव) तेज ही (अद्भ्यः) जलसे (भूयः) अधिकतर है (वै) निश्चय (तत्) वह

(एतत्) यह (वायुम्) वायुको (आगृह्य) निश्चल करके (आकाशम्) आकाशको (अभितपति) चारों ओरसे व्याप कर तपता है (तत्) उसको निशोचति) तपाता है (वै) निश्चय (वर्षिष्यति) बरसेगा (इति) ऐसा (आहुः) कहते हैं (इति) इस प्रकार (तेजः एव) तेज ही (तत्पूर्वम्) उस से पहले (दर्शयित्वा) दिखाकर (अथ) अनन्तर (अपः) जलको (सृजते) रचता है (तत्) सो (एतत्) यह (ऊर्ध्वाभिः) ऊँचा (च) और (तिरश्चीभिः, च) तिरछी भी (विद्युद्भिः) बिजलियोंसे (आह्लादाः) शब्दोंको (चरन्ति) करते हैं (तस्मात्) तिससे (विद्योतते) बिजली चमकती है (स्तनयति) गरजता है (वर्षिष्यति) बरसेगा (इति) ऐसा (आहुः) कहते हैं (वै) निश्चय (तेजः, एव) तेज ही (तत्पूर्वम्) उससे पहले (दर्शयित्वा) दिखकर (अथ) अनन्तर (अपः) जलको (सृजते) रचता है (इति) इस कारण (तेजः) तेज को (उपास्स्व) उपासना कर ॥ १ ॥

भावार्थ—जलका कारण होनेसे तेज ही जलसे बढ़कर है, यह तेज वायुको निश्चल करके आकाशमें चारों ओर भरजाता है, उस समय जगत् तपने लगता है, शरीर गरमीसे घबड़ा उठते हैं, तब लोग कहते हैं कि—वर्षा अवश्य होगी, इस प्रकार तेज ही पहले अपने स्वरूपको दिखाकर पीछे जलोंकी रचना करता है और तेज वर्षाके लिये ऊँची तिरछी बिजलियोंके साथ गरजता है तब बिजली, चमकती, मेघ गरजता है, अतः वर्षा अवश्य ही होगी, ऐसा लोग कहा करते हैं, इस प्रकार

तेज ही पहले अपने स्वरूपको दिखाकर पीछे जलको रचता है। इस कारण तेजको ब्रह्म जानकर उपासना कर ॥ १ ॥

स यस्तेजो ब्रह्मेत्युपास्ते तेजस्वी वै स तेजस्वतो लोकान् भास्वतोऽपहततमस्कानभिसिध्यति याव-त्तेजसो गतं तत्रास्य यथाकामचारो भवति यस्तेजो ब्रह्मेत्युपास्तेऽस्ति भगवस्तेजसो भूय इति तेजसो वाव भूयोऽस्तीति तन्मे भगवान् ब्रवीत्विति २

अन्वय और पदार्थ—(सः) वह (यः) जो (तेजः) तेजको (ब्रह्म इति) ब्रह्म है ऐसा मानकर (उपास्ते) उपासना करता है (सः) वह (वै) निश्चय (तेजस्वी तेजस्वी होता है (तेजस्वतः) तेजवाले (भास्वतः) प्रकाशवाले (अप-हततमस्कान्) जिन्होंने अन्धकारको दूर कर दिया है ऐसे (लोकान्) लोकोंको (अभिसिध्यति) पाता है (यावत्) जहाँ तक (तेजसः) तेजका (गतम्) विषय है (तत्र) उस में (अस्य) इसकी (यथाकामचारः) यथेच्छ गति (भवति) होती है (यः) जो (तेजः) तेजको (ब्रह्म, इति) ब्रह्म है ऐसा मानकर (उपास्ते) उपासना करता है (भगवः) हे भगवन् (तेजसः) तेजसे (भूयः) बढ़कर (अस्ति) है (इति) ऐसा नारदने पूछा (तेजसः) तेजसे (भूयः) अधिकतर (अस्ति, वाव) अवश्य ही है (इति) ऐसा सन-त्कुमारने उत्तर दिया (तत्) उसको (भगवान्) आप (मे) मेरे अर्थ (ब्रवीतु) कहिये (इति) ऐसा नारदजीने कहा २

भावार्थ—जो तेजको ब्रह्म मानकर उपासना करता है वह तेजोमय, प्रकाशवान् तथा अन्धकार एवं अज्ञान राग आदिको दूर करनेवाले लोकोंमें पहुँचता है, जहाँ तक तेजका विषय है उसमें इसकी यथेच्छ प्रवृत्ति होती है। नारदजीने कहा, कि- हे भगवन्! क्या तेजसे बढ़ कर भी कोई पदार्थ है?, सनत्कुमारने कहा, हाँ अवश्य है, नारदजीने कहा, कि—तो आप मुझे उसका भी उपदेश दीजिये ॥ २ ॥

॥ सप्तमाध्यायस्यैकादशः खण्डः समाप्तः ॥

आकाशो वाव तेजसो भूयानाकाशे वै सूर्याचन्द्रमसावुभौ विद्युन्नक्षत्राण्यग्निराकाशेनाह्वयत्याकाशेन शृणोत्याकाशेन प्रतिशृणोत्याकाशे रमत आकाशे न रमत आकाशे जायत आकाशमभिजायत आकाशमुपास्वेति ॥ १ ॥

अन्वय और पदार्थ—(आकाशः, वाव) आकाश ही (तेजसः) तेजसे (भूयान्) अधिकतर है (वै) निश्चय (आकाशे) आकाशमें (सूर्याचन्द्रमसौ) सूर्य चन्द्रमा (उभौ) दोनों (विद्युत्) बिजली (नक्षत्राणि) तारागण (अग्निः) अग्नि [अस्ति] है (आकाशेन) आकाशके द्वारा (आह्वयति) पुकारता है (आकाशेन) आकाशके द्वारा (शृणोति) सुनता है (आकाशेन) आकाशके द्वारा (प्रतिशृणोति) प्रतिशब्द को सुनता है (आकाशे) (रमते) क्रीड़ा करता है (आकाशे) आकाशमें (न, रमते) क्रीड़ा नहीं करता है (आकाशे) आकाशमें (जायते) उत्पन्न होता है (आकाशम्, अभि-

जायते) आकाशके प्रति अंकुर आदि उत्पन्न होता है (इति) इस कारण (आकाशम्) आकाशको (उपास्व) उपासना कर १

भावार्थ—आकाश वायु सहित तेजका कारण है, अतः आकाश ही तेजसे अधिकतर है, आकाशमें सूर्य, चन्द्रमा, बिजली, तारागण और अग्नि रहते हैं, आकाशके द्वारा एक दूसरेको बुलाता है, दूसरेकी कही बातको सुनता है और आकाशकी सहायतासे ही प्रतिध्वनिको सुनता है, आकाश में सब परस्पर क्रीड़ा करते हैं और कभी प्रियवियोग होजाने पर आकाशमें क्रीड़ा नहीं करते आकाशमें प्राणी उत्पन्न होते हैं आकाशमें ही अंकुर आदिकी उत्पत्ति होती है, अतः आकाश की ब्रह्मबुद्धिसे उपासना कर ॥ १ ॥

स य आकाशं ब्रह्मेत्युपास्त आकाशवतो वै स लोकान् प्रकाशवतोऽसंबाधानुरुगायवतोऽभिसिध्यति यावदाकाशस्य गतं तत्रास्य यथाकामचारो भवति यं आकाशं ब्रह्मेत्युपास्तेऽस्ति भगव आकाशाद् भूय इत्याकाशाद्वाव भूयोऽस्तीति तन्मे भगवान् ब्रवीत्विति ॥ २ ॥

अन्वय और पदार्थ—(सः) वह (यः) जो (आकाशम्) आकाशको (ब्रह्म, इति) ब्रह्म है ऐसा मानकर (उपास्ते) उपासना करता है (सः) वह (वै) निश्चय (आकाशवतः) विस्तारवाले (प्रकाशवतः) प्रकाशवाले (असम्बाधान्) जिनमें परस्परको पीड़ा न हो ऐसे (उरुगायवतः) विस्तार-

युक्त मार्गवाले (लोकान्) लोकोंको (अभिसिध्यति) पाता है (यावत्) जहाँ तक (आकाशस्य) आकाशका (गतम्) विषय है (तत्र) उसमें (अस्य) इसकी (यथाकामचारः) यथेच्छ प्रवृत्ति (भवति) होती है (यः) जो (आकाशम्) आकाशको (ब्रह्म, इति) ब्रह्म है ऐसा मानकर (उपास्ते) उपासना करता है (भगवः) हे भगवन् (आकाशात्) आकाशसे (भूयः) अधिकतर (अस्ति) है (इति) ऐसा कहा (आकाशात्) आकाशसे (भूयः) अधिकतर (अस्ति, वाव) है हो (इति) ऐसा उत्तर दिया (तत्) उसको (भगवान्) आप (मे) मेरे अर्थ (ब्रवीतु) कहिये (इति) ऐसा नारदजीने कहा ॥ २ ॥

भावार्थ—जो आकाशको ब्रह्म मानकर उपासना करता है वह विस्तीर्ण, प्रकाशमय, परस्परकी पीड़ासे रहित और बड़े बड़े मार्गोंवाले लोकोंको पाता है, जो कुछ आकाशका विषय है उसमें इसकी यथेच्छ प्रवृत्ति होती है । नारदजीने कहा कि हे भगवन् ! क्या आकाशसे बढ़कर भी कोई पदार्थ है ? सनत्कुमारने उत्तर दिया कि—हाँ अवश्य ही है, इस पर नारदजी ने कि—तो मुझे उसका भी उपदेश दीजिये ॥ २ ॥

॥ सप्तमाध्यायस्य द्वादशः खण्डः समाप्तः ॥

स्मरो वावाकाशाद् भूयस्तस्माद्यद्यपि बहव आसीरन्न स्मरन्तो नैव ते कञ्चन शृणुयुर्न मन्वीरन् विजानीरन् यदा वाव ते स्मरेयुरथ शृणुयुरथ

मन्वीरन्नथ विजानीरन् स्मरेण वै पुत्रान् विजानाति स्मरेण पशून्स्मरमुपास्स्वेति ॥ १ ॥

अन्वय और पदार्थ-(स्मरः, वाव) स्मरण ही (आकाशात्) आकाशसे (भूयः) अधिकतर है (तस्मात्) तिससे (यदि) जो (बहवः) बहुतसे (अपि) भी (आसीरन्) बैठे हों, (न, स्मरन्तः) स्मरण न करते हुए (ते) वे (कंचन) कुछ (नैव) कदापि नहीं (शृणुयुः) सुनेंगे (न, मन्वीरन्) न मनन करेंगे (न, विजानीरन्) न जानेंगे (यदा, वाव) जब ही (ते) वे (स्मरेयुः) स्मरण करें (अथ) अनन्तर (मन्वीरन्) मनन करें (अथ) अनन्तर (विजानीरन्) जानें (स्मरेण, वै) स्मरणसे ही (पुत्रान्) पुत्रोंको (विजानाति) जानता है (स्मरेण) स्मरणसे (पशून्) पशुओंको [विजानाति] जानता है (इति) इस कारण (स्मरम्) स्मरणको (उपास्स्व) उपासना कर ॥ १ ॥

भावार्थ-स्मरणकर्त्ताको स्मरणके होनेसे आकाश आदि सब सार्थक होजाते हैं, इस लिये स्मरण ही आकाशसे अधिकतर है, इसी कारण यदि बहुतसे पुरुष इकट्ठे होकर बोलते हुए बैठे हों परन्तु उनको स्मरण न हो तो वे एक भी शब्द को नहीं सुनते हैं, न उसका मनन करते हैं और न उसको जानते ही हैं, परन्तु यदि वे श्रोतव्य आदिका स्मरण करें तो तो वे उसको सुनते हैं, मनन करते हैं और जानते हैं। स्मरण से ही प्राणी पुत्रोंको जानता है और स्मरणसे ही पशुओंको जानता है,इस कारण स्मरणकी ही ब्रह्मबुद्धिसे उपासना करो १

स यः स्मरं ब्रह्मेत्युपास्ते यावत्स्मरस्य गतं तत्रास्य यथाकामचारो भवति, यः स्मरं ब्रह्मेत्युपास्तेऽस्ति भगवः स्मराद् भूय इति, स्मराद्वाव भूयोऽस्तीति तन्मे भगवान् ब्रवीत्विति ॥ २ ॥

अन्वय और पदार्थ—(सः) वह (यः) जो (स्मरम्) स्मरणको (ब्रह्म, इति) ब्रह्म है ऐसा मानकर (उपास्ते) उपासना करता है (यावत्) जहाँ तक (स्मरस्य) स्मरण का (गतम्) विषय है (तत्र) उसमें (अस्य) इसकी (यथाकामचारः) यथेच्छ गति (भवति) होती है (यः) जो (स्मरम्) स्मरणको (ब्रह्म, इति) ब्रह्म है ऐसा मान कर (उपास्ते) उपासना करता है (भगवः) हे भगवन् (स्मरात्) स्मरणसे (भूयः) अधिकतर (अस्ति) है (इति) ऐसा बूझा (स्मरात्) स्मरणसे (भूयः) अधिकतर (अस्ति, वाव) है ही (इति) ऐसा उत्तर दिया (तत्) उसको (भगवान्) आप (मे) मेरे अर्थ (ब्रवीतु) कहिये (इति) ऐसा कहा २

भावार्थ—जो स्मरणको ब्रह्म मानकर उपासना करता है, उसकी स्मरणके विषयमात्रमें यथेच्छ प्रवृत्ति होजाती है नारद जीने कहा कि—हे भगवन् ! क्या स्मरणसे भी अधिक कोई पदार्थ है ? सनत्कुमारजीने उत्तर दिया, कि—हाँ है, नारदजी ने कहा, कि—तो मुझे उसका उपदेश दीजिये ॥ २ ॥

॥ सप्तमाध्यायस्य त्रयोदशः खण्डः समाप्तः ॥

आशा वाव स्मराद् भूयस्याशेद्धो वै स्मरो

मन्त्रानधीते कर्माणि कुरुते पुत्राँश्च पशूँश्चेच्छत इमञ्च लोकममुञ्चेच्छत आशामुपास्स्वेति

अन्वय और पदार्थ—(आशा, वाव) आशा ही (स्मरात्) स्मरणसे (भूयसी) बढ़कर है (आशेद्धः वै) आशायुक्त हुआ ही (स्मरः) स्मरण करता हुआ (मन्त्रान्) मन्त्रोंको (अधीते) पढ़ता है (कर्माणि) कर्मोंको (कुरुते) करता है (पुत्रान्) पुत्रोंको (च) और (पशून्, च) पशुओंको भी (इच्छते) इच्छा करता है (इमम्) इस (च) और (अमुम्, च) उस भी (लोकम्) लोकको इच्छते) इच्छा करता है (इति) इस कारण (आशाम्) आशाको (उपास्स्व) उपासना कर ॥ १ ॥

भावार्थ—अन्तःकरणमें रहनेवाली आशासे स्मरण करने योग्यका स्मरण करता है, इस कारण आशा ही स्मरणसे अधिकतर है, आशायुक्त हुआ प्राणी ही स्मरण करता हुआ ऋगादिके मन्त्रोंको पढ़ता है उनके अर्थोंको तथा विधियोंको जानकर फलकी आशासे कर्म करता है, कर्मके फलरूप पुत्रोंको तथा पशुओंको आशासे ही चाहता है, इस लोकको तथा परलोकको भी आशावाला ही चाहता है, अतः आशा स्मरणसे अधिकतर है, इस कारण आशाको ही ब्रह्मबुद्धिसे उपासना कर ॥ १ ॥

स य आशां ब्रह्मेत्युपास्त आशयाऽस्य सर्वे कामाः समृध्यन्त्यमोघा हाऽऽस्याशिषो भवन्ति यावदाशाया गतं तत्राऽस्य यथाकामचारो भवति

य आशां ब्रह्मेत्युपास्तेऽस्ति भगव आशाया भूय इत्याशाया वाव भूयोऽस्तीति तन्मे भगवान् ब्रवीत्विति ॥ २ ॥

अन्वय और पदार्थ—(सः) वह (यः) जो (आशाम्) आशाको (ब्रह्म, इति) ब्रह्म है ऐसा मानकर (उपास्ते) उपासना करता है (आशया) आशाके द्वारा (अस्य) इसके (सर्वे) सब (कामाः) अभिलाष (समृध्यन्ति) सफल होते हैं (अस्य) इसके (आशिषः) आशीर्वाद (अमोघा, ह) अमोघ ही (भवन्ति) होते हैं (यावत्) जहाँ तक (आशायाः, गतम्) आशाका विषय है (तत्र) उसमें (अस्य) इसकी (यथाकामचारः) यथेच्छ प्रवृत्ति (भवति) होती है (यः) जो (आशाम्) आशाको (ब्रह्म, इति) ब्रह्म है ऐसा मानकर (उपास्ते) उपासना करता है (भगवः) हे भगवन् (आशायाः) आशासे (भूयः) अधिकतर (अस्ति, वाव) है ही (इति) ऐसा उत्तर दिया (तत्) उसको (भगवान्) आप (मे) मेरे अर्थ (ब्रवीतु) कहिये (इति) ऐसा कहा

भावार्थ—जो आशाको ब्रह्म मानकर उपासना करता है उसके भोग्य विषय आशासे बढ़ते हैं, इसकी सब प्रार्थनायें अवश्य ही सफल होती हैं और जहाँ तक आशाका विषय है उसमें इसकी यथेच्छ प्रवृत्ति होती है। नारदजीने कहा, कि—हे भगवन् ! क्या आशासे भी बढ़ कर कोई पदार्थ है ? सनत्कुमारने कहा कि-हाँ है तब नारदजीने कहा, कि—मुझे उसका उपदेश दीजिये ॥ २ ॥

॥ सप्तमाध्यायस्य चतुर्दशः खण्डः समाप्तः ॥

प्राणो वा आशाया भूयान्यथा वा अरा नाभौ समर्पिता एवमस्मिन् प्राणे सर्वथ्ँ समर्पितम् । प्राणः प्राणेन यातिः प्राणः प्राणं ददाति प्राणाय ददाति प्राणो ह पिता प्राणो माता प्राणो भ्राता प्राणः स्वसा प्राणः आचार्यः प्राणो ब्राह्मणः १

अन्वय और पदार्थ—(प्राणः, वै) प्राण ही (आशायाः) आशासे (भूयान्) अधिकतर है (यथा) जैसे (वै) स्पष्ट (नाभौ) नाभिमें (अराः) अरे (समर्पिताः) गंठाये हुए होते हैं (एवम्) इसी प्रकार (अस्मिन्, प्राणे) इस प्राणमें (सर्वम्) सब (समर्पितम्) स्थापन करा हुआ है (प्राणः) प्राण (प्राणेन) प्राणके द्वारा (याति) गमन करता है (प्राणः) प्राण (प्राणम्) प्राणको (ददाति) देता है (प्राणाय) प्राणके अर्थ (ददाति) देता है (प्राणः, ह) प्राण ही (पिता) पिता है (प्राणः) प्राण (माता) माता है (प्राणः) प्राण (भ्राता) भाई है (प्राणः) प्राण (स्वसा) बहिन है (प्राणः) (आचार्यः) गुरु है (प्राणः) प्राण (ब्राह्मणः) ब्राह्मण है

भावार्थ—प्राण ही आशासे बढ़ कर है, जैसे रथके पहियेकी पुट्ठीमें सब अरे जमाये हुए होते हैं ऐसे ही इस समष्टि प्राण में सब जगत् स्थित है, प्राण स्वतन्त्र होकर प्राणरूप अपनी शक्तिसे चलता है, प्राण प्राणको दान करता है, प्राणके लिये दान करता है प्राण ही पिता, माता, भाई, बहिन, गुरु और ब्राह्मण है ॥ १ ॥

स यदि पितरं वा मातरं वा भ्रातरं वा स्वसारं वाऽऽचार्यं वा ब्राह्मणं वा किञ्चिद् भृशमिव प्रत्याह धिक्त्वाऽस्त्वित्येवैनमाहुः पितृहा वै त्वमसि मातृहा वै त्वमसि भ्रातृहा वै त्वमसि स्वसृहा वै त्वमसि आचार्यहा वै त्वमसि ब्राह्मणहा वै त्वमसीति २

अन्वय और पदार्थ—(सः) वह (यदि) जो (पितरम्, वा) पिताको (मातरम्, वा) माताको (भ्रातरम्, वा) भ्राताको (स्वसारम्, वा) बहिनको (आचार्यम्, वा) गुरुको (ब्राह्मणम्, वा) ब्राह्मणको (किञ्चित्) कुछ (भृशमिव) बढ़कर (प्रत्याह) कहे [तर्हि] तो (एनम्) इसको (त्वम्) तू (पितृहा, वै) निःसन्देह पितृहत्यारा (असि) है (त्वम्) तू (मातृहा, वै) निःसन्देह मातृहन्ता (असि) है (त्वम्) तू (भ्रातृहा, वै) निःसन्देह भ्रातृहन्ता (असि) है (त्वम्) तू (स्वसृहा) निःसन्देह बहिनका हननकर्त्ता (असि) है (त्वम्) तू (आचार्यहा, वै) निःसन्देह गुरुहन्ता (असि) है (त्वम्) तू (ब्रह्महा, वै) निःसन्देह ब्रह्महत्यारा (असि) है (इति) इस कारण (त्वा) तुझको (धिक्, एव) धिक्कार ही (अस्तु) हो (इति) ऐसा है २

भावार्थ—जो पिता, माता, भाई, बहिन, गुरु वा ब्राह्मणसे कुछ बढ़ कर बात (अनुचित शब्दसे) कहता है, उसे समझदार कहते हैं, कि—तू निःसन्देह पितृहन्ता, मातृहन्ता, भ्रातृहन्ता, बहिनका हननकर्त्ता, गुरुहन्ता वा ब्राह्मणहन्ता है, इस कारण तुझे बार २ धिक्कार है ॥ २ ॥

अथ यद्यप्येनानुत्क्रान्तप्राणाञ्छूलेन समासं व्यतिषंदहेन्नैवैनं ब्रूयुः पितृहाऽसीति, न मातृहाऽसीति न भ्रातृहाऽसीति न स्वसृहाऽसीति नाऽऽचार्यहाऽसीति न ब्राह्मणहाऽसीति ॥ ३ ॥

अन्वय और पदार्थ—(अथ) अनन्तर (उत्क्रान्तप्राणान्) प्राणहीन हुए (एनान्) इनको (यदि) जो (शूलेन,अपि) नोकवाले काठसे भी (समासम्) इकट्ठे करके (व्यतिषम्) खण्ड २ करके (दहेत्) जलावे [तदा] उस समय (एनम्) इसको (पितृहा, असि) पितृहन्ता है (इति) ऐसा (नैव) नहीं (मातृहा, असि) मातृहन्ता है (इति, न) ऐसा नहीं (भ्रातृहा, असि) भ्रातृहन्ता है (इति, न) ऐसा नहीं (स्वसृहा, असि) बहिनका हननकर्त्ता है (इति, न) ऐसा नहीं (आचार्यहा, असि) गुरुहन्ता है (इति, न) ऐसा नहीं (ब्राह्मणहा, असि) ब्रह्महत्यारा है (इति) ऐसा (न) नहीं (ब्रयुः) कहते हैं ॥ ३ ॥

भावार्थ—जिनके प्राण निकल गये हों ऐसे मनुष्योंको यदि नोकदार काष्ठसे इकट्ठे करदेय वा उनके टुकड़े २ करके जलादेय तो उनको—तू पितृहत्यारा है, तू मातृहत्यारा है, तू भ्राताका हननकर्त्ता है, तू बहिनका हत्यारा है, गुरुहन्ता वा तू ब्रह्महत्यारा है ऐसा नहीं कहते हैं ॥ ३ ॥

प्राणो ह्येवैतानि सर्वाणि भवति स वा एष एवं पश्यन्नेवं मन्वान एवं विजानन्नातिवादी भवति

तं चेद् ब्रूयुरतिवाद्यसीत्यतिवाद्यस्मीति ब्रूयान्नापह्नुवीत ॥ ४ ॥

अन्वय और पदार्थ-(प्राणः, हि, एव) प्राण ही (एतानि) ये (सर्वाणि) सब (भवति) होता है (वै) निश्चय (सः) वह (एषः) यह (एवम्) इस प्रकार (पश्यन्) देखता हुआ (एवम्) इस प्रकार (मन्वानः) मानता हुआ (एवम्) इस प्रकार (विजानन्) जानता हुआ (अतिवादी) सर्वोपरि प्राणात्मवादी (भवति) होता है (चेत्) जो (तम्) उसके प्रति (अतिवादी, असि) अतिवादी है (इति) ऐसा (ब्रूयुः) कहे (अतिवादी, अस्मि) अतिवादी हूँ (इति) ऐसा (ब्रूयात्) कहे (न, अपह्नुवीत) छुपाये नहीं ॥ ४ ॥

भावार्थ—इस कारण प्राण ही पिता आदि सब कुछ है, यह प्राणवेत्ता इस प्रकारके फलसे अनुभव करता हुआ, ऐसी युक्तियोंसे चिन्तवन करता और इस प्रकार निश्चय करता हुआ अतिवादी कहिये नामसे लेकर आकाशपर्यन्त जगत्का अतिक्रमण करके सब जगत्का प्राणरूप आत्मा मैं ही हूँ ऐसा कहनेवाला होजाता है, उससे यदि कोई कहे कि—तू अतिवादी है तो कहदेय कि—हाँ मैं अतिवादी हूँ, इस विचारको छुपावे नहीं

॥ सप्तमाध्यायस्य पञ्चदशः खण्डः समाप्तः ॥

एष तु वा अतिवदति यः सत्येनातिवदति सोऽहं भगवः सत्येनातिवदानीति सत्यं त्वेव विजिज्ञासितव्यमिति सत्यं भगवो विजिज्ञास इति ॥ १ ॥

अन्वय और पदार्थ—(यः) जो (सत्येन) सत्यके द्वारा (अतिवदति) अतिवाद करता है (एषः, तु) यह तो (वै) निश्चय (अतिवदति) अतिवाद करता है (भगवः) हे भगवन् ! (सः) वह (अहम्) मैं (सत्येन) सत्यके द्वारा (अतिवदानि) अतिवाद करता हूँ (इति इस प्रकार (सत्यम्, तु, एव) सत्य ही (विजिज्ञासितव्यम्) विशेषरूपसे जानने योग्य है (इति) ऐसा कहा (भगवः) हे भगवन् (सत्यम्) सत्यको (विजिज्ञासे) विशेषरूपसे जानना चाहता है (इति) ऐसा कहा ॥ १ ॥

भावार्थ—प्राणवेत्ता वास्तविक अतिवादी नहीं है, परन्तु जो परमार्थ सत्यसे अतिवाद करता है, ऐसा भगवान्, सनत्कुमार ने कहा, तब नारदजीने कहा, कि–हे भगवन् ! आपकी शरण में आया हुआ मैं सत्यसे अतिवाद करूँ, ऐसी युक्ति कीजिये भगवान् सनत्कुमारने कहा, कि सत्य विशेषरूपसे जाननेयोग्य है, नारदजीने कहा, कि हे भगवन् ! मैं सत्यको विशेषरूपसे जानना चाहता हूँ ॥ १ ॥

॥ सप्तमाध्यायस्य षोडशः खण्डः समाप्तः ॥

यदा वै विजानात्यथ सत्यं वदति नाविजानन्सत्यं वदति विजानन्नेव सत्यं वदति विज्ञानं त्वेव विजिज्ञासितव्यमिति विज्ञानं भगवो विजिज्ञास इति ॥ १ ॥

अन्वय और पदार्थ—(यदा) जब (वै) निश्चय (विजानाति) जानता है (अथ) अनन्तर (सत्यम्) सत्यको

(वदति) बोलता है (अविजानन्) न जानता हुआ (सत्यम्) सत्यको (न) नहीं (वदति) बोलता है (विजानन्, एव) विशेष रूपसे जानता हुआ ही (सत्यम्) सत्यको (वदति) बोलता है (विज्ञानम् तु, एव) विज्ञान ही (विजिज्ञासितव्यम्) विशेषरूपसे जानने योग्य है (इति) ऐसा सनत्कुमार ने कहा (भगवः) हे भगवन् (विज्ञानम्) विज्ञानको (विजिज्ञासे) जानना चाहता हूँ (इति) ऐसा नारदने कहा ॥१॥

भावार्थ—सनत्कुमारने कहा, कि–जब विशेष रूपसे जानता है तब ही सत्य बोलता है, विशेष रूपसे विना जाने कोई भी सत्य नहीं बोलसकता, लोकमें विशेषरूपसे जानने पर ही सत्य बोला जाता है, इस कारण विज्ञान ही विशेष रूपसे जानने योग्य है। नारदने कहा, कि–हे भगवन्! मैं विज्ञानको ही विशेषरूपसे जानना चाहता हूँ ॥ १ ॥

॥ सप्तमाध्यायस्य सप्तदशः खण्डः समाप्तः ॥

यदा वै मनुतेऽथ विजानाति नामत्वा विजानाति मत्वैव विजानाति मतिस्त्वेव विजिज्ञासितव्येति मतिं भगवो विजिज्ञास इति ॥ १ ॥

अन्वय और पदार्थ—(यदा) जब (वै) निश्चय (मनुते) मनन करता है (अथ) अनन्तर (विजानाति) जानता है (अमत्वा) विना मनन किये (न) नहीं (विजानाति) जानता है (मत्वा, एव) मनन करके ही (विजानाति) जानता है (मतिः, तु एव) मनन ही (विजिज्ञासितव्यम्) विशेष रूपसे जानने योग्य है (इति) ऐसा सनत्कुमारने कहा (भगवः)

हे भगवन् (मतिम्) मननको (विजिज्ञासे) विशेष रूपसे जानना चाहता हूँ (इति) ऐसा नारदने कहा ॥ १ ॥

भावार्थ—सनत्कुमारने कहा कि—जब मनुष्य मनन करता है तब ही विशेष रूपसे जानता है, विना मनन करे नहीं जानता, इस लिये मनन ही विशेष रूपसे जानने योग्य है, नारदने कहा कि—हे भगवन् ! मैं मननको ही विशेष रूपसे जानना चाहता हूँ ॥ १ ॥

॥ सप्तमाध्यायस्याष्टादशः खण्डः समाप्तः ॥

यदा वै श्रद्दधात्यथ मनुते नाश्रद्दधन्मनुते श्रद्दधदेव मनुते श्रद्धा त्वेव विजिज्ञासितव्येति श्रद्धां भगवो विजिज्ञास इति ॥ १ ॥

अन्वय और पदार्थ—(यदा, वै) जब (श्रद्दधाति) श्रद्धा करता है (अथ) अनन्तर (मनुते) मनन करता है (अश्रद्दधत्) श्रद्धा न करता हुआ (न) नहीं (मनुते) मनन करता है (श्रद्दधदेव) श्रद्धा करता हुआ ही (मनुते) मनन करता है (श्रद्धा, तु, एव) श्रद्धा ही (विजिज्ञासितव्या) विशेष रूपसे जानने योग्य है (इति) ऐसा सनत्कुमारने कहा (भगवः) हे भगवन् (श्रद्धाम्) श्रद्धाको (विजिज्ञासे) विशेष रूपसे जानना चाहता हूँ (इवि) ऐसा नारदने कहा ॥१॥

भावार्थ—सनत्कुमारने कहा, कि-जब श्रद्धा करता है तब ही मनन करता है, विना श्रद्धाके कोई भी मनन नहीं करता, इस लिये श्रद्धा ही विशेष रूपसे जानने योग्य है । नारदने

कहा, कि हे भगवन् ! मैं श्रद्धाको ही विशेष रूपसे जानना चाहता हूँ ॥ १ ॥

॥ सप्तदशाध्यायस्यैकोनविंशः खण्डः समाप्तः ॥

यदा वै निस्तिष्ठत्यथ श्रद्दधाति नाऽनिस्तिष्ठञ्छ्रद्दधाति निस्तिष्ठन्नेव श्रद्दधाति निष्ठा त्वेव विजिज्ञासितव्येति निष्ठां भगवो विजिज्ञास इति ॥१॥

अन्वय और पदार्थ—(यदा, वै) जब (निस्तिष्ठति) निष्ठा करता है (अथ) अनन्तर (श्रद्दधाति) श्रद्धा करता है (अनिस्तिष्ठन्) निष्ठा न करता हुआ (न) नहीं (श्रद्दधाति) श्रद्धा करता है (निस्तिष्ठन्, एव) निष्ठा करता हुआ ही (श्रद्दधाति) श्रद्धा करता है (निष्ठा, तु, एव) निष्ठा ही (विजिज्ञासितव्या) विशेषरूपसे जानने योग्य है (इति) ऐसा सनत्कुमारने कहा (भगवः) हे भगवन् (निष्ठाम्) निष्ठाको (विजिज्ञासे) विशेषरूपसे जानना चाहता हूँ (इति) ऐसा नारदने कहा ॥ १ ॥

भावार्थ—जब निष्ठा करता है तब ही श्रद्धा करता है, जिसको निष्ठा न हो वह श्रद्धा कर ही नहीं सकता इस लिये निष्ठा ही विशेष रूपसे जानने योग्य है ऐसा सनत्कुमारने कहा, तब नारदजीने कहा, कि—हे भगवन् ! मैं निष्ठाको जानना चाहता हूँ

॥ इति सप्तमाध्यायस्य विंशः खण्डः समाप्तः ॥

यदा वै करोत्यथ निस्तिष्ठति नाऽकृत्वा निस्तिष्ठति कृत्वैव निस्तिष्ठति कृतिस्त्वेव विजिज्ञासितव्येति कृतिं भगवो विजिज्ञास इति ॥ १ ॥

अन्वय और पदार्थ–(यदा, वै) जब (करोति) करता है (अथ) अनन्तर (निस्तिष्ठति) निष्ठा करता है (अकृत्वा) विना किये (न) नहीं (निस्तिष्ठति) निष्ठा करता है (कृत्वा, एव) करके ही (निस्तिष्ठति) निष्ठा करता है (कृतिः, तु, एव) कृति ही (विजिज्ञासितव्या) विशेष रूप से जानने योग्य है (इति) ऐसा कहने पर (भगवः) हे भगवन् ! (कृतिम्) कृतिको (विजिज्ञासे) जानना चाहता हूँ (इति) ऐसा कहा ॥ १ ॥

भावार्थ–सनत्कुमारने कहा, कि–यत्नके साथ गुरुसेवा आदि करने पर ही निष्ठा उत्पन्न होती है, गुरुसेवा आदि कृति विना किये निष्ठा उत्पन्न होती ही नहीं, इस लिये यत्नरूप कृति ही विशेष रूपसे जानने योग्य है, नारदने कहा, कि–हे भगवन् ! यत्नरूप कृतिको ही जानना चाहता हूँ ॥ १ ॥

॥ सप्तमाध्यायस्यैकविंशः खण्डः समाप्तः ॥

यदा वै सुखं लभतेऽथ करोति नाऽसुखं लब्ध्वा करोति सुखमेव लब्ध्वा करोति सुखन्त्वेव विजिज्ञासितव्यमिति सुखं भगवो विजिज्ञास इति १

अन्वय और पदार्थ–(यदा, वै) जब (सुखम्) सुखको (लभते) पाता है (अथ) अनन्तर (करोति) करता है (असुखम्) असुखको (लब्ध्वा) पाकर (न) नहीं (करोति) करता है (सुखम्, एव) सुखको ही (लब्ध्वा) पाकर (करोति) करता है (सुखम्, तु, एव) सुख ही (विजिज्ञासितव्यम्) जानने योग्य है (इति) ऐसा कहने पर (भगवः)

हे भगवन् ! (सुखम्) सुखको (विजिज्ञासे) जानना चाहता हूँ (इति) ऐसा कहा ॥ १ ॥

भावार्थ—जब गुरुसेवामें सुख पाता है तब ही परमसुख पानेकी अभिलाषा रख कर लोकसेवामें यत्न करता है, आगे को मुझे दुःख मिले ऐसा समझ कर कोई भी यत्न नहीं करता है, भविष्यमें सुख पानेकी आशा रख कर ही कृति करता है, इस कारण सुख ही विशेषरूपसे जानने योग्य है, नारदने कहा, कि—हे भगवन् ! मैं सुखको ही जानना चाहता हूँ ॥१॥

॥ सप्तमाध्यायस्य द्वाविंशः खण्डः समाप्तः ॥

यो वै भूमा तत्सुखं नाल्पे सुखमस्ति भूमैव सुखं भूमा त्वेव विजिज्ञासितव्य इति भूमानं भगवो विजिज्ञास इति ॥ १ ॥

अन्वय और पदार्थ—(यः, वै) जो (भूमा) निरतिशय है (तत्) वह (सुखम्) सुख है (अल्पे) अल्पमें (सुखम्) सुख (न) नहीं (अस्ति) है (भूमा, एव) निरतिशय ही (सुखम्) सुख है (भूमा, तु, एव) निरतिशय है (विजिज्ञासितव्यः) जानने योग्य है (इति) ऐसा कहने पर (भगवः) हे भगवन् (भूमानम्) निरतिशयको (विजिज्ञासे) जानना चाहता हूँ (इति) ऐसा कहा ॥ १ ॥

भावार्थ—जो भूमा कहिये सबसे अधिक है (निरतिशय) है वही सुख है, अल्प अधिक तृष्णाका हेतु है और तृष्णा दुःख का बीज है, इस कारण अल्पमें सुख नहीं है । जिसमें तृष्णा आदि दुःखके बीजका होना सम्भव ही नहीं है, ऐसा निरति-

शय या भूमा ही सुख है, वह ही विशेष रूपसे जानने योग्य है, ऐसा सनत्कुमारने कहा, तब नारदजीने कहा, कि—हे भगवन् ! मैं भूमा वा निरतिशयको जानना चाहता हूँ ॥ १ ॥

॥ सप्तमाध्यायस्य त्रयोविंशः खण्डः समाप्तः ॥

यत्र नान्यत्पश्यति नान्यच्छृणोति नान्यद्विजानाति स भूमाऽथ यत्रान्यत्पश्यत्यन्यच्छृणोत्यन्यद्विजानाति तदल्पं यो वै भूमा तदमृतमथ यदल्पं तन्मर्त्यꣳ स भगवः कस्मिन् प्रतिष्ठित इति स्वे महिम्नि यदि वा न महिम्नीति ॥ १ ॥

अन्वय और पदार्थ—(यत्र) जिसमें (अन्यत्) अन्यको (न) नहीं (पश्यति) देखता है (अन्यत्) अन्यको (न) नहीं (शृणोति) सुनता है (अन्यत्) अन्यको (न) नहीं (विजानाति) जानता है (सः) वह (भूमा) निरतिशय है (अथ) और (यत्र) जिसमें (अन्यत्) औरको (पश्यति) देखता है (अन्यत्) औरको (शृणोति) सुनता है (अन्यत्) औरको (विजानाति) जानता है (तत्) वह (अल्पम्) अल्प है (यः) जो (भूमा) निरतिशय है (तत्) वह (अमृतम्) अमृत है (अथ) और (यत्) जो (अल्पम्) अल्प है (तत्) वह (मर्त्यम्) नाशवान् है [इति] ऐसा कहने पर (भगवः) हे भगवन् ! (सः) वह (कस्मिन्) किसमें (प्रतिष्ठितः) स्थित है (इति) ऐसा प्रश्न किया (स्वे) अपनी (महिम्नि) विभूतिमें (यदि वा) पक्षान्तरमें (महिम्नि) विभूतिमें (न) नहीं (इति) ऐसा उत्तर दिया ॥ १ ॥

भावार्थ—जिस तत्त्वमें अन्य अन्यसे अन्यको नहीं देखता है, अन्यको नहीं सुनता है, अन्यका मनन नहीं करता है और अन्यको विशेषरूपसे नहीं जानता है अर्थात् जो संसारके सकल व्यवहारसे रहित है वह भूमा है और जिस अविद्यामें अन्य अन्यसे अन्यको देखता है, अन्यको सुनता है, अन्यका मनन करता है और अन्यको विशेषरूपसे जानता है अर्थात् जिसमें दर्शन आदि संसारका व्यवहार है वह अल्प कहिये अज्ञान-कालमें रहने वाला है और इसी कारण वह स्वप्नके पदार्थकी समान नाशवान् है, उससे विपरीत जो प्रसिद्ध भूमा है वह अविनाशी है और जो परिच्छिन्न है वह विनाशी है,ऐसा सनत्-कुमारजीने कहा तब नारदजीने बूझा, कि--हे भगवन् ! भूमा काहेमें स्थित है ? सनत्कुमारने उत्तर दिया, कि--हे नारद ! यदि व्यवहारदृष्टिसे बूझते हो तो वह अपनी विभूतिमें स्थित है और परमार्थदृष्टिसे बूझते हो तो विभूतिमें स्थित नहीं है, किंतु आश्रयरहित है ॥ १ ॥

गोअश्वमिह महिमेत्याचक्षते हस्तिहिरण्यं दासभार्यं क्षेत्राण्यायतनानीति नाहमेवं ब्रवीमि ब्रवीमीति होवाचान्यो ह्यन्यस्मिन् प्रतिष्ठित इति

अन्वय और पदार्थ-(गोअश्वम्) गौ, घोड़ा (हस्ति-हिरण्यम्) हाथी, सोना (दासभार्यम्) दास, स्त्री (क्षेत्राणि) खेत (आयतनानि) स्थान (इह) यह (महिमा, इति) विभूति है इस प्रकार (आचक्षते) कहते हैं (इति) इसप्रकार (अन्यस्मिन्) अन्यमें (अन्यः) अन्य (प्रतिष्ठितः) प्रति-

ष्ठित है (एवम्) ऐसा (अहम्) मैं (न) नहीं (ब्रवीमि) कहता हूँ (ब्रवीमि) कहता हूँ (इति) ऐसा (उवाच, ह) सनत्कुमारने कहा ॥ २ ॥

भावार्थ--सनत्कुमारने कहा, कि--इस लोकमें विभूति और विभूतिमान् परस्पर भिन्न २ रहते हैं । गौ,घोड़ा, हाथी,सोना, दास, स्त्री और घर आदि लोगोंकी विभूति कहलाते हैं, लोग इन गौ घोड़ा आदि विभूतियोंसे भिन्न होते हैं, मैं भूमा और उसकी विभूतिको इस प्रकार परस्पर विभिन्न नहीं करता हूँ । भूमा इस प्रकार अपनेसे भिन्न महिमामें प्रतिष्ठित नहीं है,किंतु स्वस्वरूप—भूत महिमामें ही स्थित है ॥ २ ॥

॥ सप्तमाध्यायस्य चतुर्विंशः खण्डः समाप्तः ॥

स एवाधस्तात्स उपरिष्टात्स पश्चात्स पुरस्तात्स दक्षिणतः स उत्तरतः स एवेदꣳ सर्वमित्यथातोऽहंकारादेश एवाहमेवाधस्तादहमुपरिष्टादहं पश्चादहं पुरस्तादहं दक्षिणतोऽहमुत्तरतोऽहमेवेदꣳ सर्वमिति ॥ १ ॥

अन्वय और पदार्थ—(सः, एव) वह ही (अधस्तात्) नीचे है (सः) वह (उपरिष्टात्) ऊपर है (सः) वह (पश्चात्) पश्चिममें है (सः) वह (पुरस्तात्) पूर्वमें है (सः) वह (दक्षिणतः) दक्षिणकी ओर है (सः) वह (उत्तरतः) उत्तरकी ओर है (सः, एव) वह ही (इदम्, सर्वम्) यह सब है (इति) ऐसा कहकर (अथ) अब (अतः) इस

कारण (अहङ्कारादेशः, एव) अहङ्कारसे ही कथन होता है (अहम्, एव) मैं ही (अधस्तात्) नीचे हूँ (अहम्) मैं (उपरिष्टात्) ऊपर हूँ (अहम्) मैं (दक्षिणतः) दक्षिणमें हूँ (अहम्) मैं (उत्तरतः) उत्तरमें हूँ (इदम्) यह (सर्वम्) सब (अहम्, एव) मैं ही हूँ (इति) यह सिद्धान्त है ।१।

भावार्थ-वह भूमा ही नीचे है, वही ऊपर है, वही पश्चिममें है, वही पूर्वमें है, वही दक्षिणमें है, वही उत्तरमें है, वही यह सब है, इस प्रकार भूमासे भिन्न कोई वस्तु न होनेसे यह भूमा किसीमें स्थित नहीं है, ऐसा कहकर अब द्रष्टासे अनन्यपनेके ज्ञानके लिये उस भूमाका अहङ्कारसे ही कथन किया जाता है—मैं ही नीचे हूँ, मैं ही ऊपर हूँ, मैं ही पश्चिममें हूँ, मैं ही पूर्वमें हूँ, मैं ही दक्षिणमें हूँ, मैं ही उत्तरमें हूँ, मैं ही यह सब हूँ ॥ १ ॥

अथात आत्मादेश एवात्मैवाधस्तादात्मोपरिष्टादात्मा पश्चादात्मा पुरस्तादात्मा दक्षिणत आत्मोत्तरत आत्मैवेदꣳ सर्वमिति स वा एष एवं पश्यन्नेवं मन्वान एवं विजानन्नात्मरतिरात्मक्रीड आत्ममिथुन आत्मानन्दः स स्वराड् भवति तस्य सर्वेषु लोकेषु कामचारो भवत्यथ येऽन्यथातो विदुरन्यराजानस्ते क्षय्यलोका भवन्ति तेषाꣳ सर्वेषु लोकेष्वकामचारो भवति ॥ २ ॥

अन्वय और पदार्थ-(अथ) अब (अतः) इससे (आत्मा-

देशः, एव) आत्मा शब्दसे ही कहा जाता है (आत्मा,एव) आत्मा ही (अधस्तात्) नीचे है (आत्मा, उपरिष्टात्) आत्मा ऊपर है (आत्मा, पश्चात्) आत्मा पश्चिममें है (आत्मा पुरस्तात्) आत्मा पूर्वमें है (आत्मा, दक्षिणतः) आत्मा दक्षिण में है (आत्मा, उत्तरतः) आत्मा उत्तरमें है (इदम् , सर्वम्) यह सब (आत्मा, एव) आत्मा ही है (इति) यह सिद्धान्त है (स, वै, एषः) वह प्रसिद्ध यह (एवम् , पश्यन्) इस प्रकार देखता हुआ (एवं, मन्वानः) इस प्रकार मनन करता हुआ (एवं, विजानन्) इस प्रकार विशेषरूपसे जानता हुआ (आत्मरतिः) आत्मामें रमण करने वाला (आत्मक्रीडः) आत्माके साथ क्रीड़ा करने वाला (आत्ममिथुनः) आत्मामें मिथुन वाला (आत्मानन्दः) आत्मरूप आनन्द वाला (सः) वह (स्वराड्) स्वराज्यमें अभिषिक्त (भवति) होता है (तस्य) उसकी (सर्वेषु, लोकेषु) सब लोकोंमें (कामचारः) यथेच्छ प्रवृत्ति (भवति) होती है (अथ) और (ये) जो (अतः) इससे (अन्यथा) और प्रकार (विदुः) जानते हैं (ते) वे (अन्यराजानः) अन्य राजाओं वाले (क्षय्यलोकाः) विनाशी लोकों वाले (भवन्ति) होते हैं (तेषाम्) उनकी (सर्वेषु, लोकेषु) सब लोकोंमें (अकामचारो, भवति) यथेच्छ प्रवृत्ति नहीं होती है ॥ २ ॥

भावार्थ—अब अहङ्कारसे यदि देहादि संघातकी आशङ्का होय तो उसको दूर करनेके लिये आत्म शब्दसे ही भूमाको कहते हैं—आत्मा ही नीचे है, आत्मा ही ऊपर है, आत्मा ही पश्चिममें है, आत्मा ही पूर्वमें है, आत्मा ही दक्षिणमें है, आत्मा

ही उत्तरमें है और यह सब आत्मा ही है यह सिद्धान्त है। इस तत्त्वको जानने वाला महात्मा निःसन्देह अन्यरहित परिपूर्ण आत्माको इस प्रकार देखता, इस प्रकार मनन करता और इस प्रकार विशेषरूपसे जानता हुआ आत्मामें ही रति कहिये परमप्रेम करता है आत्माके साथ ही क्रीड़ा करता है, आत्मामें ही स्त्रीसमागमके सुखका अनुभव करता है, वह आत्मरूप आनन्द वाला विद्वान् आत्मरूप स्वराज्यमें अभिषिक्त होजाता है-उसके ऊपर किसीका शासन नहीं रहता और वह चाहे तिस लोकमें अपनी इच्छानुसार जासकता है तथा जो इस भूमाको ऐसा न देख कर और प्रकार देखते हैं, वे दूसरोंके शासनमें चलने वाले पराधीन होते हैं, उनके लोकोंका शीघ्र ही नाश होजाता है, वे किसी लोकमें भी अपनी इच्छानुसार नहीं जासकते ॥ २ ॥

॥ सप्तमाध्यायस्य पञ्चविंशः खण्डः समाप्तः ॥

तस्य ह वा एतस्यैवं पश्यत एवं मन्वानस्यैवं विजानत आत्मतः प्राण आत्मत आशाऽऽत्मतः स्मर आत्मत आकाश आत्मतस्तेज आत्मत आप आविर्भावतिरोभावावात्मतोऽन्नमात्मतो बलमात्मतो विज्ञानमात्मतो ध्यानमात्मतश्चित्तमात्मतः संकल्प आत्मतो मन आत्मतो वागात्मतो नामात्मतो मन्त्रा आत्मतः कर्माण्यात्मत एवेदꣳ सर्वमिति ॥ १ ॥

अन्वय और पदार्थ—(तस्य, ह) तिस (एतस्य) इस (एवं, पश्यतः) ऐसा देखने वालेके (एवं, मन्वानस्य) ऐसा मनन करने वालेके (एवं, विजानतः) ऐसा जानने वालेके (आत्मतः) आत्मासे (प्राणः) प्राण (आत्मतः) आत्मासे (आशा) आशा (आत्मतः) आत्मासे (स्मरः) स्मरण (आत्मतः) आत्मासे (आकाशः) आकाश (आत्मतः) आत्मासे (तेजः) तेज (आत्मतः) आत्मासे (आपः) जल (आत्मतः) आत्मासे (आविर्भावतिरोभावौ) प्रकट होना और अन्तर्धान होना (आत्मतः) आत्मासे (अन्नम्) अन्न (आत्मतः) आत्मासे (बलम्) बल (आत्मतः) आत्मासे (विज्ञानम्) विज्ञान (आत्मतः) आत्मासे (ध्यानम्) ध्यान (आत्मतः) आत्मासे (चित्तम्) चित्त (आत्मतः) आत्मासे (सङ्कल्पः) संकल्प (आत्मतः) आत्मासे (मनः) मन (आत्मतः) आत्मासे (वाक्) वाणी (आत्मतः) आत्मासे (नाम) नाम (आत्मतः) आत्मासे (मन्त्राः) मंत्र (आत्मतः) आत्मासे (कर्माणि) कर्म (आत्मतः) आत्मासे (इदम्) यह (सर्वम्, एव) सब ही [भवति] होता है (इति) ऐसा सनत्कुमारने कहा ॥ १ ॥

भावार्थ—इस प्रकार जो भूमा पुरुषका दर्शन, मनन और अनुभव करते हैं वे आत्मामें ही प्राण, आशा, स्मरण, आकाश, तेज, जल, आविर्भाव, तिरोभाव, अन्न, बल, विज्ञान, ध्यान, चित्त, संकल्प, मन, वाणी, नाम, मन्त्र और कर्म आदि सब का ही अनुभव करते हैं ॥ १ ॥

तदेष श्लोको—"न पश्यो मृत्युं पश्यति न रोगं नोत दुःखताᳫँ सर्वᳫँह पश्यः पश्यति सर्वमाप्नोति सर्वशः" इति, स एकधा भवति त्रिधा भवति पञ्चधा सप्तधा नवधा चैव पुनश्चैकादशः स्मृतः, शतञ्च दश चैकश्च सहस्राणि च विᳫँशतिः, आहारशुद्धौ सत्त्वशुद्धिः सत्त्वशुद्धौ ध्रुवा स्मृतिः, स्मृतिलम्भे सर्वग्रन्थीनां विप्रमोक्षस्तस्मै मृदितकषायाय तमसस्पारं दर्शयति भगवान् सनत्कुमारस्तᳫँ स्कन्द इत्याचक्षते तᳫँ स्कन्द इत्याचक्षते

अन्वय और पदार्थ—(तत्) उसमें (एषः) यह (श्लोकः) मन्त्र है (पश्यः) ज्ञानी (मृत्युम्) मृत्युको (न) नहीं (पश्यति) देखता है (रोगम्) रोगको (न) नहीं (उत) और (दुःखताम्) दुःखभावको (न) नहीं (पश्यः) ज्ञानी (सर्वम्, ह) सबको ही (पश्यति) देखता है (सर्वशः) सब प्रकारसे (सर्वम्) सबको (आप्नोति) प्राप्त होता है (इति) इस प्रकार (सः) वह (एकधा) एक प्रकारका (भवति) होता है (त्रिधा) तीन प्रकारका (भवति) होता है (पञ्चधा) पाँच प्रकारका (सप्तधा) सात प्रकारका (च) और (नवधा) नौ प्रकारका (एव) ही (च) और (पुनः, एव) फिर भी (एकादशः) ग्यारहवाँ (स्मृतः) कहा है (शतम्) सौ (च) और (दश, च) दश भी (च) और (एकः) एक (विंशतिः, च) बीस भी (सहस्राणि) सहस्र

[भवति] होता है (आहारशुद्धौ) भोजनकी शुद्धिमें (सत्त्वशुद्धिः) अन्तःकरणकी शुद्धि (सत्त्वशुद्धौ) अन्तःकरणकी शुद्धिमें (ध्रुवा) अविच्छिन्न (स्मृतिः) स्मृति [भवति] होती है (स्मृतिलम्भे) स्मृतिका लाभ होने पर (सर्वग्रन्थीनाम्) सकल गाँठोंका (विप्रमोक्षः) विशेषरूपसे खुलना होता है (मृदितकषायाय) नष्ट होगये हैं कषाय जिसके ऐसे (तस्मै) तिस नारदके अर्थ (तमसः) अज्ञानके (पारम्) पारको (भगवान्, सनत्कुमारः) भगवान् सनत्कुमार (दर्शयति) दिखाते हैं (तम्) उसको (स्कन्दः, इति) स्कन्द इस नाम से (आचक्षते) कहते हैं (तम्) उसको (स्कन्दः, इति) स्कन्द इस नामसे (आचक्षते) हैं ॥ २ ॥

भावार्थ—इस विषयमें यह मन्त्र है, कि—ज्ञानी मृत्युको नहीं देखता है, रोगको नहीं देखता है, ज्ञानी सबको आत्म-रूप ही देखता है, इस कारण सब प्रकारसे सबको पाता है। वह ज्ञानी सृष्टिसे पहले एक प्रकारका होता है, फिर सृष्टिकाल में तेज, जल और पृथिवी ऐसे तीन प्रकारका होजाता है, शब्दादि विषयरूपसे पाँच प्रकारका, भू आदि लोकरूपसे सात प्रकारका, और ग्रहरूपसे नौ प्रकारका, वही फिर कर्मेन्द्रियें, ज्ञानेन्द्रियें और मनरूपसे ग्यारह प्रकारका, उसमेंसे हर एककी दश २ वृत्तियें होकर एकसौ दश प्रकारका, दिन रातके श्वास प्रश्वासरूपसे इक्कीस सहस्र छः सौ प्रकारका होता है। आहार की शुद्धिमें शब्दादि विषयोंको राग द्वेष और मोहरहित ग्रहण करनेसे अन्तःकरण शुद्ध होजाता है, अन्तःकरणकी शुद्धिमें भूमारूप आत्माकी अविच्छिन्न स्मृति होती है, और उस स्मृति

का लाभ होजाने पर अविद्याकी सकल गाँठोंका अत्यन्त विनाश होजाता है, इस लिये आहारकी शुद्धि आवश्यक है। अब श्रुति आख्यायिकाका उपसंहार करती है, कि-जिसके रागद्वेष आदि दोषरूप कषायोंका नाश होगया है ऐसे नारद जीको भगवान् सनत्कुमारने अज्ञानका पाररूप तत्त्व दिखा दिया था, उन सनत्कुमारको ज्ञाता पुरुष स्कन्द नामसे पुकारते हैं, उनको स्कन्द (स्वामिकार्त्तिकेय) कहते हैं ॥ २ ॥

॥ सप्तमाध्यायस्य षड्विंशः खण्डः समाप्तः ॥

॥ सप्तमाध्यायः समाप्तः ॥

अष्टम-अध्याय

यद्यपि उत्तम बुद्धि वाले सर्वव्यापक ब्रह्मको जान सकते हैं, परन्तु मन्दबुद्धि वाले नहीं जान सकते, इस कारण उनको ब्रह्मका निश्चय करानेके लिये हृदयकमलरूप देशका उपदेश करना चाहिये और यद्यपि ब्रह्मतत्त्व वास्तवमें निर्गुण है तथापि मन्द बुद्धिवालोंको गुणवान्पना इष्ट होता है अतः उसका सत्यकाम आदि गुणवान्पना भी कहना उचित है। इसके अतिरिक्त यद्यपि ब्रह्मवेत्ताओंको विधिके विना भी स्त्री आदि विषयोंसे विमुखता होसकती है तथापि अनेक जन्मोंमें विषयसेवनका अभ्यास रहनेके कारण उत्पन्न हुई विषयोंकी तृष्णा सहसा नहीं हटायी जासकती, इस कारण ब्रह्मचर्य आदि साधनोंका विधान करना चाहिये तथा जो आत्माके एकत्वको जानते हैं उनकी दृष्टिमें गन्ता, गमन और गन्तव्य

का अभाव होता है, इस कारण देहस्थितिका क्षय होजाने पर जले हुए ईंधन वाले अग्निकी समान उनकी अपने स्वरूपमें ही स्थिति होती है, परन्तु गन्ता गमन आदिकी वासना वाली जिनकी बुद्धि है उनके प्रति हृदयदेशमें गुणवान् ब्रह्मकी उपासना करने वालोंकी जो सुषुम्ना नाड़ीसे गति होती है वह कहनी उचित है, इसके लिये ही इस आठवें अध्यायका आरम्भ होता है—

ॐ अथ यदिदमस्मिन् ब्रह्मपुरे दहरं पुंडरीकं वेश्म दहरोऽस्मिन्नन्तराकाशस्तस्मिन् यदन्तस्तदन्वेष्टव्यं तद्वाव विजिज्ञासितव्यमिति ॥ १ ॥

अन्वय और पदार्थ—(अथ) अब (अस्मिन्) इस (ब्रह्मपुरे) ब्रह्मपुरमें (यत्) जो (इदम्) यह (दहरम्) छोटासा (पुण्डरीकम्) कमलरूप (वेश्म) घर है (तस्मिन्) उसमें (दहरः) छोटासा (अन्तराकाशः) अन्तराकाश है (तस्मिन्) उसमें (यत्) जो (अन्तः) अन्तर् है (तत्) वह (अन्वेष्टव्यम्) खोजने योग्य है (तद्, वाव) वह ही (विजिज्ञासितव्यम्) विशेषरूपसे जानने योग्य है ॥ १ ॥

भावार्थ—उत्तम बुद्धि वालोंको निर्विशेष ब्रह्मका उपदेश करके अब मन्दबुद्धि वालोंको सविशेष ब्रह्मका उपदेश किया जाता है, कि—इस ब्रह्मकी प्राप्तिके स्थानरूप शरीरमें जो यह छोटासा हृदयकमलरूप घर है, इसमें और छोटासा अन्तराकाश नामक ब्रह्म है, उसमें जो अन्तर् है वह आश्रयसहित खोजने योग्य है और वही सद्गुरुके आश्रय तथा श्रवण आदि

उपायोंसे साक्षात्कार करने योग्य है। तात्पर्य यह है, कि— जिन्होंने हृदयकमलमें अपनी इन्द्रियोंका निरोध किया है, जो बाहरी विषयोंसे विरक्त हैं और जो विशेष रूपसे ब्रह्मचर्य तथा सत्य रूप साधन वाले हैं उनको ही ध्यानके द्वारा हृदय में ब्रह्मकी प्राप्ति होती है औरको नहीं होती है ॥ १ ॥

तं चेद् ब्रूयुर्यदिदमस्मिन् ब्रह्मपुरे दहरे पुण्ड· रीकं वेश्म दहरोऽस्मिन्नन्तराकाशः किन्तदत्र विद्यते यदन्वेष्टव्यं यद्वाव विजिज्ञासितव्यमिति स ब्रूयात् ॥ २ ॥

अन्वय और पदार्थ–(तम्) उसको (चेत्) जो (ब्रूयुः) कहें (अस्मिन्) इस (ब्रह्मपुरे) ब्रह्मपुरमें (यत्) जो (इदम्) यह (दहरम्) छोटासा (पुण्डरीकम्) कमलरूप (वेश्म) स्थान है (अस्मिन्) इसमें (दहरः) छोटासा (अंतराकाशः) अन्तराकाश है (अत्र) इसमें (तत्) वह (किम्) क्या (विद्यते) है (यत्) जो (अन्वेष्टव्यम्) खोजना चाहिये (यद्, वाव) जो अवश्य (विजिज्ञासितव्यम्) जानना चाहिये (इति) ऐसा प्रश्न करनेवालोंसे (सः) वह (ब्रूयात्) कहे ॥२॥

भावार्थ–उपरोक्त उपदेश करने वाले आचार्यसे यदि शिष्य कहें, कि–इस ब्रह्मपुरमें जो अल्प कमलरूप घर है, उसमें जो अल्पतर अन्तराकाश है, उसमें वह कौनसा तत्त्व है, कि— जिसको आश्रयसहित खोजना चाहिये और जिसका साक्षात्कार अवश्य ही करना चाहिये ? उस अल्पतरमें तो कुछ हो नहीं सकता, इस कारण उसको आश्रयसहित खोजने वा जानने

से कोई फल नहीं है। ऐसा प्रश्न करने वाले शिष्योंको वह आचार्य यह उत्तर देय कि—॥ २ ॥

आकाश उभे अस्मिन् द्यावापृथिवी अन्तरेव समाहिते उभावग्निश्च वायुश्च सूर्याचन्द्रमसावुभौ विद्युन्नक्षत्राणि यच्चास्येहास्ति यच्च नास्ति सर्वं तदस्मिन् समाहितमिति ॥ ३ ॥

अन्वय और पदार्थ—(यावान्) जितना (वै) प्रसिद्ध (अयम्) यह (आकाशः) आकाश है (तावान्) उतना ही (अन्तर्हृदये) हृदयके भीतर (एषः) यह (आकाशः) आकाश है (अस्मिन्) इसके (अन्तरेव) भीतर ही (द्यावापृथिवी) स्वर्ग और पृथिवी (उभे) दोनों (समाहिते) भले प्रकार स्थित हैं (अग्निः) अग्नि (च) और (वायुः, च) वायु भी (उभौ) दोनों (सूर्याचन्द्रमसौ) सूर्य और चन्द्रमा (उभौ) दोनों (विद्युत्) बिजली (नक्षत्राणि) तारागण (च) और (अस्य) इसका (यत्) जो (इह) यहाँ (अस्ति) है (च) और (यत्) जो (न) नहीं (अस्ति) है (तत्) वह (सर्वम्) सब (अस्मिन्) इसमें (समाहितम्) भले प्रकारसे स्थित है ॥ ३ ॥

भावार्थ—जितना यह प्रसिद्ध भौतिक आकाश है उतना ही वा उससे भी अधिक हृदयके भीतर यह ब्रह्मरूप आकाश है, इस बुद्धिरूप उपाधिवाले ब्रह्मरूप आकाशके भीतर ही स्वर्ग और पृथिवी दोनों उत्तम प्रकारसे स्थित हैं, तथा अग्नि और वायु, सूर्य और चन्द्रमा तथा बिजली और नक्षत्र तथा

इस लोकमें जो कुछ इस जीवकी ममताका विषय विद्यमान है और जो कुछ विद्यमान नहीं है अर्थात् नाशको प्राप्त होगया है वा भविष्यत्में होने वाला है वह सब इसमें स्थित है ॥३॥

तं चेद् ब्रूयुरस्मिꣳश्चेदिदं ब्रह्मपुरे सर्वꣳ समाहितꣳ सर्वाणि च भूतानि सर्वे च कामा यदैतज्जरा वाऽऽप्नोति प्रध्वꣳसते वा किं ततोऽतिशिष्यत इति ॥ ४ ॥

अन्वय और पदार्थ—(चेत्) यदि (तम्) उससे (ब्रूयुः) कहें (चेत्) यदि (अस्मिन्) इस (ब्रह्मपुरे) ब्रह्मपुरमें (इदम्) यह (सर्वम्) सब (समाहितम्) उत्तम प्रकारसे स्थित है (च) और (सर्वाणि) सब (भूतानि) भूत (च) और (सर्वे) सब (कामाः) विषय [समाहिताः] उत्तम प्रकारसे स्थित हैं [तर्हि] तो (यदा वा) जब (एतत्) इसको (जरा) वृद्धावस्था (आप्नोति) प्राप्त होती है (वा) अथवा (प्रध्वंसते) नाशको प्राप्त होता है (ततः) तब (किम्) क्या (अवशिष्यते) शेष रहता है (इति) ऐसा कहैं ॥४॥

भावार्थ—ऐसा उपदेश करने वाले आचार्यसे कदाचित् शिष्य प्रश्न करें, कि—यदि इस ब्रह्मपुर शरीरमें स्थित अन्तराकाशमें यह सब उत्तम प्रकारसे स्थित हैं, सकल भूत तथा सकल विषय उत्तम प्रकारसे स्थित हैं तो जिस समय बुढ़ापा आकर इस शरीरको घेरता है अथवा यह शरीर नाशको प्राप्त होता है उस समय क्या शेष रहता है ? देहका नाश होने पर

इसके आधारसे रहने वाले उस सबका भी तो नाश होजाता होगा ? इसके उत्तरमें आचार्य यह कहे, कि—॥४॥

स ब्रूयान्नास्य जरयैतज्जीर्यति न वधेनास्य हन्यत एतत्सत्यं ब्रह्मपुरमस्मिन् कामा समाहिता एष आत्माऽपहतपाप्मा विजरो विमृत्युर्विशोको विजिघत्सोऽपिपासः सत्यकामः सत्यसंकल्पो यथा ह्येवेह प्रजा अन्वाविशन्ति यथानुशासनं यं यमन्तमभिकामा भवन्ति यं जनपदं यं क्षेत्रभागं तं तमेवोपजीवंति ॥ ५ ॥

अन्वय और पदार्थ—(सः) वह (ब्रूयात्) कहे (अस्य) इसकी (जरया) वृद्धावस्थासे (एतत्) यह (न) नहीं (जीर्यति) जीर्ण होता है (अस्य) इसके (वधेन) वधसे (न) नहीं (हन्यते) मारा जाता है (एतत्) यह (सत्यम्) सच्चा (ब्रह्मपुरम्) ब्रह्मपुर है (अस्मिन्) इसमें (कामाः) विषय (समाहिताः) सम्यक् प्रकारसे स्थित हैं (एषः) यह (आत्मा) आत्मा (अपहतपाप्मा) पापसे रहित (विजरः) वृद्धावस्थासे रहित (विमृत्युः) मृत्युरहित (विशोकः) शोकशून्य (विजिघत्सः) भूखरहित (अपिपासः) पिपासाशून्य (सत्यकामः) सत्य भोग वाला (सत्यसंकल्पः) सत्यसंकल्प वाला (अस्ति) है (यथा, हि एव) जिस प्रकार (इह) इस लोकमें (प्रजाः) प्रजायें (यथानुशासनम्) राजाकी आज्ञाके अनुसार (अन्वाविशन्ति) वर्ताव करती हैं (यम्,

यम्) जिस जिस (अन्तम्) सीमावाले स्थानको (यम्) जिस (जनपदम्) देशको (यम्) जिस (क्षेत्रभागम्) क्षेत्र के भागको (अभिकामाः, भवन्ति) भोगनेकी इच्छावाली होती हैं (तम्, तम्, एव) उस २ को ही (उपजीवन्ति भोगती हैं ४

भावार्थ—उन शिष्योंके प्रश्नका उत्तर देता हुआ आचार्य कहे, कि—इस शरीरको जरासे यह अन्तराकाश नामवाला ब्रह्म जीर्ण नहीं होता है और इस शरीरके वधसे यह ब्रह्म मारा नहीं जाता है, यह ब्रह्मपुर सत्यस्वरूप है, इसमें मनुष्य जिन बाहरके विषयोंकी इच्छा करता है वे सब विषय स्थित हैं, इस कारण इसकी प्राप्तिके उपायका अनुष्ठान करो, बाहरी विषयोंकी तृष्णाका त्याग करो, यह ब्रह्मरूप आत्मा धर्म अधर्म-रूप पापसे रहित, जरारहित, मृत्युरहित, प्यारे परिवार आदि के वियोगरूप निमित्तवाले मानसिक सन्तापसे रहित, खाने पीनेकी इच्छासे रहित, सत्यभोगवाला और सत्य संकल्पवाला है, स्वराज्यकी कामनावाले पुरुषोंको उचित है कि—सद्गुरु से, और अपने अनुभवसे इसको अवश्य जाने, इसको न जाननेसे पुण्यफलको भोगनेमें पराधीनता रहती है, जैसे इस लोकमें प्रजायें अपने राजाकी जैसी आज्ञा होती है उसके अनु-कूल वर्ताव करती हैं, वे प्रजायें अपनी बुद्धिके अनुसार जिस जिस सीमान्तस्थानकी, जिस २ देशकी और जिस २ क्षेत्रभाग की इच्छा करती हैं उसको राजाकी आज्ञानुसार ही भोगसकती हैं

तद्यथेह कर्मजितो लोकः क्षीयत एवमेवामुत्र पुण्यजितो लोकः क्षीयते तद्य इहाऽऽत्मानमनु-

।विद्य व्रजन्त्येतांश्च सत्यान् कामांस्तेषां सर्वेषु लोकेष्वकामचारो भवत्यथ य इहाऽऽत्मानमनुविद्य व्रजन्त्येतांश्च सत्यान् कामांस्तेषां सर्वेषु लोकेषु कामचारो भवति ॥ ६ ॥

अन्वय और पदार्थ—(तत्) उसमें (यथा) जिस प्रकार (इह) यहाँ (कर्मजितः) कर्मसे सम्पादन किया हुआ (लोकः भोग (क्षीयते) नाशको प्राप्त होता है (एवमेव) इसीप्रकार (अमुत्र) परलोकमें (पुण्यजितः) पुण्यसे सम्पादन किया हुआ (लोकः) भोग (क्षीयते) नाशको प्राप्त होता है (तत्) उसमें (ये) जो (इह) यहाँ (आत्मानम्) आत्माको (च) और (एतान्) इन (सत्यान्, कामान्) सत्य भोगोंको (अननुविद्य) न जानकर (व्रजन्ति) प्रयाण करते हैं (तेषाम्) उनका (सर्वेषु, लोकेषु) सब लोकोंमें (अकामचारः) अस्वतन्त्रपना (भवति) होता है (अथ) और (ये) जो (इह) यहाँ (आत्मानम्) आत्माको (च) और (एतान्) इन (सत्यान्, कामान्) सत्य भोगोंको (अनुविद्य) अनुभवमें लाकर (व्रजन्ति) प्रयाण करते (तेषाम्) उनका (सर्वेषु लोकेषु) सब लोकोंमें (कामचारः) स्वतन्त्रपना (भवति) होता है

भावार्थ—उसमें जिस प्रकार इस लोकमें सेना आदि कर्म के द्वारा प्राप्त किया हुआ ऐश्वर्य-सुखका उपभोग नाशको प्राप्त होजाता है इसी प्रकार परलोकमें भी पुण्यसे प्राप्त किया हुआ सुखभोग क्षीण होजाता है। उसमें जो यहाँ आत्माको

विना जाने तथा अपने आत्मामें रहे हुए सत्यभोगोंका अनुभव विना किये मरणको प्राप्त होजाते हैं वे सब भोगोंमें पराधीन ही रहते हैं और जो यहाँ आत्मस्वरूपको जानकर तथा अपने आत्मामें रहनेवाले सत्य भोगोंका अनुभव करके मरते हैं उनकी सब लोकोंमें स्वतन्त्र गति होती है ॥ ६ ॥

॥ अष्टमाध्यायस्य प्रथमः खण्डः समाप्तः ॥

स यदि पितृलोककामो भवति संकल्पादेवास्य पितरः समुत्तिष्ठन्ति तेन पितृलोकेन सम्पन्नो महीयते ॥ १ ॥

अन्वय और पदार्थ—(सः) वह (यदि) जो (पितृलोककामः) पिताके भोगकी इच्छावाला (भवति) होता है [तर्हि] तो (अस्य) इसके (सङ्कल्पात्, एव) सङ्कल्पसे ही (पितरः) पितर (समुत्तिष्ठन्ति) सम्यक् प्रकारसे उठते हैं (तेन) उस (पितृलोकेन) पिताके सम्बन्धसे (सम्पन्नः) युक्त हुआ (महीयते) महिमाका अनुभव करता है ॥ १ ॥

भावार्थ—जिसने ब्रह्मचर्य आदि साधनाके द्वारा अपने हृदयमें आत्माका तथा उसमें रहनेवाले सत्यभोगोंका अनुभव करलिया है वह यदि पितासे प्राप्त होनेवाले सुखको भोगनेकी इच्छा करे तो इसके संकल्पसे पिता पिता पितामह आदि आकर इसके साथ उत्तम प्रकारसे मिलते हैं और उनसे मिलकर यह महिमाका अनुभव करता है ॥ १ ॥

अथ यदि मातृलोककामो भवति संकल्पादे-

वास्य मातरः समुत्तिष्ठन्ति तेन मातृलोकेन संपन्नो महीयते ॥ २ ॥

अन्वय और पदार्थ—(अथ) और (यदि) जो (मातृलोककामः) माताके संबन्धकी इच्छा वाला (भवति) होता है [तर्हि] तो (अस्य) इसके (सङ्कल्पात्, एव) संकल्पसे ही (मातरः) मातायें (समुत्तिष्ठन्ति) सम्यक् प्रकारसे उठती हैं (तेन) उस (मातृलोकेन) मातृसम्बन्धसे (सम्पन्नः) युक्त होता हुआ (महीयते) महिमाका अनुभव करता है २

भावार्थ—और यदि वह माताके सम्बन्धी सुखकी इच्छा करता है तो इसके संकल्पसे ही मातायें आकर मिलजाती हैं और यह माताओंके सम्बन्धसे युक्त होता हुआ महिमाका अनुभव करता है ॥ २ ॥

अथ यदि भ्रातृलोककामो भवति संकल्पादेवास्य भ्रातरः समुत्तिष्ठन्ति तेन भ्रातृलोकेन सम्पन्नो महीते ॥ ३ ॥

अन्वय और पदार्थ—(अथ) और (यदि) जो (भ्रातृलोककामः) भ्राताओंके सम्बन्धकी इच्छा वाला (भवति) होता है [तर्हि] तो (अस्य) इसके (संकल्पात् , एव) संकल्पसे ही (भ्रातरः) भाई (समुत्तिष्ठन्ति) सम्यक् प्रकार से उठते हैं (तेन) उस (भ्रातृलोकेन) भ्रातृसम्बन्धसे (संपन्नः) युक्त हुआ (महीयते) महिमाका अनुभव करता है ॥ ३ ॥

भावार्थ—और यदि यह भाइयोंके सम्बन्धी सुखको चाहता

है तो इसके संकल्पमात्रसे ही भाई आकर उत्तम प्रकारसे मिलते हैं और यह उनका सम्बन्ध पाकर महिमाका अनुभव करता है ॥ ३ ॥

अथ यदि स्वसृलोककामो भवति संकल्पादेवास्य स्वसारः समुत्तिष्ठन्ति तेन स्वसृलोकेन सम्पन्नो महीयते ॥ ४ ॥

अन्वय और पदार्थ—(अथ) और (यदि) जो (स्वसृलोककामः) बहनोंके संबन्धकी इच्छा वाला (भवति) होता है (अस्य) इसके (संकल्पात् , एव) संकल्पसे ही (स्वसारः) बहिनें (समुत्तिष्ठन्ति) सम्यक् प्रकारसे उठती हैं (तेन) उस (स्वसृलोकेन) बहनोंके संबन्धसे (संपन्नः) युक्त हुआ (महीयते) महिमाका अनुभव करता है ॥ ४ ॥

भावार्थ—और यदि बहनोंसे मिलनेकी इच्छा करता है तो इसके संकल्पमात्रसे बहने आकर मिलजाती हैं और उनके मिलापको पाता हुआ यह महिमाका अनुभव करता है ॥४॥

अथ यदि सखिलोककामो भवति संकल्पादेवास्य सखायः समुत्तिष्ठन्ति तेन सखिलोकेन सम्पन्नो महीयते ॥ ५ ॥

अन्वय और पदार्थ—(अथ) और (यदि) जो (सखिलोककामः) मित्रोंके सम्बन्धकी इच्छा वाला (भवति) होता है (अस्य) इसके (संकल्पात् , एव) संकल्पसे ही (सखायः) मित्र (समुत्तिष्ठन्ति) सम्यक् प्रकारसे उठते हैं (तेन) उस

(सखिलोकेन) मित्रोंके सम्बन्धसे (सम्पन्नः) युक्त होता हुआ (महीयते) महिमाका अनुभव करता है ॥ ५ ॥

भावार्थ—यदि मित्रोंसे मिलनेकी इच्छा करता है तो इसके संकल्पसे ही मित्र आकर मिलजाते हैं और उन मित्रों से मिलता हुआ यह ऐश्वर्यका अनुभव करता है ॥ ५ ॥

अथ यदि गंधमाल्यलोककामो भवति संकल्पादेवास्य गंधमाल्ये समुत्तिष्ठतस्तेन गंधमाल्यलोकेन सम्पन्नो महीयते ॥ ६ ॥

अन्वय और पदार्थ—(अथ) और (यदि) जो (गंधमाल्यलोककामः) गन्धमालाओंके भोगकी इच्छा वाला (भवति) होता है (अस्य) इसके (संकल्पात्, एव) संकल्पसे ही (गन्धमाल्ये) गन्ध और मालायें (समुत्तिष्ठतः) सम्यक् प्रकारसे उठते हैं (तेन) उस (गन्धमाल्यलोकेन) गन्ध और मालाकी प्राप्तिसे (सम्पन्नः) युक्त होता हुआ (महीयते) महिमाका अनुभव करता है ॥ ६ ॥

भावार्थ—और यदि सुगन्ध तथा पुष्पमालाओंके भोगको चाहता है तो इसके संकल्पसे ही सुगन्ध और पुष्पमालायें आकर प्राप्त होजाती हैं और यह उनका उपभोग करता हुआ ऐश्वर्यका अनुभव करता है ॥ ६ ॥

अथ यद्यन्नपानलोककामो भवति संकल्पादेवास्यान्नपाने समुत्तिष्ठतस्तेनान्नपानलोकेन सम्पन्नो महीयते ॥ ७ ॥

अन्वय और पदार्थ—(अथ) और (यदि) जो (अन्नपानलोककामः) अन्नजलको भोगनेकी कामना वाला (भवति) होता है (अस्य) इसके (संकल्पात्, एव) संकल्पसे ही (अन्नपाने) अन्न जल (समुत्तिष्ठतः) प्राप्त होजाते हैं (तेन) तिस (अन्नपानलोकेन) अन्न जलके भोगसे (सम्पन्नः) युक्त होता हुआ (महीयते) ऐश्वर्यका अनुभव करता है ७

भावार्थ—और यदि अन्न जलके भोगका इच्छुक होता है तो इसके संकल्पमात्रसे अन्न जल मिलजाते हैं और यह उन को भोगता हुआ ऐश्वर्यका अनुभव करता है ॥ ७ ॥

अथ यदि गीतवादित्रादिकामो भवति संकल्पादेवास्य गीतवादित्रे समुत्तिष्ठतस्तेन गीतवादित्रलोकेन सम्पन्नो महीयते ॥ ८ ॥

अन्वय और पदार्थ—(अथ) और (यदि) जो (गीतवादित्रकामः) गाने बजानेके उपभोगका इच्छुक (भवति) होता है (अस्य) इसके (संकल्पात्, एव) संकल्पसे ही (गीतवादित्रे) गाने बजाने (समुत्तिष्ठतः) प्राप्त होजाते हैं (तेन) उस (गीतवादित्रलोकेन) गाने बजानेके सम्बन्धसे (सम्पन्नः) युक्त होता हुआ (महीयते) ऐश्वर्यका अनुभव करता है ॥ ८ ॥

भावार्थ—और यदि गाने बजाने आदिका उपभोग करना चाहता है तो इसके सङ्कल्पमात्रसे गाना बाजे आदि मिलजाते हैं और यह गाता बजाता हुआ ऐश्वर्यका अनुभव करता है ८

अथ यदि स्त्रीलोककामो भवति सङ्कल्पादेवास्य स्त्रियः समुत्तिष्ठन्ति तेन स्त्रीलोकेन सम्पन्नो महीयते ॥ ६ ॥

अन्वय और पदार्थ—(अथ) और (यदि) जो (स्त्रीलोक-कामः) स्त्रीके उपभोगका इच्छुक (भवति) होता है (अस्य) इसके (संकल्पात्, एव) संकल्पसे ही (स्त्रियः) स्त्रियें (समुत्तिष्ठन्ति) प्राप्त होजाती हैं (तेन) तिस (स्त्रीलोकेन) स्त्रियोंके उपभोगसे (सम्पन्नः) युक्त होता हुआ (महीयते) ऐश्वर्यका अनुभव करता है ॥ ९ ॥

भावार्थ—और यदि स्त्रियोंके उपभोगका अभिलाषी होता है तो इसके सङ्कल्पमात्रसे स्त्रियें आजाती हैं और यह उनका उपभोग करता हुआ ऐश्वर्यका अनुभव करता है ॥ ९ ॥

यं यमन्तमभिकामो भवति यं कामं कामयते सोऽस्य सङ्कल्पादेव समुत्तिष्ठति तेन सम्पन्नो महीयते ॥ १० ॥

अन्वय और पदार्थ—(यम्, यम्) जिस जिस (अन्तम्, अभिकामः) प्रदेशकी इच्छावाला (भवति) होता है (यम्) जिस (कामम्) भोगको (कामयते) चाहता है (सः) वह (अस्य) इसके (सङ्कल्पात्, एव) संकल्पसे ही (समुत्तिष्ठति) प्राप्त होजाता है (तेन) उससे (सम्पन्नः) युक्तहुआ (मही-यते) महिमाका अनुभव करता है ॥ १० ॥

भावार्थ—जिस २ प्रदेशको चाहता है और पीछे कहे भोगों

के सिवाय और भी जिस भोगको चाहता है वह इसके संकल्प से ही प्राप्त होजाती है और उस यथेष्ट पदार्थको पाता हुआ ऐश्वर्यका अनुभव करता है ॥ १० ॥

॥ अष्टमाध्यायस्य द्वितीयः खण्डः समाप्तः ॥

त इमे सत्याः कामा अनृतापि धानास्तेषाꣳ सत्यानाꣳ सतामनृतमपिधानं यो यो ह्यस्येतः प्रैति न तमिह दर्शनाय लभते ॥ १ ॥

अन्वय और पदार्थ-(ते) वे (इमे) ये (सत्याः) सत्य (कामाः) भोग (अनृतापिधानाः) मिथ्यासे ढके हुए हैं (तेषाम्) उन (सत्यानाम्, सताम्) सत्य होते हुओंका (अनृतापिधानम्) मिथ्याका आच्छादन है (हि) क्योंकि (यः,यः) जो जो (इह) यहाँ (इतः) यहाँसे (प्रैति) चला जाता है (तम्) उसको (दर्शनाय) देखनेके लिये (न) नहीं (लभते) पाता है ॥ १ ॥

भावार्थ—अपने आत्मामें स्थित तथा प्राप्त होसकने वाले ये सत्य भोग, मिथ्या बाहरी विषयोंकी तृष्णासे ढके हुए हैं, वे सत्य भोग आत्मामें विद्यमान हैं तथापि उनके ऊपर मिथ्या का परदा पड़ा हुआ है, 'इस कारण इस प्राणीका जो जो प्रियपुरुष मरकर यहाँसे चलाजाता है, उसको फिर यहाँ देखने की इच्छा होने पर भी नहीं देख पाता है ॥ १ ॥

अथ ये चास्येह जीवा ये च प्रेता यच्चान्य-दिच्छन्न लभते सर्वं तदत्र गत्वा विन्दतेऽत्र ह्य-स्यैते सत्याः कामा अनृतापिधानास्तद्यथाऽपि

हिरण्यनिधिं निहितमक्षेत्रज्ञा उपर्युपरि सञ्चरन्तो न विन्देयुरेवमेवेमाः सर्वाः प्रजा अहरहर्गच्छन्त्य एतं ब्रह्मलोकं न विन्दत्यनृतेन हि प्रत्यूढाः ।२।

अन्वय और पदार्थ—(अथ) और (ये च) जो (अस्य) इसके (इह) यहाँ (जीवाः) जीवित हैं (च) और (ये) जो (प्रेताः) मरकर चले गये (च) और (यत्) जो (अन्यत्, च) और कुछ भी है (इच्छन्) चाहता हुआ (न) नहीं (लभते) पाता है (तत्) उस (सर्वम् सबको (अत्र) यहाँ (गत्वा) जाकर (विन्दते) पाता है (हि) क्योंकि (अत्र) यहाँ (अस्य) इसके (एते) ये (सत्याः) सत्य (कामाः) भोग (अनृतापिधानाः) मिथ्यासे ढके हुए हैं (तत्) सो (यथा) जैसे (अक्षेत्रज्ञाः) निधिके स्थानको न जाननेवाले (निहितम्) स्थित किये हुए भी (हिरण्य-निधिम्) सुवर्णके भण्डारको (उपर्युपरि) उसके ऊपर ही ऊपर (सञ्चरन्तः) विचरते हुए (न) नहीं (विन्देयुः) पासकते हैं (एवमेव) इस प्रकार ही (इमाः) ये (सर्वाः) सब (प्रजाः) प्रजायें (अहरहः) प्रतिदिन (गच्छन्त्यः) जाती हुईं (एतम्) इस (ब्रह्मलोकम्) ब्रह्मलोकको (न) नहीं (विन्दति) जानती हैं (हि) क्योंकि (अनृतेन) मिथ्यासे (प्रत्यूढाः) ढकी हैं ॥ २ ॥

भावार्थ—इस प्राणीके जो पुत्रादि यहाँ जीवित हैं तथा जो मर चुके हैं और जिस अन्न वस्त्र आदिको चाहता हुआ भी नहीं पाता है, उस सबको हृदयाकाशमेंके ब्रह्ममें उपासक

से पहुँच कर पाजाता है, क्योंकि—इस हृदयाकाशमें इसके ये सत्य भाग मिथ्यासे ढके हुए विद्यमान हैं। तहाँ स्वाधीनकी अप्राप्तिमें दृष्टान्त कहते हैं, कि—जिस प्रकार गाड़े हुए सुवर्ण के भण्डारको, जो निधिशास्त्रके द्वारा निधिके स्थानको नहीं पहचानते हैं वे उस धनभण्डारके ऊपर ही विचरते हुए भी उस धनभण्डारको नहीं पाते हैं, इस प्रकार ही, अविद्यावाली ये सब प्रजायें इस हृदयाकाश नामक ब्रह्मलोकमें नित्यप्रति सुषुप्तिकालमें पहुँचती हुई भी ब्रह्मको नहीं पाती हैं, क्योंकि-वे पीछे कहे हुए मिथ्याके द्वारा स्वरूपसे बाहर खिची हुई हैं

स वा एष आत्मा हृदि तस्यैतदेव निरुक्तꣳ हृदयमिति तस्मात् हृदयमहरहर्वा एवम्वित् सर्वं लोकमेति ॥ ३ ॥

अन्वय और पदार्थ—(सः) वह (वै) प्रसिद्ध (एषः) यह (आत्मा) आत्मा (हृदि) हृदयमें [आकाशशब्देन, उक्तः] आकाश शब्दसे कहागया है (अयम्) यह आत्मा (हृदि) हृदयमें है (इति) इस प्रकार (तस्य) उसका (एतत्, एव) यह ही (निरुक्तम्) निर्वचन है (तस्मात्) तिससे (अयम्) यह (हृद्) हृदयरूप है (एवम्वित्) ऐसा जाननेवाला (वै) निश्चय (अहरहः) प्रतिदिन (स्वर्गम्, लोकम्) सदा सुखरूप ब्रह्मको (एति) पाता है ॥ ३ ॥

भावार्थ—यह प्रसिद्ध आत्मा हृदयमें आकाश शब्दसे अर्थात् हृदयाकाश नामसे कहा जाता है। अपने हृदयमें यह आत्मा है, अतः इस हृदयका यही निर्वचन है, इस लिये अपना आत्मा

हृदयमें है ऐसा जानो, ऐसा जानने वाला निःसन्देह प्रतिदिन हृदयमें रहने वाले सदा सुखरूप ब्रह्मको पाता है ॥ ३ ॥

अथ य एष सम्प्रसादोऽस्माच्छरीरात्समुत्थाय परं ज्योतिरुपसम्पद्य स्वेन रूपेणाभिनिष्पद्यत एष आत्मेति होवाचैतदमृतमभयमेतद् ब्रह्मेति तस्य ह वा एतस्य ब्रह्मणो नाम सत्यमिति ॥ ४ ॥

अन्वय और पदार्थ—(अथ) और (यः) जो (एषः) यह (सम्प्रसादः) सम्प्रसाद है (अस्मात्) इस (शरीरात्) शरीर से (समुत्थाय) उठ कर (परम्) उत्तम (ज्योतिः) निर्मल रूपको (उपसम्पद्य) पाकर (स्वेन) अपने (रूपेण) रूप करके (अभिनिष्पद्यते) उत्तम प्रकारसे स्थित होता है (अयम्) यह (आत्मा) आत्मा है (इति, उवाच, ह) ऐसा कहा (अयम्) यह (अमृतम्) अविनाशी है (अभयम्) निर्भय है (एतत्) यह (ब्रह्म) ब्रह्म है (इति) इस प्रकार (तस्य) तिस (वै) प्रसिद्ध (एतस्य) इस (ब्रह्मणः) ब्रह्मका (सत्यम्, इति नाम) सत्य यह नाम है ॥ ४ ॥

भावार्थ—जाग्रत् और स्वप्नमें विषय और इन्द्रियोंके संयोग से उत्पन्न हुई मलिनताको जीव सुषुप्तिमें त्याग देता है, इस कारण सुषुप्तिको प्राप्त हुआ जीव सम्प्रसाद अर्थात् सम्यक् प्रकारसे निर्मल हुआ कहलाता है, यह सम्प्रसाद विद्वान् इस शरीरमें आत्मभावको त्याग उत्तम निर्मल ज्योतिःस्वरूपको पाकर अपने स्वरूपसे बड़ी उत्तमताके साथ स्थित होता है,

यह आत्मा है, इस प्रकार आचार्यने कहा, यह अविनाशी तथा निर्भय है, यह ब्रह्म है इसमें प्रसिद्ध ब्रह्मका ही नाम सत्य है ४

तानि ह वा एतानि त्रीण्यक्षराणि सतीयमिति तद्यत्सत्तदमृतमथ यत् ति तन्मर्त्यमथ यत् यं तेनोभे यच्छति यदनेनोभे यच्छति तस्माद्यमहरहर्वा एवम्वित्स्वर्गं लोकमेति ॥ ५ ॥

अन्वय और पदार्थ-(सतीयम्, इति) सतीय ऐसे (तानि) वे (एतानि) ये (वै) प्रसिद्ध (त्रीणि) तीन (अक्षराणि) अक्षर हैं (तत्) उसमें (यत्) जो (सत्) स है (तत्) वह (अमृतम्) अविनाशी है (यत् ति) जो ति अक्षर है (तत्) वह (मर्त्यम्) विनाशी है (अथ) और (यत्) जो (यम्) य है (तेन) उसके द्वारा (उभे) दोनोंको (यच्छति) वशमें करता है (यत्) जो (अनेन) इसके द्वारा (उभे) दोनोंको (यच्छति) वशमें करता है (तस्मात्) तिससे (यम्) यं है (एवम्वित्) ऐसा जानने वाला (वै) निश्चय (अहरहः) नित्यप्रति (स्वर्गम्, लोकम्) सदा सुखरूप ब्रह्मको (एति) प्राप्त होता है ॥ ५ ॥

भावार्थ-ब्रह्मके नामके (सत्यके स्थानमें) सतीयं ये तीन अक्षर हैं, इनमें जो सत् (स) है वह अविनाशी है तथा जो ति (त्) है वह विनाशी है और जो यम् (य) है उससे उन दोनों अक्षरोंको प्रयोग करने वाला वशमें कर लेता है, क्योंकि-इस यं से दोनोंको वशमें करता है, इस कारण य-यम् है, ऐसा जानने वाला नित्यप्रति निश्चय हृदयमें रहने वाले

ब्रह्मको पाजाता है (यहाँ सतीयं ति के स्थानमें दीर्घ ती उच्चारण सुभीतेके लिये है और सतीयं सत्यके स्थानमें है) ।५।

॥ अष्टमाध्यायस्य तृतीयः खण्डः समाप्तः ॥

अथ य आत्मा स सेतुर्विधृतिरेषां लोकानामसंभेदाय नैतꣳ सेतुमहोरात्रे तरतो न जरा न मृत्युर्न शोको न सुकृतं न दुष्कृतꣳ सर्वे पाप्मानोऽतो निवर्त्तन्तेऽपहतपाप्मा ह्येष ब्रह्मलोकः १

अन्वय और पदार्थ—(अथ) अब (यः) जो (आत्मा) आत्मा है (सः) वह (एषाम्) इन (लोकानाम्) लोकोंके (असंभेदाय) विनाश न होनेके लिये (एषाम्) इनका (विधृतिः) विशेषरूपसे धारक है (सेतुः) सेतुरूप है (एतम्) इस (सेतुम्) सेतुको (अहोरात्रे , दिन रात (न) नहीं (तरतः) लाँघ सकते (जरा) बुढ़ापा (न) नहीं (मृत्युः) मृत्यु (न) नहीं (शोकः) शोक (न) नहीं (सुकृतम्) पुण्य (न) नहीं (दुष्कृतम्) पाप (न) नहीं (सर्वे) सब (पाप्मानः) पाप (अतः) इससे (निवर्त्तन्ते) पीछेको लौट जाते हैं (हि) क्योंकि (एषः) यह (अपहतपाप्मा) पापरहित (ब्रह्मलोकः) ब्रह्मरूप है ॥ १ ॥

भावार्थ—ब्रह्मचर्यरूप साधनके विधानके लिये अब आत्मा की दूसरे प्रकारसे स्तुति करते हैं, कि-यह जो आत्मा है यह, पृथिवी आदि लोकोंका विनाश न हो, इस लिये इनको धारण करने वाला है इस लिये यह वर्णाश्रमादिकी मर्यादाका सेतुरूप है, इस सेतुरूप आत्माको दिन रात परिच्छिन्न नहीं बना

सकते वृद्धावस्था इसके पास नहीं आसकती, मृत्यु इसके पास नहीं पहुँच सकता, इसको मानसिक सन्ताप नहीं होता है, इसको पुण्य और पाप स्पर्श नहीं कर सकते हैं, इस आत्मा के समीपसे सकल पाप स्पर्श किये बिना ही पीछेको लौट जाते हैं, क्योंकि यह आत्मा पापरहित और ब्रह्मरूप है ॥ १ ॥

तस्माद्वा एतꣳ सेतुं तीर्त्वाऽन्धः सन्ननन्धो भवति विद्धः सन्नविद्धो भवत्युपतापी सन्ननुपतापी भवति तस्माद्वा एतꣳ सेतुं तीर्त्वापि नक्तमहरेवाभिनिष्पद्यते सकृद्विभातो ह्येवैष ब्रह्मलोकः

अन्वय और पदार्थ-(तस्मात्) तिससे (वै) निश्चय (एतम्) इस (सेतुम्) सेतुको (तीर्त्वा) तर कर (अन्धः सन्) अन्धा होता हुआ (अनन्धः) अन्धता रहित (भवति) होता है (विद्धः सन्) दुःखादिसे विंधा हुआ होकर (अविद्धः) दुःखादिके संबन्धसे रहित (भवति) होता है (उपतापी सन्) उपताप वाला होकर (अनुपतापी) उपताप रहित (भवति) होता है (तस्मात्) तिससे (वै) निश्चय (एतम्) इस (सेतुम्) सेतुको पाकर (नक्तम्, अपि) रात्रि भी (अहः एव) दिन ही (अभिनिष्पद्यते) सिद्ध होती है (हि) क्योंकि (एषः) यह (ब्रह्मलोकः) ब्रह्मरूप आत्मा (सकृत्, विभातः, एव) सदा प्रकाशरूप ही है ॥ २ ॥

भावार्थ—पापके फलरूप कार्य जो अन्धपना आदि हैं, वे शरीरधारीको ही प्राप्त होते हैं, शरीररहितको नहीं प्राप्त होते

हैं इस कारण ही इस आत्मरूप सेतुको पाकर, पहले देहधारी-पनेमें अन्ध होने पर भी अन्धपनेसे रहित होजाता है, पहिले दुःखादिके संबन्ध वाला होकर भी दुःखादिके संबन्धसे रहित होजाता है, पहले रोगादिके कारण सन्तापयुक्त होकर भी सन्तापरहित होजाता है, आत्मामें दिन रात नहीं हैं, इसकारण इस आत्मरूप सेतुको पाकर विद्वान्को अन्धकाररूप रात्रि भी दिनरूप ही सिद्ध होजाती है, क्योंकि यह ब्रह्मरूप आत्मा सर्वदा प्रकाशस्वरूप ही है ॥ २ ॥

तद्य एवैतं ब्रह्मलोकं ब्रह्मचर्येणानुविन्दति तेषा-मेवैष ब्रह्मलोकस्तेषाँ सर्वेषु लोकेषु कामचारो भवति ॥ ३ ॥

अन्वय और पदार्थ—(तत्) तिनमें (ये) जो (एव) प्रसिद्ध (एतम्) इस (ब्रह्मलोकम्) ब्रह्मलोकको (ब्रह्म-चर्येण) ब्रह्मचर्यके द्वारा (अनुविन्दन्ति) जानते हैं (तेषाम् एव) उनका ही (एषः) यह (ब्रह्मलोकः) ब्रह्मलोक है (तेषाम्) उनकी (सर्वेषु) सब (लोकेषु) भोगोंमें (कामचारः) इच्छानुसार प्रवृत्ति (भवति) होती है ॥ ३ ॥

भावार्थ—जो इस प्रसिद्ध ब्रह्मरूप लोकको स्त्री और अन्य बाहरी विषयोंकी तृष्णाके त्यागरूप ब्रह्मचर्यके द्वारा शास्त्र और आचार्यके उपदेशके अनुसार जानते हैं, उन ब्रह्मचर्यरूप साधन वाले ब्रह्मवेत्ताओंका ही यह ब्रह्मरूप लोक है, स्त्री आदि विषयोंमें तृष्णा वाले कथनमात्रके ब्रह्मवेत्ताओंका नहीं है, उनकी सब भोगोंमें इच्छानुसार प्रवृत्ति होती है ॥ ३ ॥

॥ अष्टमाध्यायस्य चतुर्थः खण्डः समाप्तः ॥

अथ यद्यज्ञ इत्याचक्षते ब्रह्मचर्यमेव तद् ब्रह्मचर्येण ह्येव यो ज्ञाता तं विन्दतेऽथ यदिष्टमित्याचक्षते ब्रह्मचर्यमेव तद् ब्रह्मचर्येण ह्येवेष्ट्वाऽऽत्मानमनुविन्दते ॥ १ ॥

अन्वय और पदार्थ-(अथ) और (यत्) जिसको (यज्ञ इति) यज्ञ इस नामसे (आचक्षते) कहते हैं (तत्) वह (ब्रह्मचर्यम्, एव) ब्रह्मचर्य ही है (हि) क्योंकि-(ब्रह्मचर्येण,एव) ब्रह्मचर्यके द्वारा ही (यः) जो (ज्ञाता) जानने वाला है वह (तम्) उसको (विन्दते) पाता है (यत्) जिसको (इष्टम् इति) इष्ट इस नामसे (आचक्षते) कहते हैं (तत्) वह (ब्रह्मचर्यम्, एव) ब्रह्मचर्य ही है (हि) क्योंकि--(ब्रह्मचर्येण, एव) ब्रह्मचर्यके द्वारा ही (इष्ट्वा) इच्छा करके (आत्मानम्) आत्माको (अनुविन्दते) पाता है ॥ १ ॥

भावार्थ—शिष्ट पुरुष जिसको यज्ञ नामसे कहते हैं वह ब्रह्मचर्य ही है, क्योंकि जो आत्माका ज्ञाता है वह ब्रह्मचर्यके द्वारा ही ब्रह्मलोकको पाता है और जिसको इष्ट कहते हैं वह भी ब्रह्मचर्य ही है, क्योंकि--ब्रह्मचर्यसे ही आत्माकी इच्छा करके आत्माको पाता है ॥ १ ॥

अथ यत्सत्त्रायणमित्याचक्षते ब्रह्मचर्यमेव तद् ब्रह्मचर्येण ह्येव सत आत्मनस्त्राणं विंदतेऽथ यन्मौनमित्याचक्षते ब्रह्मचर्यमेव तद्ब्रह्मचर्येण ह्येवाऽऽत्मानमनुविद्य मनुते ॥ २ ॥

अन्वय और पदार्थ-(अथ) और (यत्) जिसको (सत्त्रायणम्, इति) सत्त्रायण इस नामका यज्ञ (आचक्षते) कहते हैं (तत्) वह (ब्रह्मचर्यम्, एव) ब्रह्मचर्य ही है (हि) क्योंकि-(सतः) सत्से (आत्मनः, त्राणम्) अपनी रक्षाको (ब्रह्मचर्येण, एव) ब्रह्मचर्यके द्वारा ही (विन्दते) पाता है (अथ) और (यत्) जिसको (मौनम्, इति) मौन इस नामसे (आचक्षते) कहते हैं (तत्) वह (ब्रह्मचर्यम्, एव) ब्रह्मचर्य ही है (हि) क्योंकि-(ब्रह्मचर्येण, एव) ब्रह्मचर्य के द्वारा ही (आत्मानम्) आत्माको (अनुविद्य) जानकर (मनुते) मनन करता है ॥ २ ॥

भावार्थ—जिसको सत्त्रायण नामक बहुतसे यजमानोंके द्वारा होने वाला वैदिक कर्म कहते हैं वह ब्रह्मचर्य ही है, क्योंकि-सत् परमात्मासे अपनी रक्षाको ब्रह्मचर्यके द्वारा ही पाता है और जिसको मौन कहते हैं वह भी ब्रह्मचर्य ही है, क्योंकि-ब्रह्मचर्यको धारण करने वाला पुरुष ही आत्माको शास्त्र और आचार्यकी सहायतासे जान कर उसका मनन करता है ।२।

अथ यदनाशकायनमित्याचक्षते ब्रह्मचर्यमेव तदेष आत्मा न नश्यति यं ब्रह्मचर्येणानुविंदतेऽथ यदरण्यायनमित्याचक्षते ब्रह्मचर्यमेव तत्तदरश्च ह वै ण्यश्चार्णवौ ब्रह्मलोके तृतीयस्यामितो दिवि तदैरं मदीयꣳ सरस्तदश्वत्थः सोमसवनस्तदपराजिता पूर्ब्रह्मणः प्रभुविमितꣳहिरण्मयम् ॥३॥

अन्वय और पदार्थ—(अथ) और (यत्) जिसको (अनाशकायनम्, इति) अनाशकायन इस नामसे (आचक्षते) कहते हैं (तत्) वह (ब्रह्मचर्यम् , एव) ब्रह्मचर्य ही है (यम्) जिसको (ब्रह्मचर्येण) ब्रह्मचर्यके द्वारा (अनुविन्दते) पाता है (एषः) यह (आत्मा) आत्मा (न) नहीं (नश्यति) नष्ट होता है (अथ) और (यत्) जिसको (अरण्यायनम्, इति) आरण्यायन इस नामसे (आचक्षते) कहते हैं (तत्) वह (ब्रह्मचर्यम् , एव) ब्रह्मचर्य ही है (वै, ह) क्योंकि (इतः) यहाँसे (तृतीयस्याम् , दिवि) तीसरे स्वर्गरूप (ब्रह्मलोके) ब्रह्मलोकमें (तत्) वह (अरः) अर (च) और (ण्यश्च) ण्य भी (अर्णवौ) समुद्र हैं (तत्) तहाँ (ऐरम्) अन्नरससे भरा (मदीयम्) हर्षदायक (सरः) सरोवर है (तत्) तहाँ (सोमसवनः) अमृत टपकानेवाला (अश्वत्थः) पीपलका वृक्ष है (तत्) तहाँ (अपराजिता) अपराजिता नाम को (ब्रह्मणः) ब्रह्माकी (पूः) पुरी है (प्रभुविमितम्) स्वामी का रचा हुआ (हिरण्मयम्) सुवर्णका मण्डप है ॥ ३ ॥

भावार्थ—जिसको अनाशकायन कहिये अनशन कहते हैं वह ब्रह्मचर्य ही है, क्योंकि—जिस आत्माको ब्रह्मचर्यसे जानता है उस आत्माका नाश नहीं होता है और जिसको अरण्यायन कहिये अरण्यमें गमन कहते हैं वह भी ब्रह्मचर्य ही है, क्योंकि—यहाँसे तीसरे स्वर्गरूप ब्रह्मलोकमें प्रसिद्ध अर और ण्य नामके समुद्रकी समान दो सरोवर हैं तहाँ अन्नके रससे भरा और अपनेको व्यवहारमें लानेवालेको हर्ष उपजानेवाला

सरोवर है और उस ब्रह्मलोकमें जिसमेंसे अमृत टपका करता है ऐसा पीपलका वृक्ष है और तहाँ जिसको ब्रह्मचर्यहीन पुरुष जीत नहीं सकता ऐसी अपराजिता नामवाली ब्रह्माकी नगरी है तथा ब्रह्मरूप स्वामीका रचा हुआ सोनेका मण्डप है ॥३॥

तद्य एवैतावरं च ण्यं चार्णवौ ब्रह्मलोके ब्रह्मचर्येणानुविन्दन्ति तेषामेवैष ब्रह्मलोकस्तेषाᳫं सर्वेषु लोकेषु कामचारो भवति ॥ ४ ॥

अन्वय और पदार्थ—(तत्) तहाँ (ब्रह्मलोके) ब्रह्मलोकमें (ये) जो (एतौ) इन (एव) प्रसिद्ध (अरम्) अर (च) और (ण्यम्, च) ण्य भी (अर्णवौ) समुद्र समान सरोवरोंको (ब्रह्मचर्येण) ब्रह्मचर्य द्वारा (अनुविन्दति) पाते हैं (तेषाम्, एव) उनका ही (एषः) यह (ब्रह्मलोकः) ब्रह्मलोक है (तेषाम्) उनकी (सर्वेषु, लोकेषु) सब लोकों में (कामचारः) यथेच्छ प्रवृत्ति (भवति) होती हैं ॥ ४ ॥

भावार्थ—उस ब्रह्मलोकमें जो प्रसिद्ध अर और ण्य नाम के समुद्र समान दो सरोवर हैं उनको जो ब्रह्मचर्यके द्वारा पाते हैं उनका ही यह ब्रह्मलोक है, वे ब्रह्मचर्यरूप साधनवाले ब्रह्मज्ञानी ही सकल भोगोंको इच्छानुसार भोगते हैं और जिन की बुद्धि स्त्री आदि बाहरी भोगोंमें आसक्त रहती है वे न ब्रह्मलोकमें ही पहुँच सकते हैं और न उनको यथेच्छ भोग ही मिल सकते हैं, क्योंकि-शुद्धसत्त्वमय-सङ्कल्पजन्य ब्रह्मलोकके विषय तथा तैसे ही संकल्पजन्य पिता आदि भोग मानसज्ञानरूप हैं ४

॥ इति अष्टमाध्यायस्य पञ्चमः खण्डः समाप्तः ॥

अथ या एता हृदयस्य नाड्यस्ताः पिंगलस्याणिम्नस्तिष्ठन्ति शुक्लस्य नीलस्य पीतस्य लोहितस्येत्यसौ वा आदित्यः पिंगल एष शुक्ल एष नील एष पीत एष लोहितः ॥ १ ॥

अन्वय और पदार्थ—(अथ) अब (याः) जो (एताः) ये (हृदयस्य) हृदयकी (नाड्यः) नाड़ियें हैं (ताः) वे (पिङ्गलस्य) सुनहरे (शुक्लस्य) स्वेत (नीलस्य) नीले (पीतस्य) पीले (लोहितस्य) लाल (अणिम्नः) सूक्ष्मरस की (तिष्ठन्ति) स्थित रहती हैं (इति) इस कारण (असौ) यह (वै) प्रसिद्ध (आदित्यः) आदित्य (पिङ्गलः) सुनहरा (एषः) यह (शुक्लः) स्वेत (एषः) यह (नीलः) नील वर्णका (एषः) यह (पीतः) पीला (एषः) यह (लोहितः) लाल [अस्ति] है ॥ १ ॥

भावार्थ—जो पुरुष ब्रह्मचर्यादि साधनसे सम्पन्न होकर हृदयमें वर्त्तमान ब्रह्मकी उपासना करता है उसकी गति सुषुम्ना नाड़ीसे कहनी चाहिये, इस कारण अब नाड़ीखण्डका आरंभ करते हुए कहते हैं, कि—ये जो हृदयकमलसे सम्बन्ध रखने वाली नाड़ियें हैं ये सुनहरी,स्वेत नीले पीले और लाल सूक्ष्मरस के सारसे भरी हुई तैसे ही रङ्गकी हैं, नाड़ियोंमें ये रङ्ग आदित्य के तेजके हैं, क्योंकि—आदित्य ही सुनहरी, स्वेत, नीला, पीला और लाल है, प्रकाशका पृथक्करण करने पर जो सात रङ्ग प्रतीत होते हैं वे सूर्यमें हैं और उससे ही मज्जातन्तुओंमें हैं १

तद्यथा महापथ आतत उभौ ग्रामौ गच्छतीमं

चामुं चैवमेवैता आदित्यस्य रश्मय उभौ लोकौ गच्छन्तीमं चामुं चामुष्मदादित्यात्प्रतायन्ते ता आसु नाड़ीसु सृप्ता आभ्यो नाड़ीभ्यः प्रतायन्ते तेऽमुष्मिन्नादित्ये सृप्ताः ॥ २ ॥

अन्वय और पदार्थ—(तत्) उसमें (यथा) जैसे (महापथः) बड़ा मार्ग (आततः) विस्तार पाता हुआ (उभौ,ग्रामौ) दोनों ग्रामोंको (गच्छति) जाता है (इमम्) इसको (च) और (अमुम्, च) उसको भी (एवमेव) इसी प्रकार (एताः) ये (आदित्यस्य) सूर्यकी (रश्मयः) किरणें (उभौ, लोकौ) दोनों लोकोंके प्रति (गच्छन्ति) जाती हैं (इमम्) इस लोक को (च) और (अमुम्, च) उस लोकको भी (अमुष्मात्) इस (आदित्यात्) आदित्यसे (प्रतायन्ते) प्रवृत्त होती हैं (ताः) वे (आसु) इन (नाड़ीषु) नाड़ियोंमें (प्रतायन्ते) प्रवृत्त होती हैं (ते) वे (अमुष्मिन्, आदित्ये) इस आदित्य में (सृप्ताः) प्रविष्ट होरही हैं ॥ २ ॥

भावार्थ—आदित्यका जो शरीरमें की नाड़ियोंके साथ सम्बन्ध है, इस बातको दृष्टान्तके द्वारा समझाते हैं, कि-जैसे कोई बड़ीभारी सड़क दूरतक चली जाकर समीपके और दूरके दोनों ही ग्रामोंमेंको जाती है, इसी प्रकार आदित्यकी किरणें भी दोनों लोकोंमेंको जाती हैं, इस सूर्य मण्डलमेंको भी और पुरुषोंमेंको भी, इस आदित्यमंडलमेंसे जो किरणें फैलती हैं वे इन नाड़ियोंमेंको घुसी हुई हैं और इन नाड़ियोंसे प्रवाहरूपसे जो किरणें चलती हैं वे इस आदित्यमंडलमेंको गयी हुई हैं २

तद्यत्रैतत्सुप्तः समस्तः सम्प्रसन्नः स्वप्नं न विजानात्यासु तदा नाडीषु सृप्तो भवति तं कश्चन पाप्मा स्पृशति तेजसा हि तदा संपन्नो भवति

अन्वय और पदार्थ–(तत्) उसमें (एतत्) यह (समस्तः) सम्पूर्ण (सुप्तः) सोया हुआ (संप्रसन्नः) सम्यक् प्रकारसे प्रसन्न (भवति) होता है (स्वप्नम्) स्वप्नको (न) नहीं (विजानाति) अनुभव करता है (तदा) उस समय (आसु, नाडीषु) इन नाड़ियोंमें (सृप्तः) प्रवेश किया हुआ (भवति) होता है (तम्) उसको (कश्चन) कोई (पाप्मा) पाप (न) नहीं (स्पृशति) स्पर्श करता है (हि) क्योंकि (तदा) उस समय (तेजसा, सम्पन्नः) तेजसे युक्त (भवति) होता है ३

भावार्थ—जिस समय यह जीव सकल किरणोंका विलय होजानेके कारण सोया हुआ होता है, बाहरी विषयोंके संबंध से उत्पन्न होने वाली मलिनता न होनेके कारण उत्तम रीति से प्रसन्न होता है और स्वप्नका अनुभव नहीं करता है उस समय इस सूर्यके तेजसे पूर्ण नाड़ियोंके द्वारा हृदयाकाशमें प्रवेश पाजाता है, उसको धर्म अधर्मरूप कोई पाप स्पर्श नहीं करता है, क्योंकि–उस समय यह सोया हुआ पुरुष नाड़ियोंमें भरे हुए सूर्यके तेजसे युक्त होता है इस कारण पापका उत्पन्न करने वाला जो उसकी इन्द्रियोंका विषयोंसे संबंध है वह नहीं होता है।

अथ यत्रैतदबलिमानं नीतो भवति तमभित आसीना आहुर्जानासि मां जानासि मामिति स तावदस्माच्छरीरादनुत्क्रांतो भवति तावज्जानाति

अन्वय और पदार्थ–(अथ) और (यत्र) जब (एतत्) यह (अबलिमानम्, नीतः) निर्बलताको प्राप्त हुआ (भवति) होता है (तम्) उसको (अभितः) चारों ओरसे (आसीनाः) बैठे हुए (माम्, जानासि) मुझको जानता है (माम् ,जानासि) मुझको जानता है (इति) ऐसा (आहुः) कहते हैं (सः) वह (यावत्) जब तक (अस्मात् , शरीरात्) इस शरीरसे (अनुत्क्रान्तः) न निकला हुआ (भवति) होता है (तावत्) तब तक (जानाति) जानता है ॥ ४ ॥

भावार्थ–नाड़ियोंके द्वारा ऊर्ध्वगमन दिखानेके लिये मरण-कालका वर्णन करते हैं, कि–जिस समय यह मनुष्य रोगादि से निर्बल होकर मरनेको होता है उस समय उसको सब ओर से घेर कर बैठे हुए सम्बन्धी पुरुष उससे कहते हैं, कि—तू मुझे पहिचानता है ? वह मरने वाला जब तक इस शरीरमेंसे निकलता नहीं है तब तक सगे सम्बन्धियोंको पहिचानता है ४

अथ यत्रैतदस्माच्छरीरादुत्क्रामत्यथैतैरेव रश्मिभिरूर्ध्वमाक्रमयते स ओमिति वा होद्वा मीयते स यावत्क्षिप्येन्मनस्तावदादित्यं गच्छत्येतद्वै खलु लोकद्वारं विदुषां प्रपदनं निरोधोऽविदुषाम् ।५।

अन्वय और पदार्थ -(अथ) अनन्तर (यत्र) जब (एतत्) यह (अस्मात्, शरीरात्) इस शरीरमेंसे (उत्क्रामति) निकलता है (अथ) तब (एतैः एव) इन ही (रश्मिभिः) किरणोंके द्वारा (ऊर्ध्वम्) ऊपरको (आक्रमयते) जाता है (सः) वह (ओमिति) ओम् ऐसा ध्यान करता हुआ (उत्

पीयते) ऊपरको चला जाता है (वा) और (सः) वह (यावत्) जितने समयमें (मनः) मन (क्षिप्येत्) फेंका जाय (तावत्) उतने समयमें (आदित्यम्, गच्छति) आदित्य को प्राप्त होजाता है (खलु) निश्चय (वै) प्रसिद्ध (एतत्) यह आदित्य (लोकद्वारम्) ब्रह्मलोकका द्वार (विदुषाम्) विद्वानोंका (प्रपदनम्) पहुँचाने वाला (अविदुषाम्) उपासना न करने वालोंका (निरोधः) निरोध करने वाला [अस्ति] है ॥ ५ ॥

भावार्थ—यह प्राणी जब इस शरीरमेंसे निकलता है उस समय यह किरणोंके द्वारा ही ऊपरको जाता है, हृदयमें विद्यमान ब्रह्मकी उपासना करने वाला वह उपासक ॐ ॐ कहकर आत्माका ध्यान करता हुआ स्वस्थ अवस्था युक्तसा ऊपरको चला जाता है (और यदि उपासना नहीं की होती है तो इस से भिन्न गति होती है) वह उपासक शरीरमेंसे निकल कर जितने समयमें मनको फेंका जाय उतने ही समयमें आदित्यमण्डलमें जापहुँचता है, आदित्य ही ब्रह्मलोकका प्रसिद्ध द्वार है, उस द्वारसे उपासक ब्रह्मलोकमें जाता है अतः वह उपासकको ब्रह्मलोक प्राप्त कराने वाला है और उपासना न करने वाला अविद्वान् सूर्यके तेजसे शरीरमें ही रुक जाने पर सुषुम्ना नाड़ीसे न निकल कर दूसरी नाड़ियोंसे निकलता है, इसी कारण आदित्य उनका रोधक होता है ॥ ५ ॥

तदेष श्लोकः शतं चैका च हृदयस्य नाड्य-स्तासां मूर्धानमभिनिःसृतैका तयोर्ध्वमायन्नमृत-

त्वमेति विष्वङ्ङन्या उत्क्रमणे भवन्त्युत्क्रमणे भवन्ति ॥ ६ ॥

अन्वय और पदार्थ--(तत्) उसमें (एषः) यह (श्लोकः) मन्त्र है (शतम्) सौ (च) और (एका, च) एक भी (हृदयस्य) हृदयकी (नाड्यः) नाड़ियें हैं (तासाम्) उन में (एका) एक (मूर्धानम्, अभि) मूर्धाकी ओरको (निःसृता) निकली है (तया) उसके द्वारा (ऊर्ध्वम्, आयन्) ऊपरको गमन करता हुआ (अमृतत्वम्) अमरभावको (एति) प्राप्त होता है (विष्वक्) चारों ओरको जाने वालीं (अन्याः) और नाड़ियें (उत्क्रमणे, भवन्ति) निकलनेके लिये होती हैं (उत्क्रमणे, भवन्ति) निकलनेके लिये होती हैं ॥ ६ ॥

भावार्थ–इस विषयमें मन्त्र भी है--हृदयकी मुख्य नाड़ियें एकसौ एक हैं, उनमेंसे एक सुषुम्ना नामकी नाड़ी ही ऊपर मस्तककी ओरको गई है, जो उपासक इस नाड़ीके द्वारा ऊपर को जासकता है वही क्रमसे मोक्षरूप अमरपनेको पाता है, चारों ओरको फैली हुई और जो एकसौ नाड़ियें हैं वे तो जीवके देहमेंसे निकलनेका मार्गमात्र हैं । मन्त्रमें पिछले दो पदोंको दो वार जो कहा है वह दहरविद्या कहिये हृदयगत अल्पाकाश रूप ब्रह्मकी उपासनाकी समाप्तिको जतानेके लिये है ॥ ६ ॥

॥ अष्टमाध्यायस्य षष्ठः खण्डः समाप्तः ॥

य आत्माऽपहतपाप्मा विजरो विमृत्युर्विशोको विजिघत्सोऽपिपासः सत्यकामः सत्यसङ्कल्पः सोऽन्वेष्टव्यः स विजिज्ञासितव्यः स सर्वाँश्च लोका-

नाप्नोति सर्वाँश्च कामान् यस्तमात्मानमनुविद्य विजानातीति ह प्रजापतिरुवाच ॥ १ ॥

अन्वय और पदार्थ—(यः) जो (आत्मा) आत्मा (अपहतपाप्मा) पापशून्य (विजरः) वृद्धावस्था रहित (विमृत्युः) मृत्युरहित (विशोकः) शोकशून्य (विजिघत्सः) क्षुधारहित (अपिपासः) प्यासरहित (सत्यकामः) सत्य कामना वाला (सत्यसङ्कल्पः) सत्य सङ्कल्प वाला [अस्ति] है (सः) वह (अन्वेष्टव्यः) खोज करने योग्य है (विजिज्ञासितव्यः) अनुभवका विषय करने योग्य है (यः) जो (तम्) उस (आत्मानम्) आत्माको (अनुविद्य) जान कर (विजानाति) अनुभवमें लाता है (सः) वह (सर्वान्) सब (लोकान्) लोकोंको (च) और (सर्वान्) सब (कामान्, च) भोगों को भी (आप्नोति) प्राप्त होता है (इति) ऐसा (प्रजापतिः) प्रजापति [ह] स्पष्ट (उवाच) कहता हुआ ॥ १ ॥

भावार्थ--आत्माके स्वरूपका विषय निर्णय करनेके लिये अब ग्रन्थके अगले भागका आरम्भ होता है, विद्या प्राप्त करना चाहने वालेमें विनय, विद्याके माहात्म्यका ज्ञान, श्रद्धा और ब्रह्मचर्य आदि होने चाहियें, इस बातको जतानेके लिये आख्यायिकाका आरम्भ होता है-जो आत्मा धर्माधर्मरूप पापसे रहित, वृद्धावस्था आदि विकारोंसे रहित,मृत्युसे रहित,मानसिक संताप से रहित, क्षुधा तृषासे रहित, सत्यभोग और सत्य संकल्प वाला है तथा उपासनाके द्वारा जिसकी प्राप्तिके लिये हृदयकमलका वर्णन किया है, वह शास्त्र और आचार्यके उपदेश

के द्वारा जानने योग्य है तथा अपने अनुभवका विषय करने योग्य है, जो उस आत्माको शास्त्र और आचार्यके उपदेशसे जानकर अपने अनुभवमें ले आता है, प्रजापति कहते हैं, कि— वही सकल लोक और सकल भोगोंका अधिकारी होता है ।१।

तद्धोभये देवासुरा अनुबुबुधिरे ते होचुर्हन्त तमात्मानमन्विच्छामो यमात्मानमन्विष्य सर्वाॅंश्च लोकानाप्नोति सर्वाॅंश्च कामानितीन्द्रो हैव देवानभिप्रवव्राज विरोचनोऽसुराणां तौ हासम्विदानावेव समित्पाणी प्रजापतिसकाशमाजग्मतुः ॥ २ ॥

अन्वय और पदार्थ -(तत्) उसको (ह) प्रसिद्ध (उभये) दोनों (देवासुराः) देवता और असुर (अनुबुबुधिरे) परम्परासे जानते थे (ते, ह) वे (ऊचुः) कहने लगे (हन्त) अनुमति हो तो (तम्) उस (आत्मानम्) आत्माको (अन्विच्छामः) अन्वेषण करें (यम्) जिस (आत्मानम्) आत्माको (अन्विष्य) अन्वेषण करके (सर्वान्) सब (लोकान्) लोकोंको (च) और (सर्वान्) सब (कामान्, च) भोगोंको भी (आप्नोति) पाजाता है (इति) ऐसा कहकर (देवानाम्) देवताओंमेंसे (ह) प्रसिद्ध (इन्द्रः एव) इन्द्र ही (अभिप्रवव्राज) चलागया (असुराणाम्) असुरोंमेंसे (विरोचनः) विरोचन [प्रवव्राज] गया (तौ) वे दोनों (असंविदानौ, एव) परस्पर मित्रता न रखते हुए ही (समित्पाणी) हाथमें समिधा

लेकर (प्रजापतिसकाशम्) प्रजापतिके पास (आजग्मतुः) आये ॥ २ ॥

भावार्थ—प्रजापतिके इस कथनको प्रसिद्ध देवता और असुर दोनों परम्परासे जानते थे वे दोनों अपनी २ सभामें कहने लगे, कि—यदि आप सबोंकी अनुमति हो तो हम प्रजापतिके कहे हुए उस आत्माको खोजनेका यत्न करें, क्योंकि-- उस आत्माको जान कर पुरुष सब लोकोंको और सब भोगों को पाजाता है। इसके अनन्तर देवताओंमेंसे एक इन्द्र सकल ऐश्वर्यको त्याग कर प्रजापतिके पास गया, इसी प्रकार असुरों मेंसे एक विरोचन गया, ये दोनों आपसमें एक दूसरेके स्वभावसे सहमत नहीं थे तथापि इस विषयमें एकमत होने पर हाथमें समिधायें लेकर विनयके साथ प्रजापतिके पास गये २

तौ ह द्वात्रिꣳशतं वर्षाणि ब्रह्मचर्यमूषतुस्तौ ह प्रजापतिरुवाच किमिच्छन्ताववास्तमिति तौ होचतुर्य आत्मापहतपाप्मा विजरो विमृत्युर्विशोको विजिघत्सोऽपिपासः सत्यकामः सत्यसङ्कल्पः सोऽन्वेष्टव्यः स विजिज्ञासितव्यः स सर्वाꣳश्च लोकानाप्नोति सर्वाꣳश्च कामान् यस्तमात्मानमनुविद्य विजानातीति भगवतो वेदयन्ते तमिच्छन्ताववास्तमिति ॥ ३ ॥

अन्वय और पदार्थ–(तौ, ह) वे दोनों (द्वात्रिंशतम्, वर्षाणि) बत्तीस वर्ष तक (ब्रह्मचर्यम्, ऊषतुः) ब्रह्मचर्य

धारण करके रहे (प्रजापतिः) प्रजापति (तौ, ह) उन दोनों के प्रति (उवाच) बोला (किम्, इच्छन्तौ) क्या चाहते हुए (अवास्तम्) रहते हो (इति) ऐसा कहने पर (तौ, ह) वे दोनों (ऊचतुः) बोले (यः) जो (आत्मा) आत्मा (अपहतपाप्मा) पापरहित (विजरः) बुढ़ापेसे रहित (विमृत्युः) मृत्युके वशमें न रहने वाला (विशोकः) शोकशून्य (विजिघत्सः) भूखा न होनेवाला (अपिपासः) प्यासा न होने वाला (सत्यकामः) सत्यकाम (सत्यसंकल्पः) सत्यसंकल्प [अस्ति] है (सः) वह (अन्वेष्टव्यः) जानने योग्य है (विजिज्ञासितव्यः) अनुभव करने योग्य है (यः) जो (तम्) उस (आत्मानम्) आत्माको (अनुविद्य) जानकर (विजानाति) अनुभव करता है (सः) वह (सर्वान्) सब (लोकान्) लोकोंको (च) और (सर्वान्) सब (कामान्, च) भोगों को भी (आप्नोति) पाता है (इति) ऐसा (भगवतः) आप के [वचनम्] वचनको (वेदयन्ते) जताते हैं (इति) इस कारण (तम्) उसको (इच्छन्तौ) चाहते हुए (अवास्तम्) बस रहे हैं ॥ ३ ॥

भावार्थ—दोनों प्रजापतिके पास जा परस्पर की ईर्षाको छोड़कर बत्तीस वर्ष तक ब्रह्मचर्यका पालन करते हुए तहाँ रहे। प्रजापतिने उनसे कहा, कि—तुम दोनों किस फलको पानेकी इच्छासे यहाँ रहते हो ? इसके उत्तरमें उन दोनोंने कहा, कि—जो आत्मा पापरहित, जरारहित, मृत्युरहित, शोकशून्य, क्षुधारहित, तृषारहित, सत्यकाम और सत्यसंकल्प है वह जानने योग्य और अनुभव करने योग्य है, जो उस आत्मा

को जानकर उसका अनुभव करता है वह सकल लोकोंको और सकल भोगोंको पाता है, ऐसा आपका कथन है, यह बात शिष्ट-पुरुष कहते हैं, इस कारण उस आत्माको जाननेकी इच्छा करते हुए हम दोनों यहाँ निवास कर रहे हैं ॥ ३ ॥

तौ ह प्रजापतिरुवाच य एषोऽक्षिणि पुरुषो दृश्यत एष आत्मेति होवाचैतदमृतमभयमेतद्ब्रह्मेत्यथ योऽयं भगवोऽप्सु परिख्यायते यश्चाय-मादर्शे कतम एष उ एवैष सर्वेष्वन्तेषु परिख्या-यत इति होवाच ॥ ४ ॥

अन्वय और पदार्थ-(तौ, ह) उनके प्रति (उवाच) बोला (अक्षिणि) आँखमें (यः) जो (एषः) यह (पुरुषः) पुरुषरूप (दृश्यते) दीखता है (एषः) यह (आत्मा) आत्मा है (इति, ह) ऐसा (उवाच) कहा (एतत्) यह (अमृ-तम्) अमृत है (अभयम्) अभय है (एतत्) यह (ब्रह्म) ब्रह्म है (इति) ऐसा है (अथ) अनन्तर (भगवः) भगवन् (यः) जो (अयम्) यह (अप्सु) जलमें (परिख्यायते) प्रतीत होता है (च) और (यः) जो (अयम्) यह (आदर्शे) दर्पणमें [परिख्यायते] दीखता है (एषः) यह (कतमः) कौनसा है (इति) ऐसा पूछने पर (एषः, उ, एव) यह ही (सर्वेषु, अन्तेषु) सबोंके भीतर (परिख्यायते) प्रतीत होता है (इति) ऐसा (उवाच, ह) कहा ॥ ४ ॥

भावार्थ–इन दोनोंसे प्रजापतिने कहा, कि-आँखोंमें जो यह पुरुषरूप द्रष्टा अन्तर्मुख दृष्टिवाले पुरुषोंको दीखता है, यही

पापरहितता आदि गुणोंवाला आत्मा है, जिसको मैंने पहले कहा था, जिसके विज्ञानसे सब लोकोंकी और सकल भोगों की प्राप्ति होती है, यही अमृत है, अभय है और ब्रह्म है। प्रजापतिकी इस बातको सुनकर वे दोनों अपनी बुद्धिकी अशुद्धि से नेत्रमें जो पुरुषका प्रतिबिम्ब पड़ता है उसको ही आत्मरूप से समझे तदनन्तर उसको दृढ़ करनेके लिए प्रजापतिसे पूछने लगे कि हे भगवन्! यह जो जलमें पुरुषका प्रतिबिम्ब दीखता है और जो यह दर्पणमें शरीरका प्रतिबिम्बरूप आकार दीखता है इनमें आपका बताया हुआ आत्मा कौनसा है? इस पर, जो मैंने चक्षुमें द्रष्टा कहा था वह यही है और यही सबके भीतर भी प्रतीत होता है, ऐसा प्रजापतिने कहा ॥ ४ ॥

॥ अष्टमाध्यायस्य सप्तमः खण्डः समाप्तः ॥

उदशराव आत्मानमवेक्ष्य यदात्मनो न विजानीथस्तन्मे प्रब्रूतमिति तौ होदशरावेऽवेक्षाञ्चक्राते, तौ ह प्रजापतिरुवाच किं पश्यथ इति तौ होचतुः सर्वमेवेदमावां भगव आत्मानं पश्याव आलोमभ्य आनखेभ्यः प्रति रूपमिति ॥ १ ॥

अन्वय और पदार्थ—(उदशरावे) जलके कुण्डमें (आत्मानम्) आत्माको (अवेक्ष्य) देख कर (यदा) जब (आत्मनः) आत्माको (न) नहीं (विजानीथः) जाना (तत्) तब (मे) मुझसे (प्रब्रूतम्) कहना (इति) ऐसा कहने पर (तौ, ह) वे दोनों (उदशरावे) जलके कुण्डमें (अवेक्षाञ्चक्राते) देखते हुए [तौ, ह] उनके प्रति (प्रजापतिः) प्रजापति (उवाच)

बोला (किम्) क्या (पश्यथ) देख रहे हो (इति) इस पर (तौ, ह) वे दोनों (इति) ऐसा (ऊचतुः) बोले (भगवः) हे भगवन् (आलोमभ्यः) रोमोंपर्यन्तके (आनखेभ्यः) नखों पर्यन्तके (प्रतिरूपम्) प्रतिबिम्बरूप (सर्वम्, एव) सब ही (इदम्) इस (आत्मानम्) आत्माको (आवाम्) हम दोनों (पश्यावः) देखते हैं ॥ १ ॥

भावार्थ—प्रजापतिने कहा कि—जलसे भरे कुण्डमें आत्मा को देखनेके अनन्तर आत्माको देखते हुए भी यदि तुम आत्मा के स्वरूपको जानसको तो मुझसे कहो, ऐसा कहने पर वे दोनों जलके कुण्डमें देखने लगे, उन्होंने प्रजापतिसे कुछ नहीं कहा, अतः प्रजापतिने पूछा कि-तुमने क्या देखा ? इस पर उन दोनोंने यह उत्तर दिया कि-हे भगवन् ! रोमोंपर्यन्तके और नखों पर्यन्तके प्रतिबिम्बरूप इस सब ही आत्माको हम देख रहे हैं

तौ ह प्रजापतिरुवाच साध्वलंकृतौ सुवसनौ परिष्कृतौ भूत्वोदशरावेऽवेक्षेथामिति तौ ह साध्वलंकृतौ सुवसनौ परिष्कृतौ भूत्वोदशरावेऽवेक्षाञ्चक्राते तौ ह प्रजापतिरुवाच किं पश्यथ इति ।२।

अन्वय और पदार्थ—(प्रजापतिः) प्रजापति (तौ, ह) उनके प्रति (उवाच) बोला (साधु, अलंकृतौ) उत्तम अलंकारोंवाले (सुवसनौ) सुन्दर वस्त्र पहने हुए (परिष्कृतौ, भूत्वा) लोम नखादिसे स्वच्छ होकर (उदशरावे) जलके कुण्डमें (अवेक्षेथाम्) देखो (इति) ऐसा कहने पर (तौ,

ह) वे दोनों (साध्वलंकृतौ) अच्छे अलंकारोंसे युक्त (सुवसनौ) सुन्दर वस्त्रों वाले (परिष्कृतौ, भूत्वा) स्वच्छ होकर (उदशरावे) जलके कुण्डमें (अवेक्षाञ्चक्राते) देखते हुए (प्रजापतिः) प्रजापति (तौ, ह) उनके प्रति (किम्) क्या (पश्यथः) देखते हो (इति) ऐसा (उवाच) बोला ॥२॥

भावार्थ—प्रतिबिम्ब और उसके कारण शरीरमें हुए आत्मा के निश्चयको दूर करनेके लिये भगवान् प्रजापति उन दोनोंसे कहने लगे, कि--अच्छे अलंकार और सुन्दर वस्त्र पहर कर तथा रोम और नखोंको कटवा कर फिर जलके कुंडमें देखो। ऐसा कहनेमें भगवान् प्रजापतिका यह अभिप्राय था, कि केश और नखोंकी समान शरीरको भी अनात्मा ही समझो, परन्तु अन्तःकरणकी मलिनताके कारण इन्द्र और विरोचन इस बात को न समझ सके और वे दोनों उत्तम वस्त्राभूषण पहर कर तथा नख लोम कटवा कर जलके कुण्डमें देखने लगे, तब उन दोनोंसे भगवान प्रजापतिने कहा, कि-तुमको क्या दीख रहा है?

तौ होचतुर्यथैवेदमावां भगवः साध्वलंकृतौ सुवसनौ परिष्कृतौ स्व एवमेवेमौ भगवः साध्वलंकृतौ सुवसनौ परिष्कृताविरयेष आत्मेति होवाचैतदमृतमभयमेतद् ब्रह्मेति तौ ह शान्तहृदयौ प्रवव्रजतुः

अन्वय और पदार्थ—(तौ, ह) वे दोनों (इति) ऐसा (ऊचतुः) बोले (भगवः) हे भगवन् ! (यथैव) जिसप्रकार (इदम्) यह (आवाम्) हम (साध्वलंकृतौ) सुन्दर अलंकारोंसे युक्त (सुवसनौ) अच्छे वस्त्र पहरे (परिष्कृतौ)

लोम नखादिसे स्वच्छ (स्वः) हैं (एवमेव) इसी प्रकार (भगवः) हे भगवन् (इमौ) ये (साध्वलंकृतौ) उत्तम अलंकारों वाले (सुवसनौ) सुन्दर वस्त्रों वाले (परिष्कृतौ) लोम नखादि से रहित [स्तः] हैं (इति) ऐसा कहने पर (एषः) यह (आत्मा) आत्मा है (एतत्) यह (अमृतम्) अविनाशी है (अभयम्) निर्भय है (एतत्) यह (ब्रह्म) ब्रह्म है (इति) ऐसा (उवाच ह) प्रजापतिने कहा (इति) ऐसा कहने पर (तौ, ह) वे दोनों (शान्तहृदयौ) हृदयमें सन्तुष्ट होते हुए (प्रवव्रजतुः) चले गये ॥ ३ ॥

भावार्थ—उन दोनोंने उत्तर दिया, कि—हे भगवन् ! जिस प्रकार हम उत्तम आभूषण, उत्तम वस्त्र पहरे और लोम नख कटाये हुए हैं, इसी प्रकार हे भगवान् ! ये हमारे प्रतिबिम्ब भी उत्तम वस्त्राभूषण पहरे और लोम नख कटाये हुये हैं। उनकी इस बातको सुन कर प्रजापतिने विचारा, कि—ये अपने मनकी मलिनताके कारण आत्माके वास्तविक स्वरूपको नहीं समझ सके हैं, कदाचित् ये मेरी बातको मनन करेंगे और उससे इनके प्रतिबन्धक संस्कारोंका क्षय होजायगा तो आगे को समझ जायँगे और मैं तो इनको आत्माके स्वरूपका ही उपदेश देना चाहता हूँ, इस बातको मनमें रख कर भगवान् प्रजापति कहने लगे, कि—यह आत्मा है, यह अविनाशी है और यही ब्रह्म है। भगवान् प्रजापतिकी इस बातको सुन कर वे इन्द्र और विरोचन हृदयमें सन्तुष्ट होते हुए अपने २ स्थान को चले गये ॥ ३ ॥

तौ हान्वीक्ष्य प्रजापतिरुवाचानुपलभ्याऽऽत्मानमननुविद्य व्रजतो यतर एतदुपनिषदो भविष्यन्ति देवा वाऽसुरा वा ते पराभविष्यन्तीति स ह शान्तहृदय एव विरोचनोऽसुराञ्जगाम तेभ्यो हैतामुपनिषदं प्रोवाचात्मैवेह महय्य आत्मा परिचर्य आत्मानमेवेह महयन्नात्मानं परिचरन्नुभौ लोकाववाप्नोतीमं चामुं चेति ॥ ४ ॥

अन्वय और पदार्थ—(प्रजापतिः) प्रजापति (तौ, ह) उनको (अन्वीक्ष्य) देखकर (उवाच) बोला (आत्मानम्) आत्माको (अनुपलभ्य) न जान कर (अननुविद्य) अनुभवमें न लाकर (व्रजतः) जाते हैं (यतरे) इन दोनोंमेंसे जो (देवाः, वा) या देवता (वा, असुराः) या असुर (एतदुपनिषदः) इस उपनिषद् विद्या वाले (भविष्यन्ति) होंगे (ते) वे (पराभविष्यन्ति) तिरस्कारको पावेंगे (इति) ऐसा विचारने पर (सः, ह) वह (विरोचनः) विरोचन (शांतहृदयः, एव) अपनेको कृतार्थ बुद्धि वाला मानता हुआ ही (असुरान्, जगाम) असुरोंके पास पहुँचा (तेभ्यः) उनके अर्थ (एताम्, ह उपनिषदम्) इस ही उपनिषद्को (प्रोवाच) कहता हुआ (इह) इस लोकमें (महय्यः) पूजने योग्य है (आत्मा) आत्मा (परिचर्यः) सेवा करने योग्य है (इह) इस लोकमें (आत्मानम्) आत्माको (परिचरन्) सेवता हुआ (इमम्) इस (च) और (अमुम्, च) उस भी (उभौ) दोनों (लोकौ) लोकोंको (आप्नोति) पाता है ॥ ४ ॥

भावार्थ—भगवान् प्रजापतिने उनको दूर गये हुए देख कर "जो आत्मा पापरहित है" इत्यादि वचनकी समान यह वचन भी दोनोंके सुननेमें आजायगा, यह विचार कर इस प्रकार कहा, कि--आत्माको न जान कर और उसका अपरोक्ष अनुभव न करके तथा विपरीत निश्चय वाले होकर ये इन्द्र और विरोचन चले गए हैं, इस कारण देवता वा असुर इन दोनोंमें से जो कोई इस उपनिषद्‌ वाले (इस आत्मविद्या वाले) होंगे वे तिरस्कार पावेंगे अर्थात् श्रेयोमार्गसे गिर जायँगे। उधर वह विरोचन अपनेको कृतार्थ मान हृदयमें बड़ा सन्तुष्ट होता हुआ असुरोंके पास जा पहुँचा और जाकर, 'प्रतिविम्बका निमित्तकारण शरीर है इस कारण शरीर ही आत्मा है' ऐसा समझ कर उनको शरीरमें आत्मबुद्धिरूप उपनिषद्‌का उपदेश देने लगा, शरीरमात्र ही आत्मा है, ऐसा भगवान् प्रजापतिने कहा था, इस कारण वह आत्मा ही इस लोकमें पूजने योग्य है तथा वह आत्मा ही सेवा करने योग्य है। इस लोकमें जो उस आत्माकी ही पूजा और सेवा करता है वह ही, इस लोक और परलोक दोनोंको ही पाजाता है ॥ ४ ॥

तस्मादप्यद्येहाददानमश्रद्दधानमयजमानमाहुरासुरो बतेत्यसुराणाᳬ् ह्येषोपनिषत्प्रेतस्य शरीरं भिक्षया वसनेनालङ्कारेणेति सᳬंस्कुर्वन्त्येतेन ह्यमुं लोकं जेष्यन्तो मन्यन्ते ॥ ५ ॥

अन्वय और पदार्थ—(तस्मात्) तिससे (अद्य, अपि)

आज कल भी (इह) इस लोकमें (अददानम्) दान न करने वाले (अश्रद्दधानम्) श्रद्धाहीन (अयजमानम्) यजन न करने वालेको (बत) बड़े खेदके साथ (आसुरः) असुर स्वभाव वाला है (इति) ऐसा (आहुः) कहते हैं (हि) क्योंकि (एषा) यह (असुराणाम्) असुरोंकी (उपनिषद्) आत्मविद्या है (इति) इस प्रकार (प्रेतस्य) मृतकके (शरीरम्) शरीरको (भिक्षया) अन्नपानके द्वारा (वसनेन) वस्त्रके द्वारा (अलंकारेण) आभूषणके द्वारा (इति) इस प्रकार (संस्कुर्वन्ति) संस्कारयुक्त करते हैं (हि) क्योंकि-(एतेन) इसके द्वारा (अमुम्,लोकम्) उस लोको (जेष्यन्तः) जीत लेंगे [इति] ऐसा (मन्यन्ते) मानते हैं ॥ ५ ॥

भावार्थ—देहात्मवाद असुरोंका चलाया हुआ है इसकारण से आज कल भी इस लोकमें पुण्यार्थ अपने धनको न देने वाले, सत्कर्मोंमें श्रद्धारहित और यथाशक्ति यजन करनेके स्वभावसे रहित पुरुषको देख कर खेद होता है, कि—यह आसुरी स्वभाव वाला है, ऐसा शिष्ट पुरुष कहते हैं। क्योंकि—असुरों की श्रद्धारहित होना आदि लक्षणोंवाली यह उपनिषद्विद्या है इस कारण इस उपनिषद्के संस्कार वाले देहात्मवादी पुरुष मृतकके शरीरको सुगन्ध, पुष्पमाला, भोजन, वस्त्र और आभूषणोंसे सजाते हैं और वे इस मृतशरीरकी सजावट करके यह समझते हैं, कि—इस सजावटके द्वारा इस मृत प्राणीको स्वर्गलोक मिल जायगा ॥ ५ ॥

॥ अष्टमाध्यायस्याष्टमः खण्डः समाप्तः ॥

———o———

अथ हेन्द्रोऽप्राप्यैव देवानेतद्भयं ददर्श यथैव खल्वयमस्मिञ्छरीरे साध्वलंकृते साध्वलंकृतो भवति सुवसने सुवसनः परिष्कृते परिष्कृत एवमेवायमस्मिन्नन्धेऽन्धो भवति स्रामे स्रामः परिवृक्णे परिवृक्णोऽस्यैव शरीरस्य नाशमन्वेष नश्यति नाऽहमत्र भोग्यं पश्यामीति ॥ १ ॥

अन्वय और पदार्थ-(अथ ह) इसके अनन्तर (इन्द्रः) इन्द्र (देवान्, अप्राप्य, एव) देवताओंके पास न पहुँचकर ही (एतत्) इस (भयम्) भयको (ददर्श) देखता हुआ (यथा) जिस प्रकार (अयम्) यह (खलु) निःसन्देह (अस्मिन्, शरीरे) इस शरीरके (साधु, अलंकृते) भले प्रकार भूषित होने पर (साध्वलंकृतः) भलेप्रकार भूषित (सुवसने) सुन्दर सुन्दर वस्त्रोंवाला होने पर (सुवसनः) सुन्दर वस्त्रों वाला (परिष्कृते) साफ सुथरा होने पर (परिष्कृतः) साफ सुथरा (भवति) होता है (एवमेव) इसी प्रकार (अयम्) यह (अस्मिन् अन्धे) इसके नेत्रहीन होने पर (अन्धः) नेत्रहीन (स्रामे) चिपड़ा होने पर (स्रामः) चिपड़ा (परिवृक्णे) लूला होने पर (परिवृक्णः) लूला (भवति) होता है (अस्य) इस (शरीरस्य) शरीरके (नाशम्, अनु, एव) नाशके अनन्तर ही (एषः) यह (नश्यति) नष्ट होजाता है (इति) इससे (अहम्) मैं (अत्र) इसमें (भोग्यम्) फलको (न) नहीं (पश्यामि) देखता हूँ ॥ १ ॥

भावार्थ-इधर वह इन्द्र देवताओंके पास पहुँचने भी नहीं पाया था, कि-दैवी सम्पदासे युक्त होनेके कारण गुरुके वचन का वारम्वार स्मरण करता हुआ चला जारहा था उस समय प्रतिविम्बरूप आत्मामें उसको यह भय प्रतीत हुआ, कि-जिस प्रकार इस शरीरके उत्तमतासे भूषित होने पर यह प्रतिविम्ब-रूप आत्मा भी उत्तम प्रकारसे भूषित होजाता है, अच्छे वस्त्र पहरे हुए होने पर अच्छे वस्त्रवाला दीखता है और साफ सुथरा होने पर साफ सुथरा दीखता है इस शरीरके अन्धा होने पर प्रतिविम्बरूप आत्मा भी अन्धा होजाता है, चिपड़ा होने पर चिपड़ा होजाता है तथा लूला होने पर लूला होजाता है और इस शरीरका नाश होने पर यह प्रतिविम्बरूप आत्मा भी नष्ट होजाता है, इस लिये मैं इस प्रतिविम्बरूप आत्माके ज्ञानमें वा शरीररूप आत्माके ज्ञानमें इच्छित फल नहीं देखता हूँ ॥१॥

स समित्पाणिः पुनरेयाय तꣳ ह प्रजापति-रुवाच मघवन् यच्छान्तहृदयः प्राव्राजीः सार्धं विरोचनेन किमिच्छन् पुनरागम इति स होवाच यथैव खल्वयं भगवोऽस्मिञ्छरीरे साध्वलंकृते साध्वलंकृतो भवति सुवसने सुवसनः परिष्कृते परि-ष्कृत एवमेवाऽयमस्मिन्नंधेऽन्धो भवति स्रामे स्रामः परिवृक्णे परिवृक्णोऽस्यैव शरीरस्य नाशमन्वेष नश्यति नाहमत्र भोग्यं पश्यामीति ॥ २ ॥

अन्वय और पदार्थ—(सः) वह (समित्पाणिः) हाथमें

समिधा लिये हुए (पुनः) फिर (एयाय) आया (तम्) उसके प्रति (प्रजापतिः) प्रजापति (उवाच,ह) बोला (मघवन्) हे इन्द्र (यत्) जो (शान्तहृदयः) कृतार्थबुद्धि होकर (विरोचनेन, सार्धम्) विरोचनके साथ (प्राव्राजीः) गया था (पुनः) फिर (किम्, इच्छन्) क्या चाहता हुआ (आगमः) लौट आया है (इति) ऐसा कहने पर (सः) वह (उवाच, ह) बोला (भगवः) हे भगवन् (खलु) निःसन्देह (यथा) जिस प्रकार (अयम्) यह (अस्मिन्, शरीरे) इस शरीरके (साधु, अलंकृते, एव) भले प्रकार भूषित होने पर ही (साध्वलंकृतः) भलेप्रकार भूषित (सुवसने) सुन्दर वस्त्रधारी होने पर (सुवसनः) सुन्दर वस्त्रधारी (परिष्कृते) स्वच्छ होने पर (परिष्कृतः) स्वच्छ (भवति) होता है (एवमेव) इसी प्रकार (अयम्) यह (अस्मिन्, अन्धे) इसके अन्धा होने पर (अन्धः) अन्धा (स्रामे) चिपड़ा होने पर (स्रामः) चिपड़ा (परिवृक्णे) लूला होने पर (परिवृक्णः) लूला (भवति) होता है (अस्य, एव) इस ही (शरीरस्य) शरीरके (नाशम्, अनु) नाशके अनन्तर (एषः) यह (नश्यति) नष्ट होजाता है (इति) इस कारण (अहम्) मैं (अत्र) इसमें (भोग्यम्) फल (न) नहीं (पश्यामि) देखता हूँ ॥ २ ॥

भावार्थ—इस प्रकार देह और प्रतिविम्बरूप आत्माके ज्ञान में दोषका निश्चय करके वह इन्द्र हाथमें समिधा ले फिर भगवान् प्रजापतिके पास आया, यह देख प्रजापतिने उससे कहा, कि—हे इन्द्र ! तू तो कृतार्थबुद्धि वाला होकर विरोचनके साथ चलागया था, फिर अब किस इच्छासे लौट आया ? इस पर

इन्द्रने अपना अभिप्राय प्रकट किया, कि—हे भगवन् ! यह शरीर गहनोंसे भूषित होय तो प्रतिबिम्बरूप आत्मा भी आभूषणोंसे भूषित होजाता है, सुन्दर वस्त्र पहरे तो सुन्दर वस्त्र पहर लेता है, बाल नख कटा डाले तो बाल-नख रहित होजाता है इसी प्रकार यह शरीर अंधा होय, तो प्रतिबिम्बरूप आत्मा भी अन्धा होजाता है, चिपड़ा होय तो चिपड़ा होजाता है और लूला होय तो लूला होजाता है तथा इस ही शरीरका नाश होने पर नष्ट होजाता है इस कारण मैं इस प्रतिबिम्बरूप आत्मा के ज्ञानमें वा शरीररूप आत्माके ज्ञानमें इच्छित फल नहीं देखता हूं

एवमेवैष मघवन्निति होवाचैतं त्वेव ते भूयोऽनुव्याख्यास्यामि वसापराणि द्वात्रिꣳशतं वर्षाणीति स हापराणि द्वात्रिꣳशतं वर्षाण्युवास तस्मै होवाच ॥ ३ ॥

अन्वय और पदार्थ—(मघवन्) हे इन्द्र (एवमेव) इस ही प्रकार (एषः) यह है (इति) ऐसा (उवाच, ह) कह (एतम्, एव) इसको ही (ते) तेरे अर्थ (भूयः) फिर (अनुव्याख्यास्यामि) व्याख्या करके कहूँगा (अपराणि) और (द्वात्रिंशतम्, वर्षाणि) बत्तीस वर्ष (वस) निवास कर (इति) ऐसा कहने पर (सः) वह (अपराणि) और (द्वात्रिंशतम्, वर्षाणि) बत्तीस वर्ष (उवास, ह) वसता हुआ (तस्मै) उसके अर्थ (उवाच, ह) कहता हुआ ॥ ३ ॥

भावार्थ—इन्द्रकी इस बातको सुनकर भगवान् प्रजापतिने कहा कि-हे इन्द्र ! तू जो कहता है कि-प्रतिबिम्ब आत्मा नहीं

है, यह तेरा कहना ठीक ही है, पहिले तुझे जिस आत्माका उपदेश दिया था, उसका व्याख्यान तुझे अब फिर सुनाऊँगा, तू अन्तःकरणकी शुद्धिके लिये मेरे यहाँ ब्रह्मचर्यधारणपूर्वक बत्तीस वर्ष और निवास कर, भगवान् प्रजापतिकी यह आज्ञा पाकर इन्द्रने ऐसा ही किया तब प्रजापतिने उसको फिर उपदेश दिया ॥ ३ ॥

॥ अष्टमाध्यायस्य नवमः खण्डः समाप्तः ॥

स एष स्वप्ने महीयमानश्चरत्येष आत्मेति होवाचैतदमृतमभयमेतद् ब्रह्मेति स ह शान्तहृदयः प्रवव्राज स हाप्राप्यैव देवानेतद्भयं ददर्श तद्यद्यपीदᳬ शरीरमन्धं भवत्यनन्धः स भवति यदि स्राममस्रामो नैवैषोऽस्य दोषेण दुष्यति ॥ १ ॥

अन्वय और पदार्थ—(यः) जो (एषः) यह (स्वप्ने) स्वप्नमें (महीयमानः) पूजित होता हुआ (चरति) विचरता है (एषः) यह (आत्मा) आत्मा है (इति) ऐसा (उवाच, ह) कहते हुए (एतत्) यह (अमृतम्) अविनाशी है, (अभयम्) निर्भय है (एतत्) यह (ब्रह्म) ब्रह्म है (इति) ऐसा कहने पर (सः) वह (शान्तहृदयः) कृतार्थबुद्धि होकर (प्रवव्राज) चलागया (सः) वह (देवान्, अप्राप्य, एव) देवताओंके समीप तक न पहुँच कर ही (एतत्) इस (भयम्) भयको (ददर्श) देखता हुआ (तत्) वह (इदम्) यह (शरीरम्) शरीर (यद्यपि) जो कि (अन्धम्) अन्धा (भवति) होजाता है (सः) वह (अनन्धः) अन्धभाव

रहित (यदि) जो (स्रामम्) चिपड़ा हो (अस्रामः) चिपड़े पनसे रहित (भवति) होता है (एषः) यह (अस्य) इस के (दोषेण) दोषसे (नैव, दुष्यति) दूषित नहीं होता है १

भावार्थ—जो यह स्वप्नमें स्त्री आदिसे पूजित होता हुआ विचरता है अर्थात् अनेकों प्रकारके स्वप्नके भोगोंका अनुभव करता है ऐसा यह पापरहित आदि लक्षणों वाला और 'जो यह आँखमें पुरुष दीखता है' इत्यादि वचनोंसे उपदेश किया हुआ आत्मा है, यह अविनाशी है, अभय है और ब्रह्म है, भगवान् प्रजापतिके ऐसा कहने पर इन्द्रने समझा कि मैं इस ज्ञानको पाकर कृतार्थ होगया और वह अपने स्थानकी ओरको चल दिया, वह देवताओंके पास तक नहीं पहुँच पाया था, कि-गुरुके उपदेशका मनन करते २ चित्तमें कहने लगा, कि इस स्वप्नके द्रष्टा आत्मामें तो दोष प्रतीत होता है, यद्यपि वह इस शरीरके अन्धा होनेपर अन्धा नहीं होता है और चिपड़ा होनेपर चिपड़ा नहीं होता है तथा इस शरीरके किसी भी दोषसे दूषित नहीं होता है ॥ १ ॥

न वधेनास्य हन्यते नास्य स्राम्येण स्रामो घ्नन्ति त्वेवैनं विच्छादयन्तीवाप्रियवेत्तेव भवत्यपि रोदितीव नाहमत्र भोग्यं पश्यामिति ॥ २ ॥

अन्वय और पदार्थ—(अस्य) इसके (वधेन) वधसे (न) नहीं (हन्यते) मारा जाता है (अस्य) इसके (स्राम्येण) चिपड़ेपनसे (स्रामः) स्राम (न) नहीं [भवति] होता है, (तु) परन्तु (एनम्) इसको (घ्नन्ति, एव) मारते हों ऐसा

होता ही है (विच्छादयन्ति, इव) कोई दौड़ाते हों ऐसा होता है (अप्रियवेत्ता, इव भवति) अप्रियको जानने वाला होता है (अपि) और (रोदिति, इव) रोता हुआसा होता है (इति) इस कारण (अहम्) मैं (अत्र) इसमें (भोग्यम्) फलको (न) नहीं (पश्यामि) देखता हूँ ॥ २ ॥

भावार्थ—इस शरीरके वधसे वह स्वआत्मा, प्रतिविम्बरूप आत्माकी समान हना नहीं जाता है और इसके कुरूपसे स्व-आत्मा कुरूप नहीं होता है, परन्तु कोई इसको मानो वध करे डालता है ऐसा प्रतीत होता है, कोई इसको दौड़ाता हो ऐसा प्रतीत होता है, यह पुत्रादिके मरण आदिके कारणसे अप्रियका अनुभव करता हुआसा प्रतीत होता है और दुःखके अवसरोंमें रुदन करने वालासा भी होजाता है, इस कारण मैं इस स्व-आत्माके ज्ञानमें भी इच्छित फल नहीं देखता हूँ ॥ २ ॥

स समित्पाणिः पुनरेयाय तꣳह प्रजापतिरुवाच मघवन् यच्छान्तहृदयः प्राव्राजीः किमिच्छन् पुनरागम इति स होवाच तद्यद्यपीदं भगवः शरीरमन्धं भवत्यनन्धः स भवति यदि स्राममस्रामो नैवैषोऽस्य दोषेण दुष्यति ॥ ३ ॥

अन्वय और पदार्थ-(सः) वह (समित्पाणिः) हाथमें समिधा लिये हुए (पुनः) फिर (एयाय) आया (प्रजापतिः) प्रजापति (तम्) उसके प्रति (उवाच, ह) बोला (मघवन्) हे इन्द्र ! (यत्) जो (शांतहृदयः) कृतार्थ बुद्धि वाला होकर

(माव्राजीः) गया था (किम्) क्या (इच्छन्) इच्छा करता हुआ (पुनः) फिर (आगमः) आया है (इति) ऐसा कहने पर (सः) वह (उवाच, ह) बोला (भगवः) हे भगवन् (तत्) वह (इदम्) यह (शरीरम्) शरीर (यद्यपि) जो कि-(अंधम्) अन्धा (भवति) होता है (सः) वह (अनन्धः,भवति) अन्धा नहीं होता है (यदि) जो (स्रामम्) चिपड़ा होता है (अस्रामः) चिपडेपनसे रहित [भवति] होता है (अस्य) इसके (दोषेण) दोषसे (एषः) यह (नैव, दुष्यति) दूषित नहीं होता है ।३।

भावार्थ—इस प्रकार स्वप्नात्माके ज्ञानमें दोषसा निश्चय करके वह इन्द्र हाथमें समिधा ले फिर प्रजापतिके पास आया, तब उससे प्रजापतिने कहा, कि—हे इन्द्र ! तू अपनेको कृतार्थ मान कर गया था, अब फिर किस इच्छासे लौट आया ? इस पर इन्द्रने अपना अभिप्राय कहा, कि-हे भगवन् ! यद्यपि यह शरीर अन्धा होजाय तो भी स्वप्नात्मा अन्धा नहीं होता है, यह शरीर स्राम होजाय तो भी यह स्राम नहीं होता है, यह स्वप्नात्मा शरीरके दोषसे कदापि दूषित नहीं होता है ॥ ३ ॥

न वधेनास्य हन्यते नास्य स्राम्येण स्रामो घ्नन्ति त्वेवैनं विच्छादयन्तीवाप्रियवेत्तेव भवत्यपि रोदितीव नाहमत्र भोग्यं पश्यामीत्येवमेवैष मघवन्निति होवाचैतं त्वेव ते भूयोऽनुव्याख्यास्यामि वसापराणि द्वात्रिꣳशतं वर्षाणीति सहापराणि द्वात्रिꣳशतं वर्षाण्युवास तस्मै होवाच ॥ ४ ॥

अन्वय और पदार्थ—(अस्य) इसके (वधेन) वधसे (न) नहीं (हन्यते) हना जाता है (अस्य) इसके (स्राम्येण) चिपड़ेपनसे (स्रामः) चिपड़ा (न) नहीं [भवति] होता है (तु) परन्तु (एनम्) इसको (घ्नन्ति एव) मारते हों ऐसा होता ही है (विच्छादयन्ति, इव) कोई दौड़ाते हों ऐसा होता है (अप्रियवेत्ता, इव, भवति) अप्रियको जानने वालासा होता है (अपि) और (रोदिति, इव) रोरहा है ऐसा होता है (इति) इस कारण (अहम्) मैं (अत्र) इसमें (भोग्यम्) फलको (न) नहीं (पश्यामि) देखता हूँ (मघवन) हे इन्द्र (एवमेव) इस ही प्रकार (एषः) यह है (इति) ऐसा (उवाच, ह) बोला (एतम्, एव) इसको ही (ते) तेरे अर्थ (भूयः) फिर (अनुव्याख्यास्यामि) व्याख्या करके कहूँगा (अपराणि) और (द्वात्रिंशतम्, वर्षाणि) बत्तीस वर्ष (वस) निवास कर (इति) ऐसा कहने पर (सः) वह (अपराणि) और (द्वात्रिंशतम्, वर्षाणि) बत्तीस वर्ष (उवास, ह) बसता हुआ (तस्मै) उसके अर्थ (उवाच, ह) कहता हुआ ॥४॥

भावार्थ—इस शरीरके वधसे उस स्वप्नात्माका हनन नहीं होता है और इसके कुरूप होनेसे वह कुरूप नहीं होता है, परंतु कोई इसका वध करे डालता हो ऐसा प्रतीत होता है, मानो कोई इसको दौड़ा रहा है ऐसा प्रतीत होता है, यह पुत्रादिके मरण आदिके कारणसे दुःखका अनुभव करता हो ऐसा भी प्रतीत होता है और दुःखके अवसरों पर कुछएक रोता हुआ सा भी प्रतीत होता है इस कारण मैं इस स्वप्नात्माके ज्ञानमें

इच्छित फल नहीं देखता हूँ । इन्द्रकी इस बातको सुन कर भगवान् प्रजापतिने कहा, कि-हे इन्द्र ! तू जो कहता है, कि-स्वप्नात्मा आत्मा नहीं है यह तेरा कहना ठीक ही है, पहले तुझे जिस आत्माका उपदेश दिया था उसका व्याख्यान अब तुझे फिर सुनाऊँगा, तू अन्तःकरणकी शुद्धिके लिये मेरे यहाँ ब्रह्मचर्यधारणपूर्वक बत्तीस वर्ष और निवास कर, भगवान् प्रजापतिकी आज्ञा पाकर इन्द्रने ऐसा ही किया, तब प्रजापतिने उसको फिर उपदेश दिया, ॥ ४ ॥

॥ इति अष्टमाध्यायस्य दशमः खण्डः समाप्तः ॥

तद्यत्रैतत्सुप्तः समस्तः संप्रसन्नः स्वप्नं न विजानात्येष आत्मेति होवाचैतदमृतमभयमेतद् ब्रह्मेति स ह शान्तहृदयः प्रवव्राज स हाप्राप्यैव देवानेतद्भयं ददर्श नाहं खल्वेवथ्ँ सम्प्रत्यात्मानं जानात्ययमहमस्मीति नो एवेमानि भूतानि विनाशमेवापीतो भवति नाहमत्र भोग्यं पश्यामीति १

अन्वय और पदार्थ—(तत्) तहाँ (यत्र) जिस समय (एतत्) यह (समस्तः) सब (सुप्तः) सोया हुआ (संप्रसन्नः) उत्तम प्रकारसे निर्मल हुआ (स्वप्नम्) स्वप्नको (न) नहीं (विजानाति) अनुभव करता है (एषः) यह (आत्मा) आत्मा है (इति) ऐसा (उवाच, ह) बोले (एतत्) यह (अमृतम्) अविनाशी है (अभयम्) अभय है (एतत्) यह (ब्रह्म) ब्रह्म है (इति) ऐसा कहने पर (सः) वह (शान्तहृदयः) कृतार्थबुद्धि होकर (प्रवव्राज, ह) चला गया

(सः) वह (देवान्, अप्राप्य, एव) देवताओंके पास तक न पहुँच कर ही (एतत्) इस (भयम्) भयको (ददर्श) देखता हुआ (अयम्) यह (खलु) निश्चय (एवम्) ऐसे ही (संप्रति) इस समय (अयम्) यह (अहम्) मैं (अस्मि) हूँ (इति) ऐसा (आत्मानम्) अपनेको (ना) नहीं (जानाति) जानता है (इमानि) इन (भूतानि) भूतोंको (नो, एव) नहीं ही [जानाति] जानता है (विनाशम्, एव) विनाशको ही (अपीतः) प्राप्त हुआ (भवति) होता है (इति) इसकारण (अहम) मैं (अत्र) इसमें (भोग्यम्) फलको (न) नहीं (पश्यामि) देखता हूँ ॥ १ ॥

भावार्थ–जिस समय यह सकल किरणोंका विलय होजाने के कारण सोगा हुआ होता है, बाहरी विषयोंके सम्बन्धसे उत्पन्न होने वाली मलिनता न होनेके कारण उत्तम प्रकारसे निर्मल होता है और स्वप्नका अनुभव नहीं करता है, यह ही आत्मा है, यह अविनाशी है, अभय है और ब्रह्म है, भगवान् प्रजापतिके ऐसा कहने पर वह इन्द्र अपनेको कृतार्थ मानता हुआ चला गया, परन्तु वह देवताओंके समीप तक पहुँचने भी नहीं पाया, मार्गमें ही सुषुप्तिकालके ज्ञानमें यह दोष देखने लगा, कि–सुषुप्तिमें स्थित हुआ यह आत्मा निःसन्देह जिस प्रकार जाग्रत् और स्वप्नमें अपनेको जानता है तिस प्रकार इस सुषुप्ति में 'यह मैं हूँ' इस रूपमें नहीं जानता, इन भूतोंको नहीं जानता और ज्ञानके अभावसे विनाशको प्राप्त हुआसा होजाता है, इस कारण मैं इस सुषुप्तिको प्राप्त हुए ज्ञानमें भी इच्छित फल नहीं देखता हूँ ॥ १ ॥

स समित्पाणिः पुनरेयाय तꣳ ह प्रजापतिरुवाच मघवन् यच्छान्तहृदयः प्राव्राजीः किमिच्छन् पुनरागम इति स होवाच नाहं खल्वयं भगव एवꣳ सम्प्रत्यात्मानं जानात्ययमहमस्मीति नो एवेमानि भूतानि विनाशमेवापीतो भवति नाहमत्र भोग्यं पश्यामीति ॥ २ ॥

अन्वय और पदार्थ—(सः) वह (समित्पाणिः) हाथमें कुशा लिये (पुनः) फिर (एयाय) आया (प्रजापतिः) प्रजापति (तम्) उसके प्रति (उवाच, ह) बोला (मघवन्) हे इन्द्र (यत्) जो (शान्तहृदयः) कृतार्थबुद्धि वाला होकर (प्राव्राजीः) गया था (किम्) क्या (इच्छन्) चाहता हुआ (पुनः) फिर (आगमः) आया है (इति) ऐसा कहने पर (सः) वह (उवाच, ह) बोला (भगवः) हे भगवन् (खलु) निश्चय (अयम्) यह आत्मा (एवम्) इस प्रकार (संप्रति) इस समय (अयम्) यह (अहम्) मैं (अस्मि) हूँ (इति) इस प्रकार (आत्मानम्) अपनेको (न) नहीं (जानाति) है (इमानि) इन (भूतानि, एव) भूतोंको भी (नो) नहीं [जानाति] जानता है (विनाशम्, अपीतः, एव) विनाश को प्राप्त हुआ ही (भवति) होता है (इति इस कारण (अहम्) मैं (अत्र) इसमें (फलम्) फलको (न) नहीं (पश्यामि) देखता हूँ ॥ २ ॥

भावार्थ—इस प्रकार सुषुप्तिको प्राप्त हुए आत्मामें दोषका निश्चय करके वह इन्द्र हाथमें समिधा लेकर फिर भगवान् प्रजा-

पतिके पास आया, इन्द्रको लौट कर आया देख कर उन्होंने कहा, कि-हे इन्द्र ! तू तो अपनेको कृतार्थ मान कर चलागया था, फिर क्यों लौट आया ? इस पर इन्द्रने अपना अभिप्राय प्रकट करते हुए कहा, कि-हे भगवन् ! सुषुप्तिमें स्थित यह आत्मा, निश्चय जिस प्रकार जाग्रत् और स्वप्नमें अपनेको जानता है तिस प्रकार 'यह मैं हूँ' इस रूपसे सुषुप्तिमें अपनेको नहीं जानता और इन भूतोंको भी नहीं जानता तथा ज्ञानके अभाव से विनाशको प्राप्त हुआसा होता है, इस कारण मैं इस सुषुप्ति को प्राप्त हुए ज्ञानमें अपनी इच्छानुसार फल नहीं देखता हूँ २

एवमेवैष मघवन्निति होवाचैतं त्वेव ते भूयोऽनुव्याख्यास्यामि नो एवान्यत्रैतस्माद्वसापराणि पञ्च वर्षाणीति स हापराणि पञ्च वर्षाण्युवास तान्येकशतꣳ सम्पेदुरेतत्तद्यदाहुरेकशतं ह वै वर्षाणि मघवन् प्रजापतौ ब्रह्मचर्यमुवास तस्मै होवाच ३

अन्वय और पदार्थ-(मघवन्) हे इन्द्र (एषः) यह (एवमेव) ऐसा ही है (इति) ऐसा (उवाच, ह) बोले (तु) परन्तु (एतम्, एव) इस ही आत्माको (ते) तेरे अर्थ (भूयः) फिर (अनुव्याख्यास्यामि) व्याख्या करके कहूँगा (एतस्मात्) इससे (अन्यत्र) भिन्नका (नो, एव) कदापि नहीं (अपराणि) और (पञ्च) पाँच (वर्षाणि) वर्ष (वस) निवास कर (इति) ऐसा कहने पर (सः) वह (अपराणि) और (पञ्च, वर्षाणि) पाँच वर्ष (उवास) रहा (तानि) वे (एकशतम्)

एकसौ एक (सम्पेदुः) हुए (आहुः) कहते हैं (यत्) जं
(एतत्) यह वै) निश्चय (एकशतम्, वर्षाणि) एकसं
एक वर्ष (मघवन्) इन्द्र (प्रजापतौ) प्रजापतिके पार
(ब्रह्मचर्यम्, उवास) ब्रह्मचर्यधारणपूर्वक (तस्मै) उस इन
के अर्थ (तत्) उस आत्मतत्त्वको (उवाच, ह) करता हुआ :

भावार्थ—इन्द्रकी इस बातको सुन कर भगवान् प्रजापति
कहा, कि—हे इन्द्र ! यह तेरा कहना ठीक है, कि—सुषुप्तिकं
प्राप्त हुआ आत्मा वास्तविक आत्मा नहीं है, अब मैं पहले तीः
वार जिस आत्माका उपदेश किया था, उस ही आत्माका व्या
ख्यान तुझे फिर सुनाता हूँ, तेरे अन्तःकरणमें थोड़ासा दोष
शेष रह गया है, उसको दूर करनेके लिये तू मेरे यहाँ ब्रह्म
चर्य धारणपूर्वक पाँच वर्ष और निवास कर, इन्द्रने उनकं
आज्ञानुसार पाँच वर्ष और निवास किया, इस प्रकार उसकं
रहते हुए एकसौ एक वर्ष पूरे होगये, ऐसा शिष्ट पुरुष कहतं
हैं और यह बात पिछले वचनोंसे भी सिद्ध है, उस इन्द्रकं
तीन अवस्थाओंके दोषोंके सम्बन्धसे रहित और पापरहितत
आदि लक्षणों वाले आत्माका स्वरूप भगवान् प्रजापतिने कहा
इस प्रकार जिसको इन्द्रने भी बड़े यत्नसे एकसौ एक वर्ष
पर्यन्त तपस्या करके पाया था वह आत्मज्ञान इस त्रिलोकीके
राज्यसे भी बढ़ कर है, इस कारण आत्मासे बढ़ कर और
कोई पुरुषार्थ नहीं है ॥ ३ ॥

॥ अष्टमाध्यायस्यैकादशः खण्डः समाप्तः ॥

**मघवन्मर्त्यम्वा इदꣳ शरीरमात्तं मृत्युना तद-
स्यामृतस्याशरीरस्यात्मनोऽधिष्ठानमात्तो वै स-**

शरीरः प्रियाप्रियाभ्यां न वै सशरीरस्य सतः प्रियाप्रिययोरपहतिरस्त्यशरीरं वाव सन्तं न प्रियाप्रिये स्पृशतः ॥ १ ॥

अन्वय और पदार्थ—(मघवन्) हे इन्द्र (इदम्) यह (शरीरम्) शरीर (वै) निश्चय (मर्त्यम्) मरणधर्मी (मृत्युना) मृत्यु करके (आत्तम्) घेरा हुआ [अस्ति] है (तत्) सो (अस्य) इस (अमृतस्य) अविनाशी (अशरीरस्य) शरीर रहित (आत्मनः) आत्माका (अधिष्ठानम्) स्थान है (सशरीरः) शरीरसे युक्त हुआ (वै) निश्चय (प्रियाप्रियाभ्याम्) सुख दुःखसे (आत्तः) घेरा हुआ [भवति] होता है (सशरीरस्य, सतः) सशरीर होनेकी दशामें (वै) निश्चय (प्रियाप्रिययोः) सुख दुःखका (अपहतिः) उच्छेद (न) नहीं (अस्ति) है (अशरीरम्, सन्तम्, वाव) अशरीर होते ही इसको (प्रियाप्रिये) सुख दुःख (न) नहीं (स्पृशतः) स्पर्श करते हैं ॥१॥

भावार्थ—हे इन्द्र ! यह प्रसिद्ध स्थूल शरीर मरणधर्मी है और मृत्यु इसको सर्वदा घेरे रहता है। यह शरीर इस अविनाशी कहिये देह इन्द्रियें और मनके मरण आदि धर्मोंसे रहित तथा शरीर इन्द्रियें एवं मन रहित आत्माके भोगका स्थान है अशरीर स्वभाव वाले आत्माके अविवेकसे शरीरमें जो आत्मभाव है वह ही सशरीरपना है, इस कारण यह सशरीर होकर अवश्य ही सुख दुःखसे घिरा हुआसा रहता है। मुझे बाहरी विषयोंका संयोग और वियोग होता है, ऐसा मानने वालेको सशरीरके सद्भावमें बाहरी विषयोंके संयोग वियोगसे उत्पन्न

होने वाले सुख दुःखके प्रवाहका उच्छेद नहीं होता है और अशरीरस्वरूपके विज्ञानसे देहाभिमानको दूर करके अशरीर हुएको निःसन्देह सुख और दुःख दोनों स्पर्श नहीं करते हैं। प्रिय तथा अप्रिय ये दोनों धर्म तथा अधर्मके कार्य हैं और अशरीरता तो स्वरूप है, अतः तहाँ धर्माधर्मका संभव न होने से उनका कार्य भी नहीं होता, इससे अशरीरको सुख दुःख स्पर्श नहीं करते, अशरीररूप आत्मतत्त्वको जानना बड़ा कठिन है

अशरीरो वायुरभ्रं विद्युत्स्तनयित्नुरशरीराण्ये-तानि तद्यथैतान्यमुष्मादाकाशादुत्थाय परं ज्यो-तिरुप सम्पद्य स्वेन रूपेणाभिनिष्पद्यन्ते ॥ २ ॥

अन्वय और पदार्थ—(वायुः) वायु (अशरीरः) शरीर-रहित है (अभ्रम्) बादल (विद्युत्) बिजली (स्तनयित्नुः) मेघकी गर्जना (एतानि) ये (अशरीराणि) शरीररहित हैं (तत्) सो (यथा) जैसे (एतानि) ये (अमुष्मात्) उस (आकाशात्) आकाशसे (समुत्थाय) उठकर (परम्, ज्योतिः) उत्तम उष्णभावको (उपसम्पद्य) प्राप्त होकर (स्वेन, रूपेण) अपने रूपसे (अभिनिष्पद्यन्ते) सिद्ध होते हैं ॥ ३ ॥

भावार्थ—वायु, शिर-कर-चरण-आदि रूप शरीरसे रहित है, बादल बिजली और मेघकी गर्जना ये भी शरीरसे रहित ही हैं। जिस प्रकार जीव अज्ञानावस्थामें शरीरमें आत्मभावको पाजाता है इसी प्रकार ये वायु आदि वृष्टि आदि प्रयोजनों अन्तमें आकाशके स्वरूपको पाजाते हैं, फिर वर्षा करना आदि प्रयोजनकी सिद्धिके लिये आकाशमेंसे उत्तम प्रकारसे उठकर

सूर्यके उत्तम उष्णभावको वा पृथग्भावको प्राप्त होकर अपने २ (चौमासेके आरम्भमें प्रतीत होनेवाले) रूपसे सिद्ध होजाते हैं २

एवमेवैष सम्प्रसादोऽस्माच्छरीरात्समुत्थाय परं ज्योतिरुपसम्पद्य स्वेन रूपेणाभिनिष्पद्यते स उत्तमपुरुषः स तत्र पर्येति जक्षत् क्रीडन् रममाणः स्त्रीभिर्वा यानैर्वा ज्ञातिभिर्वा नोपजनꣳ स्मरन्निदꣳ शरीरꣳ स यथा प्रयोग्य आचरणे युक्त एवमेवायमस्मिञ्छरीरे प्राणो युक्तः ॥ ३ ॥

अन्वय और पदार्थ--(एवमेव) इसी प्रकार (एषः) वह (संप्रसादः) जीव (अस्मात्, शरीरात्) इस शरीरसे (समुत्थाय) उत्तम प्रकारसे उठकर (परम्, ज्योतिः) परमज्योति को (उपसम्पद्य) पाकर (स्वेन, रूपेण) अपने रूपसे (अभिनिष्पद्यते) सिद्ध होता है (सः) वह (उत्तमपुरुषः) उत्तम पुरुष है (सः) वह (तत्र) उसमें (पर्येति) सब ओरसे जाता है (जक्षत्) हँसता हुआ वा भक्षण करता हुआ (वा) अथवा (स्त्रीभिः) स्त्रियोंके साथ (वा) या (यानैः) वाहनों के साथ (वा) या (ज्ञातिभिः) जातिवालोंके साथ (क्रीडन्) क्रीड़ा करता हुआ (रममाणः) रमण करता हुआ (उपजनम्) समागमसे उत्पन्न हुए (इदम्) इस (शरीरम्) शरीरको (न) नहीं (स्मरन्) स्मरण करता हुआ [विचरति] विचरता है (सः) वह (यथा) जिस प्रकार (प्रयोग्यः) घोड़ा (आचरणे) रथमें (युक्तः) जोड़ा हुआ [भवति] होता है

(एवमेव) इस ही प्रकार (अयम्) यह (प्राणः) प्राण (अस्मिन्) इस (शरीरे) शरीरमें (युक्तः) योजना किया गया है ॥३॥

भावार्थ--आकाशसे वायु आदिकी समान ही ज्ञान प्राप्त हुआ यह जीव इस शरीरमेंसे उठकर अर्थात् शरीरमेंसे आत्मभावको त्याग परमज्योति ब्रह्मको पाकर अपने स्वरूपसे सिद्ध होजाता है। यह माया और मायाके कार्यकी अपेक्षा उत्तम पुरुष है, यह जीव उस स्वात्ममें स्वस्थतापूर्वक सबके आत्मपनेसे रहता हुआ सब ओरसे प्रवेश करता है। स्वर्गमें इन्द्रादि रूपसे हँसता हुआ वा इच्छित पदार्थोंका भक्षण करता हुआ अथवा ब्रह्मलोकमें सङ्कल्पसे उत्पन्न हुई स्त्रियोंके साथ या वाहनोंके साथ या ज्ञानियोंके साथ क्रीड़ा करता हुआ तथा मनसे ही स्मरण करता हुआ, स्त्री पुरुषके समागमसे उत्पन्न होने वाले इस शरीरका स्मरण भी न करता हुआ सर्वत्र विचरता है। जिस प्रकार घोड़ा रथमें उसको खेंचनेके लिये जोड़ा जाता है, इस प्रकार ही इस शरीरमें यह प्राण अपने कर्मफलको भोगनेके लिये योजित किया गया है ॥ ३ ॥

अथ यत्रैतदाकाशमनुविषण्णं चक्षुः स चाक्षुषः पुरुषो दर्शनाय चक्षुरथ यो वेदेदं जिघ्राणीति स आत्मा गन्धाय घ्राणमथ यो वेदमभिव्याहराणीति स आत्माऽभिव्याहाराय वागथ यो वेदेदं शृणवानीति स आत्मा श्रवणाय श्रोत्रम् ॥४॥

अन्वय और पदार्थ–(अथ) अब (यत्र) जहाँ (एतत्)

यह (आकाशम्, अनुविषण्णम्) छिद्रमेंको प्रवेश पाया हुआ (चक्षुः) चक्षु है (सः) वह (चाक्षुषः, पुरुषः) चाक्षुष पुरुष है (दर्शनाय) दर्शनके लिये (चक्षुः) नेत्र हैं (अथ) और (यः) जो (इदम्) इसको (जिघ्राणि) सूँघूँ (इति) ऐसा (वेद) जानता है (सः) वह (आत्मा) आत्मा है (गन्धाय) गन्धके लिये (घ्राणम्) नासिका है (अथ) अब (यः) जो (इदम्) इसका (अभिव्याहराणि) उच्चारण करूँ (इति) ऐसा (वेद) जानता है (सः) वह (आत्मा) आत्मा है (अभिव्याहाराय) उच्चारणके लिये (वाक्) वाणी है (अथ) अब (यः) जो (इदम्) इसको (शृणवानि) सुनूँ (इति) ऐसा (वेद) जानता है (सः) वह (आत्मा) आत्मा है (श्रवणाय) श्रवणके लिये (श्रोत्रम्) श्रोत्र है ॥ ४ ॥

भावार्थ—अब जिस संसारदशामें यह आँखमेंके कृष्ण तारा से उपलक्षित शरीरमेंके छिद्रमेंको प्रवेश किया हुआ चक्षु है उसमें वह अशरीर आत्मा चाक्षुष पुरुष है, उसको रूपके ज्ञान के लिये नेत्र है और जो यह 'सुगन्धिको मैं सूँघूँ' ऐसा जानता है वह आत्मा है, उसको गन्धके ज्ञानके लिये नासिका है, और जो 'इस वचनका मैं उच्चारण करूँ' ऐसा जानता है वह आत्मा है, उसके उच्चारणके लिये वाणी है और जो 'इसको मैं सुनूँ' ऐसा जानता है वह आत्मा है उसके श्रवणके लिये श्रोत्र है ४

अथ यो वेदेदं मन्वानीति स आत्मा मनोऽस्य दैवं चक्षुः स वा एष एतेन दैवेन चक्षुषा मनसैतान् कामान् पश्यन् रमते ॥ ५ ॥

अन्वय और पदार्थ-(अथ) और (यः) जो (इदम्) इसको (मन्वानि) मनन करूँ (इति) ऐसा (वेद) जानता है (सः) वह (आत्मा) आत्मा है (मनः) मन (अस्य) इसका (दैवम्) अप्राकृत (चक्षुः) चक्षु है (सः) वह (वै) प्रसिद्ध (एषः) यह (एतेन) इस (दैवेन) अप्राकृत (मनसा) मनोरूप (चक्षुषा) चक्षुके द्वारा (एतान्) इन (कामान्) भोगोंको (पश्यन्) देखता हुआ (रमते) रमण करता है ५

भावार्थ—जो यह जानता है, कि-मैं इसका मनन करूँ वह आत्मा है, उसके मननके लिये मन है मन आत्माका दैव कहिये दूसरी इन्द्रियोंकी अपेक्षा असाधारण नेत्र है, वह प्रसिद्ध मुक्तात्मा मनोरूप दैव-नेत्रके द्वारा इन भोगोंको सूर्यके प्रकाश की समान नित्य अभिव्यक्त ज्ञानके द्वारा देखता हुआ रमण करता है ॥ ५ ॥

य एते ब्रह्मलोके तं एवं वा देवा आत्मानमुपासते तस्मात्तेषाँ सर्वे च लोका आत्ताः सर्वे च कामाः स सर्वाँश्च लोकानाप्नोति सर्वाँश्च कामान् यस्तमात्मानमनुविद्य विजानातीति ह प्रजापति-रुवाच प्रजापतिरुवाच ॥ ६ ॥

अन्वय और पदार्थ-(ये) जो (एते) ये [कामाः] भोग (ब्रह्मलोके) ब्रह्मलोकमें हैं (देवाः) देवता (तम्) उस (वै) प्रसिद्ध (एतम्) इस (आत्मानम्) आत्माकी (उपासते) उपासना करते हैं (तस्मात्) तिस उपासनासे (तेषाम्) उन

के (सर्वे) सब (लोकाः) लोक (च) और (सर्वे) सब (कामाः) भोग (आत्ताः) वशमें रहते हैं (यः) जो (तम्) उस (आत्मानम्) आत्माको (अनुविद्य) जान कर (विजानाति) अनुभव करता है (सः) वह (सर्वान्) सब (लोकान्) लोकोंको (च) और (सर्वान्) सब (कामान्, च) भोगों को भी (आप्नोति) पाता है (इति) ऐसा (प्रजापतिः) प्रजापति (उवाच, ह) कहता हुआ ॥ ६ ॥

भावार्थ—जो ये ब्रह्मलोकमें संकल्पमात्रसे प्राप्त होने वाले भोग हैं, इनको देखता हुआ वह रमण करता है, इस बातको इन्द्रसे सुन कर देवता उस आत्माकी आज भी उपासना करते हैं और इस उपासनाके प्रभावसे उनको सब लोक और सब भोग प्राप्त होरहे हैं, आज कल भी इन्द्रादिकी समान जो पुरुष गुरु तथा शास्त्रसे आत्माको जान कर उसका अनुभव करता है वह सब लोकोंको और सब भोगोंको पाता है, ऐसा उस प्रसिद्ध प्रजापतिने कहा (मूलमें 'प्रजापतिरुवाच' का दो वार पाठ प्रकरण की समाप्ति सूचित करनेके लिये है) ॥ ६ ॥

॥ अष्टमाध्यायस्य द्वादशः खण्डः समाप्तः ॥

श्यामाच्छबलं प्रपद्ये शबलाच्छ्यामं प्रपद्येऽश्व इव रोमाणि विधूय पापं चन्द्र इव राहोर्मुखात्प्रमुच्य धूत्वा शरीरमकृतं कृतात्मा ब्रह्मलोकमभिसम्भवामीत्यभिसम्भवामीति ॥ १ ॥

अन्वय और पदार्थ—(श्यामात्) श्यामसे (शबलम्) शबलको (प्रपद्ये) प्राप्त होता हूँ (शबलात्) शबलसे (श्या-

मम्) श्यामको (प्रपद्ये) प्राप्त होता हूँ (अश्वः) घोड़ा (रोमाणि, इव) रोमोंको जैसे (पापम्) पापको (विधूय) दूर करके (चन्द्रः) चन्द्रमा (राहोः) राहुके (मुखात्) मुख से (प्रमुच्य, इव) छूट कर जैसे (शरीरम्) शरीरको (धूत्वा) त्याग कर (कृतात्मा) कृतार्थ होता हुआ (इति) इस प्रकार (अकृतम्) नित्य (ब्रह्मलोकम्) ब्रह्मलोकको (अभिसंभवामि) प्राप्त होता हूँ ॥ १ ॥

भावार्थ—श्याम कहिये हृदयगत गम्भीर ब्रह्मसे, शरीरपातके अनन्तर मनके द्वारा शवल कहिये अर तथा एय आदि अनेकों भोगोंसे मिश्रित ब्रह्मलोकको प्राप्त होता हूँ ब्रह्मलोकसे नामरूपका स्पष्टीकरण करनेके लिये हृदयगत ब्रह्मभावको प्राप्त होता हूँ, जिस प्रकार घोड़ा रोमोंमेंकी धूलि आदिको कम्पनके द्वारा दूर करके निर्मल होजाता है इसी प्रकार हृदयगत ब्रह्म के ज्ञानसे धर्माधर्मरूप पापको दूर करके और राहुसे ग्रसा हुआ चन्द्रमा जिस प्रकार राहुके मुखसे छूट कर प्रकाशवान् होता है, इस प्रकार ही सब अनर्थोंके आश्रयरूप शरीरको त्याग कर ध्यानसे कृतार्थ होता हुआ नित्य ब्रह्मलोकको प्राप्त होता हूँ ('अभिसम्भवामीति' का मूलमें दो वार पाठ मन्त्रकी समाप्ति के लिये है और शब्द ध्यानकी समाप्तिके लिये है) ॥ १ ॥

॥ अष्टमाध्यायस्य त्रयोदशः खण्डः समाप्तः ॥

आकाशो वै नामरूपयोर्निर्वहिता ते यदन्तरा तद् ब्रह्म तदमृतᳬ स आत्मा प्रजापतेः सभां वेश्म प्रपद्ये यशोऽहं भवामि ब्राह्मणानां यशो राज्ञां

यशो विशां यशोऽहमनु प्रापत्सि स हाहं यशसां यशः श्येतमदत्कमदत्कꣳ श्येतं लिन्दु माभिगाम् १

अन्वय और पदार्थ–(आकाशः) आकाश (वै) प्रसिद्ध (नामरूपयोः) नामरूपका (निर्वहिता) स्पष्ट करने वाला (ते) वे (यदन्तरा) जिसके भीतर हैं (तत्) वह (ब्रह्म) ब्रह्म है (तत्) वह (अमृतम्) अविनाशी है (सः) वह (आत्मा) आत्मा है (प्रजापतेः) प्रजापतिके (सभाम्, वेश्म) सभारूप स्थानको (प्रपद्ये) पाऊँ (अहम्) मैं (ब्राह्मणानाम्) ब्राह्मणों का (यशः) यश (राज्ञाम्) क्षत्रियोंका (यशः) यश (विशाम्) वैश्योंका (यशः) यश (भवामि) होऊँ (यशः) यशको (अहम्) मैं (अनुप्रापत्सि) प्राप्त होना चाहता हूँ (सः, ह) वह ही (अहम्) मैं (यशसाम्) यशोंका (यशः) यश हूँ (श्येतम्) लाल (अदत्कम्) दाँतरहित (अदत्कम्) भक्षण करने वाली (श्येतम्) लाल (लिन्दु) चिकनीको (माऽभिगाम्) न प्राप्त होऊँ ॥ १ ॥

भावार्थ—आकाश कहिये श्रुतिप्रसिद्ध आत्मा ही प्रसिद्ध नामरूपको स्पष्ट करने वाला है, वे नामरूप जिसके भीतर प्रतीत होते हैं वह ब्रह्म नामरूपसे विलक्षण और नामरूपसे अस्पष्ट है वह अविनाशी है और वह आत्मा है। प्रजापतिकी सभामें जो ब्रह्माका रचा हुआ स्थान है उस घरकी ओरको मैं जाऊँ। मैं ब्राह्मणोंका आत्मा होऊँ, क्षत्रियोंका आत्मा होऊँ, वैश्योंका आत्मा होऊँ, मैं आत्माको प्राप्त करना चाहता हूँ, वही मैं शरीर इन्द्रियें मन और बुद्धिरूप आत्माओंका आत्मा हूँ, लाल

और दन्तहीन होने पर भी, अपना सेवन करने वालोंके तेज, बल, वीर्य, विज्ञान और धर्मका नाश करने वाली जो स्त्रीकी योनि है उस लाल तथा चिकनी योनिको न प्राप्त होऊँ, चिकनी मलिन योनिमें न पड़ूँ अर्थात् गर्भवासका दुःख मुझे न सहना पड़े (अन्तिम वाक्यका दो वार कथन गर्भवासके अत्यन्त अनर्थकारी होनेको सूचित करनेके लिये है) ॥ १ ॥

॥ अष्टमाध्यायस्य चतुर्दशः खण्डः समाप्तः ॥

तद्धैतद् ब्रह्मा प्रजापतय उवाच प्रजापतिर्मनवे मनुः प्रजाभ्य आचार्यकुलाद्वेदमधीत्य यथा विधानं गुरोः कर्मातिशेषेणाभि समावृत्य कुटुम्बे शुचौ देशे स्वाध्यायमधीयानो धार्मिकान् विदधदात्मनि सर्वेन्द्रियाणि सम्प्रतिष्ठाप्याहिंसन् सर्वभूतान्यन्यत्र तीर्थेभ्यः स खल्वेवं वर्त्तयन् यावदायुषं ब्रह्मलोकमभिसम्पद्यते न च पुनरावर्त्तते न च पुनरावर्त्तते ॥१॥

अन्वय और पदार्थ—(तत्) वह (एतत्) यह (ह) प्रसिद्ध (ब्रह्मा) कश्यप (प्रजापतये) प्रजापतिके अर्थ (प्रजापतिः) प्रजापति (मनवे) मनुके अर्थ (मनुः) मनु (प्रजाभ्यः) प्रजाओंके अर्थ (उवाच) कहता हुआ (यथाविधानम्) विधिके अनुसार (आचार्यकुलम्) आचार्यके कुलसे (गुरोः) गुरुके (कर्म) कामको [कुर्वन्] करता हुआ (अतिशेषेण) शेष रहे समयके द्वारा (वेदम्) वेदको (अधीत्य) पढ़ कर (अभिसमावृत्य) अध्ययनकी प्राप्तिके अनन्तर लौट

कर (कुटुम्बे) कुटुम्बमें (शुचौ, देशे) पवित्र स्थानमें (स्वाध्यायम्) स्वाध्यायको (अधीयानः) अध्ययन करता हुआ (धार्मिकान्) धार्मिकोंको (विदधत्) रचता हुआ (आत्मनि) आत्मामें (सर्वेन्द्रियाणि) सब इन्द्रियोंको (सम्प्रतिष्ठाप्य) सम्यक् प्रकारसे स्थापित करके (तीर्थेभ्यः) तीर्थोंसे (अन्यत्र) अन्यत्र (सर्वभूतानि) सकल प्राणियोंको (अहिंसन्) पीड़ा न देता हुआ (सः) वह (खलु) निश्चय (यावत्-आयुषम्) जीवन भर (एवम्) इस प्रकार (वर्त्तयन्) वर्त्तता हुआ (ब्रह्मलोकम्) ब्रह्मलोकको (अभिसम्पद्यते) प्राप्त होता है (च) और (पुनः) फिर (न, आवर्त्तते) लौट कर नहीं आता है ।१।

भावार्थ—यह प्रसिद्ध उपदेश, शम दम आदि साधन और उपासना सहित कश्यपने प्रजापतिको, प्रजापतिने मनुको और मनुने प्रजाओंको दिया था । परम्परासे आया हुआ यह उपनिषदोंका विज्ञान आज भी विद्वानोंमें देखनेमें आता है । धर्मशास्त्रमें कहे नियमके अनुसार वर्त्ताव करता हुआ आचार्यके कुलसे गुरुका सेवाकर्म करते हुए जो समय बचे उसमें अर्थसहित वेदको पढ़े और उसको नियमित समयमें समाप्त कर गुरु की आज्ञा ले अपने घरको लौट आवे, तहाँ योग्य स्त्रीको ग्रहण करके कुटुम्बमें रहता हुआ पवित्र देशमें अपने पढ़े हुए वेदादि शास्त्रका परायण किया करे और अध्यापन उपदेश आदिके द्वारा पुत्र पौत्र आदि और शिष्यमण्डलीको धार्मिक बनावे, तीर्थोंमें तो नियमोंका पालन होता ही है परन्तु तीर्थोंसे अन्यत्र भी किसी प्राणीको पीड़ा न देय, वह अधिकारी पुरुष इस

प्रकार अपने जीवन भर वर्त्ताव करता रहे तो देहान्त होने पर निःसन्देह ब्रह्मलोकको पाता है और तहाँसे फिर शरीर धारण करनेके लिये लौट कर नहीं आता है लौट कर नहीं आता है (दो वार कथन उपनिषद्की समाप्ति सूचित करनेके लिये है) १

॥ अष्टमाध्यायस्य पञ्चदशः खण्डः समाप्तः ॥

—————o—————

शान्तिपाठः

ॐ आप्यायन्तु ममाङ्गानि वाक् प्राणश्चक्षुः श्रोत्रमथो बलमिन्द्रियाणि च सर्वाणि सर्वं ब्रह्मौपनिषदं माऽहं ब्रह्म निराकुर्यां मा मा ब्रह्म निराकरोदनिराकरणमस्त्वनिराकरणं मेऽस्तु तदात्मनि निरते य उपनिषत्सु धर्मास्ते मयि सन्तु ते मयि सन्तु ॥

इति श्रीछान्दोग्योपनिषदः युक्तप्रान्तान्तर्गत-मुरादाबादनगरनिवासिना--काशीस्थसंस्कृतमहाविद्यालये, षड्दर्शनाध्यापक-महामहोपाध्याय--निखिलतन्त्रस्वतन्त्र--स्वर्गीयस्वामि-राममिश्रशास्त्रिभ्योऽधिगतविद्येन--भारद्वाजगोत्र-गौड़वंश्यपण्डित--भोलानाथात्मजेन-सनातनधर्मपताकासम्पादकेन ऋषिकुमारोपनामधारिणा---रामस्वरूप-शर्मणा विरचितोन्वय-पदार्थभावार्थः समाप्तः ।

